

आगत

दशवैकालिक सूत्र



— : तत्त्वावधान : —

आचार्य श्री हस्तीमल जी म.सा.



सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल



आर्य शर्यंभवाचार्य द्वारा निर्यूढ

दशवैकालिक सूत्र

(मूल पाठ, हिन्दी पद्यानुवाद, अन्वयार्थ और भावार्थ सहित)

तत्त्वावधान :

आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा.

हिन्दी पद्यानुवाद :

पं. शशिकान्त झा



प्रकाशक

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल

पुस्तक :
दशवैकालिक सूत्र

प्रकाशक:

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल

बापू बाजार, जयपुर-302003 (राजस्थान)

फोन : 0141-2575997

फैक्स : 0141-2570753

Email : sgpmandal@yahoo.in

षष्ठम संस्करण : 2005

सप्तम संस्करण : 2009

अष्टम संस्करण : 2013

मुद्रित प्रतियाँ : 1100

मूल्य : **₹0.00 रुपये** (साठ रुपये मात्र)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

लेज़र टाइप सैटिंग :

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल

मुद्रक : दी डायमण्ड प्रिंटिंग प्रेस, जयपुर

0141-2562901

अन्य प्राप्ति स्थल :

❑ श्री स्थानकवासी जैन स्वाध्याय संघ
घोड़ों का चौक, जोधपुर-342001
(राजस्थान)
फोन : 0291-2624891
मोबाइल : 09414267824

❑ **Shri Navratan ji Bhansali**
C/o. Mahesh Electricals,
14/5, B.V.K. Ayangar Road,
BANGALURU-560053
(Karnataka)
Ph. : 080-22265957
Mob. : 09844158943

❑ **Shri B. Budhmal ji Bohra**
C/o. Bohra Syndicate,
53, Erullapan Street,
Sowcarpet, **CHENNAI-600079**
(Tamilnadu)
Ph. : 044-26425093
Mob. : 09444235065

❑ श्रीमती विजयानन्दिनी जी मल्हारा
"रत्नसागर", कलेक्टर बंगला रोड़,
चर्च के सामने, 491-ए, प्लॉट नं. 4,
जलगाँव-425001 (महा.)
फोन : 0257-2223223

❑ श्री दिनेश जी जैन
1296, कटरा धुलिया, चाँदनी चौक,
दिल्ली-110006
फोन : 011-23919370
मो. 09953723403

प्रकाशकीय

वीतराग भगवन्तों की वाणी निर्दूषित होती है। उसमें वचनातिशय होता है। इस वाणी को ही आगम के नाम से जाना जाता है। ये आगम अनादिकाल से जीवन में रहे हुए कषाय, काम, क्रोध, मोह, वासना एवं विकारों को जड़मूल से नाश करने का सामर्थ्य रखते हैं। इन आगमों में रहा नवनीत मोहपाश में आबद्ध प्राणियों के लिए अमृत तुल्य है।

आगम-साहित्य के स्वाध्याय से ज्ञानवर्द्धन के साथ जीवन को नवीन दिशा प्राप्त होती है। अध्यात्मयोगी आचार्यप्रवर श्री हस्तीमलजी म.सा. का स्वाध्याय पर विशेष बल था। आप जीवन-निर्माणकारी सत्साहित्य के स्वाध्याय के साथ आगमों का स्वाध्याय करने की भी प्रेरणा करते थे। आपका चिन्तन था कि भावक समुदाय आगम-स्वाध्याय की ओर आकर्षित हो। इसी लक्ष्य से आपके तत्त्वावधान में कुछ आगमों के ऐसे संस्करण तैयार हुए जो अन्वयार्थ, भावार्थ/विवेचन, टिप्पण आदि के साथ हिन्दी पद्यानुवाद से भी सम्पृक्त हैं।

परमपूज्य प्रवचन प्रभाकर आचार्यप्रवर पूज्य श्री हीराचन्द्रजी म.सा. का भ्रमणाचार के शुद्ध पालन पर बल रहता है। भ्रमणाचार के प्रतिपादक आगम दशवैकालिक सूत्र का स्वाध्याय करने के साथ ही इसकी गाथाओं का अपने प्रवचनों में आचार्य श्री अधिकाधिक प्रयोग करते हैं। आपकी अभिलाषा रहती है कि आगमों का अधिकाधिक स्वाध्याय हो।

दशवैकालिक सूत्र भ्रमणाचार का सर्वाङ्ग एवं संक्षिप्त रूप प्रतिपादन करता है। इसके दस अध्ययनों में भ्रमण जीवन की आचार संहिता का समुचित कथन हुआ है। भ्रमण की आहारवृत्ति का प्रतिपादन प्रथम अध्ययन में किया तो द्वितीय अध्ययन में कामना विजय की प्रेरणा दी गई। तृतीय अध्ययन में 52 अनाचीर्णों का वर्णन करते हुए साधु को इनसे बचने की बात कही। चतुर्थ अध्ययन भ्रमण जीवन की आधारशिला 5 महाव्रत एवं छः काय जीव की रक्षा की विवेचना कर रहा है। पंचम अध्ययन गोचरी की विधि का प्रतिपादन कर रहा है। सातवें में पुनः साधु के आचार का वर्णन करने के साथ ही आठवाँ अध्ययन साधु की वचन शुद्धि अर्थात् वचन व्यवहार का वर्णन कर रहा है। नौवाँ अध्ययन धर्म का मूल विनय की प्रशस्ति का है। दसवाँ अध्ययन भिक्षु की परिभाषाएँ बता रहा है।

अन्त में दोनों चूलिकाएँ भी भ्रमण जीवन की ही विशेषताओं का विवेचन कर रही है। अतः समग्रता में कहें तो दशवैकालिक सूत्र भ्रमण जीवन के प्रासाद की नींव है। इसके स्वाध्याय से भ्रमण तो अपने आचार के प्रति सजग एवं दृढ़ हो ही सकते हैं; किन्तु भ्रावक भी अपना ज्ञानवर्धन कर स्वयं के आचरण को पावन बनाते हुए भ्रमणाचार के पालन में भ्रमण-भ्रमणियों के सहयोगी बन सकते हैं। आचार प्रधान आगम दशवैकालिक सूत्र पाठकों के समक्ष रसास्वादन हेतु प्रस्तुत है।

प्रस्तुत पुस्तक की पूर्ण सामग्री आचार्य भगवन्त श्री हस्तीमलजी म.सा. की दीर्घ दृष्टि एवं गहरे आगम ज्ञान से अवलोकन की हुई है। गाथा व सूत्रों का हिन्दी पद्यानुवाद पं. श्री शशिकान्तजी झा द्वारा तैयार किया हुआ है। प्रफू संशोधन कार्य श्री त्रिलोकचन्द्रजी जैन ने किया। साथ ही कम्प्यूटर सेटिंग श्री प्रहलाद नारायणजी लखेरा, आवरण पृष्ठ श्री अनिल कुमारजी जैन द्वारा तैयार किया गया है, अतः मण्डल उक्त सभी विशेषज्ञों का आभारी है।

इस वर्ष अखिल भारतीय श्री जैन रत्न भाविका मण्डल, द्वारा आयोजित दशवैकालिक सूत्र पर आधारित 'बनें आगम अध्येता' परीक्षा योजना के कारण इस पुस्तक की अत्यधिक माँग रही। मण्डल द्वारा अब यह अष्टम संस्करण प्रबुद्ध पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है।

इस संस्करण की विशेषता है कि इस संस्करण में पुस्तक की साइज बड़ी करके अक्षरों को भी बड़ा किया गया है। जिससे सभी तरह के पाठक इसका स्वाध्याय सरलता से कर सकें।

आशा है, यह आगम ग्रन्थ स्वाध्यायियों एवं आगम रसिक जिज्ञासुओं के लिए विशेष उपयोगी सिद्ध होगा।

:: निवेदक ::

कैलाशमल दुगड़
अध्यक्ष

सम्पतराज चौधरी
कार्याध्यक्ष

विनयचन्द्र डागा
मन्त्री

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल

सूत्र-परिचय

प्रस्तुत शास्त्र की रचना का मुख्य लक्ष्य मुमुक्षु साधकों को अल्प समय में श्रमणाचार का आवश्यक ज्ञान प्रदान कर उन्हें कल्याण-मार्ग की साधना में आगे बढ़ाना है। आचारांगादि अन्य अंग शास्त्रों का अध्ययन समय और कुशाग्र बुद्धि की अपेक्षा रखते हैं। अतः साधारण बुद्धि वाले आजकल के साधक उनसे जल्दी बोध प्राप्त नहीं कर पाते हैं। इसी दृष्टिकोण को लेकर आचार्य शय्यम्भव ने साधना में आवश्यक विषय को दस विभागों में छाँट-कर दशवैकालिक के रूप में उनका पूर्वोक्त से संकलन कर अभ्यासार्थियों के लिये गागर में सागर भरने का काम किया है।

दशवैकालिक के प्रथम अध्ययन में साधना के मुख्य अंग धर्म के स्वरूप, उसकी महिमा आदि का परिचय दिया गया है। धर्म की आराधना दीप्तिमान और कामनामुक्त साधक ही कर सकता है। अतः दूसरे अध्ययन में कामना का निवारण करने की शिक्षा दी गई है। साधक कामना से तभी मुक्त रह सकेगा, जब उसे आचार और अनाचार का ज्ञान होगा। अतः तीसरे अध्ययन में प्रमुख रूप से 52 अनाचारों का परिचय दिया गया है। उसका नाम 'क्षुल्लकाचार-कथा' रखा गया है।

अनाचार से बचकर साधक आचार मार्ग की सम्यक् आराधना कर सकें, इसलिये चतुर्थ 'धर्मप्रज्ञप्ति अध्ययन' में रात्रि-भोजन विरमण सहित छः व्रतों की और षड्जीवनिकाय की रक्षा की शिक्षा दी गई है।

महाव्रतों का सम्यक् परिपालन तब ही सम्भव हो सकता है, जब आहार, विहार और सम्भाषण में विवेक से काम लिया जावे। अतः पांचवें अध्ययन में दो उद्देश्यों से साधकों के आहार-ग्रहण और परिभोग के नियम बताये गये हैं। आचारांग में वर्णित पिण्डैषणा का इस अध्ययन में संक्षिप्त सार प्रस्तुत कर दिया गया है।

छठे अध्ययन में 'क्षुल्लकाचार कथा' में बताये गये अनाचारों के मौलिक 18 स्थान बतलाकर श्रमणाचार की विस्तार से शिक्षा दी है। उसको 'महाचार कथा' अथवा 'धर्मार्थकाम अध्ययन' नाम से भी कहा जाता है।

साधना में अहिंसा महाव्रत के परिपालन हेतु जैसे पिण्ड-शुद्धि का ज्ञान आवश्यक है, इसी प्रकार अहिंसा और सत्य के लिये वाक्य-शुद्धि की भी उतनी ही आवश्यकता है। बहुत से व्रती अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह व्रत को धारण करके भी बोलने में वाच्य-अवाच्य का ध्यान नहीं रख पाते। उन्हें यह भी मालूम नहीं रहता कि संयमी को कैसा वचन बोलने से व्रत दूषित होता है। अतः सप्तम अध्ययन में भाषा के दोषों का वर्जन कर हित-मित और पथ्य भाषा बोलने की शिक्षा दी गई है। भाषा शुद्धि का महत्त्व भी आहार शुद्धि से कम नहीं है।

आठवाँ अध्ययन आचार प्रणिधि है। इसमें अहिंसा आदि व्रत और आहार-शुद्धि एवं वचन-शुद्धि आदि आचारों का सम्यक् परिपालन करने के लिये जिन बातों की आवश्यकता है, उनको ध्यान में रखकर इस अध्ययन में अहिंसा की रक्षा के लिये सदा अप्रमत्त भाव से यतना करने की शिक्षा दी गई है और कहा गया है कि साधक उच्चारादि उत्सर्ग करने की वस्तुओं को निर्दोष स्थान देखकर परिष्ठापन करे। बीसवीं गाथा में कहा गया है कि साधु कान से बहुत सुनता और आँख से बहुत देखता है, किन्तु उसे सब सुनी, देखी बातें इधर-उधर कहना उचित नहीं है। 21-22वीं गाथा में साधक को वचन सम्बन्धी विवेक की शिक्षा दी गई है तथा कहा है कि वह देखी-सुनी बात को जो दूसरों के लिये पीड़ा कारक हो, नहीं बोले। 23-25 तक की गाथाओं में कहा गया है कि भोजन में आसक्त होकर अप्रासुक आहार नहीं करे। सदोष आहार का वर्जन करे। कभी विहार मार्ग में अलाभ की आशंका से आहार का संग्रह न रखे। यथा लाभ में सन्तोष करने वाला मुनि कभी किसी के अप्रिय कहने पर क्रुद्ध नहीं होवे। 26वीं गाथा से 32 तक में अनुकूल, प्रतिकूल परीषह शान्तभाव से सहन करे और सद्भावपूर्वक देह की सुकुमारता को त्याग दे। सूर्योदय से पूर्व आहार आदि को मन से भी नहीं चाहे।

अपने द्वारा पर का तिरस्कार और अपनी स्तुति आदि नहीं करे। कभी कोई गलती हो जाये तो उसको गुरुजनों के समक्ष बिना छुपाये प्रगट करे। 33वीं गाथा में गुरुजनों के वचन को खाली नहीं जाने दे, इस प्रकार के विविध शिक्षा-वचनों से सूत्रकार ने इस अध्ययन में आचार की विशेष शुद्धि और तेजस्विता को बढ़ाने के लिये बहुमूल्य शिक्षाएँ प्रदान की हैं।

उपर्युक्त आचार-संहिता और संयम-शोधक नियमों का पालन वही साधक सम्यक् रूप से कर सकेगा, जिसको जिनराज की वाणी पर भक्ति और उसके प्रति बहुमान है। विनयहीन साधक जिन-वचनों को सुनकर और जानकर भी सम्यक् आचरण नहीं कर सकेगा। जितना करेगा उसे भी वह भार मानकर ही करेगा, अतः क्रिया में आदर आवे और साधक लौकिक कामनाओं से दूर रहकर आचार-धर्म का यथावत् पालन करे, एतदर्थ नवम अध्ययन के 4 उद्देशकों में विनय की शिक्षा दी गई है।

पहले उद्देशक में अविनय और अभक्ति का अशुभ फल और उससे होने वाली आत्म-गुण की हानि को नौ गाथाओं से बताकर कहा गया है कि जिसके पास धर्म-पद का शिक्षण प्राप्त करे, उसके प्रति तन, मन और वाणी से विनय का प्रसाधन करे। दूसरे उद्देशक में विनय को धर्म का मूल बताकर अविनय से दुःख, अकीर्ति और आशातना होती है और विनय से सुख, सुकीर्ति और भक्ति होती है, विनयवान इस दुष्कर संसार-सागर को पार-कर उत्तम गति को प्राप्त करता है, यह अर्थ बताया गया है। तीसरे उद्देशक में पन्द्रह गाथाओं से बताया गया है कि आचार्य की विनय-भक्ति करने वाले शिष्य पूजक से पूज्य हो जाते हैं, इसलिये विनय का समाराधन करे। चौथे उद्देशक में विनय, श्रुत, तप और आचार इन चार प्रकार के समाधि-स्थानों से साधक जन्म-मरण से मुक्त होकर शाश्वत सिद्ध पद का अधिकारी होता अथवा महर्द्धिक देव होता है, ऐसा कहा गया है।

नवम अध्ययन में चार उद्देश्यों से दी गई शिक्षा का यह भी महत्त्व हो सकता है कि साधक पूर्वोक्त क्रियाओं का भय, लज्जा या राजकीय बेगार भाव से नहीं, किन्तु आत्मिक सद्भावना और भक्तिपूर्वक आचरण करे। चार समाधियों में यह स्पष्ट कहा गया है कि (1) साधक इस लोक के धन-वैभव के लिये, आचार का पालन नहीं करे, (2) परलोक में स्वर्गादि सुखों के लिये भी नहीं करे, (3) महिमा-पूजा के लिये भी नहीं करे, किन्तु एकान्त कर्म-निर्जरा और आज्ञापालन की भावना से आचार-धर्म का पालन करे।

दसवें अध्ययन में शास्त्रगत समस्त विषयों का उपसंहार करते हुए 21 गाथाओं से यह बताया गया है कि भिक्षु कौन होता है ? अन्त में दो चूलिका अध्ययन हैं। उनके लिये कहा जाता है कि-आर्या यक्षा ने सीमंधर स्वामी के मुख से साक्षात् सुनकर इनको प्राप्त किया और संघ के निवेदन पर ये दोनों अध्ययन संघ को समर्पित किये।

सभी अध्ययन मुमुक्षु के लिये पठनीय, मननीय एवं विनयपूर्वक आचरणीय हैं।

रचना एवं निर्यूहण

दशवैकालिक सूत्र की रचना अंग-शास्त्रों की तरह गणधरकृत नहीं, किन्तु स्थविरकृत है, इसलिये इसकी गणना अंग बाह्य आगम में की जाती है। निर्युक्तिकार के अनुसार चतुर्दश पूर्वों से दशवैकालिक सूत्र का आर्य शय्यंभव के द्वारा निर्यूहण किया गया है। दृढ़ परम्परा है कि जब शय्यंभव भट्ट आर्य प्रभवस्वामी के पास मुनि धर्म में दीक्षित हुए, तब उनकी धर्मपत्नी सगर्भा थी, पारिवारिक लोगों के द्वारा पूछने पर कि तेरे उदर में क्या कुछ है ? उत्तर में उसने सकुचाते हुए कहा-‘मनख।’ समय पाकर जन्म के पश्चात् बालक का नाम माता की उक्ति के आधार पर ‘मनख’ रखा गया। वही बालक लगभग 8 वर्ष का हुआ, तब उसने माता से पूछा कि मेरे पिता कहाँ हैं ? माता ने बालक से कहा कि तेरे पिता तेरे जन्म काल से पूर्व ही जैन मुनि बन गये हैं और वे चम्पानगरी के आस-पास विचरण कर रहे हैं। स्नेहवश बालक ने अपने खेल छोड़कर, पिता से मिलने को चम्पानगरी की ओर प्रस्थान कर दिया। आर्य शय्यंभव शौच को निकले हुए थे, उस समय बालक उधर आया और मुनि को नमस्कार किया। मुनि ने बालक से पूछा कि तुम कौन हो और कहाँ से आये हो ?

उत्तर में बालक ने कहा-“मैं शय्यंभव भट्ट का पुत्र हूँ और राजगृही नगरी से अपने पिता जो दीक्षित हो गये हैं, उनसे मिलने आया हूँ।” आर्य शय्यंभव बालक की बात से मन ही मन प्रसन्न हुए, बालक ने पूछा-‘क्या आप मेरे पिता मुनिश्री को जानते हैं ?’ आर्य शय्यंभव ने कहा-“हाँ, मैं जानता हूँ, हम और वे एक ही हैं।” बालक ने कहा-“हे भिक्षु ! मुझे उन्हीं के पास दीक्षित होना है।” आर्य शय्यंभव ने उपाश्रय में आकर उसे मुनि दीक्षा प्रदान की और उसके साथ ही सोचा कि इसका जीवन (आयुष्य) काल कितना शेष है। पूर्वश्रुत में उपयोग लगाने से ज्ञात हुआ कि नवदीक्षित मुनि का आयुकाल मात्र छः मास का है। इतने अल्पकाल में मुनि अपनी सफल साधना से आत्महित कर सके, ऐसा ज्ञान दिया जाय तो अच्छा। इस भावना से आर्य शय्यंभव

ने नवदीक्षित मुनि के लिये पूर्वश्रुत से दश अध्ययन का निर्यूहण कर दिन के अवसान काल में पूर्ण किया। इसलिये इस सूत्र का नाम दशवैकालिक रखा गया, जैसा कि दशवैकालिक निर्युक्ति में कहा है-

मणग पडुच्च सेज्जंभवेण निज्जूहिया दस अज्झयणा ।
वेयालियाई ठविया तम्हा दसकालियं णाम ॥15॥

नवदीक्षित साधु-साध्वियों के लिये इसका अध्ययन अत्यन्त लाभकारी सिद्ध होता है। मुनि मनख ने दशवैकालिक सूत्र से शिक्षा प्राप्त कर अपना कल्याण किया और तभी से इस सूत्र का अध्ययन-अध्यापन प्रचुर मात्रा में होने लगा।

कौनसा अध्ययन किस पूर्व से?

निर्युक्तिकार के अनुसार चतुर्थ धर्म-प्रज्ञप्ति अध्ययन आत्म-प्रवाद पूर्व से, पिण्डैषणा अध्ययन कर्म-प्रवाद पूर्व से और वाक्य-शुद्धि नामक सप्तम अध्ययन सत्य-प्रवाद पूर्व से उद्धृत किया गया है। शेष अध्ययन नवम पूर्व की तीसरी वस्तु से लिये गये हैं। जैसा कि निर्युक्तिकार ने कहा है-

आयप्पवायपुव्वा, निज्जूढा होइ धम्मपन्नत्ती ।
कम्मप्पवायपुव्वा, पिंडस्स उ एसणा तिविहा ॥16॥
सच्चप्पवायपुव्वा, निज्जूढा होइ वक्कमुद्धि उ ।
अवसेसा निज्जूढा, नवमस्स उ तइय वत्थुणो ॥17॥

दूसरी मान्यता के अनुसार द्वादशांगी से मनख मुनि के अनुग्रहार्थ इसका निर्यूहण माना गया है। जैसा कि कहा है-

वीओऽवि अ आएसो, गणिपिडगाओ दुवालसंगाओ ।
एअं किर णिज्जूढं, मणगस्स अणुग्गहट्ठाए ॥18॥

इस सूत्र की शिक्षाओं का पालन करने वाला अन्य शास्त्रों को बिना पढ़े भी अपना निश्चित ही कल्याण कर सकता है। विशेष, पाठक मूल सूत्र के स्वाध्याय से ही ज्ञानामृत का पान कर स्वयं अनुभव करेंगे।



शास्त्र पढ़ने की विधि

ज्ञान-वृद्धि के लिये छद्मस्थ आचार्यों के ग्रन्थ और वीतराग प्रणीत शास्त्रों के पठन-पाठन की विधि में बहुत अन्तर है। ग्रन्थों के पठन-पाठन में काल-अकाल और स्वाध्याय-अस्वाध्याय कृत प्रतिबन्ध खास नहीं होता, जबकि शास्त्रवाणी जिसको आगम भी कहते हैं, के पठन-पाठन में काल-अकाल का ध्यान रखना आवश्यक है। वीतराग प्रणीत शास्त्र में जो कालिक शास्त्र हैं, वे दिन-रात्रि के प्रथम और अन्तिम प्रहर में ही नियमानुसार शरीर और आकाश सम्बन्धी अस्वाध्यायों को छोड़कर पढ़े जाते हैं। इसके अतिरिक्त उपांग, कुछ मूल और कुछ छेद आदि उत्कालिक कहे जाते हैं, वे दिन-रात्रि के चारों प्रहर में पढ़े जा सकते हैं।

स्वाध्याय करने वाले धर्म प्रेमी भाई-बहनों को सर्वप्रथम गुरु महाराज की आज्ञा लेकर अक्षर, पद और मात्रा का ध्यान रखते हुए शुद्ध उच्चारण से स्वाध्याय करना चाहिये। आगम शास्त्र अंग, उपांग, मूल और छेद रूप से अनेक रूपों में विभक्त हैं, उन सबमें मुख्य रूप से कालिक और उत्कालिक के विभाग में सबका समावेश हो जाता है। स्वाध्याय करते समय स्वाध्यायी को ये बातें ध्यान में रखना आवश्यक है कि यह स्थान और समय स्वाध्याय के योग्य है या नहीं? अतः ज्ञान के निम्न चौदह अतिचारों का ध्यान रखकर स्वाध्याय करने से ज्ञानाचार की आराधना होती है-

(1) सूत्र के अक्षर उलट-पलट कर पढ़ना। (2) एक शास्त्र के पद को दूसरे शास्त्र के पद से मिलाकर पढ़ना। (3) सूत्र-पाठ में अक्षर कम करना। (4) सूत्र पाठ में अधिक अक्षर बोलना। (5) पदहीन करना। (6) बिना विनय के पढ़ना। (7) योग-हीन-मन, वचन और काया के योगों की चपलता से पढ़ना। (8) घोषहीन-जिस अक्षर का जिस घोष से उच्चारण करना हो, उसका ध्यान नहीं रखना। (9) पढ़ने वाले पात्र का ध्यान न रखकर अयोग्य को पाठ देना। (10) आगम पाठ को अविधि से ग्रहण करना। (11) अकाल-जिस सूत्र का जो काल हो, उसका ध्यान न रखकर अकाल में स्वाध्याय करना। (12) कालिक-शास्त्र पठन के काल में स्वाध्याय नहीं करना। (13) अस्वाध्याय-अस्वाध्याय की स्थिति में स्वाध्याय करना। (14) स्वाध्याय की स्थिति में स्वाध्याय नहीं करना।

अस्वाध्याय के प्रकार-

अस्वाध्याय का अर्थ यहाँ पर स्वाध्याय का निषेध नहीं, किन्तु जिस क्षेत्र और काल में स्वाध्याय का वर्जन किया जाता है, वह अपेक्षित है, इस दृष्टि से अस्वाध्याय मुख्य रूप से दो प्रकार का होता है। (1) आत्म समुत्थ (2) पर समुत्थ। अपने शरीर में रक्त आदि से अस्वाध्याय का कारण होता है। अतः उसे आत्म समुत्थ कहा है। स्थानांग और आवश्यक निर्युक्ति आदि में इसका विस्तार से विवेचन किया गया है। वहाँ पर दस औदारिक शरीर की, दस आकाश सम्बन्धी, पाँच पूर्णिमा तथा पाँच महाप्रतिपदा की और चार सन्ध्याएँ, कुल मिलाकर 34 अस्वाध्याय कही गई हैं, जो इस प्रकार हैं-

दस आकाश सम्बन्धी-

- (1) **उल्कापात**-तारे का टूटना, उल्कापात में एक प्रहर का अस्वाध्याय होता है।
- (2) **दिग्दाह**-दिशा में जलते हुए बड़े नगर की तरह ऊपर की ओर प्रकाश दिखता है और नीचे अन्धकार प्रतीत हो, उसे दिग्दाह कहते हैं। इसमें भी एक प्रहर का अस्वाध्याय होता है।
- (3) **गर्जित**-मेघ का गर्जन होने पर दो प्रहर का अस्वाध्याय।
- (4) **असमय में गर्जन**-बिजली चमकना। आर्द्रा नक्षत्र से स्वाति नक्षत्र तक वर्षा-ऋतु में गर्जित और विद्युत की अस्वाध्याय नहीं होती है।
- (5) **निर्घात**-मेघ के होने या न होने की स्थिति में कड़कने की आवाज हो तो अहोरात्रि का अस्वाध्याय माना जाता है।
- (6) **यूपक**-शुक्ल पक्ष में प्रतिपदा, द्वितीया और तृतीया को चन्द्र प्रभ से सन्ध्या आवृत्त होने के कारण तीनों दिन प्रथम प्रहर में अस्वाध्याय माना जाता है।

- (7) **धूमिका**—कार्तिक से माघ मास तक मेघ का गर्भ जमता है, इस समय जो धूम वर्ण की सूक्ष्म जल रूप धूवर पड़ती है, वह धूमिका कहलाती है। जब तक धूमिका रहती है, तब तक स्वाध्याय का वर्जन करना चाहिये।
- (8) **महिका**—शीतकाल में सफेद वर्ण की सूक्ष्म अप्काय रूप धूवर गिरती है, उसे महिका कहते हैं। जब तक धूवर गिरती रहे, तब तक अस्वाध्याय माना जाता है।
- (9) **यक्षादीप्त**—कभी-कभी किसी दिशा में बिजली चमकने जैसा रह-रह कर प्रकाश होता हो, उसे यक्षादीप्त कहते हैं। जब तक वह साफ दिखाई पड़े, तब तक अस्वाध्याय मानना चाहिये।
- (10) **रजउद्घात**—वायु के कारण आकाश में चारों ओर जो धूल छा जाती है, उसे रजोद्घात कहते हैं। जब तक यह रहे, तब तक अस्वाध्याय मानना चाहिये।

दस औदारिक शरीर सम्बन्धी-

- (11-13) **तिर्यञ्च** के हाड़, मांस और रक्त, साठ हाथ के अन्दर हों, तथा साठ हाथ के भीतर बिल्ली आदि ने चूहे को मारा हो तो, अहोरात्रि का अस्वाध्याय कहा गया है। यदि मनुष्य सम्बन्धी हाड़-मांस और रक्त आदि हो, तो सौ हाथ दूर तक अस्वाध्याय माना गया है। तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय का साठ हाथ तक होता है। काल की अपेक्षा टीकाकारों ने एक अहोरात्रि का समय माना है, किन्तु वर्तमान में कलेवर हटाकर स्थान को धोकर साफ कर लेने के बाद अस्वाध्याय नहीं माना जाता है। बहिरंग के ऋतुधर्म का तीन दिन और बालक-बालिका के जन्म का क्रमशः सात और आठ दिन का अस्वाध्याय माना जाता है।
- (14) **अशुचि**—मल, मूत्र और गटर आदि स्वाध्याय-स्थल के पास हो अथवा मलादि दृष्टिगोचर हो, तो वहाँ स्वाध्याय नहीं करना चाहिये।
- (15) **श्मशान**—श्मशान के चारों ओर सौ-सौ हाथ तक अस्वाध्याय माना गया है।
- (16) **चन्द्रग्रहण**—चन्द्रग्रहण में कम से कम आठ और अधिक से अधिक बारह प्रकार तक अस्वाध्याय माना गया है। आचार्यों ने यदि उदित चन्द्र ग्रसित हो, तो चार प्रहर रात के व चार प्रहर दिन के अस्वाध्याय मानने का निर्णय किया है।
- (17) **सूर्यग्रहण**—सूर्यग्रहण का कम से कम आठ, बारह और उत्कृष्ट सोलह प्रहर तक अस्वाध्याय माना गया है। यदि पूरा ग्रहण हो तो सोलह प्रहर का अस्वाध्याय माना जाता है।
- (18) **पतन**—राजा के निधन, राजा या उत्तराधिकारी की मृत्यु होने पर जब तक दूसरा राजा सत्तारूढ़ न हो, तब तक अस्वाध्याय माना जाता है।
- (19) **राजव्युद्ग्रह**—राजाओं में परस्पर संग्राम होता रहे, जब तक शान्ति न हो, तब तक स्वाध्याय नहीं करना चाहिये।
- (20) **औदारिक शरीर**—उपाश्रय के निकट तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय का कलेवर पड़ा हो तो साठ हाथ तथा यदि मनुष्य का कलेवर हो तो सौ हाथ तक अस्वाध्याय माना जाता है।
- (21-30) **पाँच महापूर्णिमा**—1. आषाढी पूर्णिमा, 2. भादवा पूर्णिमा, 3. आश्विनी पूर्णिमा, 4. कार्तिक पूर्णिमा, 5. चैत्र की पूर्णिमा। **पाँच प्रतिपदा**—1. श्रावण कृष्णा प्रतिपदा, 2. आसोज कृष्णा प्रतिपदा, 3. कार्तिक कृष्णा प्रतिपदा, 4. मगसर कृष्णा प्रतिपदा, 5. वैशाख कृष्णा प्रतिपदा। इन दिनों में इन्द्र महोत्सव होते थे। अतः इन दस दिनों में अस्वाध्याय माना गया है।
- (31-34) **चार संध्या**—दिन एवं रात्रि में संध्याकाल अर्थात् प्रातः, सायं, मध्याह्न तथा मध्य-रात्रि में दो घड़ी अर्थात् एक मुहूर्त का अस्वाध्याय माना जाता है।

आगम तीन प्रकार के होते हैं—1. मूल पाठ को सुतागम, 2. अर्थ के पठन-पाठन को अर्थागम, 3. सूत्र बोलकर अर्थ पढ़ना तदुभयागम कहलाता है। अस्वाध्याय काल में सूत्र पढ़कर, अर्थ वाचना करने, कराने का निषेध समझना चाहिये। इस प्रकार अस्वाध्याय को छोड़कर, शुद्ध उच्चारण से शास्त्र का स्वाध्याय करना महती कर्म-निर्जरा का कारण होता है। अतः सुज्ञ पाठकों को प्रतिदिन स्वाध्याय करना चाहिये।



विषयानुक्रमिका

अध्ययन	कहाँ
प्रथम अध्ययन : द्रुमपुष्पिका	1-7
द्वितीय अध्ययन : श्रामण्यपूर्वक	8-15
तृतीय अध्ययन : क्षुल्लकाचार कथा	16-29
चतुर्थ अध्ययन : षड् जीवनिका	30-77
पाँचवाँ अध्ययन : भिक्षैषणा-विधि	78-142
छठा अध्ययन : महाचार कथा	143-175
सातवाँ अध्ययन : वाक्य शुद्धि	176-204
आठवाँ अध्ययन : आचार-प्रणिधि	205-238
नौवाँ अध्ययन : विनय समाधि	239-276
दसवाँ अध्ययन : भिक्षुक	277-289
प्रथम चूलिका : रति वाक्या	290-306
द्वितीय चूलिका : विविक्तचर्या	307-316

प्रथम अध्ययन

दुमपुष्पिया (द्रुमपुष्पिका)

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो ।
देवा वि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सया मणो ॥१॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

यह धर्म परम मंगल जानो, अहिंसा संयम तप वाला ।
सुरवर भी उसको नमन करे, जो सदा धर्म में मनवाला ॥

अन्वयार्थ-धम्मो = दुर्गति में गिरते हुए जीव को बचाने वाला श्रुत-चारित्र्य रूप धर्म । मंगलमुक्किट्ठं = उत्कृष्ट मंगल है । अहिंसा संजमो तवो = वह धर्म अहिंसा, संयम और तप रूप है । देवा वि = देवता भी । तं = उसको । नमंसंति = नमस्कार करते हैं । जस्स = जिसका । धम्मे = धर्म में । सया = सदा । मणो = मन लगा रहता है ।

भावार्थ-अहिंसा, संयम और तप रूप धर्म संसार के सब मंगलों में श्रेष्ठ मंगल है । त्रस, स्थावर, सूक्ष्म, बादर आदि जीवों को आत्मवत् समझकर नहीं मारना, नहीं सताना, दया पालना अहिंसा है । संयम के बिना अहिंसा का पूर्ण पालन नहीं हो सकता, अतः धर्म का दूसरा अंग संयम को अर्थात् इन्द्रियों और मन पर नियन्त्रण को बतलाया है । वह तप से पुष्ट होता है । इच्छा-निरोध एवं कष्ट-सहिष्णुता रूप तप से संयम का निराबाध पालन होता है, अतः तप धर्म का तीसरा अंग है । सबको मिलाकर कहा कि-“अहिंसा, संयम और तप रूप धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है ।” भजन, स्मरण, कीर्तन, दर्शन, सत्संग, शास्त्र-पठन और दान, सेवा आदि धर्म के साधन हैं ।

ऐसे धर्म में जिसका मन सदा रमण करता रहता है, उसको चार जाति के भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवता भी नमस्कार करते हैं ।

जहा दुमस्स पुप्फेसु, भमरो आवियइ रसं ।
न य पुप्फं किलामेइ, सो य पीणेइ अप्पयं ॥२॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

जैसे तरुवर के फूलों पर, मधुकर रस को आ पीता है।
 वह तृप्त करे अपने तन को, सुमनों को कष्ट न देता है॥
 भ्रमर नहीं खेती करता, उद्यान नहीं लगवाता है।
 सहज खिले तरु फूलों से, निज तन का पोषण करता है॥

अन्वयार्थ-जहा = जैसे। दुमस्स = वृक्ष के। पुप्फेसु = फूलों पर। भमरो = भँवरा। रसं = रस को। आवियइ = मर्यादा से पीता है। य पुप्फं = और फूल को। न किलामेइ = पीड़ा उत्पन्न नहीं करता है। य = और। सो = वह। अप्पयं = अपने आपको। पीणेइ = तृप्त कर लेता है।

भावार्थ-जैसे भँवरा फूलों पर प्राकृतिक मर्यादा से रसपान करके अपना पोषण कर लेता है और फूलों को पीड़ा उत्पन्न नहीं होने देता है, अहिंसक जनों के आहार-ग्रहण करने का भी ऐसा ही तरीका होना चाहिए। अतः साधु अनेक घरों से थोड़ा-थोड़ा आहार ग्रहण करता है, जिससे कि उसका भी अच्छी तरह निर्वाह हो जाय और दूसरों के लिये भी अपने आहार में से थोड़ा सा दे देना कष्टदायक न हो।

**एमे ए समणा मुत्ता, जे लोए संति साहुणो¹।
 विहंगमा व पुप्फेसु, दाण - भत्तेसणारया² ॥३॥**

हिन्दी पद्यानुवाद-

इस तरह श्रमण और मुक्त, लोक में चलते हैं जो साधु सुजन।
 फूलों पर अलि सम रसकामी, बनकर करते भिक्षा अन्वेषण॥

अन्वयार्थ-एमे ए = ऐसे ये। समणा = श्रमण-तपस्वी। मुत्ता जे = बहिरंग और अंतरंग परिग्रह से जो मुक्त हैं। लोए = लोक में। साहुणो = साधु। सन्ति = हैं। पुप्फेसु = फूलों पर। विहंगमा व = भँवरे के समान वे। दाण-भत्तेसणा = दाता द्वारा दिये गये निर्दोष प्रासुक आहार-पानी की एषणा में। रया = रत रहते हैं।

भावार्थ-जो लोक में आरम्भादि से मुक्त साधु होते हैं, वे फूलों पर भँवरे के समान, दाता द्वारा दिये गये निर्दोष आहार की गवेषणा में तत्पर रहते हैं। अच्छे साधु प्रेम पूर्वक दी गई निर्दोष भिक्षा ही ग्रहण करते हैं, अपने आहार-विहार में किसी को कष्ट नहीं देते, और न किसी प्रकार के संग्रह की ही भावना रखते हैं, यही उनकी विशेषता है।

उत्थानिका-इसी को लक्ष्य में रखकर शिष्य गुरु के समक्ष प्रतिज्ञा करते हैं-

**वयं च वित्तिं लब्भामो, न य कोइ उवहम्मइ।
 अहागडेसु रीयंते, पुप्फेसु भमरा जहा ॥४॥**

1. साहुणो - पाठान्तर

2. भत्तेसणे रया - पाठान्तर।

हिन्दी पद्यानुवाद-

हम अपनायेंगे वृत्ति वही, जिससे न कोई पीड़ा पावे ।
यथा गृहीकृत भोजन पर, फूलों पर भँवरा ज्यों जावे ॥

अन्वयार्थ-वयं च = और हम । वित्ति = ऐसी वृत्ति । लब्धभामो = प्राप्त करेंगे, जिसमें छोटा बड़ा । न य कोइ उवहम्मइ = कोई भी जीव कष्ट प्राप्त नहीं करे । पुप्फेसु = फूलों पर । भमरा = भँवरे । जहा = जैसे । रीयंते = जाते हैं । अहागडेसु = वैसे ही हम गृहस्थों के द्वारा, उनके निज के लिये बनाये गये भोजन में से थोड़ा-थोड़ा लेकर विचरण करते रहेंगे ।

भावार्थ-शिष्य गुरुदेव के चरणों में यह प्रतिज्ञा करते हैं कि जिस प्रकार भँवरा फूलों से रस लेने में किसी को कष्ट नहीं पहुँचाता है हम भी वही रीति अपनायेंगे, जिससे कि किसी को किसी प्रकार का कष्ट न हो । फूलों पर भँवरों की तरह, गृहस्थ के यहाँ अपने खाने के लिये बनाये गये आहार में से ही थोड़ा-थोड़ा हम ग्रहण करेंगे ।

महुगार-समा बुद्धा, जे भवंति अणिस्सिया ।

नाणापिंडरया दंता, तेण वुच्चंति साहुणो ॥ त्ति बेमि ॥५॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

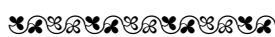
मधुकर सम जो प्रज्ञाधारी, आश्रय(ण) रहित चल पाते हैं ।
विध-विध पिंडों में रमण करे, वे दान्त श्रमण कहलाते हैं ॥

अन्वयार्थ-महुगार-समा = भँवरे के समान । जे बुद्धा = जो ज्ञानवान् और । दंता = जितेन्द्रिय तथा । अणिस्सिया = कुल, जाति के प्रतिबन्ध से रहित वे । नाणापिंडरया = अनेक घरों से थोड़ा-थोड़ा प्रासुक आहार लेने वाले । भवंति = होते हैं । तेण = इसलिये वे । साहुणो = साधु । वुच्चंति = कहे जाते हैं । त्ति बेमि = ऐसा मैं कहता हूँ ।

भावार्थ-जैन श्रमण भ्रमरवृत्ति वाले होते हैं । तत्त्वों के ज्ञाता वे भ्रमर के समान किसी एक कुल, जाति या व्यक्ति के आश्रित नहीं होकर अनेक घरों से थोड़ा-थोड़ा सरस-नीरस नाना प्रकार का निर्दोष व प्रासुक आहार-पानी लेकर संयम पूर्वक जितेन्द्रिय बनकर रहते हैं, इसलिये ही वे साधु कहलाते हैं । ऐसा निर्दोष, प्रासुक आहार यदि कभी न भी मिले तब भी वे सन्तुष्ट व समभावी रहते हैं । लाभालाभ में सन्तुष्ट रहना ही सन्तों का स्वभाव है ।

त्ति बेमि = (इति ब्रवीमि) ऐसा मैं कहता हूँ ।

॥ प्रथम अध्ययन समाप्त ॥



प्रथम अध्ययन पत्र टिप्पणी

धर्म शब्द की विस्तृत व्याख्या - गाथा 1

धम्मो - (धर्म) शब्द का अर्थ है-धारण करना। निर्युक्तिकार ने कहा है-‘दव्वस्स पज्जवा से’ द्रव्य को धारण करने वाली जो अवस्थाएँ हैं ‘ते धम्मा तस्स दव्वस्स’ वे उस द्रव्य के धर्म हैं। फिर ‘वत्थुसहावो धम्मो’ - वस्तु के स्वभाव को भी धर्म कहा है। स्थानांग सूत्र के अनुसार धर्म के दस प्रकार होते हैं। जैसे-गाम धम्मे 1, नगर धम्मे 2, कुल धम्मे 3, गण धम्मे 4, संघ धम्मे 5, पासंड धम्मे 6, रट्ट धम्मे 7, सुय धम्मे 8, चरित्त धम्मे 9, अत्थिकाय धम्मे 10 (स्थानांग 10)

अर्थात् ग्राम-धर्म 1, नगर-धर्म 2, कुल-धर्म 3, गण-धर्म 4, संघ-धर्म 5, पाखंड-धर्म 6, राष्ट्र-धर्म 7, श्रुत-धर्म 8, चारित्र-धर्म 9, अस्तिकाय-धर्म 10। यहाँ ग्राम आदि की व्यवस्था को धर्म कहा है।

ऊपर कथित ग्राम-धर्म आदि सावद्य हैं, अतः लौकिक धर्मों को ग्राह्य नहीं माना जाता। जैसा कि निर्युक्तिकार ने कहा है-

धम्मत्थिकायधम्मो, पयारधम्मो य विसयो धम्मो य।

लोइय कुप्पावयणि, अलोगुत्तर लोग अणेगविहो ॥४१॥

गम्मसुदेसरज्जे, पुरगाम गणगोट्टिराइणं।

सावज्जो कुत्तित्थिय धम्मो, न जिणेहिं उ पसत्थो ॥४२॥

अर्थात् धर्मास्तिकाय-धर्म, प्रचार-धर्म आदि आरम्भ युक्त होने से सावद्य हैं। कुप्रावचनिक-धर्म भी सावद्य-प्रायः है, अतः वे कल्याणकारी नहीं होते। कल्याणकारी धर्म की व्याख्या इस प्रकार है-

दुर्गति-प्रसृतान् जीवान्, यस्माद् धारयते ततः।

धत्ते चैतान् शुभे स्थाने, तस्माद् धर्म इति स्थितः ॥

अर्थात् दुर्गति में गिरते हुए जीवों को जिसके द्वारा शुभ स्थान में पहुँचाया जाता है, उसे धर्म कहते हैं। इसी बात को निर्युक्तिकार ने कहा है-‘धम्मो गुणा अहिंसाइया उ ते परिमंगल पइन्ना’ (नि.गा. 89) ॥ संक्षेप में धर्म के लिए इस प्रकार कहा गया है-

धम्मो वत्थु-सहावो, खमादिभावा यो दसविहो धम्मो।

रयणं तयं च धम्मो, जीवाण रक्खण-धम्मो ॥ (समा०) ॥

धर्म से आचार और विचार की मलिनता दूर की जाती है। वह दस प्रकार से कहा गया है। खंती मुत्ती अज्जवे मद्दवे लाघवे सच्चे संजमे तवे चियाए बंभचेरवासे। (ठा. 10/15)।

अर्थात् क्षमा, निर्लोभता, सरलता, कोमलभाव, लाघव, सत्य, संयम, तप, त्याग और ब्रह्मचर्य रूप धर्म एवं इससे बने शुद्ध विचार और निर्दोष आचार ही दुःख मुक्ति के उपाय हैं। इसी को यहाँ अहिंसा, संयम और तप रूप धर्म कहा है।

मंगलमुक्कितुं (उत्कृष्ट मंगल)-

प्रत्येक शास्त्र के आदि में मंगल-विधान की अति प्राचीन परम्परा है। मंगल का विविध अर्थों में प्रयोग किया गया है। सामान्य रूप से द्रव्य मंगल और भाव मंगल, इस प्रकार मंगल को दो भागों में बाँटा जा सकता है। दधि - अक्षत - नालिकेर आदि द्रव्य सचित्त - अचित्त और मिश्र रूप से द्रव्य मंगल विविध प्रकार का है, स्वस्तिक आदि आठ द्रव्य मंगल भी शास्त्र में प्रसिद्ध हैं।*

1. शाब्दिक व्युत्पत्ति की दृष्टि से मंगल शब्द मणि धातु से बनता है। 'मंग्यते प्राप्यते हितमनेन इति मंगलम्-जिसके द्वारा हित की प्राप्ति हो, उसे मंगल कहते हैं।
2. 'मंग्यते स्वर्गोऽपवर्गो वा अनेन इति मंगः धर्मः, तं मंगं लाति इति मंगलम्। अर्थात् जिसके द्वारा स्वर्ग या मोक्ष की प्राप्ति हो, उस धर्म रूप मंग को प्राप्त कराने वाला (यानी धर्म की प्राप्ति कराने वाला) मंगल कहा गया है।
3. विघ्न का निवारण करने वाला, जिसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है- 'मन्यते ज्ञायते निश्रियते विघ्नाभावो अनेन इति मंगलम्।'
4. आत्मा से संसार को अलग करने वाला, मुक्त करने वाला, जैसा कि कहा है- 'मां गालयति अपनयति संसारादिति मंगलम्।'
5. आत्मा के पाप मल को हटाने वाला, इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है- 'मलं पापं गालयति स्फोटयतीति मंगलम्।'
6. जिससे कहीं विघ्न न हो, उसे मंगल कहते हैं। इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है- 'मा भूत गलो विघ्नोऽमारीति मंगलम्।'

इत्यादि मंगल शब्द के अनेक अर्थ हैं। अन्य मंगल अमंगल भी हो सकते हैं, इसीलिए वे एकान्त मंगल नहीं कहे जा सकते। किन्तु धर्म सदा शाश्वत मंगल है। वह कभी अमंगल नहीं हो सकता। अतः संसार के समस्त द्रव्य मंगलों में भाव मंगल रूपी धर्म उत्कृष्ट मंगल है। धर्म इसलिए उत्कृष्ट मंगल है कि वह जन्म-मरण के बन्धनों को काटकर, पर स्वरूप आत्मा को स्व-स्वरूप की प्राप्ति कराने वाला है।

अहिंसा संजमो तवो-

1. अहिंसा-धर्म का पहला अंग अहिंसा है, हिंसा का प्रतिपक्ष अहिंसा है; प्राणातिपात - प्राणों के अतिपात को जहाँ हिंसा कहा गया है, वहाँ प्राणातिपात विरमण यानी प्राणों के अतिपात से विरति को अहिंसा कहा गया है। प्राणियों के प्राणों का वियोजन करना हिंसा है।

“प्राणा दशैते भगवद्भिरुक्ता, तेषां वियोजीकरणं तु हिंसा।”

* मलयगिरि आवश्यक वृत्ति (हरिभद्र कृत) भाग प्रथम (पूर्वार्द्ध)

मन, वचन और काया के प्रमत्त व्यापार हिंसा के प्रमुख कारण हैं। जैसे-निषेध पक्ष में प्राणों का अतिपात नहीं करना अहिंसा है, इसी प्रकार हिंसा से विपरीत रक्षण रूप अहिंसा इसका विधि पक्ष है। आचारांग सूत्र के सम्यक्त्व अध्ययन और सूत्रकृतांग सूत्र में धर्म का रूप प्रस्तुत करते हुए इसी बात को कहा है कि-

किसी प्राण, भूत, जीव और सत्त्व का हनन नहीं करना, उन्हें परिताप नहीं देना, पराधीन-बन्धन में नहीं डालना, यही शुद्ध, शाश्वत धर्म है।

जैसे कोई मुझे बेंत, हड्डी, मुष्टि आदि से मारे-पीटे, ताड़ना करे, तर्जना करे, व्याकुल करे, खिन्न करे और प्राण हरण करे तो मुझे दुःख होता है, जैसे मृत्यु से लेकर, रोम उखाड़ने तक के व्यवहार से मुझे दुःख और भय होता है, वैसे ही सब प्राण, भूत, जीव और सत्त्व को दुःख होता है, अतः उन्हें नहीं मारना चाहिये, उन पर अनुशासन नहीं करना चाहिये, उन्हें उद्विग्न नहीं करना चाहिए, यह धर्म ध्रुव, नित्य और शाश्वत है। इस प्रकार धर्म का प्राण अहिंसा है। इसीलिए प्रभु ने कहा है-एवं खु नाणिणो सारं, जं न हिंसई किंचणं (सूत्रकृतांग) ज्ञान पाने का सार यही है कि किसी भी जीव की हिंसा नहीं की जाय।

2. संयम-अहिंसा की व्यवस्थित आराधना के लिए संयम की आवश्यकता होती है। असंयमी अहिंसक नहीं हो सकता, अतः अहिंसा के साथ धर्म का दूसरा अंग संयम बतलाया गया है। संयम का अर्थ है-अपने आपको हिंसा आदि कर्म-बन्ध के कारणों से अच्छी तरह उपरत अर्थात् अलग रखना। जैसा कि आचार्यों ने कहा है-‘आस्रवद्वारोपरमः संयमः।’ अर्थात् हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन और परिग्रह इन पाँच द्वारों से कर्म आते हैं, इन द्वारों का रोधन करना यानी उनको रोक देना, उनसे उपरत होना श्रेष्ठ संयम है। संयम का व्यापक अर्थ अन्य प्रकार से भी किया गया है, जैसे कि-हिंसा आदि पाँच आश्रव, पंचेन्द्रियों का निग्रह, चार कषायों पर विजय और पाँच समिति-तीन गुप्ति का पालन, इस प्रकार इसके सत्रह प्रकार भी कहे गये हैं। उक्तं च-

“पंचास्रवविरमणं, पंचेन्द्रिय-निग्रह, कषायजय-दण्डत्रय-विरतिश्च संयमः सप्तदशभेदः।” अर्थात् हिंसा आदि 5 आस्रवों से विरति, पाँच इन्द्रियों का निग्रह, चार कषायों पर विजय, मन-वचन एवं काय दण्ड से विरमण-ये संयम के 17 भेद हैं। समवायांग सूत्र में संयम के सत्रह भेद अलग तरह से बताये गये हैं-पृथ्वीकाय-संयम 1, अपृथ्वीकाय-संयम 2, तेजस्काय-संयम 3, वायुकाय-संयम 4, वनस्पतिकाय-संयम 5, बेइन्द्रिय-संयम 6, तेइन्द्रिय-संयम 7, चउरिन्द्रिय-संयम 8, पंचेन्द्रिय-संयम 9, अजीवकाय-संयम 10, प्रेक्षा-संयम 11, उत्प्रेक्षा-संयम 12, अपहृत-संयम 13, अप्रमार्जना-संयम 14, मन-संयम 15, वचन-संयम 16 और काय-संयम 17।

3. तपो (तप)-अहिंसा व संयम जैसे धर्म के अंग हैं, उसी प्रकार तप भी धर्म का विशिष्ट अंग है। संयम से नये कर्मों का आगमन रोका जाता है; जबकि तप के द्वारा पूर्व संचित कर्मों को क्षीण किया जाता है। तप का अर्थ है-कर्मों को तपाने की क्रिया। जो अष्टविध कर्म-ग्रन्थियों को तपाकर नष्ट करता है, उसे तप कहते हैं। जैसा कि चूर्णिकार ने कहा है-

“तवो णाम तावयति, उ ते परममंगल पइन्ना।”

द्वितीय अध्यायन

सामण्णपुव्वयं (श्रामण्यपूर्वक)

कहं नु कुज्जा सामण्णं, जो कामे न निवारए ।
पए पए विसीयंतो, संकप्पस्स वसंगओ ॥१॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

कैसे वह श्रमण धर्म पाले, जो काम निवारण करे नहीं ।
पद पद परआकुल-व्याकुल हो, संकल्प दासता तजे नहीं ॥

अन्वयार्थ-सामण्णं = श्रमण-धर्म का पालन । कहं नु = वह कैसे । कुज्जा = करेगा ? जो = जो । कामे = इच्छाओं (कामनाओं का) । न निवारए = निवारण नहीं करता है । पए पए = पग-पग पर । विसीयंतो = खेद पाता हुआ वह । संकप्पस्स = संकल्प-विकल्प के । वसंगओ = अधीन होता है ।

भावार्थ-जो साधक कामनाओं का निराकरण नहीं कर सकता, वह श्रमण-धर्म का पालन कैसे करेगा ? क्योंकि कामनाओं के अधीन पुरुष संकल्प विकल्प के वशीभूत होकर, पग-पग पर खेद प्राप्त करता है । अप्राप्त कामनाओं की पूर्ति और प्राप्त कामनाओं के रक्षण तथा उपभोग के लिए उसका मन सदा चिन्तित रहता है, अतः श्रमण के लिए आवश्यक है कि वह ज्ञान-भाव को जगाकर कामनाओं पर विजय प्राप्त करे ।

कामनाओं पर विजय प्राप्त किये बिना श्रमण-धर्म का यथावत् पालन नहीं किया जा सकता है ।

वत्थ- गंधमलंकारं, इत्थीओ सयणाणि य ।
अच्छंदा जे न भुंजंति, न से चाइ त्ति वुच्चइ ॥२॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

जो वस्त्र गंध और आभूषण, नारी एवं अनुकूल शयन ।
परवश से भोग नहीं करते, त्यागी उनको नहीं कहते जिन ॥

अन्वयार्थ-वत्थ-गन्धमलंकारं = वस्त्र, कपूर आदि गंध एवं अलंकार । इत्थीओ = स्त्रियाँ । य = और । सयणाणि = पलंग आदि शय्याओं को । अच्छंदा = असमर्थता, परवशता से । जे = जो । न भुंजंति = नहीं भोगते । से = वे । चाइ त्ति = त्यागी हैं ऐसा । न वुच्चइ = नहीं कहलाते ।

भावार्थ—गाथा में कहा गया है कि केवल वस्त्र, गन्ध, माला, आभूषण और संसार की विविध रमणीय भोग-सामग्री का उपभोग नहीं करने से ही कोई त्यागी नहीं होता। क्योंकि मनुष्य क्रोध, लोभ और भय के वश होकर भी भोग्य वस्तुओं का सेवन नहीं कर पाता। शुगर की बीमारी वाला मीठा नहीं खाता। रक्तचाप का बीमार नमक का वर्जन करता है और हृदय का रोगी घूमना-फिरना व परिवार से अधिक बोलना भी छोड़ देता है। पति-पत्नी के वैमनस्य में परस्पर संभाषण भी नहीं होता, फिर संभोग की तो बात ही क्या है। यह सब त्याग का बाहरी रूप है। लाखों व्यक्ति साधनों के अभाव, पराधीनता या रोगादि के भय से चाहते हुए भी इष्ट पदार्थों का भोग नहीं कर पाते। वस्तुतः वे त्यागी नहीं कहलाते हैं।

**जे य कंते पिए भोए, लद्धे वि पिट्टीकुव्वइ ।
साहीणे चयइ भोए, से हु चाइ त्ति वुच्चइ ॥३॥**

हिन्दी पद्यानुवाद—

जो सुन्दर या प्रिय भोगों को, पाकर भी पीठ दिखाता है।
स्वाधीन भोग को तजता है, जग में त्यागी वही कहलाता है ॥

अन्वयार्थ—जे = जो। कंते = कान्त, मनोहर। य = और। पिए = प्रिय। भोए = भोगों को। लद्धे वि = मिलने पर भी। पिट्टी कुव्वइ = पीठ करता है तथा। साहीणे = स्वाधीन यानी प्राप्त। चयइ भोए = भोगों को छोड़ता है। से हु = वही। चाइत्ति = त्यागी। वुच्चइ = कहलाता है।

भावार्थ—जो सुन्दर और रुचिकर भोग-सामग्री के मिलने पर भी उससे पीठ करते हैं यानी उसे ठुकरा देते हैं और प्राप्त भागों को स्वेच्छा से छोड़ देते हैं, वस्तुतः वे त्यागी हैं। वह त्याग मानसिक शान्ति प्रदान करता है और साधक के मन को इच्छाओं से मुक्त करता है। धन्ना, शालिभद्र की तरह धन-धान्य और पुत्र, कलत्रादि चित्ताकर्षक भोग-सामग्री को पाकर भी जो स्वेच्छा से उनको त्याग देते हैं, वे ही वास्तव में त्यागी कहलाते हैं।

**समाइ पेहाइ परिव्वयंतो, सिया मणो निस्सरइ बहिद्धा ।
न सा महं नो वि अहं वि तीसे, इच्चेव ताओ विणएज्ज रागं ॥४॥**

हिन्दी पद्यानुवाद—

जो समता से विचरण करते, मुनिवर का मन बाहर निकले।
मैं ना उसका नहीं वह मेरी, यह सोच राग को दूर करे ॥

अन्वयार्थ—समाइ = समभाव की। पेहाइ = दृष्टि से। परिव्वयंतो = विचरते हुए। सिया = कदाचित् साधु का। मणो = मन। बहिद्धा = संयम से बाहर। निस्सरइ = निकल जाय। (प्रश्न) तब वह

क्या करे ? (उत्तर) सा = वह । महं = मेरी । न = नहीं और । अहं वि = मैं भी । तीसे = उसका । नो वि = नहीं हूँ । इच्चेव = इस प्रकार सोचकर । ताओ रागं = उस स्त्री पर रागभाव को । विणएज्ज = हटा ले ।

भावार्थ—राग-द्वेष रहित होकर शान्त व सम दृष्टि से साधना-मार्ग पर चलते हुए भी कदाचित् कभी किसी साधक का मन संयम से बाहर निकल जाय, (क्योंकि—“कर्मणो गहना गतिः” के अनुसार उदित कर्म बड़े बलवान होते हैं । जप-तप की करणी करते हुए भी रथनेमि और कुण्डरीक मुनि की तरह यदि मन धर्म से बाहर हो जाय) तो आत्मारथी ऐसा सोचे कि वह मेरी नहीं और मैं भी उसका नहीं । बाह्य पदार्थों के साथ रहा हुआ ममत्वभाव ही, राग उत्पन्न करके मन को चंचल करता है । अतः सर्व प्रथम ममत्वभाव का उन्मूलन करना चाहिए । भौतिक पदार्थों से ममत्वभाव दूर करते ही राग का बन्धन ढीला हो जायगा ।

**आयावयाहि चय सोगमल्लं, कामे कमाहि कमियं खु दुक्खं ।
छिंदाहि दोसं विणएज्ज रागं, एवं सुही होहिसि संपराए ॥5॥**

हिन्दी पद्यानुवाद—

कर आतापन, कोमलता तज, दे छोड़ काम दुःख होंगे दूर ।
काटो द्वेष, राग को छोड़ो, जग में सुख होगा भरपूर ॥

अन्वयार्थ—आयावयाहि = धूप एवं सर्दी की आतापना ले । चय सोगमल्लं = सुकुमारपन का परित्याग कर । कामे = कामवासना या कामनाओं को । कमाहि = दूर कर दे । तब । दुक्खं = तेरा दुःख । कमियं खु = दूर हुआ, समझ । दोसं = द्वेष का । छिंदाहि = छेदन कर । रागं = राग को । विणएज्ज = दूर हटा । एवं = ऐसा करने से । संपराए = संपराय अर्थात् संसार में । सुही = सुखी । होहिसि = हो जाओगे ।

भावार्थ—मोह-निवृत्ति के लिये बाह्य और अन्तरंग दोनों प्रकार के साधनों का संयुक्त प्रयोग किया जाय तो ही साधक सरलता से कामना पर विजय पा सकता है । इस दृष्टि से शास्त्रकारों ने कहा है कि शीत और ताप की आतापना लेते हुए सुकुमारता का परित्याग करो एवं कामनाओं का निवारण करो तो दुःख दूर हुआ समझो । फिर कहा कि—द्वेष का छेदन करो और राग को अलग करो, ऐसा करने से संसार में सुखी हो जाओगे ।

**पक्खंदे जलियं जोइं, धूमकेउं दुरासयं ।
नेच्छंति वंतयं भोत्तुं, कुले जाया अगंधणे ॥6॥**

हिन्दी पद्यानुवाद—

धूम्रचिह्न जलती ज्योति में, समुद्र कूद कर करे प्रवेश ।
सर्प अगन्धन कुल के जन्मे, वान्त न लेते सहते क्लेश ॥

अन्वयार्थ-अगंधणे कुले = अगन्धन कुल में। जाया = उत्पन्न हुए सर्प। जलियं = जलती हुई। जोड़ं = आग जो। धूमकेउं = धूम की ध्वजा वाली और। दुरासयं = दुःख से सहन करने योग्य विकराल आग में। पक्खंदे = कूद जाते हैं किन्तु। वंतयं = वमन किये विष को। भोत्तुं = भोगना, पीछा लेना। नेच्छंति = स्वीकार नहीं करते हैं।

भावार्थ-सरीसृप-तिर्यच जाति में भी देखा जाता है कि अगन्धन कुल में जन्मे हुए सर्प विकराल जलती हुई अग्नि में कूदकर मर जाना मंजूर करते हैं किन्तु उगले हुए विष को फिर से चूसना, खींचना स्वीकार नहीं करते। साधक को भी अपने त्याग पर इसी प्रकार दृढ़ता से चलना चाहिए। चातक जैसा पक्षी भी प्यासा मरना मंजूर करता है पर वर्जित वस्तु (भूमि) पर गिरा हुआ पानी पीना स्वीकार नहीं करता। तब उच्च जाति का मनुष्य उनसे पीछे कैसे रह सकता है ?

धिरत्थु तेऽजसोकामी, जो तं जीविय-कारणा ।

वंतं इच्छसि आवेउं, सेयं ते मरणं भवे ॥७॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

हे ! अपयशकामी धिक्कार तुझे, जो भोगी जीवन के हेतु ।

वान्त-ग्रहण तुम चाह रहे, है श्रेष्ठ मृत्यु तव सुख-सेतु ॥

अन्वयार्थ-धिरत्थु = धिक्कार है। अजसोकामी = हे अयशस्कामिन्। (असंयम की कामना वाले)। ते = तुमको। जो = जो। तं = तुम। जीविय कारणा = भोगी जीवन जीने के लिये। वंतं = छोड़े हुए भोगों को। आवेउं = फिर भोगना। इच्छसि = चाहते हो, इसकी अपेक्षा तो। ते = तुम्हारा। मरणं = मर जाना। सेयं = अच्छा। भवे = है।

भावार्थ-जो मानव भोगी-जीवन जीने के लिए, वर्जित वस्तु का उपभोग करना चाहता है, वह धिक्कार योग्य है। हे अयशस्कामिन् ! इस प्रकार त्यागे हुए पदार्थ को फिर भोगने की अपेक्षा तो तुम्हारा संयम अवस्था में रहकर मरना श्रेयस्कर है, क्योंकि प्रण का महत्त्व प्राणों से भी अधिक है।

अहं च भोगरायस्स, तं चऽसि अन्धग-वण्हिणो ।

मा कुले गंधणा होमो, संजमं निहुओ चर ॥८॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

मैं भोजराज की पुत्री हूँ, तुम अंधकवृष्णिक वंश प्रसूत ।

हमें न होना गन्धन सम है, पालो संयम दृढ़ मनः पूत ॥

अन्वयार्थ—अहं च = मैं तो । भोगरायस्स = भोजराज उग्रसेन की पुत्री हूँ । तं च = और तुम ।
अन्धगवण्हिणो = अन्धकवृष्णि समुद्रविजय के पुत्र । **असि** = हो । **कुले** = अपने कुल में । **गन्धणा** =
 गन्धनजाति के सर्प के समान । **मा होमो** = मत बनो । **संजमं** = संयम का । **निहुओ** = स्थिर-एकाग्र मन
 से । **चर** = आचरण करो, पालन करो ।

भावार्थ—कुलाभिमान को जागृत करते हुए सती राजमती बोलती है—“रथनेमिजी! मैं भोजराज
 उग्रसेन की पुत्री हूँ, और तुम महाराज समुद्र विजय के पुत्र हो, ऐसे उच्च कुल में जन्म पाकर, हम गन्धनकुल
 के नाग की तरह नहीं बनें, किन्तु मैं और तुम एकाग्रमन से संयम-धर्म का आचरण कर, अपने कुल का गौरव
 बढ़ावें ।

जइ तं काहिसि भावं, जा जा दिच्छसि नारिओ ।

वाया-विद्धोव्व हडो, अट्टि-अप्पा भविस्ससि ॥9॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

यदि देख रम्य नारी तन को, तुम अपनाओगे मनोविकार ।

पवन-प्रचालित हड तरु सम, होगा तेरा चंचल व्यवहार ॥

अन्वयार्थ—जइ तं = यदि तू । **भावं** = चंचल भाव । **काहिसि** = करेगा तो । **जा जा** = जिन-
 जिन । **नारिओ** = नारियों को । **दिच्छसि** = देखेगा, उससे । **वायाविद्धो** = तेज पवन से प्रेरित । **हडो व्व** =
 हड वृक्ष (पानी के वृक्ष विशेष) के समान । **अट्टिअप्पा** = अस्थिर आत्मा । **भविस्ससि** = हो जाएगा ।

भावार्थ—हे मुने ! यदि तुम जिन-जिन स्त्रियों को देखोगे और उन पर विषय भाव करोगे तो तुम
 वातप्रकंपित हड वृक्ष की तरह अस्थिर आत्मा वाले हो जाओगे । चंचल मन वाला साधक न घर का रहता है,
 न घाट का । क्योंकि चंचल मन साधना के मूल को डोलायमान कर साधक को मार्ग-च्युत कर देता है ।

तीसे सो वयणं सोच्चा, संजयाए सुभासियं ।

अंकुसेण जहा नागो, धम्मे संपडिवाइओ ॥10॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

सुन्दर वचन सती का सुन, रथनेमि हुआ धर्म में लीन ।

ज्यों अंकुश से गज वश होता, धर्म भाव त्यों बढ़े प्रवीन ॥

अन्वयार्थ—तीसे = उस । **संजयाए** = संयमशीला राजीमती के । **सो सुभासियं** = वे पतितोत्थान
 करने वाले सुभाषित । **वयणं** = वचन । **सोच्चा** = सुनकर । **अंकुसेण** = अंकुश से । **जहा नागो** = जैसे
 हाथी वश में हो जाता है, वैसे ही रथनेमि भी । **धम्मे** = चारित्र-धर्म में । **संपडिवाइओ** = पुनः स्थिर हो गये ।

भावार्थ—उस राजीमती सती के इन हृदयस्पर्शी, सुभाषित वचनों को सुनकर रथनेमि का मन अंकुश के द्वारा वश हुए मत्त हाथी के समान संयम-धर्म में पुनः स्थिर हो गया ।

**एवं करंति¹ संबुद्धा, पंडिया पवियक्खणा ।
विणियट्ठंति भोगेसु, जहा से पुरिसुत्तमो ॥११॥**

—त्ति बेमि ॥

हिन्दी पद्यानुवाद—

ऐसा ही करते हैं विबुध प्रवर, पंडित और विचक्षण जन ।
भोगों से मन को हटा लेते, रथनेमि हुए ज्यों सुस्थिर मन॥

अन्वयार्थ—संबुद्धा पंडिया = सम्यक् बोध वाले पंडित । **पवियक्खणा** = विचक्षण साधक । **एवं** = इसी प्रकार । **करंति** = अपनी आत्मा को स्थिर करते हैं । **भोगेसु** = काम भोगों से । **विणियट्ठंति** = निवृत्त होते हैं । **जहा** = जैसे । **से** = वह । **पुरिसुत्तमो** = पुरुषोत्तम रथनेमि । **त्ति बेमि** = ऐसा मैं कहता हूँ ।

भावार्थ—सम्यक् बोध वाले विलक्षण पुरुष वे हैं, जो मोहभाव के उदय से चंचल बनी चित्तवृत्तियों को ज्ञानांकुश से स्थिर कर लेते हैं, जैसे पुरुषोत्तम रथनेमि ने राजीमती के उद्बुद्ध वचन सुनकर भोगों से पुनः अपने मन को मोड़ लिया था ।

त्ति बेमि = (इति ब्रवीमि) ऐसा मैं कहता हूँ ।

॥द्वितीय अध्ययन समाप्त॥



1. करंति -पाठान्तर ।

द्वितीय अध्ययन की टिप्पणी

गाथा - 4 न सा महं, नो वि अहं वि तीसे.....

पर पदार्थों से मोह हटाने का प्रमुख उपाय है बाहरी वस्तुओं को अपने से अलग जान लिया जाए। यह विवेकबुद्धि ही राग घटाने का सबल, समीचीन एवं समर्थ उपाय है। जब भी किसी साधक का मन संयम से चलायमान हुआ, इस सम्यक् विचार से ही उसने अपनी आत्मा को पुनः संयम में स्थिर किया है।

चूर्णि में एक उदाहरण मिलता है एक वणिक् पुत्र दीक्षित होकर यह घोषणा कर रहा था कि- “यह मेरी नहीं, मैं भी उसका नहीं हूँ।” किन्तु एकदा प्रबल मोह के उदय से उसके मन में राग जगा, वह कहने लगा- “वह मेरी है और मैं भी उसका हूँ।” राग जागते ही वह वस्त्र-पात्र लेकर अपने गाँव पहुँचा। मार्ग में पत्नी मिल गई, पर वह उसे पहचान नहीं सका। अतः उसने उससे पूछा “अमुक की पत्नी मर चुकी है या जीवित है?” साधु के मनोभावों को समझकर दोनों के हित की भावना से स्त्री बोली “महाराज ! वह तो दूसरों के साथ चली गई।” यह सुनकर साधु सोचने लगा “मुझे जो पाठ सिखलाया गया था, वह ठीक था। वह मेरी नहीं और मैं भी उसका नहीं।” इस प्रकार के विचार से उसका मन संयम-भाव में स्थिर हो गया। सम्यक् चिन्तन-विचार से राग का विष मन से निकल गया।

जब अरिहन्त अरिष्टनेमि बाड़े में पशुओं को देखकर, विरक्त हो रेवताचल पर्वत की ओर बढ़े और दीक्षित हो गये, तब पीछे से उनके छोटे भाई रथनेमि भी दीक्षित हो गये। राजीमती नेमनाथ की प्रव्रज्या की बात सुनकर बड़ी उदास हुई और समय पाकर अनेक राजकुमारियों के साथ वह भी दीक्षित हो गई और अरिष्टनेमि को वन्दन करने को गिरिराज की ओर चल पड़ी। रेवताचल की ओर जाती हुई सब साध्वियाँ मार्ग में वर्षा हो जाने से भीग गई। वर्षा से बचने के लिये सब साध्वियाँ इधर-उधर हो गई। राजीमती को भी पास में एक गुफा मिल गई। वह उस गुफा में आई और उसने अपने गीले कपड़े बदन से उतार कर फैलाए। उधर मुनि रथनेमि पहले से ही वहाँ ध्यानस्थ थे। थोड़ी देर में बिजली चमकी। बिजली की चमक में उन्होंने वस्त्र रहित राजीमती को देखा और विचलित हो गये।

राजीमती भी एकान्त में मुनि को देखकर भयभीत हुई और अपनी बाहों से अपने अंगों का संवरण करके बैठ गई। रथनेमि को विचलित देखकर उसने कहा- “मैं भोजराज की पुत्री हूँ और तुम अंधकवृष्णि के पुत्र हो, अतः कुल में गंधन कुल के साँप की भाँति मत बनो।” इनका संवाद उत्तराध्ययन सूत्र के 22वें अध्ययन में पठनीय है। यहाँ केवल मुनि की अस्थिरता मिटाने सम्बन्धी गाथाएँ बतलाई गई हैं। दशवैकालिक के अध्ययन 2 की गाथा संख्या 6, 7, 8, 9, 10 एवं 11 को उत्तराध्ययन के अध्ययन 22 की गाथा संख्या 42, 43, 44, 46 एवं 49 से मिलाइये। दशवैकालिक सूत्र के दूसरे अध्ययन की गाथा 6 को उत्तराध्ययन सूत्र में प्रक्षिप्त माना गया है।

गाथा 6 (..... कुले जाया अगंधणे)

सर्प के मुख्य दो कुल होते हैं-(1) अगंधन और (2) गंधन।

गंधन कुल के सर्प वे होते हैं जो डस लेने के बाद भी जब मन्त्रवादी द्वारा आकृष्ट किये जाते हैं तब भय के मारे डसी गई जगह पर मुँह लगाकर विष को वापस चूस लेते हैं। किन्तु दूसरे अगन्धन कुल के सर्प वे हैं जो जलती आग में कूदकर अपने प्राण दे सकते हैं पर छोड़े हुए विष को वापस नहीं चूसते। प्राचीन समय की एक घटना है-

एक समय किसी राजपुत्री को एक साँप ने डस लिया। बड़े-बड़े चिकित्सकों को बुलाया गया। उनमें एक गारुड़ी मन्त्र का जानकार था, उसने कहा-“कहो तो मन्त्र से विष उतारूँ अथवा साँप को बुलाकर उसके डसे हुए स्थान से उसी के द्वारा विष निकलवाऊँ।” राजा ने कहा-“साँप को बुलाकर विष को निकलवाओ।” गारुड़ी ने मन्त्र बल से साँप को बुलाया और पूछा “इसको तूने डसा है?” साँप ने कहा-“हाँ, मैंने ही डसा है।” गारुड़ी के यह कहने पर कि डसे हुए स्थान से विष को खींच लो; साँप ने उत्तर दिया-“मैंने एक बार छोड़े हुए विष को आज तक पुनः कभी चूसा ही नहीं है। अतः मैं यह विष भी वापिस नहीं लूँगा।” गारुड़ी ने आग जलाकर कहा-“या तो डसे हुए विष को निकालो या इस जलती हुई अग्नि में प्रवेश करो।” अगन्धन कुल के उस सर्प ने जलती आग में कूद कर प्राण गँवाना स्वीकार किया, किन्तु अपने छोड़े हुए विष को पुनः पीना स्वीकार नहीं किया।

॥द्वितीय अध्ययन-टिप्पणी समाप्त॥



तृतीय अध्ययन

खुट्टियायाएकहा (क्षुल्लकाचार कथा)

संजमे सुट्टिअप्पाणं, विप्पमुक्काण ताईणं ।
तेसिमेयमणाइण्णं, निगंथाण महेसिणं ॥१॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

संयम में स्थित आत्म वाले, संयोग मुक्त और त्रायी के ।
उनके हैं इतने अनाचीर्ण, परमर्षि तथा निर्ग्रन्थों के ॥

अन्वयार्थ-संजमे = संयम में । सुट्टि-अप्पाणं = सुस्थित आत्मा वाले । विप्पमुक्काण = बाह्य एवं आभ्यन्तर परिग्रह से मुक्त । ताईणं = षट्काय जीवों के रक्षक । तेसिं = उन । निगंथाण महेसिणं = निर्ग्रन्थ महर्षियों के । एयं = ये आगे कहे जाने वाले कार्य । अणाइण्णं = अनाचीर्ण हैं । नहीं करने योग्य हैं ।

भावार्थ-जो संयम धर्म में स्थिर, परिग्रह से मुक्त और षट्कायिक जीवों के रक्षक हैं, उन निर्ग्रन्थ महर्षियों के लिये वे कार्य आचरण में निषिद्ध माने गये हैं, जिनका वर्णन इस प्रकार है-

उद्देसियं^१ कीयगडं^२, नियागमभिहडाणि^{३-४} य ।
राइभत्ते^५ सिणाणे^६ य, गंधमल्ले^{७-८} य वीअणे^९ ॥२॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

औद्देशिक कृतक्रीत नियाग-अभ्याहत एवं रात्रि अशन ।
स्नान गंध माला धारण, सुख हेतु व्यजन का संचालन ॥

अन्वयार्थ-उद्देसियं = साधु को देने के उद्देश्य से बनाया गया आहार । कीयगडं = साधु के लिए खरीद कर दिया गया अशन, वसनादि । नियागं = आमंत्रणपूर्वक नित्य दिया गया आहारादि । अभिहडाणि = सामने लाकर दिया गया आहारादि । य = और । राइभत्ते = रात्रि भोजन । सिणाणे = स्नान करना । य = और । गंध = सुगन्धित पदार्थ केसर, चन्दनादि का लेप करना । मल्ले = फूल माला आदि धारण करना । य = और । वीअणे (वीयणे) = पंखे आदि से हवा करना ।

भावार्थ—जैन श्रमण सम्पूर्ण आरम्भ का त्यागी होता है, अतः औद्देशिक आदि आहार और स्नान, गंध, माला और बीजने का उपयोग उनके लिये अनाचीर्ण है (सेवन योग्य नहीं है) ।

सन्निही¹⁰ गिहिमत्ते¹¹ य, रायपिंडे¹² किमिच्छए¹³ ।

संवाहणा¹⁴ दंत प्होयणा¹⁵ य, संपुच्छणा¹⁶ देह पलोयणा¹⁷ य ॥3॥

हिन्दी पद्यानुवाद—

सन्निधि गृहस्थ-पात्र-भोजन, नृप-पिण्ड पूछकर दिया अशन ।

संवाहन और दंत प्रधावन, संपृच्छन दर्पण मुख दर्शन ॥

अन्वयार्थ—सन्निही = घृत, तेल आदि का संग्रह रखना । गिहिमत्ते य = और गृहस्थ के पात्र थाल-कटोरे आदि भाजनों (बर्तनों) में आहार करना । रायपिंडे = राजपिंड का सेवन करना । किमिच्छए = जहाँ पूछकर इच्छानुसार दिया जाय वैसी दानशाला से आहारादि लेना । संवाहणा = मर्दन करना (मालिश करना) । दंत प्होयणा य = और दाँतों को धोना । देह पलोयणा य = और दर्पण आदि में मुख देखना । संपुच्छणा = गृहस्थ से सावद्य प्रश्न करना या उसकी कुशल क्षेम पूछना ।

भावार्थ—निर्ग्रन्थ मुनि असंग्रही और शोभा विभूषा के त्यागी होते हैं, उनके लिये ‘बासी रहे न कुत्ता खाय’ वाली कहावत सार्थक होती है । वे रात्रि के समय अशनादि कोई वस्तु पास में नहीं रखते । शोभा के लिये शरीर का मर्दन और दन्त प्रधावन आदि भी नहीं करते हैं । भोजन के कण दाँतों में रहकर सड़ान उत्पन्न नहीं करे, इसलिये अंगुली से साफ करते हैं ।

अट्ठावए¹⁸ य नालीए, छत्तस्स¹⁹ य धारणट्ठाए ।

तेगिच्छं²⁰ पाहणा पाए, ²¹ समारंभं च जोड़णे²² ॥4॥

हिन्दी पद्यानुवाद—

शतरंज जूआ क्रीडन करना, एवं सिर छत्ता धरना ।

रोगोपचार, जूता धारण, पावक का संचालन करना ॥

अन्वयार्थ—अट्ठावए = अष्टापाद-जूआ । य = और । नालीए = पासों से खेल खेलना । छत्तस्स य धारणट्ठाए = और बिना कारण छत्र धारण करना । तेगिच्छं = सावद्य चिकित्सा करना । पाहणा पाए = पैरों में चप्पल, जूता आदि पहनना । समारंभं च जोड़णे = और अग्नि का आरम्भ करना, बिजली जलाना आदि ।

भावार्थ—जैन साधु प्रमाद और आराम से दूर रहता है । किसी प्रकार की घृतक्रीड़ा, छत्र धारण, सावद्य चिकित्सा, पादत्राण और अग्नि के आरम्भ का उपयोग मुनि के लिए वर्जित है ।

अन्यत्र भी कहा है—“अगणि-सत्थं जहा सुनिसियं” तथा “तिक्खमन्नयरं सत्थं, सव्वओ वि दुरासयं”

अर्थात् अग्नि अतिशय तीक्ष्ण शस्त्र है। अन्य शस्त्र एक ओर से ही काटते हैं, पर अग्नि वह चाहे कंडे की हो या बिजली की, चारों ओर से जलाती है। अतः इनका मुनि के लिए सहेतुक भी आचरण वर्जित कहा गया है।

सिज्जायर-पिंडं²³ च, आसंदी²⁴ पलियंकए²⁵ ।

गिहंतर निसिज्जा²⁶ य, गायस्सुवट्टणाणि²⁷ य ॥5॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

शय्यातर के घर की भिक्षा, कुर्सी पलंग पर उपवेशन ।

बैठना गृहस्थ के घर में जा, तन पर मलना सुरभित उबटन ॥

अन्वयार्थ-सिज्जायर पिंडं = शय्या दाता के यहाँ से आहारादि लेना । **च आसंदी** = और बेंत आदि से बने कुर्सी या मूढे आदि पर बैठना । **पलियंकए** = पलंग का उपयोग करना, उस पर बैठना, सोना । **गिहंतर निसिज्जा (निसज्जा) य** = गृहस्थ के घर में या दो घरों के बीच में बैठना । **य** = और । **गायस्सुवट्टणाणि** = शरीर पर उबटन करना ।

भावार्थ-जिसके घर में रात्रिवास किया जाय उसके यहाँ का अशनादि भी जैन साधु स्वीकार नहीं करता तथा व्रत की शुद्धि के लिये खाट, पलंग, सुखासन, गृहस्थ के घर में बैठना और तन का मैल उतारना अथवा बिना कारण उद्वर्तन (उबटन) करना भी वर्जित कहा गया है ।

गिहिणो वेयावडियं²⁸, जाय आजीव-वत्तिया²⁹ ।

तत्तानिब्बुडभोइत्तं³⁰, आउरस्सरणाणि³¹ य ॥6॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

करना गृहस्थ जन की सेवा, कुल जाति बता भिक्षा अर्जन ।

अधपकी सचित्त वस्तु सेवन, आतुर हो करना भोग स्मरण ॥

अन्वयार्थ-गिहिणो = गृहस्थ की । **वेयावडियं (वेआवडियं)** = वैयावच्च (सेवा) करना या वैयावच्च कराना । **य** = और । **जा** = जो । **आजीव-वत्तिया** = कुल, जाति आदि बताकर जीविका चलाना । **तत्तानिब्बुडभोइत्तं** = अच्छी तरह प्रासुक नहीं हो ऐसे मिश्र जलादि का उपयोग करना । **य** = और । **आउरस्सरणाणि** = रोग आदि कष्ट के समय कुटुम्बी जन का या पूर्व में भोगे हुए पदार्थों का स्मरण करना ।

भावार्थ-जैन निर्ग्रन्थ धैर्यवान् और निस्पृह होता है । वह गृहस्थ से सेवा नहीं लेता, क्योंकि उसका जीवन स्वाश्रयी है । अपने कुल आदि का परिचय देकर भिक्षा नहीं लेता, मिश्रजल का उपयोग और रुग्णावस्था में परिजनों का स्मरण भी नहीं करता । क्योंकि उसको राग विजय करना है ।

मूलए³² सिंगबेरे³³ य, उच्छुखंडे³⁴ अनिव्वुडे ।
कंदे³⁵ मूले³⁶ य सचित्ते, फले³⁷ बीए³⁸ य आमए ॥7॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

जो सचित्त मूली या अदरक, और इक्षु खंड को ग्रहण करे ।
कंद मूल और फल सचित्त, कच्चे बीजों का अशन करे ॥

अन्वयार्थ-मूलए = मूला । य = और । सिंगबेरे = अदरक । उच्छुखंडे = इक्षु के खण्ड (टुकड़े) । अनिव्वुडे = बिना पका हुआ (ये सब कच्चे लेना) । कंदे = सूरणकंद आदि कंद । य = और । मूले सचित्ते = सचित्त लता, वृक्षादि के फल-फूल या उनकी जड़ें । य = और । फले = फल तथा । आमए = कच्चे । बीए = बीज ।

भावार्थ-जैन मुनि अचित्त वस्तुओं का भोजी होता है, इसलिए वह (मूला) मूली, अदरक, कच्चे इक्षु खण्ड, सचित्त कन्दमूल और कच्चे फल तथा तिल, ज्वार आदि सचित्त बीजों का उपयोग भी नहीं करता । क्योंकि इनके सेवन से जीव-हिंसा की वृद्धि होती है । अतः पूर्ण हिंसा त्यागी मुनि इनका वर्जन करता है ।

सोवच्चले³⁹ सिंधवे⁴⁰ लोणे, रोमालोणे⁴¹ य आमए ।
सामुदे⁴² पंसुखारे⁴³ य, कालालोणे⁴⁴ य आमए ॥8॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

सौवर्चल, सैन्धव और रोमन, सामुद्रिक बिन पके लवण ।
ऊषर एवं कृष्ण लवण, मुनिजन करते इनका वर्जन ॥

अन्वयार्थ-आमए = सचित्त कच्चा । सोवच्चले = संचल नमक । सिंधवे लोणे = सैन्धा नमक । य रोमालोणे = और रोम का नमक । सामुदे = समुद्र का नमक । य = और । पंसुखारे = ऊसर भूमि का क्षार । आमए = सचित्त । य = और । कालालोणे = काला नमक ।

भावार्थ-जैन साधु के लिए सचित्त नमक भी अग्राह्य बतलाया है, कारण कि कच्चे नमक में असंख्य पृथ्वीकाय के जीव माने गये हैं । त्यागी मुनि के लिए संचल लवण 1, सैन्धव लवण 2, रोम का लवण 3, समुद्री नमक 4, पांसुक्षार 5 और काला लवण 6, ग्रहण करना वर्जित है ।

अग्नि पर पकाया गया तथा नींबू आदि में गलाया गया अचित्त नमक ही ग्रहण किया जाता है, शेष नहीं ।

धूवणे⁴⁵ त्ति वमणे⁴⁶ य, वत्थीकम्म⁴⁷ विरेयणे⁴⁸ ।
अंजणे⁴⁹ दंतवणे⁵⁰ य, गायबभंग⁵¹ विभूसणे⁵² ॥9॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

तन शोभा हित, धूप, वमन और बस्ति विरेचन का सेवन ।
दृग अंजन, दाँतों का घिसना, तन मर्दन, भूषण का धारण ॥

अन्वयार्थ-धूवणे त्ति = अगर आदि का धूप करना । **य** = और । **वमणे** = औषधि के द्वारा वमन करना । **वत्थिकम्म** = वस्ति कर्म (मलशोधन के लिए बत्ती लगाना, एनिमा लेना) । **विरेयणे** = विरेचन-जुलाब लेना । **अंजणे** = आँख में अंजन करना । **य** = और । **दंतवणे** = दन्तकाष्ठ से दाँतून करना । **गायब्भंग** = बिना कारण तैलादि की मालिश करना । **विभूसणे** = शरीर की सजावट करना ।

भावार्थ-जैन श्रमण शरीर की शोभा के लिए धूप, वमन, विरेचन, वस्तिकर्म, अंजन, दातून, शरीर पर तैलादि की मालिश और विभूषा आदि का आचरण नहीं करता ।

इनसे जीव हिंसा के साथ रागवृद्धि भी संभव है । अतः ये सब पदार्थ उसके लिये अनाचीर्ण माने गये हैं ।

**सव्वमेयमणाइण्णं, निग्गंथाण महेसिणं ।
संजमम्मि य जुत्ताणं, लहुभूयविहारिणं ॥10॥**

हिन्दी पद्यानुवाद-

ये सब बतलाये अनाचीर्ण, निर्ग्रन्थ महर्षि श्रमणों के ।
संयम पथ में जो जुड़े हुए, लघु रूप विहारी जीवन के ॥

अन्वयार्थ-एयं = उपर्युक्त ये । **सव्वं** = सब । **निग्गंथाण** = निर्ग्रन्थ । **महेसिणं** = महर्षियों के लिये जो । **संजमम्मि** = संयम-साधन में । **जुत्ताणं** = लगे हुए । **य** = और । **लहुभूय-विहारिणं** = उपधि की अल्पता से लघुभूत विहारी हैं, उनके लिये । **अणाइण्णं** = अनाचीर्ण हैं ।

भावार्थ-संयम-साधना में तत्पर और लघुभूत विहारी निर्ग्रन्थ महर्षियों के लिए उपर्युक्त सभी कार्य अनाचीर्ण कहे गये हैं । दंत-पीड़ा, चक्षु-रोग और उदर-विकार आदि कारणिक स्थिति में औषध के रूप में इनका प्रयोग करना पड़े यह दूसरी बात है, अन्यथा अनारंभी साधु को अंजन, मंजन, विरेचन आदि से यथाशक्य बचते रहना चाहिए ।

**पंचासव-परिण्णाया, तिगुत्ता छसु संजया ।
पंचनिग्गहणा धीरा, निग्गंथा उज्जुदंसिणो ॥11॥**

हिन्दी पद्यानुवाद-

जो त्यागी हैं पंचाश्रव के, त्रिगुप्त जीव षट् पर संयत ।
पंचेन्द्रिय के जयी धीर, ऋजुदर्शी होते संत सतत ॥

अन्वयार्थ-पंचासवपरिण्णाया = हिंसा आदि 5 आस्रवों को ज्ञानपूर्वक त्यागने वाले । **तिगुत्ता** =

मन, वचन, कायरूप तीन गुप्ति वाले। **छसु** = षट्काय के जीवों पर। **संजया** = दया करने वाले। **पंचनिग्गहणा** = पाँच इन्द्रियों को वश में करने वाले। **धीरा** = धीर। **निग्गंथा** = निर्ग्रन्थ। **उज्जुदंसिणो** = सरल स्वभाव वाले होते हैं।

भावार्थ—पाँच आस्रवों के त्यागी, तीन गुप्तियों से गुप्त, षट्काय जीवों की यतना करने वाले, पाँच इन्द्रियों को वश में रखने वाले धीर-निर्ग्रन्थ ऋजुदर्शी होते हैं।

बिना किसी महिमा पूजा और लोकैषणा के निश्छल भाव से साधना करना ही निर्ग्रन्थों का मुख्य दृष्टिकोण होता है।

आयावयंति गिम्हेसु, हेमंतेसु अवाउडा।

वासासु पडिसंलीणा, संजया सुसमाहिया ॥12॥

हिन्दी पद्यानुवाद—

लेते आतापन गर्मी में, सर्दी में खुले बदन रहते।

संयत और समाहित मुनि, वर्षा में सुस्थिर हो रहते ॥

अन्वयार्थ—**गिम्हेसु** = ग्रीष्मकाल में। **आयावयंति** = सूर्य की आतापना लेते हैं। **हेमंतेसु** = शीतकाल में। **अवाउडा** = शरीर से वस्त्र हटा देते हैं। **वासासु** = वर्षाकाल में। **पडिसंलीणा** = इन्द्रियों को वश में रखने वाले। **संजया** = संयमी साधु। **सुसमाहिया** = उत्तम समाधि वाले होते हैं।

भावार्थ—मुनि उष्णकाल में ताप सहते हैं, शीतकाल में खुले बदन शीत सहन करते हैं और वर्षा ऋतु में कायिक चेष्टाओं का संगोपन कर समाधि भाव में लीन रहते हैं।

परीसह-रिऊदंता, धूअमोहा जिइंदिया।

सव्व दुक्खप्पहीणट्ठा, पक्कमंति महेसिणो ॥13॥

हिन्दी पद्यानुवाद—

परीषह शत्रु का दमन करे, निर्मोह सदा इन्द्रिय विजयी।

सब दुःखों का क्षीण करन, उद्यत रहते परमर्षि जयी ॥

अन्वयार्थ—**परीसह-रिऊदंता** = परीषह रूपी शत्रुओं का दमन करने वाले। **धूअमोहा (धूयमोहा)** = मोह को अलग हटाने वाले। **जिइंदिया** = जितेन्द्रिय। **महेसिणो** = महर्षि। **सव्वदुक्खप्पहीणट्ठा** = सब दुःखों का नाश करने के लिये। **पक्कमंति** = पराक्रम करते हैं, संयम साधना में जोर लगाते हैं।

भावार्थ—निर्ग्रन्थों की महिमा इसलिए है कि वे क्षुधा, पिपासादि परीषहों को सहन करने वाले, मोह-रहित और जितेन्द्रिय होते हैं। ऐसे महर्षि दुःख-मुक्ति के लिए आत्म-साधना में अपनी शक्ति लगाते हैं।

हिन्दी पद्यानुवाद-

साधना का लक्ष्य जन्म-मरण के बन्धनों से सर्वथा मुक्त होना है। फिर भी जिनके भोग-कर्म शेष रहते हैं, उनको स्वर्गादि के भव भी धारण करने पड़ते हैं।

खवित्ता पुव्वकम्माइं, संजमेण तवेण य ।
सिद्धि-मग्ग-मणुप्पत्ता, ताइणो परिनिव्वुडे ॥१५॥
-त्ति बेमि ॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

संयम और तपस्या से जो, पूर्वार्जित कर्मों का क्षय कर।
करते हैं प्राप्त सिद्धि पथ को, त्रायी मुनि मुक्त अमर बनकर ॥

अन्वयार्थ-सिद्धिमगमणुप्पत्ता = मोक्ष-मार्ग के साधक । संजमेण = संयम से । य = और । तवेण = तपस्या से । पुव्वकम्माइं = पूर्व संचित कर्मों को । खवित्ता = क्षय करके । ताइणो = षट्काय जीव के रक्षक मुनि । परिनिव्वडे = परिनिर्वाण (पूर्ण शान्ति) प्राप्त करते हैं । त्ति बेमि = ऐसा मैं कहता हूँ ।

भावार्थ—अवशेष कर्मों को खपाने के लिए वे स्वर्ग से मनुष्य-भव धारण करते हैं, जहाँ संयम और तपस्या से संचित कर्मों का क्षय करके सिद्धि-मार्ग पर चलते हुए, जीव मात्र के रक्षक मुनि अन्त में निराबाध सुख की प्राप्ति करते हैं।

त्ति बेमि = (इति ब्रवीमि) ऐसा मैं कहता हूँ।

॥ तृतीय अध्ययन समाप्त ॥



तृतीय अध्ययन की टिप्पणी

दूसरे श्रामण्य-पूर्विका अध्ययन में साधक को अधीरता छोड़कर संयम में धैर्य धारण करने की शिक्षा दी गई है। वह धैर्य आचार में लाभकारी होता है। अतः तृतीय अध्ययन में आचार का कथन किया गया है। इस अध्ययन का नाम खुड्डियायार कहा (क्षुल्लकाचार कथा) है। इसमें साधकों के संक्षिप्त आचार का कथन किया गया है। आचार का पालन अनाचार के त्याग से ही होता है। अतः महर्षियों द्वारा वर्जित कुछ कर्म आज के साधक भी त्यागें, ऐसी शिक्षा दी गई है। वर्जनीय कर्म को अनाचीर्ण कहा है। मूल में उनकी संख्या का उल्लेख नहीं है, किन्तु चूर्णि और टीका में अनाचीर्ण 52 और कहीं 53 बताये गये जो निम्न हैं:-

1. **औद्देशिक**-श्रमण वर्ग के लिए बनाया गया आहार आदि लेना औद्देशिक दोष है।
2. **क्रीत-कृत**-साधु-श्रमण के लिये खरीदकर दिया गया आहार आदि लेना क्रीत-कृत दोष है।
3. **नियाग**-नित्य आमन्त्रित पिण्ड लेना साधु-श्रमण का तीसरा दोष है।
4. **अभिहत**-साधु को देने के लिए अपने घर या गाँव आदि से सामने लायी हुई आहार आदि वस्तु लेना अभिहत दोष है।

निशीथसूत्र 14.4 में अभिहते अर्थात् सम्मुख लाए आहार आदि को लेने का प्रायश्चित्त है। इसका तात्पर्य है कि साधु के लिए सम्मुख लाया हुआ आहार आदि नहीं कल्पता है। दशवैकालिक 5.1.24 में 'अइभूमिं न गच्छेज्जा' कथन से यह स्पष्ट है कि वह आहार दूर से लाया हुआ नहीं होना चाहिए। रसोई आदि के बाहर खड़े रहने पर दिखती हुई सामग्री को यतना सहित लाकर बहराने पर ली जा सकती है। उसकी मर्यादा पिण्डनिर्युक्ति में 100 हाथ बतायी गई है तो निशीथसूत्र 2.15 के अनुसार तीन घर अर्थात् सम्मुख दिखते हुए तीन कमरे तक से लाए हुए आहार आदि को कल्पनीय बताया है।

औद्देशिक से अभिहत तक के आहार आदि का विषय अन्यत्र भी कई सूत्रों में उपलब्ध होता है। इसका मुख्य हेतु सावद्य का अनुमोदन और साधु जीवन में परावलम्बनता का प्रवेश न हो, ऐसा प्रतीत होता है। क्योंकि महावीर के धर्म-मार्ग में अहिंसा का इतना सूक्ष्म विचार है कि जहाँ सूक्ष्म हिंसा भी मालूम हो, वैसे आहार आदि से बचने का विधान किया गया है।

5. **राइभत्ते**-रात्रि भक्त के चार प्रकार हैं-(1) दिन में लाकर दूसरे दिन खाना। (2) दिन में लाकर रात में खाना। (3) रात में लाकर दिन में खाना। (4) रात में लाकर रात में खाना। साधु के लिए इन चारों प्रकारों का रात्रि भोजन त्याज्य है। रात्रि भोजन-त्याग श्रमण निर्ग्रन्थ का छठा व्रत है, इसलिये भी रात्रि भोजन आचार से प्रतिकूल होने के कारण दोषपूर्ण माना गया है।

6. **सिणाणे**-अर्थात् स्नान भी साधक के लिए अनाचीर्ण है। वह दो प्रकार का है-देश स्नान और सर्व स्नान।

शौच या आहारादि के लेप के अतिरिक्त अंग-प्रत्यंग को धोना देश स्नान और सिर से लेकर पैर तक पूरे शरीर का

धोना सर्व स्नान है। स्नान का वर्जन मुख्य रूप से अहिंसा को लक्ष्य में रखकर किया गया है। छठे अध्ययन में कहा गया है कि रोगी हो अथवा निरोगी, जो भी साधक स्नान की इच्छा करता है वह आचार से फिसल जाता है और उसका जीवन संयमहीन हो जाता है। इसलिए साधक उष्ण अथवा शीत किसी भी जल से स्नान नहीं करे। संयमियों का यह घोर अस्नान व्रत जीवन भर के लिये होता है। हिंसा के साथ स्नान, विभूषा का कारण होने से भी वर्जनीय कहा गया है। महावीर के धर्म-मार्ग में अहिंसा को जितनी प्रधानता दी गई है, उतनी देह-शुद्धि को नहीं। उन्होंने देह-शुद्धि में अशुचि टालने और लोगों में दुगुच्छा न हो, इस दृष्टि से हाथ-पैर-वस्त्र आदि धोने की थोड़ी सीमित छूट दी है।

स्नान के लिए इसी सूत्र में कहा गया है कि भूमि की दरारों में जो सूक्ष्म, त्रस एवं स्थावर जीव पाये जाते हैं, स्नान करते समय वे स्नान के पानी से पीड़ित होते हैं, इसलिए भी साधु स्नान नहीं करते। बौद्ध या वैदिक परम्परा में जैसे साधु को स्नान की छूट है, वैसे जैन साधु के लिए कोई छूट नहीं है।

7. गंधमल्ले (गन्धमाल्य)—चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थ और फूल माला का आसेवन साधु के लिये निषिद्ध है। इनके लिये वनस्पतिकाय के जीवों की विराधना होती है। वनस्पति और त्रस जीवों की हिंसा से बचने के लिए इन पदार्थों का लेना अग्राह्य कहा है। इसमें विभूषा और रागवृद्धि से बचना भी शास्त्र का एक हेतु रहा।

8. वीयणे (वीजन)—पंखे आदि से शरीर या उष्ण भोजनादि को हवा करना दोष है। पंखे आदि की हवा से वायुकाय के असंख्य जीवों की हिंसा और सूक्ष्म त्रस जीवों का भी वध सम्भव है। इसलिए साधु मुँह से फूँक भी नहीं देता, खुले मुख नहीं बोलता, छींक आदि के समय भी मुख पर हाथ रखता है।

9. सन्निही (सन्निधि)—तेल, घृत आदि पदार्थों का संचय करना, रात में रखना सन्निधि नाम का दोष है। संचय करना साधु के अपरिग्रह व्रत के प्रतिकूल माना गया है। षष्ठ अध्ययन में कहा है कि “विडमुब्भेइमं लोणं, तिलं, सपिं च फाणियं।” ज्ञात पुत्र महावीर की आज्ञा में रमण करने वाले साधु विड, लवण, तेल, घृत, गुड़ आदि को रात्रि में पास में नहीं रखते। क्योंकि यह भी लोभ का एक आंशिक कारणभूत है। जो संचय करना चाहता है वह गृहस्थ है, प्रव्रजित साधु नहीं। जैन साधु का नियम है कि साधु अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होने पर, वात, पित्त, कफ के प्रकोप में शान्ति नहीं होने पर एवं जीवनान्तकारी रोग की स्थिति बनने पर भी उससे बचने के लिये औषध-भैषज्य आदि का संचय नहीं करे।

10. गिहिमत्ते (गृहीभाजन)—गृहस्थ के बरतन में आहार-सेवन करना दोष है। इसके आसेवन से पूर्वकर्म और पश्चात्कर्म आदि दोष लगने की संभावना है। भाजनों को धोने में सचित्त जल की विराधना और इधर-इधर पानी गिराने से त्रस जीवों की हिंसा सम्भव है। इसलिये गृही-भाजन में साधु के लिए आहार करना अकल्प्य है।

11. रायपिंडे (राजपिंड)—राजा लेने वाले को जो चाहे दे, उस पिण्ड को किमिच्छक-राजपिण्ड कहते हैं। चूर्णिकार ने दोनों को एक माना है। किन्तु एक परम्परा राजपिण्ड और किमिच्छक को अलग-अलग मानती है। राजपिण्ड में मूर्धाभिषिक्त राजा का भोजन लेना साधु के लिए निषिद्ध है। साधु के लिए राजपिण्ड ग्रहण करना निषिद्ध माना गया है। राजपिण्ड से रागवृद्धि और रस-लोलुपीपन बढ़ने की सम्भावना रहती है। वह कामोत्तेजक भी होता है, इसलिये साधु के लिये अनाचीर्ण माना गया है।

12. किमिच्छए (किमिच्छक)—इसका अर्थ उन दानशालाओं से लिया गया है, जहाँ इच्छानुसार वस्तु की प्राप्ति होती हो। साधु-साध्वियों के लिये वहाँ से आहारादि लेना भी अग्राह्य कहा है।

13. संवाहणा—तैल आदि से बिना कारण शरीर का मर्दन करना संवाहन कहा गया है। वह अस्थि, मांस, त्वचा और रोम के लिए सुखदायी होता है। साधु, देहासक्ति से बचने के लिये और प्रमाद-वृद्धि न हो, इसलिए मर्दन को अकल्पनीय मानते हैं।

14. दंतपहोयणाए (दन्त प्रधावन)—नीम, बबूल, काष्ठ आदि के दातुन से दाँत का मैल साफ करना दन्त प्रधावन है। सूत्र कृतांग सूत्र में दातुन से दाँतों के प्रक्षाल का निषेध किया गया है। निशीथ सूत्र में कहा गया है कि—साधु के लिए विभूषा निमित्त दाँत घिसने तथा प्रक्षालन करने का निषेध है। वैदिक परम्परा में भी दन्तधावन पर्व तिथियों में वर्जित माना गया है। जैसा कि लघुहारित और नृसिंह पुराण में लिखा है—

प्रतिपत्-पर्व-षष्ठीसु, नवम्यां, चैव सत्तमः,

दन्तानां काष्ठसंयोगात्, दहत्यासप्तमं कुलम्।

अभावे दन्तकाष्ठानां प्रतिषिद्धदिनेषु च,

अपां द्वादशगण्डूषैर्मुखशुद्धिं समाचरेत् ॥

उपर्युक्त श्लोकों में प्रतिपदा आदि पर्व तिथियों में दन्तधावन वर्जित किया गया है। श्राद्धदिन, यज्ञदिन, नियमदिन, उपवास या व्रत के दिन में भी इसका निषेध किया गया है। इससे प्रमाणित होता है कि वैदिक परम्परा में भी धार्मिक क्रिया के रूप में दन्त प्रधावन का विधान नहीं है।

15. संपुच्छणा—अपने अंग-उपांग की सुन्दरता के लिये दूसरे से पूछना अथवा गृहस्थों से आरम्भ-समारम्भ सम्बन्धी सावद्य प्रश्न पूछना, रोगी गृहस्थ से कुशल पूछना, जैन-श्रमण के लिए अकल्पनीय है। आवश्यकता से कभी किसी से तपस्या एवं बीमारी की स्थिति में कुछ पूछना हो तो निरवद्य भाषा में पूछना चाहिये। संपुच्छणा से गृहिसंस्तव को बढ़ावा मिलता है। इसलिये इसका निषेध किया गया है। संपुच्छणा का दूसरा अर्थ शरीर के रज-मैल आदि साफ करना है। इसलिये भी विभूषा-त्यागी के लिए यह अनाचीर्ण माना गया है।

16. देह पलोयणा (देह-प्रलोकन)—दर्पण में रूप देखना अथवा दर्पण आदि में शरीर को देखना ममत्व जगाने का कारण हो सकता है। निशीथ सूत्र में साधु द्वारा दर्पण, पानी, तलवार, तैल आदि में रूप देखने का प्रायश्चित्त बतलाया है।

17-18. अट्टावए य नालीए (अष्टापद और नालिका)—जुआ, आज का शतरंज आदि खेल, जिनमें हार-जीत का दाँव लगाया जाता है, नालिका-पासों के द्वारा जुआ खेलना अथवा इच्छानुकूल पासा डालकर खेलना दोष है।

19. छत्तस्स धारणाट्टाए (छत्र-धारण)—बिना खास कारण के छत्र धारण करना अनाचीर्ण है। वर्षा अथवा धूप से बचने के लिए छत्र धारण नहीं करना, महिमा बढ़ाने के लिए महन्त की तरह छत्र नहीं लगाना, यह योगी की निशानी है। जैन श्रमण पूर्ण अपरिग्रही है। उसके लिये ये राजसी साधन, अनाचीर्ण माने गये हैं। केवल गाढ़ रोग की स्थिति में स्थविरो के लिए अपवाद का कथन मिलता है।

20. तेगिच्छं—उत्तराध्ययन सूत्र के परीषह अध्ययन में रोग को समभाव से सहन करने और चिकित्सा का अभिनन्दन नहीं करने का उपदेश दिया गया है। मृगापुत्र को माता ने कहा—“दुःखं निष्पडियकम्मया।” उत्तर में मृगापुत्र ने कहा—“मृग की कौन चिकित्सा करता है ? मैं मृग की तरह रहूँगा।” चिकित्सा वर्जन यह मुनियों का आदर्श मार्ग है। इसका पालन विशिष्ट शक्तिशाली मुनि ही कर पाते हैं। सामान्य मुनियों के लिए सावद्य चिकित्सा ही अनाचीर्ण है, निर्वद्य नहीं। श्रावक के अतिथि संविभाग व्रत में औषध-भैषज्य का भी उल्लेख मिलता है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि सबके लिए सब स्थितियों में चिकित्सा अनाचीर्ण नहीं है।

21. पाहणापाये (उपानत्)—जैन श्रमण के लिये काष्ठ, चमड़े और रबड़ आदि के जूते पहनना अनाचीर्ण है। जैन साधु त्रस, स्थावर जीवों की हिंसा के त्यागी हैं। कांटों, कीलों की चुभन और भूमि के ताप को सहकर भी वे खुले पैर चलते हैं, ताकि जूते के नीचे दबकर किसी सूक्ष्म-स्थूल जीव की हिंसा न हो। वैदिक परम्परा में संन्यासी के लिये जूता न रखकर लकड़ी की पादुका के उपयोग का विधान है। पर जैन परम्परा में जैन-श्रमण परीषह सहने और हिंसा से बचने के लिये जूते-चप्पल एवं पादुका का भी उपयोग नहीं करते।

22. समारंभ जोड़णे (ज्योति-समारंभ)—चूल्हे, विद्युत् आदि की ज्योति का उपयोग करना अनाचीर्ण है। शास्त्र में कहा गया है कि—साधु अग्नि को सुलगाने की इच्छा भी नहीं करते, क्योंकि यह बड़ा पापकारी शस्त्र है। लोहे के अस्त्र-शस्त्रों की अपेक्षा भी यह अधिक तीक्ष्ण और सब ओर से दुराश्रय है। यह सब दिशा-अनुदिशा में चलता है। खाना पकाना, पकवाना, जलना, जलवाना, उजाला करना आदि से अग्नि की विराधना होती है। अग्नि का आरम्भ (उपयोग) करने वाले पृथ्वी, तृण और काष्ठ के आश्रित रहने वाले जीवों का भी वध करते हैं। अतः यह भी साधु के लिये अनाचार है।

23. सिज्जायर पिंड (शय्यातर पिंड)—शय्यातर का आहार आदि लेना अनाचीर्ण है। साधु को रहने के लिए मकान देने वाला शय्यातर कहा गया है। वह आचारांग और निशीथ सूत्र के अनुसार गृह स्वामी या उसके द्वारा संदिष्ट हो सकता है। जैसाकि कहा है—सेज्जातरो पभुआ, पभु संदिट्ठो वा होति कातव्वो। नि. भा.।

शय्यातर कब होता है, इस सम्बन्ध में निशीथ भाष्य में 14 मत प्रस्तुत कर अन्त में अपना मत बतलाया है कि—साधु रात में जिस उपाश्रय, स्थान या घर में रहे, सोये और चरम प्रहर का आवश्यक करे उसका स्वामी शय्यातर है। शय्यातर के घर के अशन-पान, खाद्य-स्वाद्य, वस्त्र-पात्र आदि साधु के लिए अग्राह्य होते हैं; तृण, राख, पाट, चौकी, शिष्या-शिष्य नहीं। शय्यातर पिंड लेने से उद्गम आदि दोषों की सम्भावना रहती है। दाता को भार प्रतीत होना भी सम्भव है। अतः इसे अग्राह्य कहा है।

24. आसंदी—बैठने के आसन विशेष को आसंदी कहते हैं। टीकाकार के अनुसार मूँज, सण या सूत आदि द्वारा गूँथे हुए खाट तथा कुर्सी आदि साधु के लिए अग्राह्य हैं। आसंदी में प्रतिलेखना संभव नहीं होती। अतः यह अनाचीर्ण है।

25. पलियंकए (पर्यङ्क)—शयन के उपयोग में आवे, उसे पर्यङ्क कहते हैं। वेत्र (बैत) आदि के आसन भी इसी के अन्तर्गत समझे जाने चाहिए। खाट और आसालक आदि का प्रतिलेखन कठिन होता है, इससे जीवों की हिंसा सम्भव है। मंच आसालक, निषद्या और पीठ को भी आसंदी में ही समझना चाहिए। सर्वज्ञ वचनों में श्रद्धा रखने वाले साधु इन पर न बैठे, न सोये।

26. गिहंतर निसिज्जा (गृहान्तर निषद्या)—भिक्षा के लिये गये हुए साधु-साध्वी का गृहस्थ के घर में बैठना अकल्प्य है। जैसाकि कहा है—“गोयरग-पविट्टो य, न निसीएज्ज कत्थइ।” चूर्णिकार जिनदास और हरिभद्र के अनुसार घर में अथवा दो घरों के अन्तर में बैठना, ऐसा अर्थ इसका किया गया है। रोगी, तपस्वी और वृद्ध के लिए बैठना अनाचार नहीं है। स्वस्थ दशा में गृहस्थ के घर में बैठने को ब्रह्मचर्य की अगुप्ति, प्राणियों का वध, याचकों के प्रतिघात और गृहपति के क्रोध का कारण बतलाया गया है। अतः गृहान्तर निषद्या अनाचार है।

27. गायस्सुव्वट्टण (गात्र उद्वर्तन)—शरीर पर पीठी आदि का मलना साधु के लिये अनाचार है। शरीर की विभूषा सावद्य बहुल है, इससे कर्म-बन्ध होता है। अतः निर्युक्ति के छोटे अध्ययन में कहा गया है—सिणाणं अदुवा कक्कं, लोद्धं पउमगाणि य। गायस्सुव्वट्टणाए नायरंति कयाइवि।।द.6।। अर्थात् साधु स्नान नहीं करते तथा कल्क, लोध्र और पद्म को शरीर के उद्वर्तन के लिए कभी उपयोग में नहीं लेते।

28. गिहिणो वेयावडियं (गृहि वैयावृत्य)—गृहस्थ की वैयावृत्य करना अनाचार है। साधु को गृहस्थ के साथ अन्नादि का संविभाग करना या गृहस्थ का आदर तथा उपकार करना एवं उन्हें अन्नादि देना और उनकी सेवा करना साधु के लिए अकल्प्य है।

29. आजीववत्तिया—जाति, कुल आदि बतलाकर आजीविका करना साधु के लिये अकल्पनीय है। स्थानांग सूत्र के पाँचवें स्थान में 5 प्रकार की आजीववृत्ति बतलाई है। जैसे—पंचविहे आजीविए पण्णत्ते तं जहा 1. जाति आजीवे, 2. कुलाजीवे, 3. कम्माजीवे, 4. सिप्पाजीवे, 5. लिंगाजीवे।

अर्थात् जाति, कुल, कर्म, शिल्प और लिंग के माध्यम से आहार आदि प्राप्त करना यह पाँच प्रकार की आजीववृत्ति कही गई है। व्यवहार भाष्य में तप और श्रुत को मिलाकर 6 प्रकार की उपजीविका करने वाले को कुशील सेवी कहा है। मैं अमुक जाति, कुल या गण का हूँ तथा मैं अमुक कर्म अथवा शिल्प में कुशल हूँ। मैं बड़ा तपस्वी एवं बहुश्रुत हूँ। ऐसा कहकर या अन्य प्रकार से बतलाकर आहार आदि लेना साधु का अनाचार है। ऐसा करने से दीनता या जिह्वा लोलुपता प्रकट होती है, इसलिए इस आजीववृत्ति का निषेध किया गया है।

30. तत्तानिब्बुड भोइत्तं (तप्तानिवृत्त भोजित्व)—गर्म होकर जो शीतल हो गया हो ऐसे जल का सेवन करना। फल, फूल, धान्य आदि सब वस्तुएँ जो पहले सचित्त होती हैं, पेड़-पौधों से अलग होने पर एवं दलने पर अथवा गरम आदि होने पर उनमें से सब जीव च्युत हो जाते हैं, मात्र शरीर रह जाता है तब सब वस्तुएँ अचित्त बन जाती हैं। जीवों का शरीर से च्यवन काल-मर्यादा से स्वयं होता है और प्रतिकूल पदार्थ के संयोग से काल पूर्ण होने के पहले भी हो जाता है। जीवों की मृत्यु के कारणभूत पदार्थ को शस्त्र कहते हैं। सचित्त जल और वनस्पति अग्नि से उबालने पर अचित्त हो जाते हैं। कदाचित् वे पूर्ण मात्रा में उबाले हुए न हों तो वे उस स्थिति में मिश्र होते हैं। उनमें सचित्त-अचित्त-मिश्रित भाव होता है। ऐसा पदार्थ तप्तानिवृत्त कहलाता है। तप्तानिवृत्त जल का ग्रहण निषिद्ध है। आगे कहा है कि—“उसिणोदगं तत्तफासुयं पडिगाहेज्ज संजए।” (दशवैकालिक सूत्र 8/6)

यहाँ गर्म जल जो उबालकर प्रासुक किया जा चुका है, उसके लेने का विधान है। कुछ आचार्य “तत्तानिब्बुड भोइत्तं” इस पद में ‘भोइत्तं’ शब्द से जल की तरह अन्न का भी ग्रहण करते हैं। उनके अनुसार एक बार भुने हुए धान्य को लेने

का निषेध किया गया है। चूर्णिकार अगस्त्यसिंह ने-ग्रीष्म काल में एक दिन-रात के बाद गर्म पानी फिर सचित्त होना माना है तथा हेमन्त और वर्षा ऋतु में पूर्वाह्न में गर्म किया हुआ जल अपराह्न में सचित्त माना है। जैसे अचित्त जल काल अवधि पूर्ण हो जाने से फिर से सचित्त हो जाता है, वैसे ही बहुत समय तक पड़ा रहकर अचित्त भी सचित्त हो जाता है, क्योंकि जल की सचित्त, अचित्त और मिश्र तीनों योनियाँ हैं।

स्थानांग सूत्र के तीसरे अध्ययन में कहा है-“तिविहा जोणी पन्नत्ता तं जहा सचित्ता, अचित्ता, मीसिया।” एवं “एणिदियाणं, विगलिंदियाणं संमुच्छिम-पंचिंदिय-तिरिक्खजोणियाणं संमुच्छिम-मणुस्साण य।” स्था. 3/101। अर्थात् अनिवृत्त जलादि के ग्रहण में हिंसा की सम्भावना होने से वह साधु के लिए अग्राह्य है।

31. आउरस्सरणाणि (आतुर स्मरण)—रोगादि से पीड़ित होने पर पूर्वभुक्त वस्तुओं का स्मरण करना। टीकाकार नेमीचन्द्र ने रोगातुर होने पर माता-पिता आदि की स्मृति करना, ऐसा इसका अर्थ किया है। परिचितों के स्मरण से मानसिक चंचलता और आर्तध्यान बढ़ने की सम्भावना रहती है। दूसरे अर्थ में आतुर-कष्टी को शरण देना कहा है। साधु के लिये आतुर स्मरण अनाचीर्ण है।

32-33. मूलए-सिंगबेरे—व्यवहार में बहु प्रचलित मूलक मूली मूला और शृङ्गबेरे-अदरख यदि शस्त्र परिणत नहीं हो तो उसका लेना साधु के लिए आचार विरुद्ध है।

34. उच्छुखण्डे (सचित्त इक्षुखण्ड)—जिसके दोनों पोर विद्यमान हों, वह इक्षु खण्ड सचित्त रहता है। ऐसे इक्षु खण्ड अनिवृत्त लेना अनाचार है। जिसमें नमक आदि शस्त्र का प्रयोग हुआ हो फिर भी जो जीव रहित नहीं हुआ हो, उसे अनिवृत्त कहा गया है। ऐसे इक्षु खण्ड का लेना साधु के लिए अकल्प्य है।

35-36. कन्दे, मूले—सचित्त कन्द और मूल का लेना भी साधु के लिए अग्राह्य है। यहाँ सचित्त का अर्थ सजीव समझना चाहिए। शकरकन्द आदि भूमि में उत्पन्न होने वाले और मूल से तात्पर्य-सामान्य जड़ समझना चाहिए। साधु सचित्त भोजन का त्यागी है। उसके लिए किसी भी सचित्त वस्तु का सेवन कल्प विरुद्ध है।

37-38 फले बीए य आमए—(कच्चे फल और बीज) आम, जामुन आदि फल और गेहूँ, मूँग, मोठ, तिल, आदि बीज कच्चे हों तो उनको लेना अनाचार है। मूल से बीज तक के पदार्थों का ग्रहण हिंसाजनक है। इनको ग्रहण करने से वनस्पति के अतिरिक्त तदाश्रित त्रस जीवों की भी हिंसा सम्भव है। विशेषकर इक्षुखण्ड में खाने का भाग अल्प और गिराने का अधिक होता है। इसलिये उसको अग्राह्य कहा है।

39-44. सोवच्चले आदि—1. सोवर्चल लवण, 2. सैन्धव लवण, 3. रोमा लवण, 4. समुद्री लवण, 5. पांशुक्षार और 6. काला लवण, ये छः प्रकार के सचित्त लवण साधु के लिये अग्राह्य बतलाये गये हैं।

सोवर्चल और सैन्धव लवण खान से उत्पन्न होते हैं। ये अग्नि आदि से पकाये गये नहीं होते। अतः वैसे कच्चे लवण का ग्रहण निषिद्ध कहा है। कारण, इसमें जीव-हिंसा होना सम्भव है।

45. धूवणेत्ति—शरीर और वस्त्रादि को आरोग्य के लिए धूप देना अथवा धूपपान करना साधु के लिए अनाचार है।

46-48. वमणे-वत्थिकम्म विरेयणे—जानकर बिना कारण वमन करना, नली से स्नेह चढ़ाकर या बत्ती देकर वस्तिकर्म करना, एनिमा भी इसी में समझना चाहिए, जुलाब लेकर विरेचन करना, शरीर का वर्ण सुन्दर बने, स्थूल या कृश बने आदि के उद्देश्य से वमन, विरेचन, वस्तिकर्म करना साधु के लिए निषिद्ध है। वमन आदि से त्रस-स्थावर जीवों की हिंसा सम्भव है। अतः उत्सर्ग मार्ग में इनका संयमी के लिए निषेध है।

49. अंजणे—बिना कारण आँखों में काजल, सुरमा तथा अंजन डालना भी साधु के लिए अनाचार है।

50. दन्तवणे—दाँतों की शोभा करना या मैल उतारना साधु के लिए निषिद्ध है। इसका आशय इन्द्रिय संयम का रक्षण करना है।

51. गायब्भंगे (गात्र अभ्यंग)—साधु शरीर की विभूषा के त्यागी होते हैं। इसलिए बिना किसी कारण शरीर पर तैल की मालिश करना भी अकल्पनीय माना है।

52. विभूषणे (विभूषण)—जैन श्रमण पूर्ण ब्रह्मचारी होते हैं। वे नव बाड़ सहित ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं। इसलिये उनके लिये विभूषा नख, केश आदि का सँवारना, वेश-भूषा आदि की सजावट करना अकरणीय है। दशवैकालिक सूत्र में कहा है कि—नग्न, मुण्डित, बड़े हुए नख, केश वाले तथा मैथुन से उपरत साधु को विभूषा से क्या करना है ? विभूषा से स्व-पर के मन में रागवृद्धि संभव होने से इसे अनाचीर्ण कहा गया है।

(ज्ञातव्य—तिरेपन की परम्परा वाले “राजपिण्ड और किमिच्छक” को एक मानते हैं। बावन की परम्परा वाले “आसन्दी और पर्यङ्क” तथा “गात्राभ्यंग और विभूषणा” को एक मानते हैं। इसकी दूसरी परम्परा वाले गात्राभ्यंग और विभूषणा को एक मानने के स्थान पर लवण को सैंधव का विशेषण मानकर दोनों को एक अनाचार मानते हैं।)

ऊपर कथित अनाचारों के अतिरिक्त और भी जो संयम-मार्ग के प्रतिकूल व्यवहार हों, साधु के लिए वे सब अकरणीय हैं। अनाचारों का वर्जन कर जो शुद्ध आचार-धर्म का पालन करते हैं, वे दिव्य लोक या सिद्धगति के अधिकारी होते हैं।

॥तृतीय अध्ययन की टिप्पणी समाप्त॥



चतुर्थ अध्ययन

छज्जीवणिया (षड् जीवनिका)

उपक्रम

इस अध्ययन में षट्काय के जीवों के रक्षण का उपदेश दिया गया है। अतः इसको धर्म प्रज्ञप्ति भी कहा है। निर्युक्तिकार ने इसके पर्यायवाचक 6 नाम बताये हैं। जैसे-“जीवाजीवाभिगमो, आयारो चेव धम्मपण्णत्ती। ततो चरित्तधम्मो, चरणे धम्मो य एगट्ठा।” (दशवैकालिक निर्युक्ति 4 / 233)

मुक्तिमार्ग में आरोहण का क्रम इसमें बहुत ही सुन्दर ढंग से बतलाया गया है। सर्वप्रथम जीव जीवाजीव का ज्ञान प्राप्त करता है 1, जीवाजीव के ज्ञान में सब जीवों की गति जानता है 2, फिर पुण्य, पाप, बन्ध और मोक्ष को जानता है 3, फिर भोगों से निर्वेद प्राप्त करता है 4, संयोग का त्याग करता है 5, मुण्डित होकर अनगार धर्म धारण करता है 6, उत्कृष्ट संवर-धर्म का स्पर्श करता है 7, अबोधित कर्म-रज को अलग करता है 8, सर्वव्यापी ज्ञान प्राप्त करता है 9, लोक-अलोक को जानता है 10, मन, वचन और काय के योगों का सम्पूर्ण निरोध करता है 11, आठों कर्मों का क्षय कर सम्पूर्ण कर्मों से रहित होकर सिद्धि प्राप्त करता है 12, लोकाग्र पर शाश्वत् सिद्ध होता है 13।

इस अध्ययन में शास्त्रकार चारित्र-धर्म की शिक्षा देते हैं। उन्होंने पाँच महाव्रत और छठा रात्रि भोजन-विरमण रूप मुनि-धर्म का प्रतिपादन कर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रसकाय की त्रिकरण, त्रियोग से सम्पूर्ण हिंसा-त्याग की शिक्षा दी है। इस प्रकार इस अध्ययन से चारित्र-धर्म का सम्पूर्ण परिचय प्राप्त हो जाता है। गद्य पाठ के पश्चात् 28 गाथाओं में चारित्र-धर्म की साधना में यतना की प्रधानता और साधना का क्रम बतलाया गया है। चलने, फिरने, बैठने, खड़े रहने, सोने, बोलने और खाने की प्रवृत्ति में पाप कर्म की सम्भावना होती है, किन्तु यतना से क्रिया करने वाला पापकर्म का बंध नहीं करता। इस विधि से पाप से बचने का मार्ग बतलाया गया है। इस अध्ययन की यह विशेषता है कि चारित्र ग्रहण करने के पश्चात् भी जो इन्द्रिय-सुख की चाह और प्रार्थना करने वाला है, सुख-सुविधाओं की प्राप्ति के लिए आकुल रहता है, अतिशय निद्रालु और बार-बार हाथ-पैर आदि को धोने वाला है, उसकी सद्गति दुर्लभ होती है। सुलभ सद्गति किनकी होती है-इसका भी स्पष्टीकरण किया गया है। जो साधक तपगुण की प्रधानता वाले हों, सरल मन वाले हों और मोक्षमार्ग में मति वाले हों, क्षमा एवं संयम में रमण करते हों, आये हुए परिषहों को शान्त भाव से सहन करते हों, उनकी सुगति सुलभ होती है।

अन्त में कहा गया है कि श्रद्धाशील साधक षट्काय-जीवों की यतना करे, दुर्लभ श्रमण-धर्म को प्राप्त कर मन, वचन, काया की क्रिया से जीवों की विराधना हो, ऐसा काम नहीं करे।

सुयं¹ मे आउसं ! तेणं भगवया एवमक्खायं । इह खलु छज्जीवणिया नामज्झयणं समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया-सुअक्खाया सुपण्णत्ता, सेयं² मे अहिज्जितं अज्झयणं धम्मपण्णत्ती ॥१॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

सुना शिष्य मैंने उन प्रभु से, कैसा तारक कहा वचन ।
निश्चय ही इस प्रवचन में, छः जीव निकायों का वर्णन ॥
जो काश्यपवंशी श्रमण वीर ने, भलीभाँति बतलाया है ।
वह श्रेय धर्म प्रज्ञप्ति मुझे, पढ़ने में मन को भाया है ॥

अन्वयार्थ-आउसं = हे आयुष्मन् शिष्य ! मे = मैंने । तेणं = उन । भगवया = भगवान द्वारा । अक्खायं = कहा गया । एवं = इस प्रकार । सुयं = सुना है । इह = इस जिन शासन में । खलु = निश्चय से ही । छज्जीवणिया = षड्जीव निकाय । नामज्झयणं = नाम का अध्ययन । समणेणं = श्रमण । भगवया = ज्ञानी । कासवेणं = काश्यप गोत्री । महावीरेणं = महावीर द्वारा । पवेइया = जाना गया है । सुअक्खाया = अच्छी तरह कहा गया है । सुपण्णत्ता = अच्छी तरह समझाया गया है । मे = मेरे लिए । धम्मपण्णत्ती = वह धर्म प्रज्ञप्ति । अज्झयणं = अध्ययन । अहिज्जितं = पढ़ना । सेयं = श्रेयस्कर है ।

भावार्थ-सुधर्मा स्वामी ने अपने शिष्य जम्बू को सम्बोधन करते हुए कहा-हे आयुष्मन् ! मैंने सुना है कि जिन शासन में षड्जीव निकाय नाम का अध्ययन काश्यप गोत्री भगवान् महावीर ने अच्छी तरह जाना, कथन किया और समझाया है । उस धर्म-प्रज्ञप्ति अध्ययन का पढ़ना मेरे लिए श्रेयस्कर है ।

(टिप्पणी-यहाँ पर षड्जीवनिकाय और धर्म-प्रज्ञप्ति इस प्रकार इस अध्ययन के दो नाम बताये गये हैं ।)

कयरा खलु सा छज्जीवणिया नामज्झयणं समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया, सुअक्खाया, सुपण्णत्ता, सेयं मेअहिज्जितं, अज्झयणं धम्मपण्णत्ती ॥२॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

षट्जीव निकाय नाम वाला, अध्ययन कौन जो यहाँ कहा ।
भगवान वीर उस काश्यप ने, समझाया जिसका मर्म महा ॥

1. सुअं = पाठान्तर । 2. सेअं = पाठान्तर ।

अध्ययन धर्म प्रज्ञप्ति रूप है, प्रभु ने कथन किया जिसका ।

है श्रेयस्कर मेरे हित में, दे मनोयोग पढ़ना उसका ॥

अन्वयार्थ—सा = वह । छज्जीवणिया = षट्जीव निकाय । नामज्झयणं = नाम का अध्ययन । कयरा = कौनसा है, जो । खलु = निश्चय से ही । समणेणं = श्रमण । भगवया = भगवान । महावीरेणं कासवेणं = काश्यप गोत्री महावीर द्वारा । पवेइया = अच्छी तरह जाना गया है । सुअक्खाया = अच्छी तरह कहा गया है । सुपण्णत्ता = सुप्रज्ञप्त है । धम्मपण्णत्ती अज्झयणं = वह धर्म प्रज्ञप्ति अध्ययन । अहिज्जिउं = पढ़ना । मे = मेरे लिये । सेयं = श्रेयस्कर है ।

भावार्थ—गुरु द्वारा धर्मप्रज्ञप्ति अध्ययन का परिचय सुनकर शिष्य, जिज्ञासा करता है कि गुरुदेव ! वह धर्मप्रज्ञप्ति अध्ययन कौन सा है, जिसको श्रमण भगवान महावीर ने अच्छी तरह जाना, कथन किया और समझाया है । जिसका अध्ययन मेरे लिये हितकारी है । गुरु-शिष्य के प्रश्नोत्तर में शब्दों की पुनरावृत्ति दोष रूप नहीं मानी जाती । अतः पाठ में आये हुए शब्दों की पुनरुक्ति देखकर शंका नहीं करनी चाहिए ।

इमा खलु सा छज्जीवणिया नामज्झयणं समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया—सुअक्खाया, सुपण्णत्ता, सेयं मे अहिज्जिउं अज्झयणं धम्मपण्णत्ती तं जहा—पुढवीकाइया, आउकाइया, तेउकाइया, वाउकाइया, वणस्सइकाइया, तसकाइया ॥३॥
हिन्दी पद्यानुवाद—

निश्चय षट्जीव निकायरूप, यह वर्णन सुखद मनोरम है ।

उस श्रमणवीर प्रभु काश्यप ने, कहा जिसे अति उत्तम है ॥

जिसको सम्यक् है बतलाया, एवं आख्यान किया जिसका ।

अध्ययन धर्म प्रज्ञप्ति सदा, क्षेमंकर है जन जीवन का ॥

पृथ्वीकायिक, जलकायिक, तेजस्कायिक भी जीव यहाँ ।

है वायु वनस्पतिकायिक फिर, त्रसकायिक ऐसे भेद जहाँ ॥

अन्वयार्थ—इमा खलु सा.....धम्म पण्णत्ती = इसका अर्थ पूर्ववत् । तं जहा = वह धर्म प्रज्ञप्ति अध्ययन इस प्रकार है । पुढवीकाइया = पृथ्वीकायिक जीव । आउकाइया = अप्कायिक जीव । तेउकाइया = अग्निकायिक जीव । वाउकाइया = वायुकायिक जीव । वणस्सइकाइया = वनस्पति कायिक जीव । तसकाइया = त्रसकायिक जीव । इस तरह जीव छः प्रकार के हैं ।

भावार्थ—संयमी जीवन का लक्ष्य, जीव मात्र की रक्षा करना है । संक्षेप में संसार के सारे जीव 6 विभागों में विभक्त किये जा सकते हैं । जैसे—पृथ्वी-कायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और त्रसकायिक ।

ऐसा कोई जीव नहीं जो इन विभागों में न आता हो। इन 6 प्रकार के जीवों को संक्षेप में इस प्रकार समझना चाहिए।

1. पृथ्वीकाय—पृथ्वी कठिन लक्षण वाली है, पृथ्वी ही जिनका शरीर है, ऐसे जीवों को पृथ्वीकायिक कहते हैं। जैसे—मिट्टी, लवण, खड़िया, अभ्रक धातु आदि।

2. अप्काय—शीतलता गुणवाले, जल ही जिनका शरीर है, वे अप्कायिक कहलाते हैं। जैसे वर्षा का पानी, ओस, हिम आदि।

3. तेजस्काय—दाहकता गुण वाली अग्नि ही जिनका शरीर है, उनको तेजस्कायिक कहते हैं। जैसे—अंगार, ज्वाला, अर्चि, विद्युत् आदि।

4. वायुकाय—गतिशील वायु ही जिनका शरीर है, वे जीव वायुकायिक कहलाते हैं। जैसे उत्कलित वायु, संवर्तक वायु, घनवात, तनुवात आदि।

5. वनस्पतिकाय—हरित वनस्पति ही जिनका शरीर है, उनको वनस्पतिकायिक जीव कहते हैं। जैसे—तृण, वृक्ष, लता आदि। इनके 10 अंग होते हैं, 1. मूल, 2. कंद, 3. स्कन्ध, 4. त्वचा, 5. शाखा, 6. प्रवाल, 7. पत्र, 8. पुष्प, 9. फल और 10. बीज

6. त्रसकाय—त्रसनशील शरीर वाले जीवों को त्रसकायिक कहते हैं। ये सर्दी गर्मी से बचाव करने के लिए स्थानान्तरण करते हैं, जैसे—कीड़ी, मक्खी, मच्छर, पशु, पक्षी, मनुष्यादि।

पुढवी चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणएणं ॥४॥

हिन्दी पद्यानुवाद—

पृथ्वी सचित्त है बतलाया, और जीव पृथक् सत्ता वाले।

जीव अनेक शस्त्रपरिणत, तब सब के सब जीवन वाले ॥

अन्वयार्थ—पुढवी = पृथ्वी। चित्तमंतमक्खाया = चित्तवती कही गई है उसमें। पुढोसत्ता = पृथक् सत्ता वाले। अणेगजीवा = अनेक जीव हैं। सत्थपरिणएणं = अग्नि आदि शस्त्र से परिणत के। अन्नत्थ = अतिरिक्त पृथ्वी सजीव होती है।

भावार्थ—नैयायिक आदि दर्शनों ने पृथ्वी, अप्, तैजस्, वायु और आकाश को तत्त्व माना है, किन्तु उन दार्शनिकों ने पृथ्वी आदि को सचेतन नहीं माना। प्रभु महावीर पृथ्वी आदि को सचेतन बतलाते हुए कहते हैं कि—पृथ्वी चेतना वाली अर्थात् सचेतन है। कंकर, पत्थर, शिला, लवण, खड़ी आदि में सूक्ष्म शरीर वाले अनेक जीव हैं। जैन-शास्त्र के अनुसार छोटी सी नमक की कंकरी में असंख्य जीव हैं।

तिल पपड़ी में जमे तिलकणों की तरह पृथ्वीकाय के शरीर पृथक् सत्ता वाले हैं। सर्दी-गर्मी और पथिकों के चरण-घर्षण से जो शरीर निर्जीव हो चुके हैं, उनके अतिरिक्त पृथ्वी चेतना वाली कही गई है।

आचारांग सूत्र के शस्त्रपरिज्ञा अध्ययन में भी कहा है कि 'संति पाणा पुढो सिया' पृथ्वीकाय के जीव पृथक् पृथक् शरीरों में आश्रित हैं।

आऊ चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढो सत्ताअन्नत्थ सत्थपरिणएणं ॥5॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

हैं अपकायिक भी जीव सहित, पहले जैसे लक्षण वाले।

वे ही अचित्त जो हो जाते, शस्त्रों से आहत तन वाले ॥

अन्वयार्थ-आऊ = जलकाय। चित्तमंतमक्खाया = चेतनावान् कहा गया है, जलकाय में। **पुढो सत्ता =** पृथक् सत्ता वाले। **अणेग जीवा =** अनेक जीव हैं। **सत्थपरिणएणं =** अग्नि आदि शस्त्र से परिणत के। **अन्नत्थ =** अतिरिक्त (जल) सजीव होता है।

भावार्थ-पृथ्वी के समान जलकाय भी चेतनावान् कहा गया है। एक-एक बूँद में अनेक जीव हैं। आचारांग के प्रथम शस्त्र परिज्ञा अध्ययन में कहा है कि-“संति पाणा उदगनिस्सिया जीवा अणेगा।” जल में जलकायिक जीव एक बूँद में असंख्य होते हैं और जल के आश्रित हजारों त्रस जीव यानी कीड़े आदि भी रहते हैं, जो विज्ञान के सूक्ष्म दर्शन यन्त्र से भी देखे जा सकते हैं। अग्नि, क्षार आदि विरोधी तत्त्वों से परिणत पानी अचित्त है। इसके अतिरिक्त जल चेतनावान् है, सजीव है। खारा पानी, मीठे पानी का और मीठा पानी, खारे पानी का शस्त्र है। कूप, तलाई, नदी, समुद्र और मेघ का पानी और जमा हुआ पानी का बर्फ भी अपकाय का अंग और जीव का पिण्ड है।

तेऊ चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणएणं ॥6॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

तेऊ सजीव है बतलाया, सब जीव पृथक् सत्ता वाले।

शस्त्रों से आहत को तजकर, है अनल सचेतन तन वाले ॥

अन्वयार्थ-तेऊ = अग्निकाय। **चित्तमंतमक्खाया =** चेतना वाली कही गई है, उसमें। **अणेगजीवा =** अनेक जीव। **पुढोसत्ता =** पृथक् सत्ता वाले हैं। **सत्थपरिणएणं =** शस्त्र परिणत के। **अन्नत्थ =** अतिरिक्त वे अग्निकाय भी सजीव हैं।

भावार्थ-तेजस्काय अग्नि को चित्तवान् कहा गया है। उल्का, अंगार, ज्वाला और विद्युत् आदि सब प्रकार की अग्नि सजीव है। अंगार के सूक्ष्म कण में भी असंख्य जीव हैं। अंगुल के असंख्यातवें भाग

प्रमाण शरीर वाले ये सब जीव अलग-अलग सत्ता वाले हैं। पानी, मिट्टी आदि विरोधी तत्त्वों से परिणत को छोड़कर शेष अग्नि भी चेतनावान् हैं। सोना, ईंट, बुझे कोयले और गर्म पानी की आग शस्त्र परिणत होने से अचित्त होती है। अग्नि के जलाने और बुझाने में असंख्य तेजस्काय, असंख्य जलकाय, असंख्य वायुकाय और संख्यातीत त्रसजीवों की हिंसा होती है। अतः अग्निकाय के आरम्भ (हिंसा) से बचना भी आवश्यक है।

वाऊ चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणणं ॥७॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

है पवन सचेतन कहा गया, सब जीव पृथक् सत्ताधारी।

शस्त्रों से परिणत को तजकर, जानों ये भी जीवनधारी ॥

अन्वयार्थ-वाऊ = वायुकाय। चित्तमंतमक्खाया = चेतना वाली कही गई है। अणेगजीवा = अनेक जीव। पुढोसत्ता = पृथक्-पृथक् सत्ता वाले हैं। सत्थपरिणणं = शस्त्र परिणत के। अन्नत्थ = अतिरिक्त वे सजीव हैं।

भावार्थ-वायुकायिक जीव चेतनावान् हैं। उत्कलवात, मंडलवात, तनुवात, घनवात, झंझावात आदि वायुकायिक जीव हैं। मुख की जरा-सी फूँक में असंख्य जीव होते हैं। आघात, टक्कर और अग्नि आदि वायुकाय के शस्त्र हैं। पंखे की हवा, इंजन की वाष्प और गैस आदि की वायु अचित्त सम्भव है। आघात, टकराहट और अग्नि आदि शास्त्रों से वायु अचित्त होती है।

वायु की टक्कर से उड़ने वाले सूक्ष्म प्राणी नीचे गिरकर सिकुड़ जाते हैं, मूर्च्छित हो जाते हैं व मर जाते हैं, इसलिये वायु का आरम्भ भी वर्जनीय कहा गया है।

उपर्युक्त पृथ्वी, जल, अग्नि और वायुकाय के जीव अव्यक्त चेतना वाले होते हैं। जन्म से अन्धे, बहरे और गूंगे मनुष्यों की तरह छेदन-भेदन की वेदना भोगते हुए भी ये अपना दुःख और शोक प्रकट में व्यक्त नहीं कर पाते। फिर भी चेतनावान् होने से ये सजीव हैं।

वणस्सई चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता, अन्नत्थ सत्थपरिणणं तं जहा-अग्गबीया-मूलबीया-पोरबीया-खंधबीया, बीयरुहा, संमुच्छिमा, तणलया, वणस्सईकाइया सबीया, चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थ-परिणणं ॥८॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

जो जीव वनस्पतिकायिक हैं, उनके ये भेद निराले हैं।

कुछ अग्रबीज कुछ मूल बीज, कुछ पर्व बीज तनवाले हैं ॥

कुछ स्कन्ध बीज, कुछ बीजरुहा, संमूर्च्छिम और तृणादिकाय ।

ये हैं सचित्त और बीजयुक्त, शस्त्रों से परिणत हो नहीं काय ॥

अन्वयार्थ-वणस्सई = वनस्पतिकाय । **चित्तमंतमक्खाया** = चेतना वाली कही गई है । **सत्थपरिणएणं** = शस्त्र परिणत के । **अन्नत्थ** = अतिरिक्त वनस्पति में । **अणेगजीवा** = अनेक जीव । **पुढोसत्ता** = पृथक्-पृथक् सत्ता वाले कहे गये हैं । **तं जहा** = जैसे वनस्पति के मुख्य प्रकार ये हैं । **अगबीया-मूलबीया-पोरबीया-खंधबीया-बीयरुहा-संमुच्छिमा-तणलया** = 1. अग्रबीज, 2. मूलबीज, 3. पर्वबीज, 4. स्कन्धबीज, 5. बीजरुह, 6. संमूर्च्छिम, 7. तृणलता । **वणस्सईकाइया** = वनस्पतिकायिक । **सबीया** = बीज सहित । **चित्तमंतमक्खाया** = चेतना वाली कही गई है । **सत्थपरिणएणं** = शस्त्र परिणत के । **अन्नत्थ** = अतिरिक्त वनस्पति में । **अणेग जीवा** = अनेक जीव । **पुढो सत्ता** = पृथक्-पृथक् सत्ता वाले कहे गये हैं ।

भावार्थ-वनस्पति चेतना वाली है । वनस्पति में अनेक जीव पृथक्-पृथक् सत्ता वाले हैं । मुख्य रूप से सूक्ष्म, साधारण और प्रत्येक ऐसे वनस्पति के 3 प्रकार हैं । अग्रबीज, मूलबीज, पर्वबीज, स्कन्धबीज, बीजरुह, संमूर्च्छिम, तृण और लता ये वनस्पति के मुख्य प्रकार हैं । इनमें सूक्ष्म वनस्पति के जीव लोक व्यापी हैं । ये किसी से मारे नहीं मरते । इनकी विराधना श्रद्धना, प्ररूपणा एवं उपेक्षा भाव की दृष्टि से होती है । प्रकारान्तर से वनस्पति के आठ प्रकार बतलाये गये हैं ।

अग्नि, नमक आदि शस्त्रों से अचितीकृत के अतिरिक्त शेष वनस्पति सचित्त मानी गई है । वनस्पति के जीव मनुष्य की भाँति विविध अवस्थाओं को प्राप्त करते हैं ।

जैसे मनुष्य का जन्म होता है, वैसे वनस्पति भी उत्पन्न होती है । मनुष्य बढ़ता है, ऐसे वनस्पति भी पोषण पाकर बढ़ती है । मनुष्य चेतना युक्त है, ऐसे ही वनस्पति भी चेतना युक्त है । मनुष्य का अंग कटने पर वह म्लान होता है, वैसे ही वनस्पति भी म्लान होती है । मनुष्य आहार करता है, वैसे वनस्पति भी आहार लेती है । मनुष्य तन अनित्य है, ऐसे ही वनस्पति भी अनित्य है । मनुष्य तन में चय-उपचय होता है, वैसे वनस्पति भी अपचित उपचित होती है ।

से जे पुण इमे अणेगे बहवे तसा पाणा । तं जहा-1. अंडया, 2. पोयया, 3. जराउया, 4. रसया, 5. संसेइमा, 6. संमुच्छिमा, 7. उब्भिया, 8. उववाइया, जेसिं केसिं च पाणाणं अभिक्कंतं, पडिक्कंतं, संकुचियं, पसारियं, रुयं, भंतं, तसियं, पलाइयं, आगइगइविण्णाया जे य कीडपयंगा जा य कुंथु पिवीलिया, सव्वे बेइंदिया, सव्वे तेइंदिया, सव्वे चउरिंदिया, सव्वे पंचिंदिया, सव्वे तिरि-क्खजोणिया, सव्वे नेरइया,

सव्वे मणुआ, सव्वे देव्वा, सव्वे पाणा परमाहम्मिया, एसो खलु छट्ठो जीवनिकाओ
'तसकाओ' त्ति' पवुच्चइ ॥१॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

जो ये अनेक चलने वाले, जगती में त्रस कहलाते हैं ।
अंडज^१, पोतज^२, रसज^३, जरायुज^४, स्वेदज^५, प्राणी होते हैं ॥
संमूर्च्छिम^६, उद्भिज^७, उपपातिक^८, चेष्टा है जिनके जीवन में ।
ज्ञातृ अपेक्षा से कितनी, होती है काम क्रिया इनमें ॥
सम्मुख आना पीछे जाना, संकोचन अंगों का करना ।
निज हाथ-पाँव को फैलाना, इच्छा से रुदन भ्रमण करना ॥
होना उद्विग्न भयादि देख, स्वस्थान छोड़कर भग जाना ।
यों इनके गमनागमनों से, है सिद्ध प्राणधारी कहना ॥
सब कीट पतंगे जो प्राणी, फिर कुन्थु पिपीलिका तन वाले ।
हैं दो इन्द्रिय त्रिन्द्रिय सब, चतुरिन्द्रिय पंच इन्द्रिय वाले ॥
तिर्यक् योनिज और नारकी, मनुज देव को तन प्यारे ।
ये त्रसकाय के अन्तर्निहित, गतिशील कहे जाते त्रस तन वाले ॥

अन्वयार्थ-पुण = फिर । से जे इमे = अब जो ये । अणेगे बहवे तसा पाणा = अनेक प्रकार के बहुत से त्रस जीव हैं । तं जहा = जैसे कि । अंडया = अंडज-अंडे से उत्पन्न होने वाले पक्षी आदि । पोयया = पोतज-हाथी चमगादड़ आदि पोत यानी कोथली में लिपटे हुए । जराउया = जरायुज-जरायु सहित पैदा होने वाले गाय, भैंस, मनुष्य आदि । रसया = रसज-रस में विकार होने से उत्पन्न होने वाले द्वीन्द्रियादिक जीव । संसेइया = संस्वेदज-पसीने से उत्पन्न होने वाले जूं, लीख आदि जीव । संमुच्छिमा = संमूर्च्छनज-बिना माता-पिता के संयोग से उत्पन्न होने वाले संमूर्च्छिम कीड़े, पतंगे आदि । उब्भिया = उद्भिज-भूमि फोड़कर पैदा होने वाले जीव जैसे टिट्ठी आदि । उववाइया = औपपातिक देव-नारकी जीव । जेसिं = जिन । केसिं = किन्हीं । च = और । पाणाणं = प्राणियों के । अभिक्कंतं = सामने आना । पडिक्कंतं = पीछे जाना । संकुचियं = संकोच करना । पसारियं = अंग फैलाना । रुयं = शब्द करना । भंतं = भ्रमण करना । तसियं = त्रस्त, भयभीत होना । पलाइयं = भागना । आगई-गई = आगति और गति के । विन्नाया = ज्ञाता होना, यह त्रस जीव की पहचान है । त्रस कौन ? जे य = जो ये । कीडपयंगा = कीट पतंग हैं । जा य = और जो । कुंथुपिवीलिया = कुंथु तथा पिपीलिका-कीड़ी है । सव्वे = सब । बेइंदिया = दो इन्द्रियों वाले जीव । सव्वे तेइंदिया = सब तीन इन्द्रियों वाले जीव । सव्वे चउरिंदिया = सब चार इन्द्रियों वाले जीव । सव्वे पंचिंदिया = सब पाँच इन्द्रियों वाले जीव । सव्वे तिरिक्ख जोणिया = सब तिर्यच योनि के

जीव । सव्वे नेरइया = सब नरक योनि के जीव । सव्वे मणुआ = सब मनुष्य और । सव्वे देवा = सब देव । सव्वे पाणा = सब प्राणी । परमाहम्मिया = परम सुख के अभिलाषी (परम अधर्मिक) हैं । एसो = यह । खलु = निश्चय से । छट्ठो जीवनिकाओ = छठा जीव निकाय । तसकाओ (तसकाउ) = त्रसकाय । त्ति = इस नाम से । पवुच्चइ = कहा जाता है ।

भावार्थ—त्रस प्राणी अनेक प्रकार के कहे गये हैं, जो मुख्य रूप से इस प्रकार हैं—1. अंडे से उत्पन्न होने वाले अंडज, 2. थैली से उत्पन्न होने वाले पोतज, 3. जर से लिपटे हुए उत्पन्न होने वाले जरायुज, 4. रस के विकार में उत्पन्न होने वाले रसज, 5. स्वेद पसीने से उत्पन्न होने वाले जूँ, लीख, खटमल आदि स्वेदज, 6. बिना गर्भ के उत्पन्न होने वाले कीड़े, पतंगे आदि सम्मूच्छिम, 7. भूमि फोड़कर उत्पन्न होने वाले उद्भिज्ज, 8. उपपात से उत्पन्न होने वाले औपपातिक । इस प्रकार से आठ प्रकार के त्रस जीव हैं ।

जिन प्राणियों में सामने आना, पीछे जाना, संकोच, प्रसारण, शब्द करना, भ्रमण करना, भयभीत होना, भागना और आगति-गति का ज्ञान होना—ये लक्षण होते हैं, वे त्रस जीव कहलाते हैं । कीड़े पतंगे—कुंथु एवं पिपीलिका आदि सब दो इन्द्रिय से पाँच इन्द्रिय वाले जीव त्रस हैं । गति की अपेक्षा एकेन्द्रिय को छोड़कर, सब तिर्यच योनि के जीव, सब नारकीय जीव, सब मनुष्य और सब देवता, ये सब त्रस प्राणी हलन चलन वाले हैं । सब त्रस प्राणी परम सुख के अभिलाषी हैं । (कोई जीव दुःख नहीं चाहता) । ये सब जीव त्रसकाय कहे जाते हैं । ये सुख-दुःख को और हर्ष-खेद को व्यक्त करते हैं, अतः इनमें स्थूल चेतना है ।

इच्चेसिं छण्हं जीवनिकायाणं नेव सयं दंडं समारंभिज्जा नेवत्तेहिं दंडं समारंभाविज्जा, दंडं समारंभंते वि अन्ने न समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए, तिविहं तिविहेणं, मणेणं, वायाए, काएणं, न करेमि, न कारवेमि, करंतं पि अण्णं न समणुजाणामि ।

तस्स भंते ! पडिक्कमामि, निंदामि, गरिहामि, अप्पाणं वोसिरामि ॥10॥

हिन्दी पद्यानुवाद—

ऐसे षट्कायिक जीवों पर, नहीं स्वयं दण्ड आरम्भ करना ।
दण्ड दिलाना नहीं पर से, देते पर को न भला कहना ॥
हिंसा का वर्जन जीवन भर, हमको करना मन से तन से ।
ना स्वयं करे न करवाये, करते को शुभ न कहे मन से ॥
ऐसे दण्डों से गुरुवरजी, मैं स्वयं दूर अब होता हूँ ।
निन्दा गर्हा कर पापों की, व्युत्सर्ग उन्हें अब करता हूँ ॥

अन्वयार्थ-इच्छेसिं = इन । छण्हं जीवनिकायाणं = 6 जीव निकायों के लिए । सयं = स्वयं । दंडं = दण्ड का । नेव समारंभिज्जा (समारंभेज्जा) = समारम्भ करना नहीं । अन्नेहिं = दूसरों से । दंडं = दण्ड का । नेव समारंभाविज्जा (समारंभावेज्जा) = समारम्भ करवाना नहीं । दंडं = दण्ड का । समारंभंते = समारम्भ करने वाले । अन्ने वि = अन्य को भी । न समणुजाणिज्जा (समणुजाणेज्जा) = अच्छा मानना नहीं । जावज्जीवाए = जीवन भर के लिए । तिविहं = तीन करण । तिविहेणं = तीन योग से । मणेणं = मन से । वायाए = वचन से और । काएणं = काया से । न करेमि = करूँ नहीं । न कारवेमि = करवाऊँ नहीं । करंतं पि = करने वाले । अन्नं = अन्य का । न समणुजाणामि = अनुमोदन भी करूँ नहीं । तस्स = उस पूर्वकृत समारम्भ का । भन्ते ! = हे पूज्य । पडिक्कमामि = मैं प्रतिक्रमण करता हूँ । निंदामि = निन्दा करता हूँ । गरिहामि = गर्हा करता हूँ । अप्पाणं = उस पाप से अपनी आत्मा को । वोसिरामि = व्युत्सर्ग (अलग) करता हूँ ।

भावार्थ-षट्कायिक जीवों का परिचय देकर अब गुरुदेव उनकी रक्षा का उपदेश देते हैं-जैन मुनि का यह संकल्प होता है कि पृथ्वीकाय से लेकर त्रसकाय तक के इन जीवों का स्वयं दण्ड का समारम्भ करना नहीं, दूसरों से दण्ड समारम्भ कराना नहीं और हिंसादि दण्ड करने वालों का अनुमोदन करना नहीं, मन, वचन और काया से तीन करण और तीन योग से जीवन भर के लिये । भूतकाल में जो दण्ड समारम्भ किया है, उसके लिए प्रतिक्रमण करना, निन्दा एवं गुरु साक्षी से गर्हा करते हुए पापकारी आत्मा का व्युत्सर्ग करना भी मुनि की चर्या का आवश्यक अंग है ।

पढमे भंते ! महव्वए पाणाइवायाओ वेरमणं । सव्वं भंते ! पाणाइवायं पच्चक्खामि, से सुहुमं वा, बायरं वा, तसं वा, थावरं वा, नेव सयं पाणे अइवाइज्जा, नेवन्नेहिं पाणे अइवायाविज्जा (अइवायावेज्जा), पाणे अइवायंते वि अन्ने न समणुजाणिज्जा (समणुजाणेज्जा), जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं, मणेणं, वायाए, काएणं, न करेमि न कारवेमि, करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि, तस्स भंते ! पडिक्कमामि, निंदामि, गरिहामि, अप्पाणं वोसिरामि ।

पढमे भंते ! महव्वए उवट्ठिओ मि, सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमणं ॥११॥
हिन्दी पद्यानुवाद-

प्रथम महाव्रत में भदन्त, प्राणातिपात विरमण होता ।
इसलिए सभी हिंसा कार्यों से, तोड़ रहा हूँ मैं नाता ॥
हो सूक्ष्म तथा बादर अथवा त्रस, स्थावर भी कोई जीव कहीं ।
हिंसा न करूँ ना करवाऊँ, करते को अच्छा कहूँ नहीं ॥

तीन करण और तीन योग से, मन वचन और अपने तन से ।
 करूँ न करवाऊँ मैं हिंसा, भला नहीं जानूँ मन से ॥
 होता हिंसा से अलग और निन्दा गर्हा मैं करता हूँ ।
 प्रथम महाव्रत जीवघात से, विरत सर्वथा होता हूँ ॥

अन्वयार्थ—भंते ! = हे भगवन् ! पढमे = प्रथम । महव्वए = महाव्रत में । पाणाइवायाओ = प्राणातिपात से । वेरमणं = निवृत्ति करता हूँ । भंते ! = हे पूज्य ! सव्वं = सर्वथा । पाणाइवायं = प्राणातिपात का । पच्चक्खामि = प्रत्याख्यान करता हूँ । से सुहुमं = वह सूक्ष्म । वा = या । बायरं = बादर । तसं = त्रस । वा = अथवा । थावरं = स्थावर जीव के । पाणे = प्राणों का । सयं = स्वयं । नेव अइवाइज्जा = अतिपात यानी हनन कभी करूँगा नहीं ।

नेवन्नेहिं पाणे.....अन्नं न समणुजाणामि ।

दूसरों से प्राणों का अतिपात कराऊँगा नहीं । प्राणों का अतिपात करने वाले को अच्छा भी नहीं समझूँगा । यावज्जीवन अर्थात् जीवन भर के लिये तीन करण और तीन योग से मन से, वचन से, काया से स्वयं करूँगा नहीं, दूसरे से कराऊँगा नहीं और करने वाले का अनुमोदन भी करूँगा नहीं ।

तस्स भंते !.....वोसिरामि ।

हे भगवन् ! मैं अतीत में किये गये, प्राणातिपात से निवृत्त होता हूँ । पूर्वकृत पाप की निन्दा करता हूँ । गुरु की साक्षी से उसकी गर्हा करता हूँ और पापकारी आत्मा को अलग (व्युत्सर्ग) करता हूँ ।

पढमे भंते ! पाणाइवायाओ वेरमणं ।

हे भगवन् ! मैं प्रथम महाव्रत में उपस्थित हुआ हूँ । अब सर्वथा प्राणातिपात से निवृत्ति करता हूँ ।

भावार्थ—जैन मुनि महाव्रती होने से पूर्ण अहिंसक होते हैं । वे सूक्ष्म या बादर, त्रस अथवा स्थावर, किसी भी जीव की स्वयं हिंसा करते नहीं, दूसरों से करवाते नहीं और हिंसा करने वाले को अच्छा भी नहीं मानते । प्रथम महाव्रत में सर्वथा हिंसा वर्जन की प्रतिज्ञा को दुहराते हुए शिष्य कहता है कि मैं जीवन भर के लिए तीन करण और तीन योग से अर्थात् हिंसा करूँगा नहीं, कराऊँगा नहीं, करने वाले का अनुमोदन करूँगा नहीं, मन, वचन और काया से और पूर्वकृत हिंसा के पाप को हल्का करने के लिए प्रतिक्रमण करता हूँ । पाप की निन्दा करता हूँ और गुरु-साक्षी से पाप की गर्हा करता हूँ और अपनी आत्मा को पाप से अलग भी करता हूँ । इस प्रकार गुरु के समक्ष प्रतिज्ञा का पुनरावर्तन करने से व्रत में दृढ़ता आती है । अतः शिष्य यह कहकर अपनी प्रतिज्ञा का पुनरावर्तन करता है ।

अहावरे दुच्चे (दोच्चे) भंते ! महव्वए मुसावायाओ वेरमणं सव्वं भंते ! मुसावायं

पच्चक्खामि । से कोहा वा, लोहा वा, भया वा, हासा वा, नेव सयं मुसं वडज्जा (वएज्जा), नेवन्नेहिं मुसं वायाविज्जा (वायावेज्जा) मुसं वयंते वि अन्ने न समणुज्जाणिज्जा (समणुजाणेज्जा), जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं, मणेणं, वायाए, काएणं न करेमि, न कारवेमि, करंतंपि अन्नं न समणुजाणामि । तस्स भंते ! पडिक्कमामि, निंदामि, गरिहामि, अप्पाणं वोसिरामि ।

दुच्चे भंते ! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ मुसावायाओ वेरमणं ॥12॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

द्वितीय महाव्रत मृषावाद-विरमण नामक कहलाता है ।
भन्ते ! मृषावाद का इसमें, वर्जन करना पड़ता है ॥
क्रोध लोभ भय हास्य निमित्तक, झूठ नहीं मैं बोलूँगा ।
औरों से नहीं कहलाऊँगा, कहते को भला न मानूँगा ॥
त्रिविध करण और त्रिविध योग, मन वचन और अपने तन से ।
कहूँ न कहलाऊँ मैं मिथ्या, भला नहीं मानूँ मन से ।
होता मिथ्या से अलग और, निन्दा गर्हा मैं करता हूँ ।
द्वितीय महाव्रत मृषावाद, विरमण को धारण करता हूँ ॥

अन्वयार्थ-अहावरे = अब आगे । भंते ! = हे भगवन् ! दुच्चे महव्वए = दूसरे महाव्रत में ।
मुसावायाओ = मृषावाद से । वेरमणं = विरति होती है । भंते ! = हे पूज्य ! सव्वं = सब प्रकार के ।
मुसावायं = मृषावाद का । पच्चक्खामि = प्रत्याख्यान करता हूँ । से = वह मृषावाद । कोहा वा = क्रोध से । लोहा वा = लोभ से । भया वा = भय से, अथवा । हासा वा = हास्य के वश । सयं = स्वयं । मुसं = मृषावाद । नेव वडज्जा = बोलूँगा नहीं । अन्नेहिं = दूसरों को भी । मुसं = मृषावाद । नेव वायाविज्जा = बोलाऊँगा नहीं ।

मुसं वयंते वि अन्ने अन्नं न समणुजाणामि ।

मृषा (झूठ) बोलने वालों को अच्छा भी नहीं समझूँगा, यावज्जीवन अर्थात् जीवन भर के लिये, तीन करण तीन योग से, मन से, वचन से, काया से, स्वयं मृषा बोलूँगा नहीं, दूसरों से बुलवाऊँगा नहीं और मृषा बोलने वाले का अनुमोदन भी करूँगा नहीं ।

तस्सं भंते वोसिरामि ।

हे भगवन् ! मैं अतीत में किये गये मृषावाद से, निवृत्त होता हूँ, उसकी निन्दा करता हूँ, गुरु साक्षी से उसकी गर्हा करता हूँ और पापकारी आत्मा का व्युत्सर्ग (परित्याग) करता हूँ ।

(दोच्चे) दुच्चे भंते ! मुसावायाओ वेरमणं ।

हे भगवन् ! मैं दूसरे महाव्रत में उपस्थित हुआ हूँ, अब सर्वथा मृषावाद से निवृत्ति करता हूँ।

भावार्थ—मृषावाद दूसरा अधर्म द्वार है। इसको खुला रखने से अन्यान्य पाप भी आसानी से प्रविष्ट होते रहते हैं। अतः पाप-प्रवृत्ति को कम करने के लिये दूसरे महाव्रत में मृषावाद का विरमण किया जाता है। इस व्रत के लिये साधु यह प्रतिज्ञा करता है कि छोटा-बड़ा सहेतुक या अहेतुक किसी भी प्रकार का, मैं मिथ्या भाषण करूँगा नहीं, करवाऊँगा नहीं, मृषा भाषण का अनुमोदन भी करूँगा नहीं, तीन करण और तीन योग से जीवन भर के लिये। अज्ञानवश जो पहले मृषा भाषण किया है, उसके लिये प्रतिक्रमण करता हूँ। आत्मसाक्षी से उस पाप की निन्दा और गुरु-साक्षी से गर्हा करता हूँ एवं पापकारी आत्मा को उससे व्युत्सर्ग (पृथक्) करता हूँ।

‘सत्यमहाव्रती’ अन्यान्य सद्गुणों का आश्रयधाम बन जाता है। शास्त्र में कहा है कि—“सच्चं लोगमि सारभूयं” अर्थात् सत्य लोक में सारभूत है। सत्य के शास्त्रों में—भाव सत्य 1, करण सत्य 2, योग सत्य 3, ऐसे तीन भेद किये गये हैं। परन्तु यहाँ मुख्य रूप से इस व्रत में वाणी के असत्य का ही त्याग बताया गया है। प्रतिज्ञा पाठ से इस बात को भलीभाँति जाना जा सकता है।

अहावरे तच्चे भंते ! महव्वए अदिन्नादाणाओ वेरमणं (विरमणं) । सव्वं भंते ! अदिन्नादाणं पच्चक्खामि, से गामे वा, नगरे वा, रण्णे वा, अप्पं वा, बहं वा, अणुं वा, थूलं वा, चित्तमंतं वा, अचित्तमंतं वा, नेव सयं अदिन्नं गिण्हिज्जा (गिण्हेज्जा), नेवन्नेहिं अदिन्नं गिण्हाविज्जा (गिण्हावेज्जा), अदिन्नं गिण्हंते वि अन्ने न समणुजाणिज्जा, जावज्जीवाए, तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए, काएणं, न करेमि, न कारवेमि, करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि । तस्स भंते ! पडिक्कमामि, निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि । तच्चे भंते ! महव्वए उवट्ठिओमि, सव्वाओ अदिन्नादाणाओ वेरमणं ॥13॥

हिन्दी पद्यानुवाद—

तृतीय महाव्रत चौर्य कर्म से, अब मैं विरमण करता हूँ।
बिना दिये पर वस्तु ग्रहण को, शुद्ध भाव से तजता हूँ॥
ग्राम नगर अथवा वन में, लेना अदत्त थोड़ा व अधिक।
स्थूल सूक्ष्म निर्जीव तथा, चाहे हो चैतन्य सहित॥
लूँगा अदत्त ना वस्तु कोई, औरों से नहीं लिवाऊँगा।
बिना दिये लेने वाले को, भला नहीं बतलाऊँगा॥
तीन करण और तीन योग से, मन से वचन तथा तन से।
करूँ न करवाऊँ, करते को, भला न जानूँगा मन से॥

होता चोरी से पृथक् और, निंदा गर्हा में करता हूँ।
 तृतीय महाव्रत चौर्य-विरति का, व्रत में धारण करता हूँ॥
 करता भदन्त मैं चौर्य-त्याग, उपरत इस कर्म से होता हूँ।
 अचौर्य महाव्रत-पालन में, अपने को अर्पण करता हूँ॥

अन्वयार्थ-अहावरे तच्चे भंते ! महव्वए = हे भगवन् ! अब आगे तीसरे महाव्रत में। अदिन्नादाणाओ = अदत्तादान से। वेरमणं = निवृत्ति होती है। सव्वं भंते ! अदिन्नादाणं = हे भगवन् ! सब प्रकार के अदत्तादान का। पच्चक्खामि = मैं प्रत्याख्यान करता हूँ। से गामे वा नगरे वा रण्णे वा = वह ग्राम में, नगर में या अरण्य में। अप्पं वा = थोड़ा हो या। बहं वा = बहुत। अणुं वा = छोटी वस्तु हो या। थूलं वा = स्थूल हो। चित्तमंतं वा अचित्तमंतं वा = सचित्त हो या अचित्त।

नेव सयं न समणुज्जाणामि ।

स्वयं अदत्त ग्रहण करूँगा नहीं, दूसरों से अदत्त ग्रहण कराऊँगा नहीं, अदत्त ग्रहण करने वाले अन्य को अच्छा समझूँगा नहीं।

तस्स भंते ! वोसिरामि ।

हे भगवन् ! पूर्व गृहीत उस अदत्त ग्रहण का प्रतिक्रमण करता हूँ, उसकी निन्दा करता हूँ और गुरु-साक्षी से उस की गर्हा करता हूँ। उस पापकारी आत्मा का व्युत्सर्ग करता हूँ।

तच्चे भंते ! महव्वए अदिन्नादाणाओ वेरमणं ।

हे भगवन् ! मैं तीसरे महाव्रत में सब प्रकार के अदत्तादान से निवृत्ति करने को उपस्थित हूँ।

भावार्थ-तीसरा महाव्रत अदत्तादान विरमण है। अहिंसा और सत्य महाव्रत के पश्चात् अचौर्य महाव्रत आता है। जैन मुनि के व्रत में देश, काल और परिस्थिति की कोई छूट नहीं होती, अतः उनको महाव्रत कहा जाता है। महाव्रत 5 हैं। अहिंसा की पूर्णता के लिये जैसे सत्य आवश्यक है, वैसे ही सत्य की परिपालना के लिये अचौर्य व्रत भी आवश्यक है। चोरी द्रव्य की तरह भावों की भी होती है। जैसे दशवैकालिक में कहा है-

तवतेणे वयतेणे, रूवतेणे य जे नरे ।

आयारभाव तेणे य, कुव्वइ देव किव्विसं ॥

तप-स्तेन, व्रत-स्तेन, रूप-स्तेन और आचार-स्तेन ये चार भाव चोरी के भेद हैं। परन्तु यहाँ पर बाह्य वस्तु की चोरी यानी-अदत्तादान को ही मुख्यरूप से वर्जित किया है।

साधु सम्पूर्ण अदत्त का त्यागी होता है। अल्प या बहुत, अणु और स्थूल, सचित्त एवं अचित्त ऐसे छह प्रकार के अदत्त का ग्रहण मुनि के लिये तीन करण और तीन योग से जीवन भर के लिये वर्जित बतलाया गया है। शिष्य ने प्रतिज्ञा की है कि वह छहों प्रकार के अदत्तादान का तीन करण और तीन योग से जीवन भर के लिये परित्याग करता है। वह सब प्रकार के अदत्तादान की विरति में तत्परता से उपस्थित है। साधु-साध्वी के लिये आवश्यक सूत्र में देव अदत्त 1, गुरु अदत्त 2, राज्य अदत्त 3, गाथापति अदत्त 4 और सहधर्मी अदत्त 5 इन पाँच प्रकार के अदत्त ग्रहण का भी वर्जन किया गया है।

अहावरे चउत्थे भंते ! महव्वए मेहुणाओ वेरमणं सव्वं भंते ! मेहुणं पच्चक्खामि, से दिव्वं वा, माणुसं वा, तिरिक्खजोणियं वा, नेव सयं मेहुणं सेविज्जा, नेवन्नेहिं मेहुणं सेवाविज्जा, मेहुणं सेवते वि अन्ने न समणुजाणिज्जा, जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि, न कारवेमि, करंतं पि अन्नं न समणुजा-णामि । तस्स भंते ! पडिक्कमामि, निंदामि, गरिहामि, अप्पाणं वोसिरामि ।

चउत्थे भंते ! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ मेहुणाओ वेरमणं ॥14॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

मैथुन विरमण है व्रत चौथा, मैं तन मन से अपनाता हूँ।
हे भदन्त ! सारे मैथुन से, निज मन को दूर हटाता हूँ॥
देव मनुज या तिर्यचों से, मैथुन सेवन करूँ नहीं।
मैथुन कर्म न करूँ न करवाऊँ, अनुमोदन मन धरूँ नहीं॥
तीन करण और तीन योग, मन वचन तथा अपने तन से।
करूँ न करवाऊँ मैं मैथुन, अनुमोदन नहीं करूँ मन से॥
करता भदन्त ! मैथुनवर्जन, निन्दा गर्हा भी करता हूँ।
मैथुन सेवन के महापाप से, दूर स्वयं को करता हूँ॥

अन्वयार्थ-अहावरे चउत्थे भंते = हे भगवन् ! अब आगे चौथे। महव्वए = महाव्रत में। मेहुणाओ वेरमणं = मैथुन का परित्याग होता है। सव्वं भंते मेहुणं पच्चक्खामि = भगवन् ! मैं सर्वथा मैथुन अर्थात् कुशील का परित्याग करता हूँ। से दिव्वं वा माणुसं वा, तिरिक्खजोणियं वा = चाहे वह मैथुन, देव-सम्बन्धी, मनुष्य-सम्बन्धी, या तिर्यच-सम्बन्धी हो। नेव सयं मेहुणं सेविज्जा = मैं स्वयं मैथुन सेवन नहीं करूँगा।

नेवन्नेहिं मेहुणं.....न समणुजाणामि ।

दूसरों से मैथुन सेवन करवाऊँगा नहीं, मैथुन सेवन करने वाले अन्य को अच्छा भी समझूँगा नहीं।

जीवन भर के लिये तीन करण और तीन योग से मन वचन और काया से मैथुन सेवन करूँगा नहीं, सेवन करवाऊँगा नहीं, मैथुन सेवन करने वालों को अच्छा समझूँगा नहीं ।

तस्स भंते !.....वोसिरामि ।

हे भगवन् ! पहले के मैथुन सेवन का, प्रतिक्रमण करता हूँ, निन्दा करता हूँ, गुरु साक्षी से गर्हा करता हूँ और अपनी उस पापकारी आत्मा का व्युत्सर्ग करता हूँ ।

चउत्थे भंते !.....वेरमणं ।

हे भगवन् ! मैं चौथे महाव्रत में उपस्थित हूँ, सर्वथा मैथुन से निवृत्त होता हूँ ।

भावार्थ—पहले तीन महाव्रतों में हिंसा, मृषावाद, और अदत्तादान का विरमण होता है । जो मैथुन-त्याग के बिना यथावत् नहीं पाला जा सकता । अतः अहिंसा, सत्य एवं अचौर्य की निर्दोष आराधना के लिये चौथे महाव्रत में मैथुन का विरमण (त्याग) किया जाता है ।

औदारिक और वैक्रिय शरीर के सम्बन्ध से मैथुन 18 प्रकार का होता है । शिष्य प्रतिज्ञा करता है कि—“हे भगवन् ! मैं देव, मनुष्य और तिर्यच सम्बन्धी किसी प्रकार का मैथुन सेवन करूँगा नहीं, दूसरों को करवाऊँगा नहीं, और मैथुन सेवन करने वालों को भला जानूँगा नहीं, जीवन पर्यन्त तीन करण, तीन योग से—मन, वाणी और काया से ।” वर्तमानकाल की साधना में, भूतकाल की स्मृति-चंचलता उत्पन्न नहीं करे, इस दृष्टि से पूर्व के भुक्त भोगों के लिये शिष्य प्रतिक्रमण करता है और निन्दा एवं गुरु साक्षी से उसकी गर्हा करके उससे दूषित आत्मा का व्युत्सर्ग करता है ।

प्रत्येक महाव्रत की सुरक्षा के लिये आचारांग सूत्र में पाँच-पाँच भावनाएँ बतलाई गई हैं, किन्तु ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिये पाँच भावनाओं के अतिरिक्त नववाड़ अलग से बतलाई गई हैं । नववाड़ के साथ ब्रह्मचर्य की आराधना करने वाला, देवों का भी पूजनीय होता है । जैसे कहा है—‘बंभयारिं नमंसंति, दुक्करं जे करंति ते ।’ (उत्तराध्ययन 16/16)

अहावरे पंचमे भंते ! महव्वए परिग्गहाओ वेरमणं, सव्वं भंते ! परिग्गहं पच्चक्खामि, से गामे वा¹, नगरे वा², रण्णे वा³, अप्पं वा, बहं वा, अणुं वा, थूलं वा, चित्तमंतं वा, अचित्तमंतं वा, नेव सयं परिग्गहं परिगिण्हिज्जा, नेवन्नेहिं परिग्गहं परिगिण्हाविज्जा, परिग्गहं परिगिण्हंते वि अन्ने न समणुजाणिज्जा, जावज्जीवाए तिविहं

1-3. श्री अखिल भारतीय साधुमार्गी जैन संस्कृति रक्षक संघ द्वारा सैलाना से प्रकाशित सम्वत् 2020 की प्रति में तथा साधु मार्गी जैन संघ द्वारा बीकानेर से प्रकाशित (प्रकाशन तिथि-अलिखित) प्रति में इनका (गामे वा, नगरे वा, रण्णे वा) का उल्लेख नहीं है ।

तिविहेणं, मणेणं, वायाए, काएणं, न करेमि, न कारवेमि, करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि । तस्स भंते ! पडि-क्कमामि, निंदामि, गरिहामि, अप्पाणं वोसिरामि ।

पंचमे भंते ! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ परिग्गहाओ वेरमणं ॥१५॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

परिग्रह विरमण पंचम व्रत, मैं भलीभाँति अपनाता हूँ ।
हे भदन्त ! सब तरह परिग्रह, से मन को दूर हटाता हूँ ॥
चाहे थोड़ा या बहुत अधिक, अणु अथवा स्थूल परिग्रह हो ।
हो सचित्त अथवा अचित्त, लेना मन के अनुरूप न हो ॥
ना स्वयं परिग्रह ग्रहण करूँ, औरों से ग्रहण कराऊँ ना ।
तथा परिग्रह रखने वाले, को भी अच्छा मानूँ ना ॥
तीन करण और तीन योग से, मन से वचन तथा तन से ।
करूँ न करवाऊँ संग्रह को, भला नहीं जानूँ मन से ॥
करता भदन्त ! सब संग्रह त्याग, निन्दा गर्हा मैं करता हूँ ।
परिग्रह विरमण व्रत पालन में, अब मन को अर्पण करता हूँ ॥

अन्वयार्थ-अहावरे पंचमे भंते ! महव्वए = भगवन् ! अब पंचम महाव्रत में । परिग्गहाओ वेरमणं = परिग्रह से निवृत्ति की जाती है । सव्वं भंते ! परिग्गहं पच्चक्खामि = हे पूज्य ! मैं सर्वथा परिग्रह का त्याग करता हूँ । से गामे वा नगरे वा = वह गाँव, नगर या । रण्णे वा = वन में । अप्पं वा बहुं वा = थोड़ा या बहुत । अणुं वा थूलं वा = छोटा अथवा बड़ा । चित्तमंतं वा अचित्तमंतं वा = सचित्त या अचित्त कोई । नेव सयं परिग्गहं परिगिण्हिज्जा = परिग्रह स्वयं ग्रहण करूँगा नहीं । नेवन्नेहिं परिग्गहं परिगिण्हाविज्जा = दूसरों से परिग्रह ग्रहण करवाऊँगा नहीं ।

परिग्गहं परिगिण्हंते वि.....अन्नं न समणुजाणामि ।

परिग्रह ग्रहण करने वाले अन्य का अनुमोदन भी करूँगा नहीं । जीवन पर्यन्त तीन करण और तीन योग से, मन वचन और काया से परिग्रह का संग्रह करूँगा नहीं, दूसरों से करवाऊँगा नहीं, परिग्रह का संग्रह करने वाले अन्य को भला समझूँगा नहीं ।

तस्स भंते ! वोसिरामि ।

हे भगवन् ! पहले जो परिग्रह किया है, उसका मैं प्रतिक्रमण करता हूँ निन्दा करता हूँ, गुरु साक्षी से गर्हा करता हूँ और पापकारी आत्मा का व्युत्सर्ग करता हूँ ।

पंचमे भंते वेरमणं ।

हे भगवन् ! मैं पाँचवें महाव्रत में उपस्थित हुआ हूँ । अब परिग्रह करने से सर्वथा निवृत्ति करता हूँ ।

भावार्थ—पाँचवें महाव्रत में परिग्रह का सर्वथा विरमण किया जाता है। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील इन चार पापों के पीछे पाँचवाँ पाप परिग्रह कहा गया है, जो हिंसादि चार पापों का यह जनक और पोषक है। परिग्रह के लिये ही हिंसा, झूठ, चोरी और कुशील का सेवन किया जाता है, अतः परिग्रह को पापों का मूल कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। परिग्रह के त्याग की भावना लिये हुए शिष्य निवेदन करता है “गुरुदेव ! मैं स्वयं परिग्रह नहीं रखूँगा, दूसरों के द्वारा रखाऊँगा नहीं और परिग्रह रखने वाले अन्य को भला भी मानूँगा नहीं। जीवन पर्यन्त तीन करण तीन योग से परिग्रह का मैं त्याग करता हूँ।”

वीतराग देव ने बतलाया है कि परिग्रह रखना जैसे पाप है, वैसे दूसरों के पास पैसा जमा कराना और करने वाले का अनुमोदन करना भी पाप बन्ध का कारण है। इसलिये जैन मुनि प्रतिज्ञा करता है—“मैं मन, वचन और काया से परिग्रह रखूँगा नहीं, रखाऊँगा नहीं और परिग्रह रखने वाले को भला भी मानूँगा नहीं। पूर्व में जो परिग्रह किया है, उसके लिये प्रतिक्रमण करता हूँ, निन्दा करता हूँ। गुरु की साक्षी से गर्हा करता हूँ और उस पूर्व की पापकारी आत्मा का व्युत्सर्ग (अलग) करता हूँ।”

टिप्पणी—परिग्रह का अर्थ है—राग के अधीन हो कर पदार्थों को ग्रहण करना। शरीरधारी को अन्न, जल, वस्त्र, पात्र, औषधि आदि ग्रहण करने पड़ते हैं। बाह्य पदार्थ को लिये बिना कोई जीवन नहीं चल सकता।

परन्तु उनके ग्रहण में यदि राग नहीं है, तो वे परिग्रह नहीं कहलाते।

परिग्रह के मुख्य दो प्रकार हैं—1. आभ्यन्तर और 2. बाह्य। बाहरी परिग्रह मुख्यतया दो प्रकार का है—सजीव परिग्रह और निर्जीव परिग्रह।

दास, दासी, पुत्र, कलत्र, अश्व, गाय आदि पशु, पक्षी और वृक्षादि सजीव परिग्रह हैं और सोना-चाँदी, वस्त्र आदि निर्जीव परिग्रह हैं। संयमी साधु परोपकार और सामाजिक कार्य के लिये भी पैसा जमा नहीं रखता। संयम-साधना के लिये वस्त्र, पात्र और शास्त्रादि धर्मोपकरण भी सीमित ही ग्रहण करता है और बिना मूर्च्छा भाव के उन्हें धारण करता है। वस्त्र-पात्र-शास्त्र एवं पुस्तकों का संग्रह भी मर्यादा उपरान्त नहीं रखता।

पंचम महाव्रत में साधु ने सर्वथा परिग्रह का त्याग किया है। अतः धर्मोपकरण पर भी मूर्च्छाभाव नहीं रखता, क्योंकि—‘मुच्छा परिग्रहो वुत्तो’ अर्थात् मूर्च्छाभाव को परिग्रह कहा गया है।

अहावरे छट्टे भंते ! वए राइभोयणाओ वेरमणं, सव्वं भंते ! राइभोयणं पच्चक्खामि, से असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा, नेव सयं राइं भुंजिज्जा, नेवन्नेहिं राइं भुंजाविज्जा, राइं भुंजंते वि अन्ने न समणुजाणिज्जा, जावज्जीवाए, तिविहं तिविहेणं

मणेणं, वायाए, काएणं न करेमि, न कारवेमि, करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि । तस्स भंते ! पडिक्कमामि, निंदामि, गरिहामि, अप्पाणं वोसिरामि ।

छट्टे भंते ! वए उवट्ठिओमि सव्वाओ राइभोयणाओ वेरमणं ॥16॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

रजनी भोजन त्याग रूप, व्रत छट्टे को अपनाता हूँ ।
हे पूज्य ! रात्रि के भोजन को, अब मन से दूर हटाता हूँ ॥
अशन पान खादिम या स्वादिम, स्वयं नहीं मैं खाऊँगा ।
और खिलाऊँगा न किसी को, खाते को भला न मानूँगा ॥
त्रिकरण त्रियोग से आजीवन, मन वचन तथा अपने तन से ।
करूँ न करवाऊँ निशि भोजन, भला नहीं जानूँ मन से ॥
करता भदन्त ! निशि अशन त्याग, निन्दा गर्हा भी करता हूँ ।
त्याग रात्रि भोजन, व्रत पालन में मन अर्पित करता हूँ ॥

अन्वयार्थ-अहावरे छट्टे भंते ! वए = इसके बाद हे भगवन्! छटे व्रत में । राइ भोयणाओ वेरमणं = रात्रि भोजन का वर्जन किया जाता है । सव्वं भंते! राइभोयणं पच्चक्खामि = हे भगवन् ! मैं सर्वथा रात्रि भोजन का त्याग करता हूँ । से असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा = वह भोजन, अशन, पान, खादिम या स्वादिम वस्तु के रूप में है ।

नेव सयं राइं भुंजिज्जा.....अन्नं न समणुजाणामि ।

मैं स्वयं रात में खाऊँगा नहीं, दूसरों को रात में भोजन कराऊँगा नहीं । रात में खाने वाले दूसरों का अनुमोदन करूँगा नहीं । जीवन पर्यन्त तीन करण और तीन योग से, मन, वचन और काया से रात्रि में भोजन करूँगा नहीं, दूसरों से रात्रि भोजन कराऊँगा नहीं, रात्रि भोजन करने वाले अन्य को भला मानूँगा नहीं ।

तस्स भंते !.....वोसिरामि ।

हे भगवन् ! भूतकाल में किये गये उस पाप का मैं प्रतिक्रमण करता हूँ, निन्दा करता हूँ, गर्हा करता हूँ, दूषित आत्मा का व्युत्सर्ग (अलग) करता हूँ ।

छट्टे भंते ! वेरमणं ।

हे भगवन् ! इस प्रकार मैं छट्टे व्रत में उपस्थित हूँ । रात्रि भोजन से मैं सर्वथा निवृत्ति करता हूँ ।

भावार्थ-पाँच महाव्रतों के बाद छटे व्रत में रात्रि भोजन की विरति होती है । भन्ते ! मैं सब प्रकार से रात्रि भोजन का प्रत्याख्यान करता हूँ । अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य किसी भी वस्तु का मैं स्वयं रात्रि में उपयोग नहीं करूँगा, दूसरों को भी नहीं खिलाऊँगा और रात्रि में खाने वाले का अनुमोदन भी नहीं करूँगा ।

भन्ते ! मैं अतीत के रात्रि भोजन से निवृत्त होता हूँ, निन्दा करता हूँ, गर्हा करता हूँ, और दूषित आत्मा का व्युत्सर्ग करता हूँ।

टिप्पणी—पाँच महाव्रतों के पश्चात् रात्रि भोजन—विरमण का भी व्रत के रूप में कथन किया गया है।

वैसे यह अहिंसा महाव्रत में गर्भित हो जाता है, किन्तु साधक पाँच महाव्रतों की तरह इसे भी अवश्य पालनीय व्रत समझे, इसीलिये इसको छठे व्रत के रूप में कहा गया है।

छठे अध्ययन की 24वीं गाथा में कहा है कि सचित्त जल से गीला बीजयुक्त भोजन और भूमि पर गिरे हुए छोटे जीवों को दिन में बचाया जा सकता है, किन्तु रात में कैसे बचाया जाय ? इसलिये रात्रि भोजन नहीं करना चाहिये।

इच्छेयाइं पंच महव्वयाइं—राइभोयण—वेरमण—छट्टाइं, अत्तहियट्टयाए उवसंपज्जित्ता णं विहरामि ॥17॥

हिन्दी पद्यानुवाद—

पूर्व कथित ये पंच महाव्रत, छट्टा रात्रि भोजन विरमण।

अपने हित के हेतु ग्रहण कर, करता हूँ मैं जग विचरण ॥

अन्वयार्थ—इच्छेयाइं = इस प्रकार ये। पंच महव्वयाइं = पाँच महाव्रत और। राइभोयणवेरमण छट्टाइं = छठे रात्रि भोजन विरमण को। अत्तहियट्टयाए = आत्मा के हितार्थ। उवसंपज्जित्ता णं = स्वीकार करके। विहरामि = विचरता हूँ।

भावार्थ—मैं इन पाँच महाव्रतों और रात्रि भोजन विरति रूप छठे व्रत को आत्म-कल्याण के लिये स्वीकार कर विचरण करता हूँ।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा, संजय—विरय—पडिहय—पच्चक्खायपावकम्मे, दिआ वा, राओ वा, एगओ वा, परिसागओ वा, सुत्ते वा, जागरमाणे वा, से पुढविं वा, भित्तिं वा, सिलं वा, लेलुं वा, ससरक्खं वा कायं, ससरक्खं वा वत्थं, हत्थेण वा, पाएण वा, कट्ठेण वा, किलिंचेण वा, अंगुलियाए वा, सिलागाए वा, सिलागहत्थेण वा, न आलिहिज्जा, न विलिहिज्जा, न घट्टिज्जा, न भिंदिज्जा, अन्नं न आलिहाविज्जा, न विलिहाविज्जा, न घट्टाविज्जा, न भिंदाविज्जा, अन्नं आलिहंतं वा, विलिहंतं वा, घट्टंतं वा, भिंदंतं वा, न समणुजाणिज्जा, जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं, मणेणं, वायाए, काएणं, न करेमि, न कारवेमि, करंतंपि अन्नं न समणुजाणामि।

तस्स भन्ते ! पडिक्कमामि, निंदामि, गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ॥18॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

संयत विरत और प्रतिहत, कल्मष निषेध या घात किया ।
 भिक्षु भिक्षुणी एकाकी, अथवा परिषद् में स्थान लिया ॥
 हो काल दिवस या रजनी का, जागृति का अथवा सोने का ।
 ऐसे ही सेवा पठन हेतु, श्रम खिन्न भाव से रहने का ॥
 शुद्ध भूमि या भित्ति शिला, अति कठिन मृत्तिका ढेले को ।
 रज सचित्त धूसर तन को, या पट सचित्त रज वाले को ॥
 हाथ पैर या लकड़ी से, बांसों की बनी खपाटी से ।
 अंगुली शलाका से अथवा, वैसे बहु लोह शलाका से ॥
 रेखा खींचे ना बारबार, आलेखन उन पर करे नहीं ।
 ना घिसे ना तोड़े भूदल को, निज तन सम पीड़ा समझ सही ॥
 ना अन्य जनों से करवाए, करते को भला नहीं जाने ।
 तीन करण और तीन योग से, व्रतरक्षण मन में ठाने ॥
 भन्ते ! पृथ्वीकाय घात की, निन्दा गर्हा मैं करता हूँ ।
 इस व्रत के पालन में ऐसे, अपने को अर्पण करता हूँ ॥

अन्वयार्थ-संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खायपावकम्मे = संयमी-त्यागी भूतकाल के पाप का शोधन और भविष्य के पाप का त्याग करने वाला । **से भिक्खू वा भिक्खुणी वा** = वह साधु या साध्वी । **दिआ वा (दिया वा)** = दिन में । **वा** = अथवा । **राओ** = रात्रि में । **एगओ** = एकान्त में । **वा** = या । **परिसागओ वा** = सभा में । **सुत्ते** = सोये । **वा** = अथवा । **जागरमाणे वा** = जाग्रत अवस्था में । **से पुढविं वा** = वह पृथ्वी को । **भित्तिं वा** = नदी तट की दीवार, पर्वत की दरार, नदी तट की मिट्टी की दरार । **सिलं वा** = शिला को । **लेलुं वा** = ढेले को । **ससरक्खं वा** = सचित्त धूलि से भरे हुए । **कायं** = तन को । **ससरक्खं वा** = सचित्त धूलि से भरे हुए । **वत्थं** = वस्त्र को । **हत्थेण वा** = हाथ से । **पाएण वा** = पैर से । **कट्ठेण वा** = काष्ठ से । **किलिंचेण वा** = खपाटी से । **अंगुलियाए वा** = अंगुलि से । **सिलागाए वा** = लोहमय शलाका से । **सिलागहत्थेण वा** = शलाका समूह से । **न आलिहिज्जा** = आलेखन न करे । **न विलिहिज्जा** = विशेष रेखा न खींचे । **न घट्टिज्जा** = घर्षण न करे । **न भिंदिज्जा** = भेदन न करे ।

अन्नं न आलिहाविज्जा न समणुजाणामि ।

दूसरे से आलेखन न करावे, रेखा न खिंचावे, घर्षण करावे नहीं, भेदन करावे नहीं, दूसरे आलेखन करने वाले, विलेखन करने वाले, घर्षण करने वाले, भेदन करने वाले का अनुमोदन करे नहीं, यावज्जीवन

तीन करण और तीन योग से मन वचन तथा काया से-पृथ्वी का आरम्भ करे नहीं, कराए नहीं, करने वाले का अनुमोदन भी करे नहीं ।

तस्स भंते ! वोसिरामि ।

हे भगवन् ! पूर्वकृत पाप का प्रतिक्रमण करता हूँ, निन्दा करता हूँ, गर्हा करता हूँ और पापकारी आत्मा का व्युत्सर्ग करता हूँ ।

भावार्थ—आचारांग सूत्र के चतुर्थ सम्यक्त्व अध्ययन से प्राण, भूत, जीव और सत्त्व की हिंसा नहीं करना ही धर्म कहा है । पृथ्वीकाय भी सजीव है, इसलिये हिंसा से उपरत संयमी मुनि दिन हो या रात, एकान्त में हो या समूह में, सुप्त दशा में हो या जाग्रत दशा में, सचित्त पृथ्वीकाय की विराधना नहीं करता ।

बादर पृथ्वीकाय के अनेक प्रकार हैं—खान से निकलने वाले सोना, चाँदी, अभ्रक, हीरा और पाषाण आदि पृथ्वीकायिक हैं । खान में रहे हुए पाषाण आदि का बढ़ना यह उनकी सजीवता का लक्षण है । अतः प्राणिमात्र के खेदज्ञ प्रभु ने इन पृथ्वीकायिक जीवों की हिंसा को भी अहितकर—अशुभ माना है । अतः संयमी पुरुष धूप, अग्नि, पानी तथा नागरिकों के चलने—फिरने आदि से अचित्त रूप से परिणमन पाई हुई पृथ्वी के अतिरिक्त अन्य पृथ्वी पर कोई गमनागमन क्रिया नहीं करते ।

से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा, संजय—विरय—पडिहय—पच्चक्खाय—पावकम्मे, दिआ वा, राओ वा, एगओ वा, परिसागओ वा, सुत्ते वा, जागरमाणे वा, से उदगं वा, ओसं वा, हिमं वा, महियं वा, करगं वा, हरितणुगं वा, सुद्धोदगं वा, उदउल्लं वा कायं, उदउल्लं वा वत्थं, ससिणिद्धं वा कायं, ससिणिद्धं वा वत्थं, न आमुसिज्जा, न संफुसिज्जा, न आवीलिज्जा, न पवीलिज्जा, न अक्खोडिज्जा, न पक्खोडिज्जा, न आयाविज्जा, न पयाविज्जा, अन्नं न आमुसाविज्जा, न संफुसाविज्जा, न आवीलाविज्जा, न पवीलाविज्जा, न अक्खोडाविज्जा, न पक्खोडाविज्जा, न आयाविज्जा, न पयाविज्जा, अन्नं आमुसंतं वा, संफुसंतं वा, आवीलंतं वा, पवीलंतं वा, अक्खोडंतं वा, पक्खोडंतं वा, आयावंतं वा, पयावंतं वा न समणुजाणिज्जा । जावज्जीवाए, तिविहं तिविहेणं, मणेणं, वायाए, काएणं, न करेमि, न कारवेमि, करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि ।

तस्स भंते ! पडिक्कमामि, निंदामि, गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ॥१९॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

संयत विरत और पापों का, निषेध या प्रतिघात किया ।
 भिक्षु भिक्षुणी एकाकी, अथवा परिषद् में स्थान लिया ॥
 हो काल दिवस या रजनी का, जाग्रत या निद्रावस्था का ।
 ऐसे ही सेवा पठन हेतु, श्रम खिन्न भाव में रहने का ॥
 सचित्त जल या ओस हेम, धूँअर ओले या तृण जल को ।
 निर्मल व्योम पतित जल को, गीले तन अथवा अम्बर को ॥
 थोड़ा विशेष ना स्पर्श करे, कर से न निचोड़े वस्त्रों को ।
 ना बार-बार दाबे उनको, झटके ना गीले वस्त्रों को ॥
 प्रस्फोटन भी करे नहीं, आतप में उनको रखे ना ।
 इन सभी क्रिया करने वाले को, भला हृदय से जाने ना ॥
 तीन करण और तीन योग से, मन से वचन से तथा तन से ।
 करूँ न करवाऊँ जीवन भर, अच्छा भी जानूँ ना मन से ॥
 होता हिंसा से दूर तथा, आत्मा से निन्दा करता हूँ ।
 गर्हा करता गुरुदेव ! सदा, मैं मन से हिंसा तजता हूँ ॥

अन्वयार्थ-से भिक्खु वा भिक्खुणी वा = वह साधु अथवा साध्वी जो । **संजय.....पावकम्मे**
 = संयमवान् पाप से विरक्त, कर्म की स्थिति को कम करने वाले, भविष्य में पाप कर्म का प्रत्याख्यान करने वाले हैं । **दिआ.....जागरमाणे वा =** दिन में, अथवा रात में, एकाकी अथवा समूह में रहे हुए, सोए या जाग्रत दशा में । **से उदगं वा =** जल को । **ओसं वा =** ओस को । **हिमं वा =** बर्फ को । **महियं वा =** धूँअर के पानी को । **करगं वा =** ओले को । **हरितणुगं वा =** दूब पर पड़े पानी के बिन्दु को । **शुद्धोदगं वा =** आकाश से गिरा हुआ पानी, तथा । **उदउल्लं वा कायं =** जल से भीगे हुए शरीर को । **उदउल्लं वा वत्थं =** जल से भीगे हुए वस्त्र को । **ससिणिद्धं वा कायं =** अथवा पानी से चिकास वाले (कुछ-कुछ भीगा हुआ) शरीर को । **ससिणिद्धं वा वत्थं =** कुछ-कुछ भीगे हुए वस्त्र को । **न आमुसिज्जा =** स्पर्श करे नहीं । **न संफुसिज्जा =** बार-बार अधिक स्पर्श करे नहीं । **न आवीलिज्जा =** निचोड़ें नहीं । **न पवीलिज्जा =** बार-बार निचोड़ें नहीं । **न अक्खोडिज्जा =** झटके नहीं । **न पक्खोडिज्जा =** बार-बार झटके नहीं । **न आयाविज्जा =** सुखावे नहीं । **न पयाविज्जा =** बार-बार सुखावे नहीं । **अन्नं =** दूसरे से । **न आमुसाविज्जा =** स्पर्श करावे नहीं । **न संफुसाविज्जा =** बार-बार स्पर्श करावे नहीं । **न आवीलाविज्जा =** निचोड़ावे नहीं । **न पवीलाविज्जा =** विशेष निचोड़ावे नहीं । **न अक्खोडाविज्जा =** झटकावे नहीं । **न पक्खोडाविज्जा =** बार-बार झटकावे नहीं । **न आयाविज्जा =** सुखावे नहीं । **न पयाविज्जा =** बार-बार सुखावे नहीं ।

आमुसंतं वा = स्पर्श करने वाले । संफुसंतं वा = बार-बार स्पर्श करने वाले । आवीलंतं वा = निचोड़ने वाले । पवीलंतं वा = विशेष निचोड़ने वाले । अक्खोडंतं वा = झटकाने वाले । पक्खोडंतं वा = बार-बार झटकाने वाले । आयावंतं वा = सुखाने वाले या । पयावंतं वा = बार-बार सुखाने वाले । अन्नं = दूसरो को । न समणुजाणिज्जा = भला नहीं समझे । जावज्जीवाए = जीवन पर्यन्त ।

तिविहं तिविहेणं.....अप्पाणं वोसिरामि ।

तीन करण और तीन योग से मन वचन और काया से करूँगा नहीं, कराऊँगा नहीं, करने वाले दूसरे का अनुमोदन भी नहीं करूँगा । भूतकाल में की गई अप्काय की विराधना का हे भगवन् ! मैं प्रतिक्रमण करता हूँ, आत्म-साक्षी से उसकी निन्दा करता हूँ और गुरु-साक्षी से उसकी गर्हा करता हूँ और पापकारी आत्मा को अप्काय की विराधना से अलग करता हूँ ।

भावार्थ-संयमी साधु-साध्वी अहिंसा महाव्रत में पृथ्वीकाय के समान सब प्रकार के अप्काय की हिंसा का भी त्याग करते हैं । चाहे किसी प्रकार का जल हो, रात्रि में गिरने वाला ओस, हिम, महिकाय, सूक्ष्म अप्काय, करक-ओले और तृणाग्रवर्ती जलकण हो उसका भी स्पर्श नहीं करते । सचित्त जल से कभी शरीर अथवा वस्त्र गीला हो जाय, हाथ की रेखा तक भी गीली हो जाय तो उसको छूना नहीं । उसका विशेष स्पर्श करना, निचोड़ना, अधिक निचोड़ना, झटकना, विशेष झटकना, धूप में सुखाना तथा बार-बार सुखाना आदि क्रियाएँ स्वयं नहीं करना, दूसरों से ये क्रियाएँ नहीं करवाना, करने वाले का अनुमोदन भी नहीं करना, जीवन पर्यन्त तीन करण और तीन योग से भविष्य के लिये ऐसी प्रतिज्ञा करके साधक भूतकाल की ऐसी ही क्रियाओं की निन्दा-गर्हा आदि द्वारा शुद्धि करता है ।।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खाय-पावकम्मे, दिआ वा, राओ वा, एगओ वा, परिसागओ वा, सुत्ते वा, जागरमाणे वा, से अगणिं वा, इंगालं वा, मुम्मुरं वा, अच्चिं वा, जालं वा, अलायं वा, सुद्धागणिं वा, उक्कं वा, न उंजिज्जा, न घट्टिज्जा, न भिंदिज्जा, न उज्जालिज्जा, न पज्जा-लिज्जा, न निव्वाविज्जा, अन्नं न उंजाविज्जा, न घट्टा-विज्जा, न भिंदाविज्जा, न उज्जालाविज्जा, न पज्जाला-विज्जा, न निव्वाविज्जा, अन्नं उंजंतं वा घट्टंतं वा, भिंदंतं वा, उज्जालंतं वा, पज्जालंतं वा, निव्वावंतं वा, न समणुजाणिज्जा, जावज्जीवाए तिविहं, तिविहेणं, मणेणं, वायाए, काएणं, न करेमि, न कारवेमि, करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि । तस्स भंते! पडिक्कमामि, निंदामि, गरिहामि, अप्पाणं वोसिरामि ॥20॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

संयत विरत और पापों का, निषेध या प्रतिघात किया ।
 भिक्षु भिक्षुणी एकाकी, अथवा परिषद् में स्थान लिया ॥
 हो काल दिवस या रजनी का, जाग्रत या निद्रावस्था का ।
 ऐसे ही सेवा पठन हेतु, श्रम खिन्न भाव में रहने का ।
 अग्निकाय में इंगारक, मुर्मुर अर्चि या ज्वाला को ।
 तेज करे ना तृणाग्रवर्ती, अनलजीव वध करने को ॥
 नहीं बुझवावे औरों से, जलवाना आदिक करे नहीं ।
 घर्षण या भेदन आदि क्रिया, जलवाये उसको कभी नहीं ॥
 प्रज्वालन ना करवावे और, नहीं किसी से बुझवावे ।
 अंगारक भेदन-छेदन भी, नहीं अन्य किसी से करवावे ॥
 अनल जलाते भेदन करते, या घर्षण करते जन को ।
 भला न समझे व्रती जीव, प्रज्वालक या निर्वापक को ॥
 तीन करण या तीन योग से, मन वचन तथा अपने तन से ।
 करूँ न करवाऊँ जीवन भर, भला नहीं मानूँ मन से ॥
 होता उससे दूर तथा, आत्मा से निन्दा करता हूँ ।
 गर्हा करता हूँ पूज्य प्रभो ! मैं हिंसा मन से तजता हूँ ।

अन्वयार्थ- से भिक्खू जागरमाणे वा ॥

वह साधु अथवा साध्वी जो संयत-विरत पापकर्म का हनन करने वाले तथा भविष्य काल में पाप के त्यागी, दिन में, रात में एकाकी अथवा सभा में सोये या जाग्रत दशा में-

से अगणिं वा = अग्नि को । इंगालं वा = अंगारे को । मुम्मुरं वा = मुर्मुर (चिनगारी) को ।
 अच्चिं वा = अर्चि (दीप-शिखा) को । जालं वा = अग्नि की ज्वाला को । अलायं वा = जलते हुए
 लकड़ी के छोर को । सुद्धागणिं वा = धुँवारहित आग को । उक्कं वा = उल्का आदि को । न उंजिज्जा =
 लकड़ी सरका कर बढ़ावे नहीं । न घट्टिज्जा = न घर्षण करे (घिसे) । न भिंदिज्जा = न भेदन करे । न
 उज्जालिज्जा = लकड़ी डालकर जलावे नहीं । न पज्जालिज्जा = प्रज्वलित करे नहीं । न निव्वाविज्जा
 = बुझावे नहीं । अन्नं न उंज्जाविज्जा = अन्य से लकड़ी डालकर बढ़ावे नहीं । न घट्टाविज्जा = अग्नि
 का घर्षण करावे नहीं । न भिंदाविज्जा = भेदन करावे नहीं । न उज्जालाविज्जा = जलवावे नहीं । न
 पज्जालाविज्जा = विशेष जलवावे नहीं । न निव्वाविज्जा = बुझवावे नहीं । अन्नं उंजंतं वा = लकड़ी

डालकर बढ़ाने वाले को । घट्टंतं वा = घर्षण करने वाले को । भिंदंतं = भेदन करने वाले को । उज्जालंतं वा = जलाने वाले को । पज्जालंतं वा = तेज करने वाले को । निव्वावंतं वा = बुझाने वाले अन्य को । न समणुजाणिज्जा = भला नहीं समझे । जावज्जीवाए = जीवन पर्यन्त ।

तिविहं तिविहेणं अप्पाणं वोसिरामि ।

तीन करण और तीन योग से, मन वचन काया से, अग्निकाय की हिंसा करूँगा नहीं, कराऊँगा नहीं, करने वाले अन्य को भला समझूँगा नहीं । पहले के अग्निकाय के आरम्भ का, हे भगवन् ! प्रतिक्रमण करता हूँ, निन्दा करता हूँ, गुरु साक्षी से गर्हा करता हूँ । पापकारी आत्मा को पाप से अलग करता हूँ ।

भावार्थ—संयत-विरत आदि गुण वाला भिक्षु षट्काय के जीवों की पूर्ण हिंसा का त्यागी होता है । इसलिए तेजस्काय की रक्षा के लिए वह प्रतिज्ञा करता है कि अग्नि 1, अंगारा 2, मुर्मुर 3, अर्चि 4, ज्वाला 5, अलातक 6, शुद्ध अग्नि 7 और उल्का-ज्वाला रहित आग तथा पन्नवणा सूत्र में कहे गये विद्युत् आदि को बढ़ावे नहीं, घर्षण नहीं करे, भेदन नहीं करे, जलावे नहीं, प्रज्वलित करे नहीं, बुझावे नहीं, दूसरों से घर्षण, भेदन आदि कराना नहीं, करने वाले का अनुमोदन करना नहीं, जीवन पर्यन्त तीन करण, तीन योग से तेजस्काय की विराधना जलाने-बुझाने आदि से स्वयं करूँगा नहीं, दूसरों से जलाने आदि की क्रिया कराऊँगा नहीं तथा करने वाले का अनुमोदन करूँगा नहीं । शरीरधारी को अपने तन और परिवार के रक्षण आदि प्रयोजन से तेजस्काय का उपयोग आवश्यक होता है, परन्तु जैन साधु अग्निकाय को जलाने, बुझाने आदि-क्रिया में असंख्य जीवों की प्रत्यक्ष हिंसा होती जानकर अग्नि काय के आरम्भ का जीवन भर के लिये सर्वथा त्याग करते हैं ।

भयंकर से भयंकर अन्धकार में भी जैन साधु प्रकाश के किसी भी प्रकार के साधन का उपयोग नहीं करते, किन्तु रजोहरण से यतना करते हुए गमनागमन करते हैं ।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खाय पावकम्मे, दिआ वा, राओ वा, एगओ वा, परिसागओ वा, सुत्ते वा, जागरमाणे वा, से सिएण वा, विहुयणेण वा, तालियंटेण वा, पत्तेण वा, पत्तभंगेण वा, साहाए वा, साहाभंगेण वा, पिहुणेण वा, पिहुणहत्थेण वा, चेलेण वा, चेलकन्नेण वा, हत्थेण वा, मुहेण वा, अप्पणो वा कायं, बाहिरं वा वि पुगलं, न फुमिज्जा, न वीएज्जा, अन्नं न फुमाविज्जा, न वीआविज्जा, अन्नं फुमंतं वा, वीअंतं वा, न समणुजाणिज्जा, जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं, वायाए, काएणं, न करेमि, न कारवेमि, करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि ।

तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ॥21॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

संयत विरत और पापों का, निषेध या प्रतिघात किया ।
 भिक्षु भिक्षुणी एकाकी, अथवा परिषद् में भाग लिया ॥
 हो काल दिवस या रजनी का, जागृत या निद्रावस्था का ।
 ऐसे ही सेवा पठन हेतु, श्रम खिन्न भाव से रहने का ॥
 चँवर पंखे तालवृन्त, या पत्ते या बहुपत्तों से ।
 तरुवर डाली या शाखिखण्ड से, तथा मयूर की पाँखों से ॥
 पाँख समूहों से अथवा, अम्बर के झीने पल्ले से ।
 हाथ और मुख के द्वारा, ऐसे ही पुट्टे आदिक से ॥
 अपने तन को या बाहर के, अशनादिक ठण्डे करने को ।
 फूँक न मारे चँवर आदि से, हवा करे ना औरों को ॥
 फूँक न मरवावे औरों से, तथा हवा ना करवावे ।
 फूँक हवा करने वाले को, भला नहीं मन से माने ॥
 तीन करण और तीन योग से, मन और वचन या काया से ।
 करूँ न करवाऊँ जीवन भर, भला नहीं मानूँ मन से ॥
 होता उससे दूर तथा, आत्मा से निन्दा करता हूँ ।
 गर्हा करता हूँ पूज्य प्रभो ! मन से मैं हिंसा तजता हूँ ॥

अन्वयार्थ-से भिक्खु वा जागरमाणे वा ।

वह साधु अथवा साध्वी जो संयत विरत, पाप कर्म का हनन करने वाले तथा भविष्यकाल में पाप के त्यागी हैं, दिन में या रात में, एकाकी अथवा सभा में, सोये या जाग्रत दशा में-

से सिण्ण वा = वह चामर (चँवर) से । **विहयणेण वा** = वृक्ष की शाखा, शाखा के टुकड़ों, छाल आदि से बने पंखे से । **तालियंटेण वा** = ताड़पत्र के पंखे से । **पत्तेण वा** = पत्ते से । **पत्तभंगेण वा** = पत्तों के समूह से । **साहाए वा** = वृक्ष की छोटी शाखा से । **साहाभंगेण वा** = शाखा के टुकड़ों से । **पिहुणेण वा** = मोर पंख से । **पिहुण हत्थेण वा** = मोर पिच्छी से । **चेलेण वा** = वस्त्र से । **चेलकन्नेण वा** = वस्त्र के छोर से । **हत्थेण वा** = हाथ से । **मुहेण वा** = मुँह से । **अप्पणो वा** = अपने । **कायं** = शरीर को । **बाहिरं वा वि पुगलं** = बाहरी पुद्गल अथवा बाहर के किसी पुद्गल को । **न फुमिज्जा** = फूँक नहीं दे । **न वीएज्जा** = बीजणे से हवा न करे । **अन्नं** = दूसरे से । **न फुमाविज्जा** = फूँक नहीं दिलावे । **न वीआविज्जा** = बीजणे से हवा न करावे । **फूमंत वा** = फूँक देने वाले अथवा । **वीअंतं वा** = बीजणा करने वाले । **अन्नं** = दूसरे को । **न समणुजाणिज्जा** = भला भी नहीं समझे । **जावज्जीवाए** = जीवन पर्यन्त ।

तिविहं तिविहेणं..... वोसिरामि ।

तीन करण और तीन योग से, मन वचन और काया से करूँगा नहीं, करवाऊँगा नहीं, करने वाले दूसरे का अनुमोदन भी नहीं करूँगा । पहले की गई वायुकाय की विराधना का हे भगवन् ! मैं प्रतिक्रमण करता हूँ, आत्म-साक्षी से निन्दा करता हूँ, गुरु-साक्षी से गर्हा करता हूँ और पापकारी आत्मा को वायुकाय की विराधना से हटाता हूँ ।

भावार्थ—चौथे प्रतिज्ञा सूत्र में साधु-साध्वी वायुकाय की हिंसा टालने की प्रतिज्ञा करते हैं । संयत, विरत आदि गुणवाला साधु दिन में या रात में, किसी भी प्रकार की स्थिति में वायुकाय की रक्षा के लिये प्रतिज्ञा करता है कि—चामर से, पंखे से, तालवृंत पत्र या पत्रों के समूह से, वृक्ष की शाखा से, शाखा के टुकड़ों से, मोरपंख से, मोर पिच्छी से, कपड़े या कपड़े के छोर से, हाथ से अथवा मुँह से अपने शरीर या किसी बाह्य पदार्थ पर फूँक मारना नहीं, पंखी से हवा करना नहीं । दूसरे से फूँक दिलाना नहीं, पंखे से हवा करवाना नहीं । फूँक मारने अथवा पंखे से हवा करने वाले को भी अच्छा समझना नहीं, जीवन पर्यन्त तीन करण और तीन योग से । महाव्रती की प्रतिज्ञा होती है कि वह वायुकाय की हिंसा करेगा नहीं, दूसरों से करवाएगा नहीं, करने वाले का अनुमोदन भी करेगा नहीं, मन, वचन और काया से । पूर्वकृत पाप के फल को हल्का करने के लिये भिक्षु प्रतिक्रमण कर पापकारी आत्मा की निन्दा करता है, गुरु की साक्षी से गर्हा कर आत्मा को पाप से अलग करता है । वायु के जीव इतने सूक्ष्म होते हैं कि एक बार की फूँक में असंख्य जीवों की हिंसा हो जाती है—इसलिये कहा है कि—न फुमेज्जा—फूँक नहीं मारे । वस्त्रों को जोर से फटकारे भी नहीं ।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा, संजय-विरय-पडिहय पच्चक्खाय-पावकम्मे-दिआ वा, राओ वा, एगओ वा, परिसागओ वा, सुत्ते वा, जागरमाणे वा, से बीएसु वा, बीयपइट्टेसु वा, रूढेसु वा, रूढपइट्टेसु वा, जाएसु वा, जायपइट्टेसु वा, हरिएसु वा, हरियपइट्टेसु वा, छिन्नेसु वा, छिन्नपइट्टेसु वा, सचित्तेसु वा, सचित्त-कोलपडिनिस्सिएसु वा, न गच्छिज्जा¹, न चिट्ठिज्जा², न निसीइज्जा, न तुअट्ठिज्जा अन्नं न गच्छाविज्जा न चिट्ठाविज्जा न निसिआविज्जा न तुअट्ठाविज्जा, अन्नं गच्छंतं वा चिट्ठंतं वा निसीअंतं वा तुअट्ठंतं वा, न समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं, वायाए, काएणं, न करेमि, न कारवेमि, करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि ।

तस्स भन्ते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ॥22॥

1. पाठान्तर-गच्छेज्जा ।

2. पाठान्तर-चिट्ठेज्जा ।

हिन्दी पद्यानुवाद-

संयत विरत और पापों का, निषेध या प्रतिघात किया ।
 भिक्षु भिक्षुणी एकाकी, अथवा परिषद् में भाग लिया ॥
 हो काल दिवस या रजनी का, जाग्रत या निद्रावस्था का ।
 ऐसे ही सेवा पठन हेतु, श्रम खिन्न भाव में रहने का ॥
 बीजों पर या बीज प्रतिष्ठित, आसन शयन पदार्थों पर ।
 अंकुरित वनस्पति या उन पर, रखे शयनादिक साधन पर ॥
 हरितों पर या हरित प्रतिष्ठित, छिन्न हरित के भागों पर ।
 गमन स्थिति या उपवेशन, इन पर करना होता दुःख कर ॥
 ऐसे न चलावे औरों को, बैठावे और न खड़ा करे ।
 नहीं सुलावे परजन को, जीवों की रक्षा ध्यान धरे ॥
 हरितों पर चलते या ठहरे, बैठे या सोते अन्यो को ।
 भला न जाने विराधना, करने वाले प्राणी गण को ॥
 तीन करण और तीन योग से, मन से वचन तथा तन से ।
 करूँ न करवाऊँ जीवन भर, भला नहीं मानूँ मन से ॥
 कृत पाप कर्म से हटता हूँ, आत्मा से निन्दा करता हूँ ।
 गर्हा करता गुरुदेव ! हृदय से, दोषों को अब मैं तजता हूँ ॥

अन्वयार्थ-से भिक्खू जागरमाणे वा ॥

वह साधु अथवा साध्वी जो संयमवान् पाप से विरक्त, कर्म की स्थिति को कम करने वाले, भविष्य में पाप कर्म का प्रत्याख्यान करने वाले, दिन में अथवा रात में, एकाकी अथवा समूह में रहे हुए, सोये या जाग्रत दशा में-

से बीएसु वा = उन बीजों पर । **बीयपइट्टेसु वा** = बीज पर रखे आसन आदि पर । **रूढेसु वा** = अंकुरों पर । **रूढपइट्टेसु वा** = अंकुरित वनस्पति पर रखे आसनादिकों पर । **जाएसु वा** = उत्पन्न हुई वनस्पति पर । **जाय पइट्टेसु वा** = उत्पन्न वनस्पति पर रखे हुए आसन आदि पर । **हरिएसु वा** = दूब आदि हरित पर । **हरिय पइट्टेसु वा** = हरित पर रखे हुए आसनादिकों पर । **छिन्नेसु वा** = कटी हुई डाल पर । **छिन्न पइट्टेसु वा** = कटी हुई डाल पर रहे हुए आसन आदि पर । **सचित्तेसु वा** = सचित्त वनस्पति पर । **सचित्त कोलपडिनिस्सिएसु वा** = जिसमें घुन लगे हों ऐसे काष्ठ आदि पर । **न गच्छिज्जा** = चलें नहीं । **न चिट्ठिज्जा** = खड़ा रहे नहीं । **न निसीइज्जा** = बैठें नहीं । **न तुअट्ठिज्जा** = सोवे नहीं । **अन्नं** = अन्य (दूसरे) को । **न गच्छाविज्जा** = चलावे नहीं । **न चिट्ठाविज्जा** = खड़ा करावे नहीं । **न निसीआविज्जा** =

बैठावे नहीं। न तु अट्टाविज्जा = सुलावे नहीं। अन्नं गच्छंतं वा = दूसरे चलते हुए को। चिट्ठंतं वा = खड़े रहने वाले को। निसीअंतं वा = बैठे हुए को। तुअट्ठंतं वा = सोते हुए को। न समणुजाणिज्जा = भला भी न जाने। जावज्जीवाए = जीवन पर्यन्त।

तिविहं तिविहेणं अप्पाणं वोसिरामि ।।

तीन करण और तीन योग से मन, वचन और काया से, नहीं करूँगा, न करवाऊँगा, करने वाले दूसरे का अनुमोदन भी नहीं करूँगा। पहले की हुई वनस्पतिकाय की विराधना का हे भगवन् ! मैं प्रतिक्रमण करता हूँ, आत्म-साक्षी से निन्दा करता हूँ, गुरु-साक्षी से गर्हा करता हूँ और पापकारी आत्मा को वनस्पतिकाय की विराधना से हटाता हूँ।

भावार्थ—इस सूत्र में वायुकाय के पश्चात् वनस्पतिकाय की हिंसा-वर्जन का संकल्प किया जाता है। संयत-विरत आदि गुण वाला साधु-साध्वी कन्दमूल आदि दस प्रकार की वनस्पति में से किसी की विराधना नहीं करे। व्यवहार में जिनसे काम पड़ता है, उनको मुख्य रूप से लक्ष्य में रख करके कहा जाता है कि बीजों पर, अंकुरों, हरित, दूब आदि तत्काल के कटे शाखा, पत्र, फल, फूल सचित्त ऐसे ही बीजादि पर रखे फलक, चटाई आदि पर चलना नहीं, खड़ा नहीं रहना, बैठना नहीं, लेटना नहीं, दूसरों से गमन आदि क्रिया करवाना नहीं, चलते हुए, खड़े रहते, बैठते या सोते हुए अन्य का अनुमोदन भी करना नहीं, जीवन पर्यन्त तीन करण और तीन योग से। भिक्षु प्रतिज्ञा की भाषा में कहता है—“मन, वचन और काया से वनस्पति का आरम्भ स्वयं करूँगा नहीं, दूसरों से करवाऊँगा नहीं, वैसे वनस्पति के आरम्भ करने वाले का अनुमोदन भी करूँगा नहीं। पहले अज्ञानवश जो वनस्पति की विराधना हो चुकी है, उसके लिये प्रतिक्रमण करता हूँ, आत्म-साक्षी से पाप की निन्दा करता हूँ, गुरु की साक्षी से गर्हा करता हूँ और पापकारी आत्मा को विराधना से अलग करता हूँ। अब ऐसी विराधना कभी नहीं करूँगा।”

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खाय-पावकम्मे, दिआ वा, राओ वा, एगओ वा, परिसागओ वा, सुत्ते वा, जागरमाणे वा, से कीडं वा, पयंगं वा, कुंथुं वा, पिविलियं वा, हत्थंसि वा, पायंसि वा, बाहुंसि वा, उरुंसि वा, उदरंसि वा, सीसंसि वा, वत्थंसि वा, पडिग्गहंसि वा, कंबलंसि वा, पायपुच्छणंसि वा, रयहरणंसि वा, गोच्छगंसि वा, उडगंसि वा, दंडगंसि वा, पीढगंसि वा, फलगंसि वा, सेज्जंसि वा, संथारगंसि वा, अन्नयरंसि वा, तहप्पगारे उवगरणजाए तओ संजयामेव पडिलेहिय-पडिलेहिय, पमज्जिय-पमज्जिय एगंतमवणिज्जा नो णं संघाय-मावज्जेजा ।।23।

हिन्दी पद्यानुवाद-

संयत विरत और पापों का, निषेध या प्रतिघात किया ।
 भिक्षु भिक्षुणी एकाकी, अथवा परिषद् में भाग लिया ॥
 हो काल दिवस या रजनी का, जाग्रत या गहरी निद्रा का ।
 ऐसे ही सेवा पठन हेतु, श्रम खिन्न भाव से रहने का ॥
 कीट, पतंगे, कुंथु चींटियाँ, हाथ पैर के भागों पर ।
 जंघा, भुजा, उदर, वक्षस्थल, सिर पर और पात्र ऊपर ॥
 कंबल पाद प्रोँछन आदिक पर, रजोहरण या पूँजनी पर ।
 स्थंडिल पात्र दण्ड के ऊपर, चौकी वा पाटे के ऊपर ॥
 शय्या संस्तारक अन्य तथा, ऐसे विध विध उपकरणों पर ।
 पहले कहे हुए प्राणी गण, काय तथा उपकरणों पर ॥
 बार बार प्रतिलेखन कर, यतना से उनको दूर करे ।
 बिना परस्पर टकराये, जीवों को ले एकान्त धरे ॥

अन्वयार्थ-से भिक्खू वा जागरमाणे वा ॥

वह साधु अथवा साध्वी जो संयत, विरत, पाप कर्म का हनन करने वाले तथा भविष्यकाल में पाप के त्यागी हैं, दिन में या रात में एकाकी अथवा सभा में, सोये या जाग्रत दशा में-

से कीडं वा = उन कीड़े, लट आदि को । पयंगं वा = पतंगे को । कुंथुं वा = कुंथु को ।
 पिविलियं वा = चींटी को । हत्थंसि वा = हाथ पर । पायंसि वा = पैर पर । बाहुंसि वा = भुजा पर ।
 उरुंसि वा = जाँघ पर । उदरंसि वा = पेट पर । सीसंसि वा = सिर पर । वत्थंसि वा = वस्त्र पर ।
 पडिग्गहंसि वा = पात्र पर । कंबलंसि वा = कम्बल पर । पायपुच्छणंसि वा = पादप्रोँछन अर्थात् पैर
 पौँछने के वस्त्र पर । रयहरणंसि वा = रजोहरण पर । गोच्छगंसि वा = पूँजनी पर । उडगंसि वा = स्थंडिल
 पात्र पर । दंडगंसि वा = दण्ड या लाठी पर । पीढगंसि वा = चौकी पर । फलगंसि वा = पाटे पर ।
 सेज्जंसि वा = शय्या पर । संथारगंसि वा = छोटे आसन पर । अन्नयरंसि वा = अन्य किसी । तहप्पगारे
 = इसी प्रकार के । उवगरणजाए = उपकरण पर । तओ = आने पर, वहाँ से । संजयामेव = यतनापूर्वक ।
 पडिलेहिय पडिलेहिय = देख-देख कर । पमज्जिय पमज्जिय = पूँज-पूँज कर । एगंतमवणिज्जा =
 एकान्त स्थान पर अलग रख दे या कर दे । नो णं संघायमावज्जेज्जा = जिससे पीड़ा हो उस प्रकार इकट्ठा
 करके न रखे ।

भावार्थ-उपर्युक्त सूत्र में त्रसकाय की हिंसा से बचने की शिक्षा दी गई है । संयत-विरत आदि गुणों

से युक्त साधु-साध्वी दिन में या रात्रि में हर प्रकार की स्थिति में कीट, पतंगा, कुंथु या पिपीलिका आदि त्रसजीव में से शरीर के किसी अंग पर हाथ, पैर, भुजा, वक्ष, जँघा, उदर या सिर ऐसे शरीर के किसी भी अंग पर अथवा वस्त्र, पात्र, कम्बल, पादप्रोँछन, रजोहरण, गोच्छग, उडग, (स्थंडिल पात्र) तथा दण्ड, पीठ, चौकी, फलक, पाट, शय्या और संस्तारक तथा अन्य किसी उपकरण पर कोई जन्तु चला आया हो तो उसको वहाँ से यतनापूर्वक सम्यक् प्रकार से देखकर और प्रमार्जन कर के एकान्त में अलग रख दे। उनको इकट्ठा करके रखने से उनमें अगर पीड़ा उत्पन्न हो तो ऐसा भी नहीं करे। उनको अलग-अलग छोड़े। साधक शरीर पर चलते किसी भी जीव को यतना से हटाकर एकान्त में छोड़ दे।

**अजयं चरमाणो य, पाणभूयाइं हिंसइ ।
बंधइ पावयं कम्मं, तं से होइ कडुयं फलं ॥१॥**

हिन्दी पद्यानुवाद-

*अयत्न से चलने वाला, प्राणी की हिंसा करता है।
वह बन्ध पाप का करता है, इससे कड़वा फल मिलता है॥*

अन्वयार्थ-अजयं = अयतनापूर्वक। चरमाणो य = चलता हुआ संयमी। पाणभूयाइं हिंसइ = प्राणभूत की अर्थात् छोटे-बड़े जीवों की हिंसा करता है। बंधइ पावयं कम्मं = इससे पाप कर्म का बन्ध करता है। तं से = वह पाप कर्म उस प्राणी के लिये। कडुयं फलं होइ = कटुक फल देने वाला होता है।

भावार्थ-अयतना से चलने वाला साधु त्रस स्थावर जीवों की हिंसा करता है, क्योंकि जब साधक अगल-बगल में देखते और बात करते हुए चलता है, तब आगे भूमि पर बराबर ध्यान नहीं रहता, परिणामस्वरूप आने वालों से टकरा जाना, ठोकर खाना और जीवजन्तु पर पैर पड़ना भी सम्भव है। ईर्या में पूरा ध्यान नहीं रखना ही अयतना है। अयतना से चलने पर विकलेन्द्रिय-कीट, पतंगादि प्राण और भूत-वनस्पतिकायिक जीवों की हिंसा होती है। हिंसा के कारण पाप कर्म का बन्ध होता है और वह कटु फल देने वाला होता है।

**अजयं चिट्टमाणो य, पाणभूयाइं हिंसइ ।
बंधइ पावयं कम्मं, तं से होइ कडुयं फलं ॥२॥**

हिन्दी पद्यानुवाद-

*अयत्न से जो खड़ा रहे, प्राणी की हिंसा करता है।
वह बन्ध पाप का करता है, इससे कड़वा फल मिलता है॥*

अन्वयार्थ-अजयं चिट्टमाणो य = अयतना से खड़ा रहता हुआ संयमी। पाण भूयाइं हिंसइ = प्राणियों की हिंसा करता है। बंधइ पावयं कम्मं = इससे पाप कर्म का बन्ध करता है। तं से कडुयं फलं होइ = जो उसके लिये कटु फलदायी होता है।

भावार्थ—अहिंसाव्रती को खड़े रहने के लिये भी अविधि का वर्जन करना होता है। सचित्त पृथ्वी आदि पर बिना देखे खड़ा रहना, इधर-उधर वर्जित स्थानों की तरफ देखते रहना, हाथ पैर की चंचलता करना, यह सब अयतना है, अयतना से खड़ा रहने वाला छोटे-बड़े जीवों की हिंसा करता है, हिंसा से पाप कर्म का बन्ध होता है और उसके कड़वे फल भोगने पड़ते हैं।

अजयं आसमाणो य, पाणभूयाइं हिंसइ ।

बंधइ पावयं कम्मं, तं से होइ कडुयं फलं ॥३॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

यत्न रहित बैठे कोई, प्राणी की हिंसा करता है ।

वह बन्ध पाप का करता है, इससे कड़वा फल मिलता है ॥

अन्वयार्थ—अजयं आसमाणो य = अयतना से बैठा हुआ। पाणभूयाइं हिंसइ = प्राणियों की हिंसा करता है। बंधइ पावयं कम्मं = इससे पाप कर्म का बन्ध होता है। तं से कडुयं फलं होइ = वह पाप कर्म उस प्राणी के लिये कड़वा फल देने वाला होता है।

भावार्थ—चलने-फिरने की तरह बैठना भी हिंसा का कारण है। बिना देखे जीव-जन्तु वाले स्थान में बैठना तथा अंग-उपांगों की चंचलता करते हुए बैठना अयतना है। कुर्सी, मंच आदि पर बैठना अयतना का कारण है। अयतना से बैठने वाला त्रस-स्थावर जीवों की हिंसा करता है। हिंसा से अशुभ कर्म का बन्ध होता है, जो लोक और परलोक में कटुफलदायी होता है।

अजयं सयमाणो य, पाण भूयाइं हिंसइ ।

बंधइ पावयं कम्मं, तं से होइ कडुयं फलं ॥४॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

यत्न रहित सोने वाला, प्राणी की हिंसा करता है ।

वह बन्ध पाप का करता है, इससे कड़वा फल मिलता है ॥

अन्वयार्थ—अजयं सयमाणो य = अयतना से शयन करता हुआ। पाणभूयाइं हिंसइ = प्राणभूत की अर्थात् छोटे-बड़े जीवों की हिंसा करता है। बंधइ पावयं कम्मं = उससे पाप कर्म का बन्ध होता है। तं से होइ कडुयं फलं = जो उसके लिये कटु फलदायी होता है।

भावार्थ—अहिंसा व्रत के निर्दोष पालन करने हेतु, अधिक सोना, आसन के बिना देखे, बिना पूँजे सोना, आलस्य में करवटें बदलते रहना यह अयतना है। अयतना से सोने वाला जूँ, खटमल, मच्छर आदि जीवों की हिंसा करता है। हिंसा से पाप कर्म का बन्ध होता है जो भवान्तर में कड़वे फल देने वाला होता है।

अजयं भुंजमाणो य, पाण भूयाइं हिंसइ ।
बन्धइ पावयं कम्मं, तं से होइ कडुयं फलं ॥5॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

यत्न रहित खाने वाला, प्राणी की हिंसा करता है ।
वह बन्ध पाप का करता है, इससे कड़वा फल मिलता है ॥

अन्वयार्थ-अजयं भुंजमाणो य = अयतना से भोजन करता हुआ । पाणभूयाइं हिंसइ = प्राणभूत की अर्थात् छोटे-बड़े जीवों की हिंसा करता है । बन्धइ पावयं कम्मं = इससे पाप कर्म का बन्ध करता है । तं से होइ कडुयं फलं = जो उसके लिये कड़वा फलदायी होता है ।

भावार्थ-खाना शरीर के लिये आवश्यक है । फिर भी उसमें मर्यादा का ध्यान रखना आवश्यक है भूख से अधिक खाना, तमोगुणी एवं सजीव वस्तु का भक्षण करना, इधर-उधर गिराते हुए भोजन करना, भोजन में जूठा डालना, स्वादिष्ट पदार्थ खाकर खुशियाँ मनाना, नीरस भोजन की निंदा करना अविधि है, अयतना है । अयतना से खाने वाला, छोटे-बड़े जीवों की हिंसा करता है । उससे पाप कर्म का बन्ध होता है जो समय पर कटु फलदायी होता है ।

अजयं भासमाणो य, पाणभूयाइं हिंसइ ।
बन्धइ पावयं कम्मं, तं से होइ कडुयं फलं ॥6॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

यत्न रहित भाषण करता, प्राणी की हिंसा करता है ।
वह बन्ध पाप का करता है, इससे कड़वा फल मिलता है ॥

अन्वयार्थ-अजयं भासमाणो य = अयतना से बोलता हुआ । पाणभूयाइं हिंसइ = प्राणभूत की अर्थात् छोटे-बड़े जीवों की हिंसा करता है । बन्धइ पावयं कम्मं = इससे पाप कर्म का बन्ध करता है । तं से होइ कडुयं फलं = जो उसके लिए कटु फलदायी होता है ।

भावार्थ-बोलना लाभकारी है, बोलकर धर्म और नीति का प्रचार किया जाता है, किन्तु अविधि से बोला जाय तो वह लाभ के बदले हानि और अमृत के बदले विष का काम कर जाता है । इसलिये शास्त्रकार कहते हैं कि अयतना से बोलना हिंसा का कारण है, क्रोध लोभादिवश होकर झूठ बोलना, कर्कश, कठोर और मर्मभेदी बोलना, निन्दा या आक्षेपजनक बोलना अयतना है । अयतना से बोलने वाला त्रस-स्थावर जीवों की हिंसा करता है, हिंसा से पाप का बन्ध होता है, जो कटु फलदायी होता है ।

कहं चरे कहं चिट्ठे, कहमासे कहं सए ।
कहं भुंजंतो भासंतो, पावकम्मं न बन्धइ ॥7॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

कैसे चले खड़ा हो कैसे ? कैसे बैठे और शयन करे ?

कैसे खाते भाषण करते, ना पाप कर्म का बन्ध करे ?

अन्वयार्थ—कहं चरे = कैसे चलें। कहं चिट्ठे = कैसे खड़े रहें। कहं आसे = कैसे बैठें। कहं सए = कैसे सोएं। कहं भुंजंतो = कैसे भोजन करें और। भासंतो = कैसे भाषण करें। पावकम्मं न बंधइ = ताकि पाप कर्म का बन्ध नहीं हो।

भावार्थ—अयतना से चलने, फिरने, बैठने, खड़े रहने, सोने, बोलने और खाने से जीवों की हिंसा होती है। तब शिष्य पूछता है—“भगवन् ! फिर अहिंसा व्रती को कैसे चलना, कैसे खड़े रहना, कैसे बैठना, कैसे सोना, कैसे बोलना और कैसे भोजन करना चाहिये जिससे अहिंसाव्रत सुरक्षित रहे और पापकर्म का बन्ध नहीं हो ?” शिष्य की इस जिज्ञासा का शास्त्रकार स्वयं उत्तर देते हुए कहते हैं—

जयं चरे जयं चिट्ठे, जयमासे जयं सए।

जयं भुंजंतो भासंतो, पावकम्मं न बंधइ ॥८॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

यतना से चले खड़ा होवे, यतना से बैठे शयन करे।

यतना से खाये बोले तो, ना पाप कर्म का बन्ध करे ॥

अन्वयार्थ—जयं चरे = यतना से चले। जयं चिट्ठे = यतना से खड़ा रहे। जय मासे = यतना से बैठे। जयं सए = यतना पूर्वक सोए। जयं भुंजंतो = यतना पूर्वक खाए और। भासंतो = यतना पूर्वक ही बोले तो। पाव कम्मं न बंधइ = पाप कर्म का बन्ध नहीं होगा।

भावार्थ—अयतना जैसे पाप जनक है, वैसे ही यतना पापकर्म से बचाने वाली है। शास्त्र कथित विधि से उपयोग पूर्वक चलना, फिरना, खड़ा रहना, भूमि को देखकर बैठना, आसन देकर यतना से सोना, विधि पूर्वक निर्दोष आहार करना, भाषा समिति की मर्यादा में निर्दोष-शास्त्रानुकूल बोलना यतना है, यतना से उपयोग पूर्वक क्रिया करने से अध्यवसाय शुभ होते हैं, इसलिये पाप कर्म का बन्ध नहीं होता। (यतनापूर्वक क्रिया करते हुए किसी जीव की हिंसा हो भी जाय तो भाव शुभ होने से अशुभ कर्म का बन्ध नहीं होता)।

सव्वभूयप्पभूयस्स, सम्मं भूयाइं पासओ।

पिहियासवस्स दंतस्स, पावकम्मं न बंधइ ॥९॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

सब जीवों में आत्म-बुद्धि, एवं सब में समदर्शी हो।

आस्रवरोधी दान्त श्रमण के, न पाप कर्म का बन्धन हो ॥

अन्वयार्थ—**सव्वभूयप्पभूयस्स** = जो सब जीवों को अपने समान समझता है और । **संमं भूयाइं** **पासओ** = सभी जीवों को सम्यक् प्रकार से देखता है । **पिहिया सवस्स** = इससे वह आश्रव के द्वारों को बन्द कर देता है । **दंतस्स** = ऐसी जितेन्द्रिय आत्मा को । **पावकम्मं न बंधइ** = पापकर्म का बन्ध नहीं होता ।

भावार्थ—जब तक कषाय का उदय है, प्रतिपल प्राणी को 7-8 कर्मों का बन्ध होता रहता है, ऐसी स्थिति में हमारी आत्मा पाप कर्म से किस प्रकार बचे, शिष्य की इस जिज्ञासा का समाधान करते हुए आचार्य ने कहा—जो संसार के सब जीवों को अपने समान समझता है और यह मानता है कि जैसे मेरे पैर में काँटा लगाने से वेदना होती है, वैसे ही अन्य जीवों को भी पीड़ा होती है । इस प्रकार जीव मात्र को आत्मवत् देखता है । फिर कर्मबन्ध के कारण भूत हिंसा, झूठ आदि आस्रवों को विरति भाव के द्वारा रोक देता है तथा शब्द-रूप-स्पर्श आदि इन्द्रिय के विषयों में जो राग नहीं करता है और जिसकी मानसिक वृत्तियाँ भी नियन्त्रित हैं, उस साधु को पाप कर्म का बन्ध नहीं होता ।

**पढमं नाणं तओ दया, एवं चिट्ठइ सव्वसंजए ।
अन्नाणी किं काही, किं वा नाहिइ सेयपावगं ।।10।।**

हिन्दी पद्यानुवाद—

पहले ज्ञान दया पीछे, ऐसा सब मुनिजन कहते हैं ।

अज्ञानी क्या कर सकते ? ना अच्छा बुरा समझते हैं ।।

अन्वयार्थ—**पढमं नाणं** = पहले ज्ञान और । **तओ दया** = पीछे दया । **एवं** = इस प्रकार । **सव्वसंजए** = सभी संयमी । **चिट्ठइ** = रहते हैं । **अन्नाणी** = अज्ञानी जीव । **किं काही** = क्या करेंगे । **किं वा नाहिइ (नाही) सेय पावगं** = और पुण्य पाप को कैसे जान सकेंगे ?

भावार्थ—जितेन्द्रिय आत्मा पाप कर्म का बन्ध नहीं करती, पूर्व के इस सूत्र पद में पाप से बचने के लिये क्रिया का महत्त्व बतलाया गया है, किन्तु इस गाथा से समझाया जाता है कि चारित्र ज्ञानपूर्वक होने पर ही लाभकारी होता है । इसलिये कहा है कि पहले ज्ञान और फिर दया । इस प्रकार ज्ञान सहित क्रिया से ही सब संयमी रहते हैं । जिनको जीव-अजीव का ज्ञान नहीं है, वे अज्ञानी संयम-धर्म का पालन कैसे करेंगे ? वास्तविक ज्ञान के अभाव में कितने ही लोग देव को बलि देने में धर्म मानते हैं, कुछ सूक्ष्म जीवों की हिंसा में पाप ही नहीं मानते । इस प्रकार बिना ज्ञान के हित-अहित का बोध कैसे होगा ? इसलिए क्रिया से पहले ज्ञान भी आवश्यक है ।

**सोच्चा जाणइ कल्लाणं, सोच्चा जाणइ पावगं ।
उभयं पि जाणइ सोच्चा, जं सेयं तं समायरे ।।11।।**

हिन्दी पद्यानुवाद-

कल्याण कर्म सुनकर जाने, सुन पाप कर्म का ज्ञान करे ।
दोनों ही सुनकर समझे नर, फिर श्रेय कर्म में ध्यान धरे ॥

अन्वयार्थ-सोच्चा जाणइ कल्लाणं = संयम-यात्रा का पथिक सुनकर कल्याण-मार्ग को जानता है । **पावगं** = पाप-कर्म को । **सोच्चा जाणइ** = सुनकर जानता है । **उभयंपि** = दोनों मार्गों को । **सोच्चा जाणइ** = सुनकर जानता है । **जं सेयं** = फिर जो कल्याणकारी हो । **तं समायरे** = उस मार्ग का आचरण करता है ।

भावार्थ-ज्ञान प्राप्ति का मुख्य साधन श्रवण है । पुण्य और पाप का ज्ञान श्रवण से ही होता है, कल्याण की परम्परा में पर्युपासना का प्रथम फल श्रवण बतलाया है । भगवती सूत्र में कहा गया है कि तथारूप श्रमण की पर्युपासना श्रवण फल वाली होती है । बताया गया है कि-1. प्रथम श्रवण । 2. श्रवण से ज्ञान । 3. ज्ञान से विज्ञान । 4. विज्ञान का फल प्रत्याख्यान । 5. प्रत्याख्यान का फल संयम । 6. संयम का फल अनाश्रव । 7. अनाश्रव का फल तप । 8. तप का फल व्यवदान । 9. व्यवदान का फल अक्रिया । और 10. अक्रिया का फल सिद्धि है । श्रवण से ही इन्द्रभूति आदि विद्वानों ने हृदय का अज्ञान दूर कर 14 पूर्वों का ज्ञान प्राप्त किया । ज्ञानी सुनने से ही पुण्य-पाप का ज्ञान प्राप्त कर श्रेय मार्ग को स्वीकार करता है ।

जो जीवे वि न याणेइ, अजीवे वि न याणेइ ।
जीवाजीवे अयाणंतो, कहं सो नाहीइ संजमं ॥12॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

जो जीवों को नहीं जानता, फिर अजीव का ज्ञान नहीं ।
जीव अजीव बिना जाने, संयम का होता बोध नहीं ॥

अन्वयार्थ-जो जीवे वि न याणेइ = जो जीवों को नहीं जानता है, और । **अजीवे वि** = अजीव को भी । **न याणेइ** = नहीं जानता है । **जीवाजीवे अयाणंतो** = जीव और अजीव को नहीं जानता हुआ । **सो** = वह । **संजमं** = संयम धर्म को । **कहं नाहीइ** = कैसे जान सकेगा ।

भावार्थ-जो जीव, अजीव और जीवाजीवों को नहीं जानता वह संयम धर्म को कैसे जानेगा ? संसारी जीव 6 प्रकार के होते हैं । पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय । इनमें सूक्ष्म जीव फूलण, फफूँदी और संमूर्च्छिम पंचेन्द्रिय मनुष्य आदि को जानना कठिन है । संयम-धर्म के पालन के लिये जीव और अजीव तत्त्वों को जानना आवश्यक है । क्योंकि वह अज्ञान वश, अजीव को जीव समझ लेगा और जीव को अजीव समझ लेगा, इसलिए इनका ज्ञान करना जरूरी है ।

जो जीवे वि वियाणेइ, अजीवे वि वियाणेइ ।
जीवाजीवे वियाणंतो, सो हु नाहीइ संजमं ॥13॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

जानता यहाँ जो जीवों को, एवं अजीव को भी जाने ।
जो जीव-अजीव युगल जाने, वह ही नर संयम को जाने ॥

अन्वयार्थ-जो जीवे वि वियाणेइ = जो जीवों को जानता है । अजीवे वि वियाणेइ = अजीवों को भी जानता है । जीवाजीवे वियाणंतो = जीव और अजीव को जानता हुआ । सो = वह । हु = निश्चय से । संजमं = संयम-धर्म को । नाहीइ = जान सकेगा ।

भावार्थ-जीव और अजीव को जानने वाला संयम-धर्म को बराबर जान सकेगा तथा विधिवत् उसका पालन भी कर सकेगा ।

जो एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के जीवों को जानता है और अजीवों को भी जानता है । जीव को जीव रूप से जानने वाला उनकी रक्षा कर सकेगा । किसी के साथ वैर भाव भी नहीं रखेगा और जिससे किसी को पीड़ा हो, वैसा व्यवहार भी नहीं करेगा ।

जया जीवमजीवे य, दो वि एए वियाणइ ।
तया गइं बहुविहं, सव्वजीवाण जाणइ ॥14॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

जब जीवों और अजीवों का, दोनों का ज्ञाता हो जाता ।
तब बहु विध गति सब जीवों की, वह बिना कहे अवगत करता ॥

अन्वयार्थ-जया = जब । जीवमजीवे य = जीव और अजीव । दो वि एए वियाणइ (वियाणेइ) = इन दोनों को जान लेता है । तया सव्वजीवाण बहुविहं = तब सब जीवों की बहुत भेदों वाली । गइं = नरक-तिर्यच आदि नानाविध गतियों को भी । जाणइ = वह साधक जान लेता है ।

भावार्थ-जब साधक जीव और अजीव इन दोनों को बराबर जान लेता है, तब वह उन जीवों की नरक, तिर्यच, मनुष्य और देव रूप विविध गतियों को भेद-प्रभेद के साथ जान लेता है । छोटे-बड़े जीवों को जानने के साथ ही यह जिज्ञासा उत्पन्न होनी सहज है कि ये विभिन्न गतियाँ किस कारण से प्राप्त होती हैं ?

जया गइं बहुविहं, सव्व जीवाण जाणइ ।
तया पुण्णं च पावं च, बंधं मुक्खं च जाणइ ॥15॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

जब बहु विध गति सब जीवों की, साधक नर जान यहाँ लेता ।

तब पुण्य-पाप और बन्ध-मोक्ष, इनका भी ज्ञान सहज होता ॥

अन्वयार्थ-जया = जब आत्मा । **सर्वजीवाण** = सभी जीवों की । **बहुविहं** = बहुत प्रकार की । **गड़** = नरक, तिर्यच आदि गति को । **जाणइ** = जान लेता है । **तया** = तब । **पुण्णं च** = पुण्य और । **पावं च** = पाप । **बंधं** = बन्ध को और । **मुक्खं च** = मोक्ष को भी । **जाणइ** = जान पाता है ।

भावार्थ-साधक जब सब जीवों की विविध गतियों को जान लेता है, तब विविध गतियों में भव भ्रमण करने के कारणभूत पुण्य-कर्मों और पाप-कर्मों को भी जान जाता है । पुण्य से सुख और पाप कर्म से दुःख रूप फल मिलता है, यह भी जान लेता है । फिर कर्म के बन्ध और मोक्ष को भी जान लेता है । कर्म का बन्ध मिथ्यात्व आदि कारणों से होता है इसका बोध भी कर लेता है । फिर बन्ध के कारणों को दूर करने में प्रवृत्ति करता है । बन्ध के हेतुओं को सर्वथा छोड़ देता है तो उसके लिये मोक्ष भी सुलभ और स्वयं सिद्ध है ।

जया पुण्णं च पावं च, बंधं मुक्खं च जाणइ ।

तया निव्विंदए भोए, जे दिव्वे जे य माणुसे ॥16॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

जब पुण्य-पाप और बन्ध-मोक्ष, इनको है सहज जान लेता ।

तब देव मानवी भोगों पर, तन मन से नहीं ध्यान देता ॥

अन्वयार्थ-जया = जब साधक । **पुण्णं च** = पुण्य और । **पावं** = पाप को । **बंधं च** = बन्ध को । **मुक्खं च** = और मोक्ष को भी । **जाणइ** = जान लेता है । **तया** = तब । **जे दिव्वे य** = जो देव और । **जे माणुसे** = जो मनुष्य सम्बन्धी । **भोए** = काम भोग हैं उनकी । **निव्विंदए** = असारता को समझ कर उसे उनसे अरुचि हो जाती है ।

भावार्थ-पुण्य, पाप, बंध और मोक्ष का जानने वाला साधक दिव्य और मानवी भोगों की असारता का ज्ञाता होता है । जब शुभ योग से होने वाले पुण्य और अशुभ योग से होने वाले पाप को जान लेता है तो वह यह भी जान लेता है कि संसार के ये काम भोग किम्पाक फल की तरह तत्काल भले ही मधुर लगते हों, पर अन्तिम परिणाम में दुःखदायी होते हैं । ऐसा जान लेने पर देव और मनुष्य भव सम्बन्धी भोगों से उसका राग छूट जाता है, उसे वैराग्य प्राप्त हो जाता है ।

जया निव्विंदए भोए, जे दिव्वे जे य माणुसे ।

तया चयइ संजोगं, सव्विभंतरं बाहिरं ॥17॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

जब देव मानुषी भोगों पर, तन मन से ध्यान नहीं देता ।
तब बाह्याभ्यंतर ममता को, वह सहज रूप से तज देता ॥

अन्वयार्थ-जे दिव्वे = जो देव सम्बन्धी । य = और । जे माणुसे = जो मनुष्य सम्बन्धी । भोए = काम भोगों की । जया = जब । निव्विंदए = असारता समझकर उन पर अरुचि करता है । तया = तब । सब्भितरं (सब्भितर) बाहिरं = आभ्यंतर और बाह्य । संजोगं = संयोग को । चयइ = छोड़ देता है ।

भावार्थ-ज्ञान से भोगों की असारता समझकर जब देव और मनुष्य भव के भोगों में साधक को विरक्ति होती है, तब बाह्य संयोग-धन, धान्य, पुत्र मित्रादि तथा आभ्यन्तर संयोग-क्रोध, मान, माया, लोभ आदि का वह परित्याग कर देता है ।

जया चयइ संजोगं, सब्भितरं बाहिरं ।
तया मुंडे भवित्ता णं, पव्वइए अणगारियं ॥18॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

जब बाहर भीतर की ममता का, त्याग सहज में कर देता ।
तब मुण्डित होकर इस जग में, साधुत्व प्राप्त है कर लेता ॥

अन्वयार्थ-जया = जब । सब्भितरं बाहिरं = आभ्यंतर और बाह्य । संजोगं = संयोगों को । चयइ = छोड़ देता है । तया = तब । मुंडे = द्रव्य और भाव से मुण्डित । भवित्ता णं = होकर । अणगारियं = अणगारवृत्ति को । पव्वइए = ग्रहण करता है ।

भावार्थ-जब धन-धान्यादि और क्रोध, लोभादि द्रव्य एवं भाव संयोगों का साधक त्याग कर देता है, तब वह मुण्डित होकर श्रमण धर्म को स्वीकार करता है ।

जया मुंडे भवित्ताणं, पव्वइए अणगारियं ।
तया संवरमुक्किट्टं, धम्मं फासे अणुत्तरं ॥19॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

जब मुण्डित होकर इस जग में, साधुत्व प्राप्त कर लेता है ।
तब उत्तम धर्म सुसंवर के, पद को वह मुनि पा लेता है ॥

अन्वयार्थ-जया = जब । मुंडे = द्रव्य और भाव से मुण्डित । भवित्ताणं = होकर । अणगारियं = अणगारवृत्ति । पव्वइए = ग्रहण करता है । तया = तब । उक्किट्टं = उत्कृष्ट । अणुत्तरं = सर्वश्रेष्ठ । संवरं धम्मं = संवर-धर्म को । फासे = स्पर्श करता है ।

भावार्थ—साधक जब द्रव्य से सिर मुंडन और भाव से कषाय मुंडन करके प्रव्रज्या स्वीकार करता है, तब हिंसा, असत्य आदि सम्पूर्ण आस्रव त्याग रूप सर्वश्रेष्ठ उत्कृष्ट संवर-धर्म को स्पर्श करता है, धारण करता है। इससे सर्वथा पाप कर्म का आश्रव नहीं होता, अतः पाप बन्ध से बच जाता है।

जया संवरमुक्किट्टं, धम्मं फासे अणुत्तरं ।

तया धुणइ कम्मरयं, अबोहिकलुसं कडं ।।20।।

हिन्दी पद्यानुवाद-

जब उत्तम धर्म सुसंवर के, पद को वह मुनि पा लेता है।

तब आत्मिक अज्ञानजन्य, कर्माणु दूर कर देता है॥

अन्वयार्थ—जया = जब। उक्किट्टं = उत्कृष्ट। अणुत्तरं = प्रधान। संवरं धम्मं = संवर-धर्म को। फासे = स्पर्श करता है। तया = तब। अबोहिकलुसं कडं = मिथ्यात्व से उपार्जित। कम्मरयं = कर्म रूपी रज को। धुणइ = झाड़ देता है, अलग कर देता है।

भावार्थ—जब साधक उत्कृष्ट संवर-धर्म, (जो पूर्ण अहिंसा, पूर्ण सत्य आदि रूप है, का स्पर्श करता हुआ छूटे, सातवें गुणस्थान से 12वें गुणस्थान यथाख्यात संयम तक पहुँच जाता है) तब अज्ञान और कलुषित भाव से संचित (ज्ञानावरण आदि घाति) कर्मों की रज को धुनकर अलग कर देता है—यानी नष्ट कर देता है।

जया धुणइ कम्मरयं, अबोहिकलुसं कडं ।

तया सव्वत्तगं नाणं, दंसणं चाभिगच्छइ ।।21।।

हिन्दी पद्यानुवाद-

जब आत्मिक अज्ञानजन्य, कर्माणु दूर कर देता है।

तब सार्वत्रिक पूर्ण ज्ञान, और दर्शन को पा लेता है॥

अन्वयार्थ—जया = जब। अबोहिकलुसं कडं = मिथ्यात्व के परिणाम से उपार्जित किये हुए। कम्मरयं = कर्म रूपी रज को। धुणइ = झाड़ देता है, अलग कर देता है। तया = तब। सव्वत्तगं = सभी पदार्थों को जानने वाले। नाणं = केवलज्ञान। च = और। दंसणं = केवल-दर्शन को। अभिगच्छइ = प्राप्त कर लेता है।

भावार्थ—साधक जब अज्ञान या कलुषित भाव से पूर्व में संचित कर्म-रज को आत्मा से अलग कर देता है, तब आवरण हटने से साधक की आत्मा अपने अनंत ज्ञान, अनन्त दर्शन और अनन्त शक्ति रूप निज

गुणों को प्रकट कर विश्व के चराचर सकल पदार्थों को हस्तामलकवत् केवल ज्ञान से जानने और केवल दर्शन से देखने लगती है। तीनों लोकों का कोई पदार्थ उससे अज्ञात नहीं रहता।

**जया सव्वत्तगं नाणं, दंसणं चाभिगच्छइ ।
तया लोगमलोगं च, जिणो जाणइ केवली ॥२२॥**

हिन्दी पद्यानुवाद-

जब सार्वत्रिक पूर्ण ज्ञान, और दर्शन को पा लेता है ।
तब सब लोक अलोक जानकर, जिन केवली हो जाता है ॥

अन्वयार्थ-जया = जब । सव्वत्तगं = सर्वव्यापी । नाणं = ज्ञान-केवलज्ञान । च = और । दंसणं = केवलदर्शन को । अभिगच्छइ = प्राप्त कर लेता है । तया = तब । जिणो = राग-द्वेष को जीतने वाला जिन । केवली = केवली होकर । लोगं = लोक । च = और । अलोगं = अलोक के स्वरूप को । जाणइ = जान लेता है ।

भावार्थ-जब साधक सर्वव्यापी ज्ञान और सर्वव्यापी दर्शन प्राप्त कर लेता है । तब वह पूर्ण ज्ञानी होकर लोक और अलोक को जान लेता है । जहाँ जड़-चेतन रूप अनन्त -अनन्त पदार्थ हैं वह लोक और जो शून्यमात्र है उसे अलोक कहा है । केवलज्ञानी लोक और अलोक के सब पदार्थों को द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और गुण से जानते व देखते हैं ।

**जया लोगमलोगं च, जिणो जाणइ केवली ।
तया जोगे निरुंभित्ता, सेलेसिं पडिवज्जइ ॥२३॥**

हिन्दी पद्यानुवाद-

जब सब लोक अलोक जानकर, जिन केवली हो जाता है ।
तब योगों का रोधन कर, शैलेशी पद पा लेता है ॥

अन्वयार्थ-जया = जब । जिणो = राग-द्वेष का विजेता । केवली = केवलज्ञानी होकर । लोगं च = लोक और । अलोगं = अलोक को । जाणइ = जान लेता है । तया = तब । जोगे = मन, वचन और काया के योगों का । निरुंभित्ता = निरोध कर । सेलेसिं = शैलेशीकरण को । पडिवज्जइ = प्राप्त करता है यानी शैलशिखरवत् पूर्ण अचल-स्थिर हो जाता है ।

भावार्थ-जब आत्मा घातिकर्मों के क्षय से जिन होकर सम्पूर्ण लोक और अलोक को जानता है, तब मन, वाणी और काय के योगों का सम्पूर्ण निरोध करके चौदहवें गुणस्थान में शैल के समान अचल,

अकम्प दशा-शैलेशीभाव को प्राप्त करता है। इसका स्थितिकाल मात्र 'अ', 'इ', 'उ', 'ऋ', 'लृ' इन पाँच ह्रस्व अक्षरों के उच्चारण जितना होता है।

जया जोगे निरुंभित्ता, सेलेसिं पडिवज्जइ ।

तया कम्मं खवित्ताणं, सिद्धिं गच्छइ नीरओ ॥24॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

जब योगों का रोधन कर, शैलेशी पद पा लेता है ।

तब कर्मों का पूर्ण क्षपण कर, नीरज सिद्धि पा लेता है ॥

अन्वयार्थ-जया = जब । जोगे = मन, वचन और शरीर के योगों का । निरुंभित्ता = निरोध करके । सेलेसिं = शैलेशीकरण, शैलवत् स्थिर भाव को । पडिवज्जइ = प्राप्त करता है । तया = तब । कम्मं = समस्त कर्मों को । खवित्ताणं = क्षय करके । नीरओ = सम्पूर्ण कर्म रज से रहित होकर । सिद्धिं = मोक्षधाम को । गच्छइ = प्राप्त कर लेता है ।

भावार्थ-जब जीवन का अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहता है, तब केवली योग निरोध करते हुए, सूक्ष्म क्रिया अप्रतिपाति शुक्लध्यान की अवस्था में सर्व प्रथम मनोयोग का निरोध करते हैं, फिर वचनयोग और काययोग का निरोध करते हैं, श्वासोच्छ्वास का निरोध करते हैं और पंच ह्रस्व अक्षरों के उच्चारण काल में शुक्ल ध्यान के चतुर्थ चरण में चारों अघाती कर्मों का भी क्षय कर देते हैं। इस तरह आठों ही कर्म क्षय करके सर्वथा कर्म रज रहित होकर सिद्धि गति प्राप्त करते हैं ।

जया कम्मं खवित्ताणं, सिद्धिं गच्छइ नीरओ ।

तया लोगमत्थयत्थो, सिद्धो हवइ सासओ ॥25॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

जब कर्मों का पूर्ण क्षपण कर, नीरज सिद्धि को पाता है ।

तब लोकाग्र भाग संस्थित, शाश्वत शिव पद पा लेता है ॥

अन्वयार्थ-जया = जब जीव । कम्मं = समस्त कर्मों को । खवित्ताणं = क्षय करके । नीरओ = सम्पूर्ण कर्म रज से रहित होकर । सिद्धिं = मोक्ष में । गच्छइ = चला जाता है । तया = तब । लोगमत्थयत्थो = लोक के अग्र भाग पर स्थित । सासओ = शाश्वत । सिद्धो = सिद्ध । हवइ = हो जाता है ।

भावार्थ-जब जीव वेदनीय, नाम, गोत्र और आयु कर्म का भी क्षय करके सर्वथा कर्म रज रहित होकर, सिद्ध गति को प्राप्त करते हैं, तब औदारिक, तेजस् एवं कार्मण सब छोड़ने योग्य पुद्गल वर्गणा को

छोड़कर ऋजु श्रेणी से आकाश क्षेत्र को बिना स्पर्श किये एक समय में सकल कर्म का क्षय कर लोक के शीर्ष भाग में स्थित होकर शाश्वत काल पर्यन्त शुद्ध स्वरूप में लीन हो जाते हैं।

सुहसायगस्स समणस्स, सायाउलगस्स निगामसाइस्स ।

उच्छोलणापहोयस्स, दुल्लहा सुगई तारिसगस्स ॥26॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

सुख के स्वादी साता व्याकुल, निद्रा को जो आदर देते ।

धावन प्रधान जो आरंभी, वे श्रमण सुगति दुर्लभ पाते ॥

अन्वयार्थ-सुहसायगस्स = सुख में आसक्त रहने वाले । सायाउलगस्स = साता-सुख हेतु व्याकुल रहने वाले । निगामसाइस्स = अधिक सोने वाले । उच्छोलणापहोयस्स = शरीर की शोभा के लिए हाथ-पैर आदि को धोने वाले । तारिसगस्स = वैसे । समणस्स = साधु को । सुगई = शुभ गति मिलना । दुल्लहा = दुर्लभ है ।

भावार्थ-जो साधु सुख की इच्छा वाला है, साता-सुख के लिए जो मन की अधीरता के कारण आकुल रहता है, समय से अधिक सोता है और मुलायम बिस्तर पर आराम से सोना चाहता है, बार-बार हाथ-पैर धोता और अधिक धोता एवं पानी का विशेष उपयोग करता है, उसकी सुगति दुर्लभ होती है ।

तवोगुणपहाणस्स उज्जुमइ, खंतिसंजमरयस्स ।

परीसहे जिणंतस्स 'सुलहा सुगई' तारिसगस्स ॥27॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

तप गुण प्रधान ऋजु शुद्ध बुद्धि, जो क्षमा साधना रत मुनिवर ।

जो परीषहों के जेता हैं, ऐसों की सद्गति है सुखकर ॥

अन्वयार्थ-तवोगुणपहाणस्स = तपस्या रूपी गुणों से प्रधान । उज्जुमइ = सरल मति । खंतिसंजमरयस्स = क्षमा और संयम में रमण करने वाले । परीसहे = परीषहों को । जिणंतस्स = जीतने वाले । तारिसगस्स = वैसे साधु को । सुगई = शुभ गति । सुलहा = सुलभ है, सरलता से प्राप्त होती है ।

भावार्थ-जो तप गुण की प्रधानता वाला है, सदा बाह्य एवं आभ्यन्तर तप करता रहता है, सरल मति वाला और क्षमा एवं 17 प्रकार के संयम में रमण करता है, भूख-प्यास आदि परीषहों को जीतने वाला है, कष्ट आने पर कभी घबराता नहीं, वैसे साधक को सुगति सुलभ होती है ।

पच्छावि ते पयाया, खिप्पं गच्छंति अमरभवणाइं ।

जेसिं पिओ तवो संजमो य, खंती य बंभचेरं य ॥28॥

जिनको प्यारा तप संयम है, क्षान्ति और सत्शील प्रधान ।
पिछली वय में आकर भी वे, पा लेते हैं अमर विमान ॥

भावार्थ—पिछली अवस्था में दीक्षा ग्रहण करके भी वे साधक शीघ्र देवभवन को प्राप्त करते हैं, जिनको तप, संयम, क्षमा और ब्रह्मचर्य के सद्गुण प्यारे हैं। अर्थात् साधना के फलस्वरूप देवगति के सुफल प्राप्त होते हैं।

इच्छेयं छज्जीवणियं, सम्मदिट्ठी सया जए ।
दुल्लहं लहित्तु सामण्णं, कम्मुणा ण विराहिज्जासि ॥२९॥

।त्ति बेमि ।

इस प्रकार षट्जीव निकाय में, समदृष्टि सदा शुभ यत्न करे ।
दर्लभ श्रमण धर्म पाकर, ना जीव विराधन कर्म करे ॥

अन्वयार्थ-इच्छेयं = पूर्वोक्त स्वरूप वाले इस । छज्जीवणियं = षट्जीवनिकाय के जीव समूह की । सम्मदिट्ठी = सम्यग्दृष्टि साधक । सया = सदा । जए = यतना करे । दुल्लहं = दुर्लभ । सामण्णं = श्रमण-धर्म को । लहित्तु = प्राप्त कर । कम्मुणा = मन, वचन, काया की क्रिया से । ण विराहिज्जासि = कभी विराधना नहीं करे । त्ति बेमि = श्री सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैं कि जैसा मैंने भगवान महावीर स्वामी से सुना है, वैसा ही मैं तुम्हें कहता हूँ ।

भावार्थ—इस प्रकार पूर्व कथित, इस षट्जीवनिकाय के जीव समूह की सम्यक् दृष्टि साधक सदा यतना करे, क्योंकि श्रमण धर्म की प्राप्ति प्रबल पुण्य के उदय और अशुभ कर्म के क्षयोपशम से होती है। अतः दुर्लभ श्रमण-धर्म को पाकर तन, मन और वाणी से उसकी विराधना-खण्डना न हो, इसका सदा ध्यान रखना चाहिये।

त्ति बेमि = (इति ब्रवीमि) ऐसा मैं कहता हूँ।

॥चतुर्थ अध्ययन समाप्त ॥



चतुर्थ अध्ययन की टिप्पणी

छज्जीवणिया (षट्जीवनिकाय)

संसार में समस्त जीव राशि के जीव छह प्रकार के हैं-पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और त्रसकायिक। आचारांग सूत्र के शस्त्र-परिज्ञा अध्ययन में भी ये ही छह प्रकार बतलाये गये हैं। परन्तु वहाँ तेजस्कायिक के पश्चात् वनस्पतिकायिक, त्रसकायिक और वायुकायिक कहे गये हैं। वैसे प्रश्न व्याकरण सूत्र के प्रथम अधर्म द्वार में भी पाँच भागों में हिंसा रूप अधर्म का स्वरूप और फल बतलाये गये हैं, जो पाठकों के लिये विशेषतः मननीय हैं।

आचारांग सूत्र में हिंसा के प्रमुख चार कारण बतलाये गये हैं-(1) अपने जीवन के लिये, (2) मान-सम्मान और पूजा के लिये, (3) जन्म-मरण से छूटने के लिये, (4) दुःख-प्रतिकार के लिये। इन चार कारणों से पृथ्वी आदि जीवों का आरम्भ किया जाता है। ज्ञानी के लिये ये आरम्भ जानकर छोड़ने योग्य हैं-

(1) अनेक प्रकार के शस्त्रों से मानव पृथ्वीकायिक जीवों की हिंसा करता है। वह केवल पृथ्वीकायिक जीवों की ही हिंसा नहीं करता, किन्तु उसके आश्रित अन्य अनेक जीवों की भी हिंसा करता है। भगवान ने कहा है कि जो पृथ्वीकायिक जीवों की हिंसा करता है, दूसरों से करवाता है और करने वाले का अनुमोदन करता है, वह उसके अहित के लिये होती है और उसकी अबोध के लिये होती है। कुछ लोगों को तीर्थंकर भगवान या मुनियों के समीप सुनकर यह ज्ञात होता है कि हिंसा ग्रन्थि है, मोह है, मृत्यु है और नरक है।

पृथ्वी आदि जीवों का जीवन और वेदना का ज्ञान-

पृथ्वीकायिक आदि जीवों के जीवन और वेदना के सम्बन्ध में आचारांग सूत्र में कहा है कि पृथ्वीकायिक आदि जीव जन्म से इन्द्रिय विकल मनुष्य की तरह अव्यक्त चेतना वाले होते हैं। जैसे इन्द्रिय-विकल मनुष्य को शस्त्र से अंगों का छेदन-भेदन करने पर कष्टानुभूति होती है, ऐसे ही पृथ्वीकायिक आदि जीवों को भी होती है। मेधावी पुरुष ऐसा जानकर पृथ्वी आदि का आरम्भ नहीं करते, दूसरों से आरम्भ नहीं करवाते और करने वालों का अनुमोदन भी नहीं करते।

(2) पृथ्वीकाय की तरह जलकाय में भी जीवों का अस्तित्व माना गया है। गृहस्थ नाना प्रकार के शस्त्रों से जल सम्बन्धी क्रिया में जलकायिक जीवों की हिंसा करता है। वहाँ जलकायिक जीवों के अतिरिक्त उनके आश्रित अन्य अनेक जीवों की भी हिंसा करता है। जैसे-मनुष्य को मूर्च्छित करने या उसका प्राण-वियोजन करने पर उसको कष्टानुभूति होती है, ऐसे ही जलकायिक जीवों को भी कष्टानुभूति होती है।

प्रभु ने कहा है-जल स्वयं जीव रूप है। हे पुरुष ! जलकायिक जीवों के शस्त्रों का चिन्तन कर। जलकायिक जीवों के शस्त्र अनेक प्रकार के हैं-उनका प्रयोग करना, हिंसा और अदत्तादान है। (सूत्र संख्या 57-58) जैन दर्शन में अप्काय के तीन प्रकार कहे गये हैं-(1) सचित्त-जीव सहित, (2) अचित्त-निर्जीव और (3) मिश्र-सचित्त और अचित्त दोनों ही। जलकाय के सात शस्त्र कहे गये हैं-1. उत्सेचन-जल को सींचना, 2. गालन-छानना, 3. धोवन-वस्त्रादि धोना, 4. स्वकाय-शस्त्र, 5. परकाय शस्त्र-मिट्टी, तेल, शर्करा, क्षार, अग्नि आदि, 6. तदुभय शस्त्र-भीगी हुई मिट्टी, 7.

भावशस्त्र-दुर्भाव । जो लोग शास्त्र का प्रमाण देकर जलकाय की हिंसा करते हैं, वे हिंसा के दोष से सर्वथा विरत नहीं होते । ऐसा जानकर मेधावी पुरुष जलकाय का आरम्भ करता नहीं, दूसरों से कराता नहीं और करने वाले का अनुमोदन भी नहीं करता ।

(3) अग्निकाय की हिंसा करने वाले, अग्निकायिक जीवों के साथ अन्य अनेक जीवों की हिंसा करते हैं । जैसे- पृथ्वी, तृण, गोबर और कूड़ा-कचरा आदि के आश्रित अनेक प्राणी रहते हैं, कुछ सम्पातिक-उड़ने वाले जीव, कीट, पतंगे आदि भी अग्नि का स्पर्श पाकर सिकुड़ जाते हैं, विनष्ट हो जाते हैं । ऐसा जानकर बुद्धिमान मनुष्य अग्निशस्त्र का आरम्भ करते नहीं, दूसरों से कराते नहीं और करने वालों का अनुमोदन भी नहीं करते । अग्निकाय के आठ शस्त्र कहे हैं- 1. मिट्टी, 2. जल, 3. आर्द्र वनस्पति, 4. त्रसप्राणी, 5. स्वकाय, 6. परकाय, 7. तदुभय, 8. भावशस्त्र ।

(4) वनस्पति और मनुष्य की समानता-यह मनुष्य भी जन्म लेता है, वनस्पति भी जन्म लेती है । मनुष्य भी बढ़ता है, और वनस्पति भी बढ़ती है । मनुष्य भी चेतना युक्त है, वनस्पति भी चेतनायुक्त है । मनुष्य शरीर के छिन्न होने पर म्लान हो जाता है, वनस्पति भी छिन्न होने पर म्लान होती है । मनुष्य भी आहार करता है, वनस्पति भी आहार करती है । मनुष्य का शरीर भी अनित्य है, वनस्पति का शरीर भी अनित्य है । मनुष्य का शरीर भी अशाश्वत है, वनस्पति का शरीर भी अशाश्वत है । मनुष्य का शरीर भी आहार से उपचित होता है, आहार के अभाव में अपचित क्षीण व दुर्बल होता है, वनस्पति का शरीर भी इसी प्रकार उपचित और अपचित होता है । मनुष्य शरीर भी अनेक अवस्थाओं को प्राप्त करता है, वनस्पति शरीर भी अनेक अवस्थाओं को प्राप्त होता है ।

ऐसा जानकर बुद्धिमान व्यक्ति, वनस्पतिकायिक जीवों की हिंसा करते नहीं, दूसरों से कराते नहीं और करने वालों का अनुमोदन भी करते नहीं ।

(5) त्रसकाय-जो दिशा व विदिशाओं में सब ओर भयभीत हो, वहाँ से गमन करने में समर्थ होते हैं, उन्हें त्रस कहते हैं-त्रसजीव के आठ भेद बतलाये गये हैं-

1. **अण्डज**-अण्डे से उत्पन्न होने वाले पक्षी, कबूतर, मयूर आदि ।
2. **पोतज**-चर्ममय थैलों से उत्पन्न होने वाले हाथी आदि ।
3. **जरायुज**-गर्भ वेष्टन से झिल्ली के साथ उत्पन्न होने वाले गाय, भैंस आदि ।
4. **रसज**-दही आदि में रस बदलने पर जो जीव उत्पन्न होते हैं, जैसे-कृमि आदि ।
5. **संस्वेदज**-पसीने से उत्पन्न होने वाले-जूँ, लीख, खटमल आदि ।
6. **सम्मूर्च्छिम**-बाहरी हवा और ऊष्मा के संयोग से उत्पन्न होने वाले मकखी, मच्छर, कीट आदि ।
7. **उद्भिज्ज**-भूमि फोड़कर निकलने वाले-कीट, पतंगें आदि ।
8. **औपपातिक**-बिना गर्भ के उपपात रूप से सहसा उत्पन्न होने वाले देव, नारक आदि ।

अनेक संयमी साधक जीव-हिंसा में लज्जा का अनुभव करते हैं । फिर भी हम अनगार हैं, ऐसा कहते हुए भी अनेक प्रकार के शस्त्रों से त्रसकाय का आरम्भ करते हैं, उसके साथ अन्य अनेक प्राणियों की भी हिंसा करते हैं । भगवान् कहते हैं कि जो मनुष्य जीवन के लिये, मान-सम्मान और पूजा के लिये, जन्म-मरण और मुक्ति के लिये, दुःख का प्रतिकार करने के लिये, स्वयं भी त्रसकायिक जीवों की हिंसा करता है, दूसरों से कराता है तथा हिंसा करते हुए का अनुमोदन भी करता है तो यह हिंसा उसके अहित के लिये, अबोधि के लिये होती है ।

(6) वायुकाय-साधनाशील पुरुष हिंसा में आतंक देखता है, उसे अहितकारी मानता है। अतः वह वायुकायिक हिंसा से निवृत्त होने में समर्थ होता है।

आचारांग सूत्र के 7वें उद्देशक में वायुकायिक हिंसा-वर्जन के प्रसंग में कहा है कि-जो अपने आपको साधु मानते हुए अनेक प्रकार के शस्त्रों से वायुकाय का आरम्भ करते हैं, वे वायुकायिक जीवों का आरम्भ करते हुए अन्य अनेक जीवों की हिंसा करते हैं। भगवान ने इस विषय में विवेक बतलाया है कि जो मनुष्य वर्तमान जीवन के लिये, मान-सम्मान और महिमा के लिये, जन्म-मरण और मोक्ष के लिये, दुःख का प्रतिकार करने के लिये स्वयं वायु-शस्त्र का आरम्भ करता है, दूसरों से आरम्भ करवाता है तथा वायुकाय के आरम्भ करने वालों का अनुमोदन करता है, वह हिंसा उसके अहित के लिये होती है, वह अबोधि के लिए होती है।

वायुकायिक जीवों की विराधना से बचने के लिये षट्जीवनिका में दो वचन हैं “न फूमिज्जा न विएज्जा” फूँक नहीं देना और पंखे नहीं चलाना। इसके अतिरिक्त जिन क्रियाओं के वेग से वायु उत्पन्न हो उनमें भी संयम करने की शिक्षा दी गई है। भगवती सूत्र के 16 वें शतक के 2 उद्देशक में गौतम ने प्रभु से पूछा कि-शक्रेन्द्र महाराज सावद्य बोलते हैं या निरवद्य ? उत्तर में कहा है - ‘हे गौतम ! जब शक्रेन्द्र हाथ अथवा वस्त्र से मुँह को बिना ढंके बोलता है, तब सावद्य बोलता है और जब मुख को ढंककर बोलता है तो निरवद्य भाषा बोलता है।’ (सूत्र 8) इससे स्पष्ट हो जाता है कि खुले मुँह से बोलना वायुकाय की विराधना का कारण है।

टिप्पणी-

1. (क) अ. चू. पृ. 75 पउमिणीमादी उदगपुढविसिणेह संमुच्छिमा संमुच्छिमा।
 (ख) जि. चू. पृ. 138 संमुच्छिमा नाम जे विणा बीयेण पुढविवरिसादीणि कारणाणि पप्प उट्टे ति।
 (ग) हा. टी. पृ. 140 सम्मूर्च्छन्तीति संमूर्च्छिमाः प्रसिद्ध बीजाभावेन पृथिवीवर्षादिसमुद्-
 भवास्तथाविधास्तृणादयः न चैते न संभवति, दग्धभूमावपि संभवात्।
2. जि. चू. पृ. 138 सवीयगहणेण एतस्स चेव वणस्सइ कायस्स बीय पज्जवसाणा दसभेदा गहिया भवन्ति तं जहा-

मूले कंदे, खंधे, तथा य, साले तहप्पवाले य।

पत्ते, पुप्फे य फले बीए, दसमे य नायव्वा ॥

सम्मूर्च्छनज (संमुच्छिमा)

बाहरी वातावरण के संयोग से उत्पन्न होने वाले शलभ, चींटी, मक्खी आदि जीव सम्मूर्च्छनज कहलाते हैं। संमूर्च्छिम मातृ-पितृ हीन प्रजनन हैं। ये सर्दी गर्मी आदि बाहरी कारणों का संयोग पाकर उत्पन्न होते हैं। संमूर्च्छन का शाब्दिक अर्थ है-घना होने, बढ़ने या फैलने की क्रिया। जो जीव गर्भ के बिना उत्पन्न होते हैं, बढ़ते हैं और फैलते हैं, वे सम्मूर्च्छनज या सम्मूर्च्छिम कहलाते हैं। वनस्पति जीवों के सभी प्रकार सम्मूर्च्छिम होते हैं फिर भी उत्पादक अवयवों के विवक्षा-भेद से केवल उन्हीं को सम्मूर्च्छिम कहा है जिनका बीज प्रसिद्ध न हो और जो पृथ्वी, पानी और स्नेह के उचित योग से उत्पन्न होते हों।

॥ चतुर्थ अध्ययन की टिप्पणी समाप्त ॥



पाँचवाँ अध्ययन

पिण्डैषणा (भिक्षैषणा-विधि)

उपक्रम

पंचम अध्ययन का नाम पिण्डैषणा है इसके 2 उद्देशक हैं, जिनमें 150 गाथाएँ हैं। प्रथम उद्देशक में साधु-साध्वी के आहार-पानी की गवेषणा, ग्रहणैषणा और परिभोगैषणा की विधि बताई गई है। साधु भिक्षा के लिये कब, कैसे और कहाँ जावे, कैसे मार्ग से जावे, कैसे से नहीं, बतलाया गया है। जाने सम्बन्धी विधि-निषेध, आहार-ग्रहण के दोष, धौवन कैसा ले, कैसा नहीं, इसका वर्णन करते समय ‘अहुणा धोयं’ तत्काल के धोये पानी को लेने का निषेध किया है। आचारांग में धौवन के अन्यान्य प्रकार बतलाये गये हैं। गर्म जल और तथा प्रकार के निर्दोष आहार और अचित्त जल ग्रहण योग्य माना गया है। भिक्षा स्थल और उपाश्रय में आहार करने की विधि में, “इरियावहिया कायोत्सर्ग” गुरु के समक्ष आलोचना, स्वाध्याय-प्रस्थापन, स्वधर्मी साधुओं को निमन्त्रण आदि विचार मननीय हैं।

दूसरे उद्देशक की 50 गाथाओं में पात्र पोंछकर खाना, भिक्षा अपर्याप्त होने पर दूसरी बार जाने आदि की विधि का वर्णन किया गया है। यथाकाल भिक्षा आदि में जाने-आने का विधान, आहार-ग्रहण के शेष विधि-दोष एवं मादक पदार्थों का निषेध भी बताये गये हैं। तप-नियम की साधना में भी कपट करने वाले की दुर्गति होती है, इसका भी उल्लेख किया गया है। कहा गया है कि जो व्रत-नियम और तप का चोर होता है, वह मरकर कित्विषी देव के रूप में उत्पन्न होता है। जैसे-

तवतेणे वयतेणे, रूवतेणे य जे णरे,

आयार भावतेणे य, कुव्वइ देविकिव्विसं ॥ दशवैकालिक 5/46 ॥

आचारांग सूत्र के द्वितीय श्रुत स्कन्ध के पिण्डैषणा अध्ययन में विस्तार से पिण्डैषणा का वर्णन किया गया है, उसका यहाँ संक्षेप में कथन किया गया है। भिक्षु भिक्षैषणा की विधि को उत्कृष्ट संयत और ज्ञानवान से सीखकर संयमी और गुणवान होकर विचरे। उदाहरण के रूप में चूर्णिकार ने लिखा है कि एक दर्शनार्थी ने किसी कृशकाय साधु से पूछा-तपस्वी महाराज ! क्या अमुक तपस्वी आप ही हैं? महिमा-पूजा की आकांक्षा से प्रेरित होकर उस साधु ने अमुक तपस्वी नहीं होते हुए भी हाँ कह दी अथवा यह कह दिया कि साधु तपस्वी ही होता है। यह तपचोर का नमूना है। वाक्चोर-किसी संघाड़े में कोई धर्म कथा वाचक या वादी जैसा साधु

था। आगन्तुक ने पूछा—क्या आप धर्म कथा वाचक अथवा वादी हैं? महिमा पूजा के लिये चुप रहता है, या हाँ करता है, अथवा बोलता है—साधु ही धर्म कथा वाचक और वादी होते हैं। यह वचन—स्तेन रूप है। इसी प्रकार रूप—स्तेन, आचार—स्तेन और भाव—स्तेन को समझना चाहिये ॥ (जि.चू.पृ. 204)

प्रथम उद्देशक

सम्पत्ते भिक्षुकालम्भि, असंभंतो अमुच्छिओ ।

इमेण कमजोगेण, भत्तपाणं गवेसए ॥१॥

हिन्दी पद्यानुवाद—

भिक्षाकाल प्राप्त होने पर, आकांक्षा उद्वेग रहित ।

भक्त पान को ढूँढे मुनिजन, आगे कहे विधान सहित ॥

अन्वयार्थ—भिक्षुकालम्भि = भिक्षा का समय । **संपत्ते** = प्राप्त होने पर साधु । **असंभंतो** = मन की व्याकुलता एवं उद्वेग से मुक्त होकर । **अमुच्छिओ** = आहार आदि में मूर्च्छारहित होकर । **इमेण** = इस आगे बताये जाने वाली । **कमजोगेण** = विधि से । **भत्तपाणं** = आहार एवं पानी की । **गवेसए** = गवेषणा करे ।

भावार्थ—साधु जब भिक्षा का समय हो जाय तब जल्दबाजी और भोजन में मूर्च्छाभाव न लाते हुए, आगे क्रम से जो विधि बताई गई है, उसके अनुसार गृहस्थ के घरों में जाकर आहार—पानी की गवेषणा करे । साधु को संयम—यात्रा के निर्वाह और शरीर—धारण के लिये ही आहार करना बताया गया है ।

से गामे वा नगरे वा, गोयरग्गओ मुणी ।

चरे मंदमणुव्विग्गो, अव्वक्खित्तेण चेयसा ॥२॥

हिन्दी पद्यानुवाद—

चाहे ग्राम नगर में हो, भिक्षा लेने को गया श्रमण ।

अनुद्विग्न और शान्तचित्त हो, धीरे—धीरे करे गमन ॥

अन्वयार्थ—से मुणी = वह मुनि । **गामे वा, नगरे वा** = गाँव में अथवा नगर में । **गोयरग्गओ** = गोचरी के हेतु गया हुआ । **अणुव्विग्गो** = उद्वेग रहित । **अव्वक्खित्तेण चेयसा** = स्थिर शान्तचित्त से । **मंदं** = मन्द गति से । **चरे** = विधि पूर्वक चले ।

भावार्थ—भिक्षा के लिए गया हुआ साधु, गाँव या नगर में उद्वेग और चित्त की चंचलता रहित होकर (गाँव में उचित्त वस्तु की प्राप्ति नहीं होगी और नगर में दूर जाना पड़ेगा, इस तरह के विचारों से मन को उद्विग्न किये बिना) मन्द गति से जावे, क्योंकि मुनि के लिये भिक्षाचर्या भी तप है ।

पुरओ जुगमायाए, पेहमाणो महिं चरे ।
वज्जंतो बीयहरियाइं, पाणे य दगमट्टियं ॥३॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

निज शरीर परिमित आगे, धरा देखकर गमन करे ।
बीज हरी या प्राण सचित्त, मिट्टी जल का ना हनन करे ॥

अन्वयार्थ-पुरओ = सामने । जुगमायाए = चार हाथ अर्थात् अपने शरीर प्रमाण आगे । महिं = भूमि को । पेहमाणो = देखता हुआ । बीयहरियाइं = बीज तथा हरी वनस्पति । पाणे य = और बेइन्द्रियादि प्राणी । दगमट्टियं = तथा जल और मिट्टी का । वज्जंतो = वर्जन करता हुआ । चरे = चले ।

भावार्थ-इन दो गाथाओं में बताया जा रहा है कि, साधु को भिक्षा के लिए जाते समय कैसे चलना चाहिए-सबसे पहले मुनि चलते समय शरीर प्रमाण भूमि को आगे देखते हुए चले, कदाचित् मार्ग में कहीं बीज, धान्य के कण-मूंग, मोठ आदि, हरे पत्ते और कीड़े, मूंगे आदि प्राणी तथा सचित्त जल या मिट्टी हो तो इनका वर्जन करते हुए चले । बिना देखे चलने से जीव-हिंसा की सम्भावना हो सकती है ।

ओवायं विसमं खाणुं, विज्जलं परिवज्जए ।
संकमेण ण गच्छेज्जा, विज्जमाणे परक्कमे ॥४॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

निम्न भूमि या विषम स्थाणु, और पंकिल-पथ को मुनि छोड़े ।
शुभ पथ के होते विषम मार्ग, चल श्रमण न मर्यादा तोड़े ॥

अन्वयार्थ-परक्कमे = दूसरे मार्ग के । विज्जमाणे = विद्यमान होते हुए । ओवायं = जिस मार्ग में गड्ढा हो । विसमं = जो मार्ग ऊँचा-नीचा हो । खाणुं = जिस मार्ग में कटे हुए छोटे झाड़ के डंठल हों । परिवज्जए = उस मार्ग को छोड़ दे और । विज्जलं = कीचड़ से भरे होने से जिस मार्ग से जाते समय काठ या पत्थरादि से उस कीचड़ का उल्लंघन करना पड़े । संकमेण = उस कीचड़ भरे मार्ग को लाँघकर मुनिजन । ण गच्छेज्जा = नहीं जावे ।

भावार्थ-कभी मार्ग में चलते हुए गड्ढा, विषम जगह, खाणु और कीचड़ वाला स्थान हो तो मुनि उसको छोड़ दे । वैसे मार्ग में चलने से गिरने-पड़ने का भय रहता है । साधु अच्छा मार्ग होते हुए ईंट-लकड़ी आदि के बने अस्थायी कच्चे पुल आदि से गमन नहीं करे । जिस मार्ग से छोटे-बड़े जीवों की अच्छी तरह रक्षा की जा सके, वैसे ही मार्ग से गमन करे ।

पवडंते व से तत्थ, पक्खलंते व संजए ।
हिंसेज्ज पाणभूयाइं, तसे अदुव थावरे ॥५॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

वह वैसे पथ में गिर पड़े कहीं, या भ्रमवश वहाँ फिसल (रपट) जाये।

त्रस अथवा स्थावर प्राणी की, हिंसा विराधना हो जाये ॥

अन्वयार्थ—से संजए = वह साधु। व = यदि। तत्थ पवडंते = वहाँ गिरते हुए। व पक्खलंते = अथवा फिसलते हुए। तसे अदुव = त्रस अथवा। थावरे = स्थावर जीवों का। पाणभूयाइं = विकलेन्द्रियादि प्राणियों का। हिंसेज्ज = हनन करेगा।

भावार्थ—कुमार्ग से जाने वाला साधु यदि वहाँ कभी गिर गया अथवा फिसल गया तो हाथ-पैर आदि को चोट लगने से आत्म-विराधना एवं विकलेन्द्रि-यादि प्राणी और वनस्पति अथवा त्रस-स्थावर जीवों की हिंसा से संयम-विराधना का भागी होता है। ऐसे मार्ग में चलने से ईर्या समिति का पालन नहीं हो सकता।

तम्हा तेण ण गच्छेज्जा, संजए सुसमाहिए।

सइ अण्णेण मग्गेण, जयमेव परक्कमे ॥६॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

अतएव अन्य पथ के होते, आराधक मुनि उससे न चले।

त्रस स्थावर रक्षा के निमित्त, यतनापूर्वक पथ पर विचरे ॥

अन्वयार्थ—तम्हा तेण = इसलिये उस मार्ग से। सुसमाहिए = उत्तम समाधिवाला। संजए = साधु। अण्णेण मग्गेण = अन्य मार्ग के। सइ = होते हुए। ण गच्छेज्जा (गच्छिज्जा) = नहीं जावे। कदाचित् अन्य मार्ग न हो तो। जयमेव = यतना के साथ। परक्कमे = गमन करे।

भावार्थ—उन्मार्ग-गमन से आत्म-विराधना और संयम-विराधना का दोष लगना सम्भावित है, इसलिये उत्तम समाधिवाला साधु अच्छे मार्ग के होते हुए अन्य मार्ग से नहीं जावे। मार्गान्तर का अभाव होने पर चलना पड़े तो यतना से जावे, जिससे कि जीवों की हिंसा भी न हो और आत्म-विराधना से भी बचा जा सके।

इंगालं छारियं रासिं, तुसरासिं च गोमयं।

ससरक्खेहिं पाएहिं, संजओ तं णइक्कमे ॥७॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

रज सचित्तमय पैरों से, अंगार, भस्म भूसी चय को।

अथवा हो गोबर ढेर श्रमण, पथ में न लाँघ चले उनको ॥

अन्वयार्थ—संजओ = संयमी साधु। इंगालं = कोयलों के ढेर का। छारियं रासिं = राख की ढेरी का। तुसरासिं = भूसे के ढेर का। च = और। गोमयं = गोबर का। ससरक्खेहिं = सचित्त धूलि से भरे। पाएहिं = पैरों से। तं = उसका। णइक्कमे = अतिक्रमण नहीं करे।

भावार्थ—साधु सूक्ष्म-हिंसा का भी त्यागी होता है, अतः सचित्त जलादि के वर्जन की तरह, वह अचित्त पदार्थों में कोयले, भस्मी की ढेरी, तुष-धान्य के छिलके और गोबर का सचित्त पृथ्वी के रजकणों से भरे पैरों से अतिक्रमण नहीं करे। इस प्रकार इस गाथा में पृथ्वीकाय के जीवों की विराधना से बचने का मार्ग बताया गया है।

ण चरेज्ज वासे वासंते, महियाए वा पडंतिए ।

महावाए व वायंते, तिरिच्छसंपाइमेसु वा ॥८॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

बरस रही वर्षा, कुहरा गिरता या आंधी चलती हो ।

पथ चले न मुनि टिड्डी दल से, आक्रान्त अगर वह धरती हो ॥

अन्वयार्थ—वासंते = बरसात हो रही हो। वा = अथवा। महियाए = कुहरा के। पडंतिए = गिरते हुए। व महावाए = तथा महावात, आंधी के। वायंते = चलते रहने पर। वा तिरिच्छ संपाइमेसु = अथवा पतंगादि जीव भूमि पर गिर रहे हों, ऐसी स्थिति में। **ण चरेज्ज** = मुनि भिक्षा को नहीं जावे।

भावार्थ—भिक्षार्थ जाते समय यदि वर्षा हो रही हो, कुहरा गिर रहा हो अथवा महावात यानी अन्धड़ चल रहा हो, वैसे समय मुनि भिक्षा के लिए नहीं जावे, मार्ग में छोटे-बड़े संपाती कीट पतंगे आदि जीव गिर रहे हों, तब भी भिक्षा के लिये नहीं जाना चाहिये। (साधु 6 कारणों से आहार का परित्याग करता है, उसमें एक कारण 'पाणिदया व हेउ' प्राणियों की दया के लिये भी आहार छोड़ना बताया गया है)।

ण चरेज्ज वेससामंते, बंभचेरवसाणुए ।

बंभयारिस्स दंतस्स, हुज्जा तत्थ विसुत्तिया ॥९॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

वेश्या पाड़े में ब्रह्मव्रती, भिक्षा को कभी नहीं जाए।

चाहे हो दान्त ब्रह्मचारी, चंचल मन कहीं मोड़ जाए ॥

अन्वयार्थ—बंभचेरवसाणुए = ब्रह्मचर्य के वश में रहने वाला। वेससामंते = वेश्याओं के मुहल्ले में। **ण चरेज्ज** = नहीं जाये, क्योंकि। **तत्थ** = वहाँ वेश्याओं के मुहल्ले में। **दन्तस्स** = जितेन्द्रिय। **बंभयारिस्स** = ब्रह्मचारी के। **विसुत्तिया** = चित्त में चंचलता। **हुज्जा** = उत्पन्न हो सकती है।

भावार्थ—साधुओं के शीलधर्म की सुरक्षा के लिये कहा गया है कि ब्रह्मचर्य का वशवर्ती मुनि वेश्याओं के घरों के पास होकर नहीं जावे। वहाँ का वातावरण वासना को जागृत करने वाला होता है। अतः जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी के वेश्याओं के निवास-स्थान की ओर जाने से मन विकार मार्ग में मुड़ सकता है। इसलिये संयम-धर्म के पालन के लिये वेश्याओं के आवास के पास मुनि न जाए, क्योंकि वह मुनियों के योग्य स्थान नहीं है।

अणाययणे चरंतस्स, संसग्गीए अभिक्खणं ।
हुज्ज वयाणं पीला, सामण्णम्मि य संसओ ॥10॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

प्रतिकूल जगह में बार-बार, भिक्षा हेतु जाने के कारण ।
हो कष्ट महाव्रत पालन में, संदिग्ध हो साधुता का धारण ॥

अन्वयार्थ-अणाययणे = वेश्याओं का मौहल्ला धर्म का आयतन नहीं है, अतः । चरंतस्स = उसमें गमन करने वाले साधु को । अभिक्खणं = बार-बार के । संसग्गीए = संसर्ग से । वयाणं = मुनियों के व्रतों को । पीला हुज्ज (होज्ज) = बाधा पीड़ा हो सकती है । सामण्णम्मि य = और उसके श्रमण जीवन में । संसओ = संशय उत्पन्न हो सकता है ।

भावार्थ-साधना-विरोधी स्थानों में चलने वालों को और बार-बार उनका संसर्ग करने वालों को स्मरण-दर्शन आदि दोष उत्पन्न होने की आशंका रहती है । जैसा कि कहा गया है-

स्मरणं कीर्त्तनं केलिः, प्रेक्षणं गुह्यभाषणम् ।
संकल्पोऽध्यवसायश्च, क्रियानिवृत्तिरेव च ॥

इसमें बताये गये मैथुन के आठ अंगों में संसर्ग से ब्रह्मचर्य व्रत को पीड़ा होती है । व्रत की पीड़ा से संयमी को श्रमण-धर्म में सन्देह होने लगता है ।

तम्हा एयं वियाणित्ता, दोसं दुग्गइ-वड्ढणं ।
वज्जए वेससामंतं, मुणी एगंतमस्सिए ॥11॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

अतः एव दुर्दशावर्द्धक इन, दोषों का करके ज्ञान श्रमण ।
छोड़े वेश्या के पाड़े को, एकान्त मोक्ष में दे निज मन ॥

अन्वयार्थ-तम्हा = इसलिये । दुग्गइवड्ढणं = दुर्गति बढ़ाने वाले । एयं = ऊपर बताए गए इस । दोसं = दोष को । वियाणित्ता = जानकर । एगंतमस्सिए = एकान्त मोक्ष मार्ग का अभिलाषी । मुणी = आत्मारथी मुनि । वेससामंतं = वेश्याओं के मुहल्ले में । वज्जए = जाना छोड़ देवे ।

भावार्थ-इसलिए दुर्गति बढ़ाने वाले इस दोष को जानकर एकान्त मोक्षमार्ग का अनुगमन करने वाला मुनि वेश्या-पाड़े को छोड़ देवे ।

साणं सूइयं गाविं, दित्तं गोणं हयं गयं ।
संडिब्भं कलहं जुद्धं, दूरओ परिवज्जए ॥12॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

पागल कुत्ता नवब्याही गौ, मदमत्त सांड हाथी-घोड़े ।
शिशु-क्रीड़ा भूमि कलह झगड़ा, रह दूर श्रमण इनको छोड़े ॥

अन्वयार्थ—मार्ग की यतना विशेष रूप से बतलाते हैं—**साणं** = काटने वाला कुत्ता । **सूइयं गाविं** = नवप्रसूता गौ । **दित्तं गोणं** = मदोन्मत्त बैल । **हयं गयं** = घोड़ा और हाथी । **संडिब्भं** = बच्चों के खेलने का स्थान जहाँ हो । **कलहं** = लड़ाई-झगड़ा । **जुद्धं** = शस्त्र से युद्ध जहाँ हो रहा हो, ऐसे स्थानों को । **दूरओ** = दूर से ही । **परिवज्जए** = वर्जन करे ।

भावार्थ—भिक्षा के लिये गया हुआ साधु मार्ग में जहाँ कुत्ता हो, नवप्रसूता गौ और उन्मत्त बैल हो, घोड़ा तथा हाथी हो, बच्चों का क्रीड़ा स्थल हो, पाँच दस लोग जहाँ लड़ रहे हों, मार्ग में अस्त्र-शस्त्रों से युद्ध हो रहा हो, ऐसे स्थलों का दूर से वर्जन करे । (कुत्ते आदि के पास में जाने से शरीर को हानि, बच्चों में अप्रीति, लड़ाई में सम्मिलित समझे जाने आदि कारणों से संयमियों को ऐसे स्थानों से बचकर चलना ही हितकर है) ।

अणुन्नए नावणए, अप्पहिट्टे अणाउले ।
इंदियाणि जहाभागं, दमइत्ता मुणी चरे ॥13॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

अत्युच्च नहीं अथवा अवनत, न अति प्रसन्न गत व्याकुलता ।
भिक्षादि हेतु विचरे मुनिजन, कर क्रमिक दमन इन्द्रिय-सत्ता ॥

अन्वयार्थ—मार्ग में चलने की विधि बताते हैं—**मुणी** = भिक्षा आदि लेने हेतु चलते समय मुनि । **अणुन्नए** = अधिक ऊँचे होकर । **नावणए** = या अधिक नीचे होकर नहीं चले । **अप्पहिट्टे** = हँसता हुआ भी न चले । **अणाउले** = आकुल भाव रहित होकर चले । **इंदियाणि** = इन्द्रियों को । **जहाभागं** = अपने-अपने विषय में । **दमइत्ता** = वश में करके । **चरे** = गमन करे ।

भावार्थ—साधु गर्दन ऊँची करके या अधिक झुक कर नहीं चले, जिससे घमण्ड या दीनता प्रकट हो । भिक्षा लेने हेतु हँसते हुए और व्याकुल मन से चलते हुए जाना भी जन-मन में भ्रान्ति पैदा करने वाला हो सकता है । अतः साधु इन्द्रियों को अपने-अपने विषयों में यथायोग्य वश में करके चले ।

दवदवस्स ण गच्छेज्जा, भासमाणो य गोयरे ।
हसंतो णाभिगच्छेज्जा, कुलं उच्चावयं सया ॥14॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

दौड़ता बोलता तेजी से, भिक्षा में मुनिजन चले नहीं ।
कुल उच्च नीच में सदा चले, हँसते भी जाये कभी नहीं ॥

अन्वयार्थ-गोयरे = भिक्षा हेतु । दवदवस्स = शीघ्रतापूर्वक । न गच्छेज्जा = नहीं जावे । हसंतो = हँसता हुआ । य भासमाणो = और संभाषण करता हुआ । ण अभिगच्छेज्जा = नहीं जावे । उच्चावयं = छोटे-बड़े । कुलं = कुलों में । सया = सदा ईर्या-समिति पूर्वक जावे ।

भावार्थ-साधु संयमी है, इसलिए उसका चलना-घूमना भी यतना और विवेक से होना चाहिए । गौ की तरह अनेक घरों से अल्प-अल्प पिण्ड लेने वाला मुनि भिक्षा हेतु नीच-ऊँच कुलों में जाते समय कभी भी दबदब करते हुए तेज नहीं चले और न हँसता हुआ बातें करता-बोलता हुआ भी चले ।

आलोअं थिगलं दारं, संधिं दगभवणाणि य ।
चरंतो ण विणिज्झाए, संकट्टाणं विवज्जए ॥15॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

भिक्षा में गया न मुनि देखे, जाली, दरवाजा सेंध भीत ।
जलगृह-शंकित-स्थानों पर, टकटकी लगाना है वर्जित ॥

अन्वयार्थ-चरंतो = गोचरी हेतु विचरते हुए साधु । आलोअं = भवन के झरोखों को । थिगलं = दीवार के छिद्र को । दारं = दरवाजे को । संधिं = दो भीत की सन्धि को । दगभवणाणि य = और पानी रखने के स्थान को । ण विणिज्झाए = दृष्टि जमा कर न देखे । संकट्टाणं = शंका के स्थान हों, उनको । विवज्जए = दूर से ही वर्जन करे ।

भावार्थ-साधु जितेन्द्रिय और स्थिरमति होता है । कहा गया है कि वह चलते हुए किसी घर के झरोखे को, सुन्दर द्वार को, दो घरों के बीच की सन्धि और जल रखने के स्थान को दृष्टि जमा कर नहीं देखे । क्योंकि इन सबकी ओर देखने से साधु के शील-चारित्र्य में शंका हो सकती है । अतः संयमी सन्त ऐसे शंका-स्थानों का वर्जन करें ।

रण्णो गिहवईणं च, रहस्सारक्खियाणि य ।
संकिलेसकरं ठाणं, दूरओ परिवज्जए ॥16॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

राजा गृहपति रक्षक का, होवे जहाँ रहस्यागार ।
क्लेश विवर्द्धक उन पद को, तजे दूर से ही 'अनगार' ॥

अन्वयार्थ-रण्णो = राजा के । गिहवईणं च = और गृहपतियों के । य आरक्खियाणि = और नगर-रक्षक आदि के । रहस्स = गोपनीय स्थानों को । संकिलेसकरं = तथा संक्लेशकारी । ठाणं = स्थानों को । दूरओ = दूर से ही । परिवज्जए = वर्जन कर दे ।

भावार्थ—साधु छोटे-बड़े सब प्रकार के घरों में जाता है। उनमें राजा, गृहपति, सेठ और आरक्षकों के घरों में कुछ रहस्य-मन्त्रणा के स्थान होते हैं, जहाँ बिना अनुमति के हर कोई नहीं जा सकता। संयमी मुनि दूर से ही वैसे स्थानों का वर्जन करे।

**पडिकुट्टं कुलं न पविसे, मामगं परिवज्जए ।
अचियत्तं कुलं न पविसे, चियत्तं पविसे कुलं ॥१७॥**

हिन्दी पद्यानुवाद-

शास्त्र निषिद्ध घर में न जाये, नहीं कृपण के घर में भी ।
न प्रीति प्रतीति-रहित घर में जायें, हों जहाँ विचार सभी ॥

अन्वयार्थ—पडिकुट्टं = संयमी साधु निषिद्ध। कुलं = कुल में। न पविसे = प्रवेश नहीं करे। मामगं = निषेध करने वाले के यहाँ। परिवज्जए = नहीं जावे। अचियत्तं = अप्रीतिकारी। कुलं = कुल में। न पविसे = प्रवेश नहीं करे। चियत्तं = प्रीतिकारी। कुलं = कुल में ही। पविसे = प्रवेश करे।

भावार्थ—जैन श्रमण का स्थान बड़ा ही गौरवपूर्ण है। वह भिक्षाजीवी होकर भी सामान्य भिक्षाचर की तरह जैसे-तैसे माँगकर खाने वाला नहीं है। उसका नियम है कि वह शास्त्र या समाज द्वारा निषिद्ध कुल में व निन्दित कुल में नहीं जाता। जो अपने यहाँ साधु के आने की ना कहता हो उसके यहाँ भी नहीं जावे। जहाँ जाने से अप्रीति हो, उस कुल में प्रवेश नहीं करे और जहाँ जाने से प्रीति हो वैसे घर में ही प्रवेश करे।

**साणी-पावारपिहियं, अप्पणा नावपंगुरे ।
कवाडं नो पणुल्लिज्जा, उगहं सि अजाइया ॥१८॥**

हिन्दी पद्यानुवाद-

गृहपति की आज्ञा लिये बिना, ना बन्द कपाट साधु खोले ।
सन आदि रचित पर्दे को भी, वह अपने से न कभी खोले ॥

अन्वयार्थ—साणी-पावार-पिहियं = सन आदि के पर्दे से ढका हो। अप्पणा = वैसे द्वार को स्वयं। नावपंगुरे (णावपंगुरे) = नहीं खोले। कवाडं = कपाट को। सि = गृहपति की। उगहं (ओगहं) = अनुमति। अजाइया = बिना प्राप्त किये। नो (णो) = नहीं। पणुल्लिज्जा (पणोल्लिज्जा) = खोले।

भावार्थ—जैन साधु शिष्टाचार का ज्ञाता और विवेकशील होता है। गृहस्थ के घर में प्रवेश करते समय कहीं घर का द्वार सन के वस्त्र या टाटी आदि से ढका हो तो साधु गृहपति की आज्ञा लिये बिना पर्दा नहीं हटावे और कपाट को भी खोलकर भीतर प्रवेश नहीं करे। पास में खड़ा भाई-बहिन स्वयं खोल दे तथा वृक्ष-लता आदि का संघट्टा (स्पर्श) न हो, तो प्रवेश कर सकता है।

गोयरगपविट्टो य, वच्चमुत्तं न धारए ।
ओगासं फासुयं नच्चा, अणुन्नविय वोसिरे ॥19॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

मल मूत्र वेग को ना रोके, भिक्षा में गए हुए मुनिजन ।
प्रासुक स्थण्डिल में त्यागे, लेकर गृहस्थ आदेश वचन ॥

अन्वयार्थ-गोयरगपविट्टो य = और गोचरी में गया हुआ साधु । वच्चमुत्तं = मल-मूत्र की शंका । न (ण) धारए = नहीं रखे किन्तु । फासुयं = निर्जीव । ओगासं = अवकाश स्थान । नच्चा (णच्चा) = जानकर । अणुन्नविय (अणुण्णविय) = वहाँ अनुमति लेकर । वोसिरे = मल-मूत्रादि का विसर्जन करे ।

भावार्थ-गोचरी के लिये जाने वाला साधु, मल-मूत्र की शंका को नहीं रोके; कदाचित् ध्यान देते हुए भी कभी चलते मार्ग में शंका हो जाय तो, जीवजन्तु रहित निर्दोष स्थान ढूँढकर, घर वाले की अनुमति से वहाँ मलादि त्याग करे । मल-मूत्र को रोकने से शरीर में बाधा-पीड़ा हो सकती है और वह असमाधि का कारण हो सकता है ।

णीयं दुवारं तमसं, कुट्टगं परिवज्जए ।
अचक्खुविसओ जत्थ, पाणा दुप्पडिलेहगा ॥20॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

नीचे द्वार प्रकाश रहित, कोठे में भिक्षा करे नहीं ।
है जहाँ न आँखों का प्रसार, प्रतिलेखन सम्भव वहाँ नहीं ॥

अन्वयार्थ-णीयं दुवारं (नीयं दुवार) = नीचे द्वार वाले । तमसं = अन्धकार युक्त । कुट्टगं (कोट्टगं) = कोठे में । परिवज्जए = नहीं जावे । जत्थ = जहाँ पर । अचक्खुविसओ = चक्षु इन्द्रिय का विषय नहीं होता । पाणा = कीट-पतंगादि प्राणियों को । दुप्पडिलेहगा = जहाँ देखना कठिन होता है ।

भावार्थ-जैन साधु जीव दया प्रधान वृत्ति वाले होते हैं । इस दृष्टि से कहा गया है कि जिस घर का दरवाजा अधिक नीचा और अन्धकार पूर्ण हो साधु वहाँ नहीं जावे, क्योंकि वहाँ प्रकाश की बराबर पहुँच नहीं होने से कीट पतंगादि सूक्ष्म जीवों को देखना एवं उनकी रक्षा करना कठिन होता है ।

जत्थ पुप्फाइं बीयाइं, विप्पइण्णाइं कुट्टए ।
अहुणोवलित्तं उल्लं, दट्ठुणं परिवज्जए ॥21॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

जिस कोठे में हों सचित्त, बिखरे बहुबीज कुसुम नाना ।
जो गीला सद्य-लेपों से, मुनि देख करे वर्जित जाना ॥

अन्वयार्थ-जत्थ = जिस । कुट्टए (कोट्टए) = कोठे में । पुप्फाइं = फूल । बीयाइं = धान्यादि के बीज । विप्पइण्णाइं = इधर-उधर बिखरे हों । अहुणोवलित्तं = तथा जो तत्काल का लीपा हुआ हो । उल्लं = और गीला हो, ऐसे स्थान को । दट्ठूणं = देखकर । परिवज्जए = उस स्थान को साधु वर्जित करे अर्थात् वहाँ भिक्षा को न जावे ।

भावार्थ-षट्काय जीवों का रक्षक साधु जहाँ पर सचित्त फूल, धान्य आदि के बीज घर में बिखरे पड़े हों तथा तत्काल का लीपा हुआ जिस घर का आँगन गीला हो, ऐसे स्थान का साधु वर्जन कर दे ।

एलगं दारगं साणं, वच्छगं वावि कुट्टए ।
उल्लंघिया ण पविसे, विउहिताण व संजए ॥22॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

भेड़ श्वान बछड़ा बालक, या ऐसे ही हों जीव जहाँ ।
ना लाँघ और न हटा उनको, मुनि कभी प्रवेश न करे वहाँ ॥

अन्वयार्थ-कुट्टए (कोट्टए) = घर में प्रवेश करते द्वार पर । एलगं = भेड़ या बकरा । दारगं = बालक-बालिका । साणं = अथवा कुत्ता हो । वच्छगं = गाय का बछड़ा हो । वावि = अथवा, अन्य भी कोई प्राणी हो । उल्लंघिया = उनको लाँघ करके । व विउहिताणं = या उनको हटा करके । संजए = संयमी साधु । ण पविसे = प्रवेश नहीं करे ।

भावार्थ-घर के बाहर भेड़, बकरी, बालक, कुत्ता या बछड़ा बैठा हो, अथवा पाड़ा-पाड़ी आदि कोई अन्य प्राणी मार्ग में हों तो उनको लाँघ करके साधु को घर में नहीं जाना चाहिये । डर के मारे भेड़, बछड़े आदि भग जाएँ और कुत्ता काट खाए तो आत्म-विराधना और संयम-विराधना का दोष लगना सम्भव है ।

असंसत्तं पलोइज्जा, णाइदूरावलोयए ।
उप्फुल्लं ण विणिज्झाए, णिअट्टिज्ज अयंपिरो ॥23॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

आसक्ति रहित होकर देखे, अति दूर नजर दे नहीं देखे ।
अप्राप्त दशा में लौट चले, उत्फुल्ल भाव से ना देखे ॥

अन्वयार्थ-असंसत्तं = गृहस्थ के घर में, आसक्ति रहित । पलोइज्जा = देखे । णाइ दूरावलोयए = अधिक दूर दृष्टि नहीं फैलावे । उप्फुल्लं = उत्सुकतापूर्ण दृष्टि से । ण विणिज्झाए = नहीं देखे, किन्तु । अयंपिरो = बिना कुछ बोले । णिअट्टिज्ज = घर से निकल आवे ।

भावार्थ-मुनि गृहस्थ के घर में जाकर गृहस्थ की वस्तुओं को नजर गडाकर नहीं देखे । अति दूर भी नहीं देखे जिससे कि गृहपति को शंका उत्पन्न हो । घर में कोई मनोहर वस्तु नजर आए तो उसे टकटकी लगाकर नहीं देखे । कदाचित् भिक्षा-लाभ न भी हो तो बिना बोले लौट जावे ।

अइभूमिं ण गच्छेज्जा, गोयरग्गओ मुणी ।
कुलस्स भूमिं जाणित्ता, मियं भूमिं परक्कमे ॥24॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

सीमा से आगे बढ़े नहीं, भिक्षार्थ गया हो जहाँ श्रमण ।
घर की मर्यादा भूमि जान, उस सीमा तक ही करे गमन ॥

अन्वयार्थ-गोयरग्गओ = गोचरी के लिये गया हुआ । मुणी = मुनि । अइभूमिं = गृहस्थ के यहाँ मर्यादित भूमि से आगे । ण (न) गच्छेज्जा = नहीं जावे । कुलस्स = कुल की । भूमिं = भूमि सम्बन्धी मर्यादा को । जाणित्ता = जानकर । मियं भूमिं = परिमित भूमि में । परक्कमे = गमन करे ।

भावार्थ-आहार-पानी के लिये गृहस्थ के घर में गया हुआ साधु मर्यादित भूमि से आगे नहीं जावे । घर की मर्यादित भूमि को जानकर, उतने ही मर्यादित क्षेत्र में गमन करे, जिससे कि गृहपति को किसी प्रकार की अप्रीति उत्पन्न नहीं हो ।

तत्थेव पडिलेहिज्जा, भूमिभागं वियक्खणो ।
सिणाणस्स य वच्चस्स, संलोगं परिवज्जए ॥25॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

जिस भूमि भाग पर खड़ा श्रमण, प्रतिलेखन मात्र करे उसका ।
देखे न भूलकर भी वह मुख, स्नान मूत्र शौचालय का ॥

अन्वयार्थ-तत्थेव = वहाँ गृहस्थ के घर में । वियक्खणो = विचक्षण मुनि । भूमिभागं = उस मर्यादित भूमि को । पडिलेहिज्जा = प्रतिलेखन करे । सिणाणस्स = स्नान घर । य = और । वच्चस्स = शौच घर की ओर । संलोगं = नजर से देखना । परिवज्जए = वर्जन करे ।

भावार्थ-विचक्षण मुनि घर की मर्यादित भूमि को अच्छी तरह देखकर खड़ा रहे, किन्तु घर में स्नान

घर अथवा शौचालय की ओर नहीं देखे। क्योंकि ये स्थान रागोत्पत्ति के कारण और मन में चंचलता उत्पन्न करने वाले हैं।

**दग-मट्टिय-आयाणे, बीयाणि हरियाणि य ।
परिवज्जंतो चिट्ठिज्जा, संव्विंदिय समाहिए ॥26॥**

हिन्दी पद्यानुवाद-

जल मिट्टी लाने का पथ जो, और हरित बीज का भी वध है ।
हो खड़ा श्रमण उससे हटकर, कारण इन्द्रिय-संयम व्रत है ॥

अन्वयार्थ-संव्विंदिय = सब इन्द्रियों से। **समाहिए** = समाधि वाला मुनि। **बीयाणि** = धान्य आदि के बीज। **हरियाणि** = हरी दूब आदि। **य** = और। **दग मट्टिय** = सचित्त जल और मिट्टी के। **आयाणे** = स्थान को। **परिवज्जंतो** = वर्जन करता हुआ। **चिट्ठिज्जा (चिट्ठेज्जा)** = यतना से खड़ा रहे।

भावार्थ-साधु गृहस्थ के घर में सचित्त जल, मिट्टी रखने के स्थान तथा धान्य के बीज और हरे पत्ते आदि को बचाते हुए सभी इन्द्रियों को वश में रखते हुए यतना से खड़ा रहे। साधु का शान्त खड़ा रहना भी गृहस्थ को मूक भाषा में उपदेश का कारण होता है।

**तत्थ से चिट्ठमाणस्स, आहरे पाणभोयणं ।
अकप्पियं ण गिण्हिज्जा, पडिगाहिज्ज कप्पियं ॥27॥**

हिन्दी पद्यानुवाद-

उस मुनि के हित में खड़े वहाँ, दाता जो देवे पान-अशन ।
यदि अकल्प्य है तो ले न उसे, जो कल्प्य उसी को करे ग्रहण ॥

अन्वयार्थ-तत्थ = उस मर्यादित भूमि पर। **चिट्ठमाणस्स** = खड़े रहे हुए। **से** = उस मुनि को, गृहपति। **पाण भोयणं** = आहार-पानी। **आहरे** = लाकर दें। **अकप्पियं** = अकल्पनीय आहार आदि को। **ण गिण्हिज्जा** = ग्रहण नहीं करे, किन्तु। **कप्पियं** = कल्पनीय हो तो। **पडिगाहिज्ज** = ग्रहण कर ले।

भावार्थ-घर में आये हुये साधु को गृहस्थ आहार-पानी लाकर देने लगे तो उनमें जो मुनि धर्म की मर्यादा के अनुसार ग्राह्य हो उसी को ग्रहण करे। जो ग्राह्य नहीं हो उसको ग्रहण नहीं करे।

**आहरंती सिया तत्थ, परिसाडिज्ज भोयणं ।
दितियं पडियाइक्खे, ण मे कप्पइ तारिसं ॥28॥**

हिन्दी पद्यानुवाद-

भिक्षा लाने वाली यदि, दे गिरा वहाँ पर वह भोजन ।

उस देने वाली से बोले, मुनि कल्प्य न यह मुझको भोजन ॥

अन्वयार्थ-तत्थ = वहाँ घर में । आहरंती = आहार लाने वाली बहन । सिया = कदाचित् । भोयणं = आहार-पानी को । परिसाडिज्ज = नीचे गिरा दे तो । दितियं = देने वाली को । पडियाइक्खे = निषेध की भाषा में कहे कि । तारिसं = इस प्रकार का आहार-पानी । मे = मुझे । ण कप्पइ = ग्रहण करना नहीं कल्पता है ।

भावार्थ-गृहस्थ के घर में आहार देने वाले दाता/दात्री कदाचित् आहार लाते हुए, भोज्य पदार्थ के अंश को नीचे गिरा दे तो साधु उसकी भिक्षा ग्रहण नहीं करे, किन्तु दाता-दात्री से कह दे कि मुझको ऐसा परिशाटित भोजन ग्रहण करना नहीं कल्पता (अर्थात् मुझे यह आहार नहीं लेना है) ।

संमद्दमाणी पाणाणि, बीयाणि हरियाणि य ।

असंजमकरिं णच्चा, तारिसं परिवज्जए ॥29॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

सम्मर्दन करती प्राणी का, बहु-बीज वनस्पति कायिक का ।

यह जान असंयम वाली है, मुनि करे त्याग उस दात्री का ॥

अन्वयार्थ-पाणाणि = विकलेन्द्रिय प्राणियों को । बीयाणि = धान्य के बीजों को । य = और । हरियाणि = हरे पत्ते आदि को । संमद्दमाणी = पैरों से कुचलती हुई भिक्षा देवे तो । असंजमकरिं = असंयम करने वाली दात्री को । णच्चा = जानकर । तारिसं = वैसे आहार का । परिवज्जए = साधु वर्जन कर दे ।

भावार्थ-किसी जगह देने वाली दात्री कीट-पतंगादि प्राणियों, धान्य के बीजों और हरित पत्ते आदि को पैरों से मर्दन करती-कुचलती हुई आहार दे तो उसको असंयम करने वाली जानकर साधु वैसा आहार ग्रहण नहीं करे ।

साहट्टु णिक्खिवित्ताणं, सचित्तं घट्टियाण य ।

तहेव समणट्ठाए, उदगं संपणुल्लिया ॥30॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

संहरण साधु-हित में करके, निक्षेप सचित्त को छूकर के ।

वैसे सचित्त अप्कायिक को, उधर से इधर हिलाकर के ॥

अन्वयार्थ-तहेव = उसी प्रकार। समणट्टाए = साधु के लिये दाता। सचित्तं = सचित्त पदार्थ को। साहट्टु = अचित्त में मिलाकर अथवा। घट्टियाण (घट्टियाणि) = संघट्टा करके। य = और। णिक्खित्ताणं = सचित्त को अचित्त पर रखकर। उदगं = सचित्त पानी। समणट्टाए = साधु के लिये। संपणुल्लिया = हिलाकर देवे।

भावार्थ- इसी प्रकार साधु के लिये, सचित्त पदार्थ को एक पात्र से दूसरे में रखकर, संघट्टा करके अचित्त पर सचित्त को रखकर तथा सचित्त पानी इधर-उधर हिलाकर आहार देवे (तो वह अकल्पनीय है)।

ओगाहइत्ता चलइत्ता, आहरे पाण-भोयणं ।

दितियं पडियाइक्खे, ण मे कप्पइ तारिसं ॥31॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

सचित्त जल में कर प्रवेश, देवे आहार तथा पानी ।

मुनि कहे गोचरी-दात्री से, ऐसा न कल्प्य भोजन पानी ॥

अन्वयार्थ-ओगाहइत्ता = सचित्त पानी में प्रवेश करके। चलइत्ता = सचित्त पानी में चलकर। पाण भोयणं = आहार-पानी। आहरे = देवे तो। दितियं = देती हुई उसे दात्री से, साधु। पडियाइक्खे = कहे कि। तारिसं = इस प्रकार का आहार-पानी। मे = मुझे। ण = नहीं। कप्पइ = कल्पता है।

भावार्थ-वर्षा आदि के पानी में घुसकर तथा पानी में चलकर, आहार लाकर देवे तो मुनि देने वाली से निषेध की भाषा में कह दे कि उसे वैसा आहार ग्रहण करना नहीं कल्पता है।

पुरेकम्मेण हत्थेण, दव्वीए भायणेण वा ।

दितियं पडियाइक्खे, ण मे कप्पइ तारिसं ॥32॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

पुरः कर्मयुत् हाथों से, चमचा या भोजन-भाजन से ।

मुझको न कल्पता है ऐसा, मुनि कहे गोचरी-दात्री से ॥

अन्वयार्थ-पुरेकम्मेण = देने से पहले जहाँ सचित्त जल का आरम्भ हो। हत्थेण = ऐसे हाथ से। दव्वीए = चम्मच से। वा = अथवा। भायणेण = भाजन से। दितियं = आहारादि देने वाली दात्री से साधु। पडियाइक्खे = निषेध की भाषा में कहे कि। मे = मुझको। तारिसं = ऐसा पुरः कर्मयुक्त आहारादि। ण कप्पइ = ग्रहण करना नहीं कल्पता है।

भावार्थ-पुरः कर्म वाले हाथ, चम्मच या बर्तन से आहार देवे तो साधु देने वाली से निषेध करते हुए कहे कि उसे वैसा आहार ग्रहण करना नहीं कल्पता है।

एवं उदउल्ले ससिणिद्धे, ससरक्खे, मट्टिया ऊसे ।
हरियाले हिंगुलए, मणोसिला अंजणे लोणे ॥३३॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

ऐसे गिरते जल बिन्दु युक्त, थोड़ा गीला या रज सचित्त ।
मिट्टी हरताल क्षार मिट्टी, हिंगुलु और मैणसिल अंजन ॥

अन्वयार्थ-एवं = ऐसे ही । उदउल्ले = सचित्त जल से गीले हाथों से । ससिणिद्धे = गीली रेखा वाले हाथों से । ससरक्खे = सचित्त रज से भरे । मट्टिया = सचित्त मिट्टी । ऊसे (उसे) = खार । हरियाले = हरताल । हिंगुलए (हिंगुलए) = हिंगलू । मणोसिला = मैणसिल । अंजणे = अंजन । लोणे = सचित्त नमक ।

भावार्थ-ऐसे पुरः कर्म के समान, सचित्त जल से गीले हाथ, गीली रेखा वाले हाथ, सचित्त रज से भरे हुए, सचित्त मिट्टी, ओस (क्षार), हरताल, हिंगुलु, मैणसिल, अंजन और कच्चे नमक से भरे (हाथों से भिक्षा दे तो उसे भिक्षु न ले) ।

गेरुय-वण्णिय-सेढिय, सोरट्टिय-पिट्ट कुक्कुस-कए य ।
उक्किट्टमसंसट्ठे, संसट्ठे चेव बोद्धव्वे ॥३४॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

लवण सचित्त मिट्टी पीली, गेरू खड़िया गोपी चन्दन ।
तत्काल पिसा आटा कुक्कुस, तुष भुस संपुत कूटा तत्क्षण ॥
फल के काटे टुकड़ों से, हो हाथ तथा पात्रादि सने ।
या लिप्त अलिप्त बनाया हो, फिर भी उससे भिक्षा ना लें ॥

अन्वयार्थ-गेरुय (गेरूय) = गेरू । वण्णिय = पीली मिट्टी । सेढिय (सेडिय) = सफेद खड़िया मिट्टी । सोरट्टिय = फिटकरी । पिट्ट = तत्काल का पिसा हुआ शालि का आटा । कुक्कुस कए य = तत्काल के कूटे हुए धान, कुक्कुस और । उक्किट्ठं = फलों के टुकड़े । चेव = और इनसे । संसट्ठे = हाथ भरे हुये । असंसट्ठे = या बिना भरे । बोद्धव्वे = समझ लेना चाहिये ।

भावार्थ-गेरू, पीली मिट्टी, सफेद खड़िया मिट्टी, फिटकरी, तत्काल का पिसा हुआ शालि आदि का आटा, ऊखल में कूटे हुए छिलके कुक्कुस, फलों के टुकड़े, इनसे हाथ आदि बिना भरे या भरे हुए से भिक्षा नहीं ले, ऐसा समझ लेना चाहिये ।

असंसद्वेण हत्थेण, दव्वीए भायणेण वा ।
दिज्जमाणं न इच्छेज्जा, पच्छाकम्मं जहिं भवे ॥३५॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

असंसृष्ट कर से अथवा, कुड़छी या वैसे भाजन से ।
देती भिक्षा ना ग्रहण करे, हो पश्चात्कर्म जहाँ तन से ॥

अन्वयार्थ-असंसद्वेण = बिना भरे-अलिप्त । हत्थेण = हाथ । दव्वीए = चम्मच । वा = अथवा ।
भायणेण = भाजन से । दिज्जमाणं = दिये जाने वाले आहारादि को मुनि । न इच्छेज्जा (न इच्छेज्जा)
= लेने की इच्छा नहीं करे । जहिं = जहाँ सचित्त जल आदि का आरम्भ । भवे = होने की सम्भावना हो ।
पच्छाकम्मं = वहाँ पश्चात् कर्म का दोष लगता है ।

भावार्थ-जिस भिक्षा लेने के बाद सचित्त जल आदि का आरम्भ हो उसे पश्चात्कर्म दोष कहते हैं ।
साधु बिना भरे हाथ, चम्मच अथवा बर्तन से दी जाने वाली भिक्षा को लेने की इच्छा नहीं करे, कारण कि इसमें
पश्चात्कर्म का दोष लगता है ।

संसद्वेण य हत्थेण, दव्वीए भायणेण वा ।
दिज्जमाणं पडिच्छिज्जा, जं तत्थेसणियं भवे ॥३६॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

व्यंजनादि से लिप्त हाथ, कुड़छी या वैसे भाजन से ।
दी जाती वैसी भिक्षा में, निर्दोष ग्रहण कर ले मन से ॥

अन्वयार्थ-संसद्वेण य = और देने की वस्तु से भरे हुए । हत्थेण = हाथ । दव्वीए = चम्मच । वा
= या । भायणेण = पात्र से । दिज्जमाणं = दिया जाने वाला आहार । जं = जो । तत्थ = वहाँ । एसणियं
= निर्दोष । भवे = हो तो साधु । पडिच्छिज्जा (पडिच्छेज्जा) = स्वीकार करे ।

भावार्थ-जहाँ भरे हुए हाथ, चम्मच अथवा बर्तन, दी जाने वाली वस्तु निर्दोष हो, तो साधु उसको
ग्रहण करे ।

दुण्हं तु भुंजमाणाणं, एगो तत्थ निमंतए ।
दिज्जमाणं ण इच्छिज्जा, छंदं से पडिलेहए ॥३७॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

मिलकर दो खाने वालों में, करे निमन्त्रित एक जहाँ ।
ना ले वैसी भिक्षा मुनि, देखे दाता का भाव वहाँ ॥

अन्वयार्थ-भुंजमाणाणं = खाने वाले। दुण्हं (दोण्हं) = दो व्यक्तियों में। तत्थ = वहाँ। एगो = एक व्यक्ति। निमंतए तु = निमन्त्रण दे, तो। दिज्जमाणं = साधु दिये जाने वाले आहार को। ण = नहीं। इच्छिज्जा (इच्छेज्जा) = चाहे। से = उस दूसरे एक के। छंदं = भाव को। पडिलेहए = देखे-समझे।

भावार्थ-जहाँ पर दो व्यक्ति साथ में खाना खा रहे हों, उन में से एक निमन्त्रित करे तो साधु उस आहार को लेने की इच्छा नहीं करे। वह दूसरे व्यक्ति की भावना देखे। बिना दूसरे की भावना के, सम्मिलित भोजन में से आहार ग्रहण नहीं करे।

दुण्हं तु भुंजमाणाणं, दो वि तत्थ निमंतए ।
दिज्जमाणं पडिच्छिज्जा, जं तत्थेसणियं भवे ॥३८॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

दो खाने वाले यदि मुनि को, दोनों साथ-साथ आमन्त्रण दे।
उनमें जो कल्पनीय जाने, दाता से वह स्वीकार करे ॥

अन्वयार्थ-भुंजमाणाणं = खाने वाले। दुण्हं = दो व्यक्तियों में से। दोवि = वे दोनों, इच्छा से। तत्थ = वहाँ। निमंतए तु = निमन्त्रण दे तो। दिज्जमाणं = दिये जाने वाले भोजन में। तत्थं जं एसणियं = वहाँ जो निर्दोष। भवे = वस्तु हो। पडिच्छिज्जा = उसको मुनि ग्रहण करे।

भावार्थ-दो व्यक्ति साथ-साथ भोजन कर रहे हों, उनमें से दोनों मुनि को निमन्त्रित करें तो दिये जाने वाले आहार में से जो निर्दोष हो, उसे मुनि ग्रहण कर सकते हैं।

गुव्विणीए उवण्णत्थं, विविहं पाणभोयणं ।
भुंजमाणं विवज्जिज्जा, भुत्तसेसं पडिच्छए ॥३९॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

गर्भवती के पोषण हित में, निर्मित विविध पान-भोजन।
खाती हो तो वर्जित कर दे, भुक्त-शेष मुनि करे ग्रहण ॥

अन्वयार्थ-गुव्विणीए = गर्भवती के लिये। विविहं = अनेक प्रकार का। पाण भोयणं = आहार-पानी। उवण्णत्थं = बनाया गया पदार्थ। भुंजमाणं = उसके द्वारा खाया जाता हो तो। विवज्जिज्जा = छोड़ दें। भुत्तसेसं = खाने से बचा हो तो। पडिच्छए = ग्रहण करे।

भावार्थ-गर्भवती के लिये जो अनेक प्रकार का आहार-पानी बनाया गया है। वह यदि गर्भवती खा

रही हो तो उसे छोड़ दे और खाने से बचा हो मुनि वही ग्रहण करे। उसके आवश्यक पोषण में अन्तराय न आवे, इसका ध्यान रखे।

सिया य समणट्ठाए, गुव्विणी कालमासिणी ।

उट्ठिआ वा निसीइज्जा, निसण्णा वा पुणुट्ठाए ॥40॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

मुनि हित कोई गर्भवती, जो हो अतिशीघ्र प्रसव वाली ।

भिक्षा हेतु उत्थित वह बैठे, या बैठी फिर हो जाय खड़ी ॥

अन्वयार्थ-सिया य = और कदाचित् । कालमासिणी = प्रसव के निकट समय वाली । गुव्विणी = गर्भवती दात्री । समणट्ठाए = साधु को देने के लिये । उट्ठिआ = खड़ी हुई । निसीइज्जा = बैठ जाय । वा = अथवा । निसण्णा वा = बैठी हुई । पुणुट्ठाए = पुनः खड़ी हो जाए ।

भावार्थ-कदाचित् कोई पूरे मास वाली गर्भवती दात्री साधु को आहार देने के लिये खड़ी हुई बैठ जाय अथवा बैठी हुई फिर खड़ी हो जाय तो..... ।

तं भवे भत्तपाणं तु, संजयाण अकप्पियं ।

दितियं पडियाइक्खे, ण मे कप्पइ तारिसं ॥41॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

उससे मिलने वाला भोजन, मुनि जन को है ग्राह्य नहीं ।

मुनि भिक्षा दात्री से बोले, मुझको ऐसा है कल्प्य नहीं ॥

अन्वयार्थ-तं = वह । भत्तपाणं तु = आहार-पानी । संजयाण = साधुओं के लिये । अकप्पियं = अग्राह्य । भवे = होता है, इसलिये । दितियं = देने वाली से । पडियाइक्खे = बोले कि । मे = मुझको । तारिसं = वैसा आहार लेना । ण कप्पइ = नहीं कल्पता है ।

भावार्थ-साधुओं के लिये वह आहार-पानी अग्राह्य होता है । अतः साधु देने वाली से स्पष्ट कह दे कि वैसा आहार उसको लेना योग्य नहीं है ।

थणगं पिज्जमाणी, दारगं वा कुमारियं ।

तं निक्खिवित्तु रोयंतं, आहरे पाणभोयणं ॥42॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

दूध पिलाती पुत्र-पुत्रियों को, रोते छोड़ धरा ऊपर ।

नारी देवे अशन-पान तो, मुनि दे उसको वर्जित कर ॥

अन्वयार्थ-दारुणं = बालक । वा = अथवा । कुमारियं = बालिका को । थणगं = स्तन । पिज्जमाणी = पान कराती हुई दात्री । तं = उसको । निक्खिवित्तु रोयंतं = रोते छोड़कर । पाण भोयणं = आहार-पानी । आहरे = लाकर देवे ।

भावार्थ-पुत्र-पुत्रियों को दुग्ध पान कराती हुई यदि कोई दात्री उनको रोते छोड़कर साधु-साध्वी को आहार लाकर देवे तो..... ।

तं भवे भत्तपाणं तु, संजयाण अकप्पियं ।
दितियं पडियाइक्खे, ण मे कप्पइ तारिसं ॥४३॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

वह अशन-पान मुनि के हित में, होता है निश्चय ग्राह्य नहीं ।
मुनि बोले भिक्षादात्री से, मुझको यह भोजन कल्प्य नहीं ॥

अन्वयार्थ-तं = वह । भत्तपाणं तु = आहार-पानी । संजयाण = साधुओं के लिये । अकप्पियं = अग्राह्य । भवे = होता है । दितियं = देने वाली से । पडियाइक्खे = निषेध करते हुए कहे कि । तारिसं = वैसा आहार । मे = मुझको । ण कप्पइ = नहीं कल्पता है ।

भावार्थ-साधुओं के लिये वह आहार अग्राह्य होता है, इसलिये साधु देने वाली को निषेध करते हुए कहे कि मुझको वैसा आहार नहीं कल्पता है ।

जं भवे भत्तपाणं तु, कप्पाकप्पम्मि संकियं ।
दितियं पडियाइक्खे, ण मे कप्पइ तारिसं ॥४४॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

कल्प्य अकल्प्य विषय में शंकित, जो होवे भोजन पानी ।
भिक्षा दात्री को मुनि बोले, मुझे न लेना वह अन्न पानी ॥

अन्वयार्थ-जं = जो । भत्तपाणं तु = आहार-पानी । कप्पाकप्पम्मि = ग्राह्य-अग्राह्य में । संकियं = शंकायुक्त । भवे = हो, वैसा आहार कोई दे तो साधु । दितियं = देने वाली से । पडियाइक्खे = कहे कि । मे = मुझे । तारिसं = ऐसा आहार लेना । ण कप्पइ = नहीं कल्पता है ।

भावार्थ-जिस आहार के विषय में कल्प्य-अकल्प्य की या सदोषता निर्दोषता की शंका हो जाय और वैसा आहार कोई देना चाहे, तो साधु देने वाली से कहे कि इस प्रकार का आहार मुझको लेना नहीं कल्पता है ।

दगवारेण-पिहियं, नीसाए पीढेण वा ।
लोढेण वा वि लेवेण, सिलेसेण वि केणइ ॥45॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

सजल कुम्भ या पिष्ट-शिला से, तथा काष्ठ के पीढे से ।
लोढे मिट्टी लेप आदि वा, लाख श्लेष के गोले से ॥

अन्वयार्थ-दगवारेण = पानी के घड़े से । नीसाए = चाकी से । वा = अथवा । पीढेण = काष्ठ के पीठ से । लोढेण = पीसने के लोढ़े से । पिहियं = ढका हो । वा वि लेवेण = अथवा मिट्टी आदि के लेप । वि = भी । केणइ (केणई) = किसी । सिलेसेण = लाख आदि के श्लेष से ।

भावार्थ-अशनादि खाद्य वस्तु यदि पानी के घड़े से, चक्की, काष्ठ-पीठ, पीसने के लोढ़े से अथवा मिट्टी के लेप तथा लाख आदि श्लेष से चिपका कर ढका हो ।

तं च उब्भिंदिया दिज्जा, समणट्ठाए व दावए ।
दितियं पडियाइक्खे, ण मे कप्पइ तारिसं ॥46॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

बंद पात्र का भेदन कर, यदि मुनि के लिये स्वयं देवे ।
या दिलवाये तो दात्री को, है कल्प्य नहीं यह साधु कहे ॥

अन्वयार्थ-च तं = और उस ढके पात्र को । समणट्ठाए व = साधु के लिये । दावए = दाता । उब्भिंदिया = खोलकर के आहारादि । दिज्जा = दे तो साधु । दितियं = देने वाली से । पडियाइक्खे = कहे कि । मे = मुझको । तारिसं = वैसा आहार ग्रहण करना । ण कप्पइ = नहीं कल्पता है ।

भावार्थ-साधु के लिये उसका उद्भेदन कर दाता देवे तो, देने वाली से साधु कहे कि वैसा आहार मुझे लेना कल्पता नहीं है ।

असणं पाणगं वा वि, खाइमं साइमं तहा ।
जं जाणिज्ज सुणिज्जा वा, दाणट्ठा पण्डं इमं ॥47॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

अशन पान खादिम या स्वादिम, दान हेतु जो रक्षित है ।
अगर जान ले या सुन ले तो, वह हो जाता वर्जित है ॥

अन्वयार्थ-असणं = अशन-आहार । पाणगं = द्राक्षा पानक आदि । वा = अथवा । खाइमं = खाद्य मेवा । तहा = तथा । साइमं वि = स्वादिम चूर्ण लवंग आदि भी । जं जाणिज्ज = जिसको जाने । वा = अथवा । सुणिज्जा = सुने कि । इमं = यह पदार्थ । दाणट्टा = दान के लिये । पगडं = बनाया गया है ।

भावार्थ-यह अशन, पानक, खाद्य-मेवा, स्वाद्य-लवंगादि पदार्थ दान के लिये बनाया गया है, ऐसा जाने अथवा सुने तो..... ।

तं भवे भत्तपाणं तु, संजयाण अकप्पियं ।
दिंतियं पडियाइक्खे, ण मे कप्पइ तारिसं ॥४८॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

फिर वह अशनादि साधुजनों के, हित में होता ग्राह्य नहीं ।
दात्री को बोले मुनिवर है, मुझको ऐसा कल्प्य नहीं ॥

अन्वयार्थ-तं = वह । भत्तपाणं तु = आहार-पानी । संजयाण = साधुओं के लिये । अकप्पियं = अग्राह्य । भवे = होता है, साधु । दिंतियं = देने वाली से । पडियाइक्खे = कहे कि । मे = मुझको । तारिसं = वैसा आहार लेना । ण कप्पइ = नहीं कल्पता है ।

भावार्थ-वह आहार-पानी साधुओं के लिये अग्राह्य है । अतः साधु देने वाली को निषेध करते हुए, कहे कि वैसा आहार मुझको लेना उचित नहीं है ।

असणं पाणगं वा वि, खाइमं साइमं तहा ।
जं जाणिज्ज सुणिज्जा वा, पुण्णट्टा पगडं इमं ॥४९॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

अशन पान खादिम या स्वादिम, पुण्य हेतु जो निर्मित है ।
सुन ले या जाने ऐसा तो, वह मुनियों को वर्जित है ॥

अन्वयार्थ-असणं = अशन-आहार । पाणगं = द्राक्षापानक आदि । वा = अथवा । खाइमं वि = खाद्य-मेवा भी । तहा = तथा । साइमं = स्वाद्य के सम्बन्ध में । जं जाणिज्ज = जाने । वा = अथवा । सुणिज्जा = सुन ले कि । इमं = यह आहार । पुण्णट्टा = पुण्य के लिये । पगडं = बनाया गया है ।

भावार्थ-जो अशन, पानक, खाद्य-मेवा, स्वाद्य-लवंगादि पदार्थ जो पुण्य के लिये बनाया गया है, ऐसा जाने अथवा सुने तो..... ।

तं भवे भत्तपाणं तु, संजयाण अकप्पियं ।
दितियं पडियाइक्खे, ण मे कप्पइ तारिसं ॥50॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

फिर वैसा अशनादि साधुओं, के हित में है ग्राह्य नहीं ।
दात्री को वहाँ स्पष्ट कहे मुनि, मुझको ऐसा कल्प्य नहीं ॥

अन्वयार्थ-तं = वह । भत्तपाणं तु = आहार-पानी तो । संजायण = साधुओं के लिये । अकप्पियं = अग्राह्य । भवे = होता है, साधु । दितियं = देने वाली से । पडियाइक्खे = कहे कि । मे = मुझको । तारिसं = वैसा आहार लेना । ण कप्पइ = नहीं कल्पता है ।

भावार्थ-वह आहार-पानी साधुओं के लिये अग्राह्य है, अतः साधु देने वाली से निषेध करते हुए कहे कि वैसा आहार उसको लेना कल्पता नहीं है ।

असणं पाणगं वा वि, खाइमं साइमं तहा ।
जं जाणिज्ज सुणिज्जा, वा वणीमट्ठा पगडं इमं ॥51॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

अशन पान खादिम या स्वादिम, याचक के (भिक्षुक के) हित उपकल्पित ।
जाने या सुन ले मुनिवर तो, वह हो जाता है वर्जित ॥

अन्वयार्थ-असणं = अशन । पाणगं = पानक । वा = अथवा । खाइमं वि = खाद्य भी । तहा = तथा । साइमं = स्वादिम । जं = इन पदार्थों में जो । जाणिज्ज = ऐसा जाने । वा = अथवा । सुणिज्जा = सुन ले कि । इमं = यह पदार्थ । वणीमट्ठा = वनीपक अर्थात् याचकों के लिये । पगडं = बनाया गया है ।

भावार्थ-जो अशन, पानक, खाद्य-मेवा, स्वाद्य-लवंगादि पदार्थ जो वनीपक अर्थात् याचकों के लिये बनाया गया है, ऐसा जाने अथवा सुने तो..... ।

तं भवे भत्तपाणं तु, संजयाण अकप्पियं ।
दितियं पडियाइक्खे, ण मे कप्पइ तारिसं ॥52॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

फिर वह अशन-पान मुनि हित में, रह जाता है कल्प्य नहीं ।
ऐसी दात्री को मुनि बोले, मुझको है यह ग्राह्य नहीं ॥

अन्वयार्थ-तं = वह । भत्तपाणं तु = आहार-पानी तो । संजयाण = साधुओं के लिये । अकप्पियं

= अग्राह्य । भवे = होता है, साधु । दितियं = देने वाली से । पडियाइक्खे = निषेधात्मक भाषा में कहे कि । तारिसं = वैसा आहार लेना । मे = मुझको । ण कप्पइ = नहीं कल्पता है ।

भावार्थ—वह आहार-पानी साधुओं के लिये अग्राह्य है । अतः साधु देने वाली से निषेध करते हुए कहे कि वैसा आहार लेना मुझको नहीं कल्पता है ।

**असणं पाणगं वा वि, खाइमं साइमं तहा ।
जं जाणिज्ज सुणिज्जा वा, समणट्ठा पगडं इमं ॥53॥**

हिन्दी पद्यानुवाद-

*अशन पान खादिम या स्वादिम, श्रमणों के हित कल्पित है ।
मुनि जाने अथवा सुन ले तो, बन जाता वह वर्जित है ॥*

अन्वयार्थ—असणं = अशन । पाणगं = पानक । वा = अथवा । खाइमं वि = खाद्य भी । तहा = तथा । साइमं = स्वादिम । जं = जो, साधु ऐसा । जाणिज्ज = जाने । वा = अथवा । सुणिज्जा = सुन ले कि । इमं = यह पदार्थ । समणट्ठा = शाक्यादि भिक्षुओं के लिये । पगडं = बनाया गया है ।

भावार्थ—जो अशन, पानक, खाद्य-मेवा, या स्वाद्य आदि पदार्थ बौद्ध मतावलम्बी या अन्य भिक्षुओं अथवा साधुओं के लिये बनाया गया है, ऐसा जाने अथवा सुने तो..... ।

**तं भवे भत्तपाणं तु, संजयाण अकप्पियं ।
दितियं पडियाइक्खे, ण मे कप्पइ तारिसं ॥54॥**

हिन्दी पद्यानुवाद-

*फिर तो वह अशनादि साधुओं, के हित होता कल्प्य नहीं ।
दात्री को बोले तब मुनि यों, मेरे हित यह ग्राह्य नहीं ॥*

अन्वयार्थ—तं = वह । भत्तपाणं तु = आहार-पानी तो । संजयाण = साधुओं के लिये । अकप्पियं = अग्राह्य । भवे = होता है, साधु । दितियं = देने वाली से । पडियाइक्खे = निषेध पूर्वक कहे कि । मे = मुझको । तारिसं = वैसा आहार लेना । ण कप्पइ = नहीं कल्पता है ।

भावार्थ—वह आहार-पानी साधुओं के लिये अग्राह्य है, अतः साधु देने वाली से निषेध करते हुए कहे “वैसा आहार मुझको लेना कल्पता नहीं है ।”

**उद्देसियं कीयगडं, पूइकम्मं च आहडं ।
अज्झोयर पामिच्चं, मीसजायं विवज्जए ॥55॥**

हिन्दी पद्यानुवाद-

औद्देशिक या क्रीत पूति, पर घर से सम्मुख जो लाया ।
अधिक बना या उधार लाया, मिश्रित नहीं ले मुनिराया ॥

अन्वयार्थ-उद्देश्य = साधु के लिये बनाया गया आहारादि । कीयगडं = खरीद कर लाया हुआ ।
पूङ्कम्मं च = और निर्दोष आहार में आधाकर्म का मिश्रण हो । आहडं = गाँव आदि से सामने लाया हुआ
हो । अज्झोयर = साधु के लिये अधिक डालकर बनाया हो । पामिच्चं = उधार लिया हुआ आहारादि ।
मीसजायं = गृहस्थ और साधु के लिये सम्मिलित बना हो । विवज्जए = वैसे आहार आदि का वर्जन करें ।

भावार्थ-जो आहार साधु को उद्देश्य करके बनाया हो, साधु के लिये खरीद कर लाया गया हो,
निर्दोष आहार में आधाकर्म का अंश मिला हो, पराये घर व गाँव से सामने लाया हो, साधु के लिये अधिक
वस्तु डालकर बनाया हो, उधार लाकर दिया जाता हो, साधु और गृहस्थ के लिये सम्मिलित बनाया हो, वैसा
आहार आदि का मुनि वर्जन करे । अर्थात् वैसा आहार नहीं ले ।

उगमं से अ पुच्छिज्जा, कस्सट्ठा केण वा कडं ।
सुच्चा निस्संकियं सुद्धं, पडिगाहिज्ज संजए ॥56॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

अशन आदि का उद्गम पूछे, किसके लिये किया किसने ।
सुनकर शुद्ध तथा निःशंकित, मुनि ले इच्छित चाहे जितने ॥

अन्वयार्थ-से अ = आहार की निर्दोषता को जानने के लिये उसके । उगमं = उत्पत्ति के विषय
में । पुच्छिज्जा = पूछे । कस्सट्ठा = किसके लिये बनाया । वा = या । केण = किसने । कडं = बनाया ।
सुच्चा = गृहस्थ से सुनकर । निस्संकियं = जो शंका रहित । सुद्धं = शुद्ध ज्ञात हो उसको । संजए = साधु ।
पडिगाहिज्ज = ग्रहण करे ।

भावार्थ-आहार की निर्दोषता जानने के लिये उसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में पूछे, यह किसके लिये
किसने और क्यों बनाया है ? सुनने के पश्चात् जो आहार शंका रहित शुद्ध ज्ञात हो, उसको साधु ग्रहण करे ।

असणं पाणगं वा वि, खाइमं साइमं तहा ।
पुप्फेसु होज्ज उम्मीसं, बीएसु हरिएसु वा ॥57॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

अशन पान खादिम स्वादिम, जो पुष्पों से हों मिले हुए ।
अथवा सचित्त बीज संयुत, या हरित काय से जुड़े हुए ॥

अन्वयार्थ-असणं = अशन । पाणगं = पानक । वा = या । खाइमं वि = खाद्य वस्तु मेवा आदि भी । तहा = तथा । साइमं = स्वादिम-लवंग आदि । पुप्फेसु = फूलों से । वा = और । बीएसु = धान्य के बीजों से । हरिएसु = हरे पत्तों से । उम्मीसं = मिश्रित । होज्ज = हो ।

भावार्थ-अशन, पानक आदि किसी भी प्रकार का आहार जो फूलों, धान्य कणों अथवा हरे पत्तों आदि से मिश्रित हो, तो साधु उस आहार को ग्रहण नहीं करे ।

तं भवे भत्तपाणं तु, संजयाण अकप्पियं ।
दितियं पडियाइक्खे, ण मे कप्पइ तारिसं ॥58॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

फिर तो वह अशनादि साधुओं, के हित होता ग्राह्य नहीं ।
भिक्षा दात्री से मुनि बोले, मुझको यह है कल्प्य नहीं ॥

अन्वयार्थ-तं = वह । भत्तपाणं तु = आहार-पानी तो । संजयाण = साधुओं के लिये । अकप्पियं = अग्राह्य । भवे = होता है, अतः । दितियं = देने वाली से । पडियाइक्खे = निषेध करते हुए कहे कि । मे = मुझे । तारिसं = वैसा आहार । ण कप्पइ = नहीं कल्पता है ।

भावार्थ-वह आहार-पानी साधुओं के लिये अग्राह्य होता है, अतः देने वाली से निषेध की भाषा में साधु कहे कि वैसा आहार उसे लेना नहीं कल्पता है ।

असणं पाणगं वा वि, खाइमं साइमं तहा ।
उदगम्मि होज्ज निक्खित्तं, उत्तिंगपणगेसु वा ॥59॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

अशन पान खादिम या स्वादिम, जल सचित्त पर हो रक्षित ।
कीटवास लीलन फूलन पर, होवे तो मुनि को वर्जित ॥

अन्वयार्थ-असणं = अशन । पाणगं = पानक । वा = या । खाइमं = खाद्य । तहा = तथा । साइमं = स्वादिम के पदार्थ । उदगम्मि = सचित्त जल पर । वा = अथवा । उत्तिंगपणगेसु = चींटियों के बिल तथा फूलन पर । निक्खित्तं = रखा हो ।

भावार्थ-अशन-पानक या खाद्य तथा स्वादिम लवंग आदि पदार्थ सचित्त जल पर अथवा चींटियों के बिल तथा लीलन-फूलन पर रखा हो..... ।

तं भवे भत्तपाणं तु, संजयाण अकप्पियं ।
 दितियं पडियाइक्खे, ण मे कप्पइ तारिसं ॥60॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

वह अशनादि साधु हित में, हो सकता है ग्राह्य नहीं ।
 बोले मुनि भिक्षा-दात्री को, है मुझको ऐसा कल्प्य नहीं ॥

अन्वयार्थ-तं = वह । भत्तपाणं तु = आहार-पानी । संजयाण = साधुओं के लिये । अकप्पियं = अग्राह्य । भवे = होता है, अतः । दितियं = देने वाली से । पडियाइक्खे = निषेध से कहे कि । मे = मुझको । तारिसं = वैसा आहार लेना । ण कप्पइ = नहीं कल्पता है ।

भावार्थ-वह आहार-पानी साधुओं के लिये अग्राह्य होता है । इसलिए साधु देने वाली से कहे कि वैसा आहार उसको लेना नहीं कल्पता है ।

असणं पाणगं वा वि, खाइमं साइमं तहा ।
 तेउम्मि होज्ज निक्खित्तं, तं च संघट्टिया दए ॥61॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

अशन पान खादिम या स्वादिम, तेजस्काय पर हो रक्षित ।
 अथवा छूकर अग्निकाय को, भिक्षा देना है वर्जित ॥

अन्वयार्थ-असणं = अशन । पाणगं = पानक । वा = अथवा । खाइमं वि = खाद्य भी । तहा = तथा । साइमं = स्वादिम जो । तेउम्मि = अग्नि पर । निक्खित्तं = रखे । होज्ज = हो । च = अथवा । तं = उस अग्नि का । संघट्टिया = संघट्टा करके । दए = देवे । तो.....

भावार्थ-अशन, पानक अथवा खाद्य तथा स्वादिम जो अग्नि पर रखे हों, और उस अग्नि का संघट्टा करके देवे..... ।

तं भवे भत्तपाणं तु, संजयाण अकप्पियं ।
 दितियं पडियाइक्खे, ण मे कप्पइ तारिसं ॥62॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

वह अशनादि साधु के हित में, रह जाता है ग्राह्य नहीं ।
 बोले मुनि भिक्षा-दात्री से, है मुझको ऐसा कल्प्य नहीं ॥

अन्वयार्थ-तं = वह । भत्तपाणं तु = आहार-पानी तो । संजयाण = साधुओं के लिये । अकप्पियं

= अग्राह्य । भवे = होता है, अतः साधु । दितियं = देने वाली से । पडियाइक्खे = निषेध करते हुए कहे कि । मे = मुझको । तारिसं = वैसा आहार । ण कप्पइ = नहीं कल्पता है ।

भावार्थ—वह आहार-पानी साधुओं के लिए अग्राह्य होता है । अतः साधु देने वाली से कहे कि वैसा आहार उसको लेना नहीं कल्पता है ।

**एवं उस्सक्किया ओसक्किया, उज्जालिया पज्जालिया निव्वाविया ।
उस्सिंचिया निस्सिंचिया, उवत्तिया ओयारिया दए ॥६३॥**

हिन्दी पद्यानुवाद-

इन्धन सरका या बाहर कर, सुलगा या दीप्त बना उसको ।
बुझा, आग पर से उतार, या जल से शान्त करे उसको ॥
अथवा पात्र अशन आदि के, बदल उतार अग्नि पर से ।
दे तो ऐसा भोजन मुनि जन, नहीं भूलकर भी कुछ ले ॥

अन्वयार्थ—एवं = ऐसे संघट्टे के समान । उस्सक्किया = अग्नि में ईन्धन आगे सरका कर । ओसक्किया = जलती लकड़ी को पीछे खींचकर । उज्जालिया = बुझती आग को जलाकर । पज्जालिया = विशेष तेज करके । निव्वाविया = बुझा करके । उस्सिंचिया = आग पर रखे आहार में से बाहर निकालकर । निस्सिंचिया = उफनते साग आदि में पानी सींचकर । उवत्तिया = सीझते आहार को दूसरे बर्तन में निकालकर । ओयारिया = तथा अग्नि से बर्तन नीचे उतारकर । दए = देवे ।

भावार्थ—पृथ्वीकाय, वनस्पति और तेजस्काय के जीवों की विराधना से बचने के लिए इस गाथा में बताया गया है कि जलते चूल्हे में लकड़ी सरकाई जावे, पीछे हटाई जावे, अग्नि सुलगावे, जलती आग को तेज करे, बुझावे, पकते हुए भोजन में से कुछ निकाले, सींचे, बर्तन उतारे तो मुनि वह आहार नहीं लें । आजकल के बिजली या गैस के चूल्हे के लिए भी ऐसा ही समझना चाहिये ।

**तं भवे भत्तपाणं तु, संजयाण अकप्पियं ।
दितियं पडियाइक्खे, ण मे कप्पइ तारिसं ॥६४॥**

हिन्दी पद्यानुवाद-

कारण वह अशनादि साधु के, हित में होता ग्राह्य नहीं ।
ऐसा भिक्षादात्री को मुनि, कहे हमें यह कल्प्य नहीं ॥

अन्वयार्थ—तं = वह । भत्तपाणं तु = आहार-पानी तो । संजयाण = साधुओं के लिये । अकप्पियं

= अग्राह्य । भवे = होता है, अतः साधु । दिंतियं = देने वाली से । पडियाइक्खे = निषेध पूर्वक कहे कि । मे = मुझको । तारिसं = वैसा आहार लेना । ण कप्पइ = नहीं कल्पता है ।

भावार्थ—वह आहार-पानी साधुओं के लिये अग्राह्य होता है । इसलिये साधु देने वाली से कहे कि वैसा आहार उसे नहीं कल्पता है ।

हुज्ज कट्ठं सिलं वा वि, इट्ठालं वा वि एगया ।

ठवियं संकमट्ठाए, तं च होज्ज चलाचलं ॥६५॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

लकड़ी शिला ईंट रखी हो, आने जाने के हेतु कभी ।

यदि वह चलने फिरने से, डगमग करने लग जाय कभी ॥

अन्वयार्थ—एगया = कभी वर्षा आदि के समय में । कट्ठं = काष्ठ । वा वि = अथवा । सिलं = पत्थर की शिला । वा वि = अथवा । इट्ठालं = ईंट के टुकड़े । संकमट्ठाए = पानी लाँघने के लिए । ठवियं = मार्ग में रखे । हुज्ज = हों । तं च = और वह । चलाचलं होज्ज = चल-विचल अर्थात् अस्थिर हो ।

भावार्थ—कभी वर्षाकाल में ऐसा रास्ता हो कि जहाँ लकड़ी, शिला अथवा ईंटों के टुकड़े लाँघने को रखे हों और वे चल-विचल हों-स्थिर नहीं हों ।

ण तेण भिक्खू गच्छिज्जा, दिट्ठो तत्थ असंजमो ।

गंभीरं झुसिरं चेव, सव्विंदिय-समाहिए ॥६६॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

प्रभु ने देखा वहाँ असंयम, उस पर मुनिवर ना गमन करे ।

गहरे पोले पथ पर भी, ना दान्त सन्त संचार करे ॥

अन्वयार्थ—सव्विंदियसमाहिए = सब इन्द्रियों को वश में रखने वाला । भिक्खू = भिक्षु-साधु । तेण = उस मार्ग से । ण = नहीं । गच्छिज्जा = जावे, क्योंकि । तत्थ = वहाँ । असंजमो = जीवों का असंयम । दिट्ठो = देखा गया है (तथा जो मार्ग) । गंभीरं चेव = गम्भीर और । झुसिरं = जो मार्ग पोला हो ।

भावार्थ—इन्द्रियों को वश में रखने वाला साधु वैसे मार्ग में नहीं जावे, जहाँ षट्काय जीवों का असंयम देखा गया है । क्योंकि वह मार्ग गहरा और पोल वाला है, अतः वहाँ रहे हुए सूक्ष्म जीव देखे नहीं जा सकते और चूँकि वे देखे नहीं जा सकते इसलिये उनकी विराधना की सम्भावना बनी रहती है ।

निस्सेणिं फलगं पीढं, उस्सवित्ताणमारुहे ।
मंचं कीलं च पासायं, समणट्ठाए व दावए ॥67॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

भिक्षा दात्री कष्ट उठाकर, सीढ़ी पाटे पीढ़े पर ।
खाट और कीलक को ऊँचा, कर चढ़ जाये कोठे पर ॥

अन्वयार्थ-दावए = दाता । समणट्ठाए = साधु के लिये । निस्सेणिं = निश्रेणि सीढ़ी । फलगं = पाट । व = और । पीढं = पीढा-चौकी । मंचं = माचे को । च = और । कीलं = कीलक को । उस्सवित्ताणं = ऊँचा करके । पासायं = कोठे पर । आरुहे = चढ़कर आहार लावे ।

भावार्थ-कभी दाता ऊपर रखी हुई अथवा कील, खूँटी, काष्ठ-स्तम्भ या प्रासाद पर रखी हुई वस्तु साधु को देने के लिये, निश्रेणि, पाट, चौकी या खाट पर चढ़ करके लाकर दें ।

दुरूहमाणी पवडिज्जा, हत्थं पायं व लूसए ।
पुढवीजीवे वि हिंसिज्जा, जे य तन्निस्सिया जगे ॥68॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

मुनि भिक्षा हित ऊँचे चढ़ती, यदि वह भू पर गिर जाये ।
अपने हाथ पैर को निश्चय, इस प्रकार वह तुड़वाये ॥
पृथ्वीकायिक जीव तथा, उस आश्रय के वासी सारे ।
द्वीन्द्रिय आदिक सूक्ष्म जीव, इस विधि सब जायेंगे मारे ॥

अन्वयार्थ-दुरूहमाणी = चढ़ती हुई कदाचित् । पवडिज्जा = गिर जाय तो । हत्थं = हाथ । व = और । पायं = पैर को । लूसए = चोट लगा ले । पुढवी जीवे = नीचे पृथ्वी के जीवों की । वि = भी । हिंसिज्जा = हिंसा करेगी । जे य = और जो । तन्निस्सिया = उस भूमि के आश्रित । जगे = जीव हैं, उनकी भी हिंसा होगी ।

भावार्थ-वहाँ चढ़ते-उतरते कदाचित् हाथ-पैर को चोट आ जाये तो खुद की विराधना होगी । गिरने से पृथ्वी के जीवों की और उसके आश्रित रहे अन्य सूक्ष्म जीवों की भी हिंसा हो जायेगी ।

एयारिसे महादोसे, जाणिऊण महेसिणो ।
तम्हा मालोहडं¹ भिक्खं, ण पडिगिण्हंति संजया ॥69॥

1. आलोहडं = इति पाठान्तर = 'आले पर से' इत्यर्थः ।

हिन्दी पद्यानुवाद-

ऐसे महादोष को मन से, जान जगत् के सब ऋषिगण ।
माला पर से लाई भिक्षा, दोष जान ना करें ग्रहण ॥

अन्वयार्थ-तम्हा = इसलिये । **एयारिसे** = इस प्रकार के । **महादोसे** = आत्म-विराधना और जीव-विराधना के बड़े दोष को । **जाणिऊण** = जानकर । **संजया** = संयमवान् । **महेसिणो** = महर्षि गण । **मालोहडं** = मालापहत, ऊपर या नीचे के माले (मंजिल) से लाई हुई । **भिक्षुं** = भिक्षा को । **ण** = नहीं । **पडिगिण्हंति** = ग्रहण करते हैं ।

भावार्थ-इसलिये इस प्रकार स्व-पर विराधक महादोष को जानकर संयमवान् महर्षि ऊपर-नीचे या तिर्यक् स्थान से मालापहत यानी मकान की ऊपर या नीचे की मंजिल या माले से लाई हुई उस भिक्षा को निर्दोष होने पर भी ग्रहण नहीं करते ।

कंदं मूलं पलंबं वा, आमं छिन्नं च सन्निरं ।
तुंबागं सिंगबेरं च, आमगं परिवज्जए ॥70॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

कन्द मूल या ताल आदि फल, काटी बथुआ की भाजी ।
सचित्त तूंबे या अदरख हों, मुनि हित में वे हैं वर्ज्य सभी ॥

अन्वयार्थ-आमं = अपक्व । **कंदं** = कंद सूरण कंदादि । **मूलं** = मूल । **वा** = अथवा । **पलंबं** = प्रलम्ब फल । **छिन्नं** = कटे हुए । **च** = और । **सन्निरं** = पत्तों की भाजी । **तुंबागं** = तूम्बा घीया । **च** = और । **आमगं** = कच्चे अपक्व । **सिंगबेरं** = अदरख का । **परिवज्जए** = वर्जन करे ।

भावार्थ-यहाँ पर वनस्पति काय की विराधना से बचने के लिये कंद मूल अथवा अपक्व प्रलम्ब फल और कटी हुई पत्ती की भाजी को तथा शस्त्र परिणत के अतिरिक्त तूम्बा, घीया और अदरक का ग्रहण वर्जित किया गया है । (फिर यहाँ ग्रहण का अभिप्राय अपक्व जमीकन्द के ग्रहण का सर्वथा निषेध करना हो सकता है ।)

तहेव सत्तुचुण्णाइं, कोलचुण्णाइं आवणे ।
सक्कुलिं फाणिअं पूअं, अन्नं वा वि तहाविहं ॥71॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

वैसे सत्तू बेर चूर्ण, तिल पपड़ी तथा मालपूए ।
गुड़ या अन्य पदार्थ दूसरे, रखे दुकान पर जो आए ॥

अन्वयार्थ-तहेव = कन्द आदि के समान । **सत्तु चुण्णाइं** = सत्तू का चूर्ण । **कोलचुण्णाइं** = बेर

का चूर्ण । सक्कुलिं = तिल पपड़ी । फाणिअं = गीला गुड़ । पूअं = पूआ । अन्नं वा वि = अथवा अन्य भी । तहाविहं = इस प्रकार की वस्तुएँ । आवणे = दुकान में रखी हों ।

भावार्थ—कन्द आदि की तरह कुछ पदार्थ अचित्त होने पर भी अग्राह्य होते हैं, इसके लिये कहा है कि कहीं दुकान में सत्तू का चूर्ण, बेर का चूर्ण, तिल पपड़ी, पतला गुड़ तथा पूआ आदि वैसे अन्य पदार्थ ।

**विक्कायमाणं पसढं, रण परिफासियं ।
दितियं पडियाइक्खे, ण मे कप्पइ तारिसं ॥72॥**

हिन्दी पद्यानुवाद—

बिक्री हेतु हाट में फैले, फिर भी रज से स्पृष्ट हुए ।
भिक्षादात्री को मुनि बोले, ऐसा मुझको नहीं चाहिए ॥

अन्वयार्थ—विक्कायमाणं = विक्रय के लिये । पसढं = फैला रखी हों । रण = धूलि कण से । परिफासियं = स्पृष्ट (लिप्त) हों । दितियं = ऐसे पदार्थों की भिक्षा देने वाली से मुनि । पडियाइक्खे = कहे कि । तारिसं = वैसा आहार । मे = मुझे लेना । ण कप्पइ = कल्पता नहीं है ।

भावार्थ—जो विक्रय के लिये दुकान में फैला रखे हों, (कई दिन से नहीं बिकने पर) जिन पर हवा से उड़कर आई बारीक रज जमी हो, तो ऐसे पदार्थों को देने वाली से साधु कहे कि वैसा आहार उसको नहीं लेना है ।

**बहुअट्टियं पुगलं, अणिमिसं वा बहुकंटयं ।
अत्थियं तिंदुयं बिल्लं, उच्छुखंडं व सिंबलिं ॥73॥**

हिन्दी पद्यानुवाद—

सीताफल और अनन्नास, मुनमा तथा पनस का फल ।
तेन्दू बेल गन्ना खण्डों को, और दूसरे हैं सेमल ॥

अन्वयार्थ—बहुअट्टियं = बहुत गुठली वाले । पुगलं = फल । वा = अथवा । बहुकंटयं = बहुत काँटों वाले फल जैसे पनस, कटहल आदि । अणिमिसं = अनिमिष अर्थात् अन्नानास के फल । अत्थियं = अत्थिय या आक्षिक फल । तिंदुयं = तेन्दू का फल । बिल्लं = बेल फल । उच्छुखंडं व = इक्षु खण्ड अथवा । सिंबलिं = सिंबली फल को ।

भावार्थ—यहाँ पर बताया गया है कि पके होने पर भी जिनमें फैकने लायक भाग अधिक हो, वैसे फल साधु नहीं ले । जैसे—बहुत गुठली वाले फल, अथवा बहुत काँटों वाले अनिमिष फल, अस्थिक या

अगस्तिया, तेन्दूफल, बेल फल, इक्षु खण्ड अथवा सिंबली बल्ल धान्य की फली। उपर्युक्त सब शब्द वनस्पति वाचक हैं, मांस वाचक नहीं।

टिप्पणी-(1) यहाँ पर 'बहु अट्टियं' और 'पुगलं' शब्दों से कुछ विद्वान् 'अस्थि' और 'मांस' ऐसा अर्थ करते हैं। किन्तु अहिंसा प्रधान जैन संस्कृति को देखते हुए ऐसा अर्थ संगत प्रतीत नहीं होता।

(2) अट्टियं = गुठली, आप्टेकृत संस्कृत और इंगलिश शब्दकोष के अनुसार। जैनागम शब्दसंग्रह पृष्ठ 36।

(3) बहु अट्टियं = बहु बीजकमिति। अवचूरिका के अनुसार, जो विक्रम सम्वत् 1665 से पहले की बनी हुई है, में 'बहु अट्टियं' शब्द का अर्थ बहु बीजकम् किया गया है।

(4) वेदिक ग्रन्थ 'निघण्टु' कोष में भी 'बहु बीजकं' शब्द का प्रयोग 'सीताफल' के अर्थ में आया है। यथा- 'सीताफलं गण्डमात्रं वैदेहीवल्लभं तथा कृष्णबीजं चाग्रिमाख्यमातृप्यं बहु बीजकं।' इति।

अप्पे सिया भोयणजाए, बहुउज्झियधम्मिए।

दितियं पडियाइक्खे, ण मे कप्पइ तारिसं ॥74॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

खाद्य-अंश इनमें थोड़ा है, और छोड़ने योग्य बहुल।

ऐसी नहीं कल्पती भिक्षा, दात्री को कह दे अविचल॥

अन्वयार्थ-भोयणजाए = खाने का भाग। अप्पे सिया = कम होता है। बहु उज्झियधम्मिए = अधिक भाग फैकने लायक होता है, ऐसा आहार कोई देवे तो साधु। दितियं = देने वाली से। पडियाइक्खे = निषेध से कहे कि। तारिसं = वैसा आहार। मे = मुझे लेना। ण कप्पइ = कल्पता नहीं हैं।

भावार्थ-उपर्युक्त फलों का पहले प्रलम्ब शब्द से निषेध हो जाता है, फिर भी इस गाथा में यह बताया गया है कि पकाये हुए भी ये फल फैकने योग्य भाग अधिक होने से साधु नहीं ले।

तहेवुच्चावयं पाणं, अदुवा वारधोयणं।

संसेइमं चाउलोदगं, अहुणाधोयं विवज्जए ॥75॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

मेथी, केर असुन्दर सुन्दर, द्राक्षा और गुड़ घट पानी।

भाजी थाली या चावल का, सद्य धोया नहीं ले पानी॥

अन्वयार्थ—तहेव = उसी प्रकार आहार के समान । उच्चावयं = उच्च अर्थात् अच्छे वर्ण, गंध, रस आदि से श्रेष्ठ और अवच यानी अश्रेष्ठ । पाणं = पानक । अदुवा = अथवा । वारधोयणं = गुड़ के घड़े का धोवन । संसेइमं = आटे की परात का धोवन । चाउलोदगं = चावल का धोवन आदि । अहुणाधोयं = तत्काल का धोया हो तो । विवज्जए = वर्जन कर दे ।

भावार्थ—आहार की तरह पानी में भी द्राक्षा आदि का वर्ण, गंध, रस से श्रेष्ठ और केर, मेथी आदि का अवच अर्थात् वर्णादि में असुन्दर पानी अथवा गुड़ के घड़े का धोवन, आटे की परात का धोवन और चावल का धोवन यह सब तत्काल का धोया हुआ हो तो साधु उसे ग्रहण नहीं करे । इसमें फरसने की पूरी शंका रहती है ।

जं जाणिज्ज चिराधोयं, मईए दंसणेण वा ।
पडिपुच्छिऊण सुच्चा वा, जं च णिस्संकियं भवे ॥76॥

हिन्दी पद्यानुवाद—

मति या दर्शन से मुनि जिसको, जाने चिर कालिक धोवन ।

सुनकर तथा पूछकर जो है, शंका रहित बना धोवन ॥

अन्वयार्थ—जं = जो पानी । मईए = बुद्धि बल से । वा = या । दंसणेण = देखने से । जाणेज्ज = जाने कि । चिराधोयं = यह बहुत काल का धोया हुआ है । च = और । जं = जो । पडिपुच्छिऊण = पूछकर । वा = अथवा । सुच्चा = सुनकर । निस्संकियं = शंका रहित । भवे = हो ।

भावार्थ—साधु अपनी बुद्धि या दर्शन से जिस जल को बहुत काल का धोया जान ले और जब पूछकर एवं सुनकर शंका रहित हो जावे कि—

अजीवं परिणयं णच्चा, पडिगाहिज्ज संजए ।
अह संकियं भविज्जा, आसाइत्ताण रोयए ॥77॥

हिन्दी पद्यानुवाद—

जीव रहित परिणत जल को, जानकर करे मुनि उसे ग्रहण ।

फिर भी शंकित हो तो चखकर, निर्णय पूर्वक करे ग्रहण ॥

अन्वयार्थ—अजीवं = उस जल को निर्जीव रूप से । परिणयं = परिणत । णच्चा = जानकर । संजए = संयमी साधु । पडिगाहिज्ज = ग्रहण करे । अह = यदि । संकियं = शंका युक्त । भविज्जा = हो तो । आसाइत्ताण = आस्वादन करके । रोयए = जाने और तब निर्णय करे ।

भावार्थ—यह पानी अजीव पदार्थ में परिणत हो गया है, ऐसा जानकर साधु उसे ग्रहण करे। फिर भी यदि यह उपयोग में आ सकेगा या नहीं ऐसी शंका रहे तो थोड़ा सा चखकर मालूम कर ले। अचित्त होने पर भी यदि उसे पी सके तो मुनि को गृहस्थ के वहीं इसको लेने न लेने का निर्णय कर लेना चाहिये।

थोवमासायणट्टाए, हत्थगम्मि दलाहि मे ।

मा मे अच्चंबिलं पूयं, नालं तण्हं विणित्तए ॥७८॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

थोड़ा सा हाथों में देना, आस्वादन के हित प्रासुक जल ।

यह खट्टा दुर्गन्धित जल, क्या मिटा सकेगा मम प्यास प्रबल ॥

अन्वयार्थ—थोव = थोड़ा सा जल। आसायणट्टाए = चखने के लिये। मे = मेरे। हत्थगम्मि = हाथ में। दलाहि = दो। अच्चंबिलं = अधिक खट्टा और। पूयं = दुर्गन्धित जल (हो तो स्पष्ट कह दे कि ऐसा जल)। मा मे = मुझे नहीं चाहिये। तण्हं = (क्योंकि) ऐसा जल प्यास को। विणित्तए = मिटाने में। नालं = पर्याप्त नहीं है।

भावार्थ—वह धोवन अगर दुर्गन्धित लगता हो, पीने जैसा नहीं लगता हो, तो साधु दाता से कहे कि मुझे चखने के लिए इसमें से थोड़ा-सा जल मेरे हाथ में दो। अधिक खट्टा और दुर्गन्धित लगे तो साधु दाता से कहे कि ऐसा जल मुझे नहीं चाहिये, क्योंकि यह प्यास मिटाने में समर्थ नहीं है।

तं च अच्चंबिलं पूयं, नालं तिण्हं विणित्तए ।

दित्तियं पडियाइक्खे, ण मे कप्पइ तारिसं ॥७९॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

उस अति खट्टे दुर्गन्धित जल को, जिससे मिट सकती प्यास नहीं ।

मुनि धोवन दात्री से बोले, यह मम हित लेना उचित नहीं ॥

अन्वयार्थ—तं = वह। अच्चंबिलं = अधिक खट्टा। च = और। पूयं = दुर्गन्धित जल। तिण्हं = प्यास। विणित्तए = मिटाने में। नालं = समर्थ नहीं है, अतः साधु। दित्तियं = देने वाली से। पडियाइक्खे = निषेध पूर्वक कहे कि। तारिसं = इस प्रकार का धोवन। मे = मुझे। ण कप्पइ = नहीं कल्पता है।

भावार्थ—देने वाली से भिक्षु स्पष्ट कह दे कि वह अतिखट्टा दुर्गन्धित जल प्यास मिटाने में समर्थ नहीं है। इसलिये वैसा जल मुझे नहीं कल्पता है।

तं च होज्ज अकामेणं, विमणेण पडिच्छियं ।
तं अप्पणा ण पिवे, णो वि अण्णस्स दावए ॥८०॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

इच्छा बिना बेमन से वैसा, लिया गया हो यदि धोवन ।
ना पीए, दे नहीं अन्य को, साथ लिए जाये धोवन ॥

अन्वयार्थ-तं च = और वह कदाचित् । अकामेणं = बिना इच्छा के । विमणेण = असावधानी से । पडिच्छियं = लेने में आ गया । होज्ज = हो तो । तं = वह जल । अप्पणा = स्वयं । ण पिवे = नहीं पीवें । अण्णस्स = अन्य को । वि = भी । णो = नहीं । दावए = देवें ।

भावार्थ-यदि यह पानी इच्छा के बिना असावधानी से ले लिया गया हो तो मुनि उसे न स्वयं पीए और न दूसरों को पिलावे, क्योंकि उस अरुचिकर दुर्गन्धित जल को पीने से पीने वाले को वमन आदि असमाधि हो सकती है ।

एगंतमवक्कमित्ता, अचित्तं पडिलेहिया ।
जयं परिट्ठविज्जा, परिट्ठप्प पडिक्कमे ॥८१॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

जाकर एकान्त जगह में मुनि, प्रतिलेखन करे अचित्त भू का ।
परठे यतना से उस धोवन को, फिर करे पाठ ईर्यापथ का ॥

अन्वयार्थ-एगंतं = मुनि एकान्त स्थल में । अवक्कमित्ता = जाकर । अचित्तं = अचित्त भूमि की । पडिलेहिया = प्रतिलेखना कर, उस जल को । जयं = यतनापूर्वक । परिट्ठविज्जा = परठ दे । परिट्ठप्प = और परठ कर । पडिक्कमे = प्रतिक्रमण करे ।

भावार्थ-मुनि उस दुर्गन्धित जल को लेकर एकान्त स्थान में जावे और अचित्त भूमि को पूँजकर वहाँ उस धोवन को परठ दे । बाद में ईर्यापथ का प्रतिक्रमण करे ।

सिया य गोयरग्गओ, इच्छिज्जा परिभोत्तुअं ।
कुट्ठगं भित्तिमूलं वा, पडिलेहित्ताण फासुयं ॥८२॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

यदि भिक्षा हेतु गया साधु, भोजन की मन में चाह करे ।
प्रासुक कोठा भित्ति मूल, को देख प्रथम तब पात्र धरे ॥

अन्वयार्थ—गोचरगगओ = गोचराग्र में गया हुआ साधु । **सिया य** = कदाचित् । **परिभोत्तुअं** = आहार करना । **इच्छिज्जा** = चाहे तो । **फासुयं** = प्रासुक जीव रहित । **कुट्टगं** = कोठा । **वा** = या । **भित्तिमूलं** = दीवाल की आड़ में स्थान की । **पडिलेहिताण** = प्रतिलेखना करके ।

भावार्थ—गोचरी में गया हुआ साधु कदाचित् वहाँ कारणवश खाना चाहे तो प्रासुक कोठा या दीवार की आड़ में जीव रहित स्थान देखकर—

अणुन्नवित्तु मेहावी, पडिच्छन्नम्मि संवुडे ।

हत्थगं संपमज्जित्ता, तत्थ भुंजिज्ज संजए ॥८३॥

हिन्दी पद्यानुवाद—

मेहावी मुनि तृण-आवृत्त, और चारों ओर घिरे घर में ।

निज कर का करके परिमार्जन, फिर लग जाये भोजन में ॥

अन्वयार्थ—मेहावी = बुद्धिमान् । **संजए** = साधु । **अणुन्नवित्तु** = गृहपति की अनुमति लेकर । **पडिच्छन्नम्मि** = ऊपर से छाया हुआ स्थान हो । **हत्थगं** = हाथ को । **संपमज्जित्ता** = अच्छी तरह पूँजकर । **तत्थ** = वहाँ । **संवुडे** = यतना से । **भुंजिज्ज** = आहार करे ।

भावार्थ—गृहपति की अनुमति प्राप्त करके ऊपर से ढके एवं चारों ओर से घिरे घर में अपने हाथ का प्रमार्जन करके फिर भोजन करे—

तत्थ से भुंजमाणस्स, अट्टियं कंटओ सिया ।

तणकट्टसक्करं वा वि, अण्णं वा वि तहाविहं ॥८४॥

हिन्दी पद्यानुवाद—

वैसे घर में खाते मुनि के, यदि कंटक बीज तथा तिनका ।

मुख में आ जाये काष्ठ खण्ड, कंकर वा टुकड़ा सीसे का ॥

अन्वयार्थ—तत्थ = वहाँ । **भुंजमाणस्स** = आहार करते हुए । **से** = उस साधु के पात्र में । **सिया** = कदाचित् । **अट्टियं** = गुठली । **कंटओ** = काँटा । **वा वि** = या । **तणकट्टसक्करं** = तृण, काष्ठ तथा शर्करा कंकरी । **वा वि** = अथवा । **तहाविहं** = उसके समान । **अण्णं** = अन्य कोई वस्तु निकल आवे ।

भावार्थ—गोचरी हेतु गया साधु कभी कारणवशात् गृहस्थ के कमरे में आहार करे, और उसके मुँह में गुठली, काँटा, तृण, काष्ठ अथवा बालू का कण आदि इसी प्रकार का कोई अन्य पदार्थ निकल आवे ।

तं उक्खिवित्तु ण णिक्खिवे, आसएण ण छडुए ।
हत्थेण तं गहेऊणं, एगंतमवक्कमे ॥८५॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

उसको निकालकर फेंके ना, थूँके ना कभी ऊँचे मुख से ।
लेकर उसको अपने कर से, एकान्त स्थान जावे तन से ॥

अन्वयार्थ-तं = उस तृण आदि को । उक्खिवित्तु = मुँह से निकाल कर । ण = नहीं । णिक्खिवे = गिरावे । आसएण = मुँह से भी । ण छडुए = इधर-उधर नहीं थूँके, किन्तु । हत्थेण = हाथ से । तं = उसको । गहेऊणं = ग्रहण कर । एगंतमवक्कमे = एकान्त स्थान में जावे ।

भावार्थ-तब काष्ठ आदि को मुँह से निकाल कर इधर-उधर नहीं डाले । मुँह से दूर थूँके नहीं, किन्तु हाथ में लेकर एकान्त स्थान में चला जावे ।

एगंतमवक्कमित्ता, अचित्तं पडिलेहिया ।
जयं परिट्टविज्जा, परिट्टप्प पडिक्कमे ॥८६॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

एकान्त अचित्त भूमि में जा, उनको फिर भली भाँति देखे ।
यतना से उन्हें भूमि में दे, फिर से आ ईयापथिक करे ॥

अन्वयार्थ-एगंतं = एकान्त में । अवक्कमित्ता = जाकर । अचित्तं = अचित्त स्थल का । पडिलेहिया = प्रतिलेखन करे । जयं = फिर यतना से । परिट्टविज्जा = परिस्थापना करे यानी परठ दे । परिट्टप्प = और उसे परठकर । पडिक्कमे = प्रतिक्रमण करे ।

भावार्थ-साधु एकान्त में जाकर अचित्त-निर्जीव स्थान की प्रतिलेखना करे । फिर वहाँ यतना से काष्ठ आदि को परठ दे, परठ कर (डालकर) कायोत्सर्ग द्वारा प्रतिक्रमण करे ।

सिया य भिक्खू इच्छिज्जा, सिज्जमागम्म भुत्तुअं ।
सपिंडपायमागम्म, उंडुअं पडिलेहिया ॥८७॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

वासस्थान में आकर मुनि, खाने का मन में भाव करे ।
भोजन की जगह देख लेवे, भिक्षा भाजन वह पास धरे ॥

अन्वयार्थ-सिया य = और कदाचित् । भिक्खू = भिक्षु । सिज्जमागम्म = शय्या-निवास स्थान

में आकर। भुत्तुअं = खाना। इच्छिजा = चाहे तो। सपिंडपायं = आहार और पात्र सहित। आगम्म = शय्या में आकर। उंडुअं = स्थान की। पडिलेहिया = प्रतिलेखना करे।

भावार्थ—कदाचित् भिक्षु अपने वास स्थान में आकर ही खाना चाहे तो भिक्षा पात्र को लेकर आवे और विनय पूर्वक स्थान का प्रतिलेखन कर पात्र धरे।

**विणएणं पविसित्ता, सगासे गुरुणो मुणी ।
इरियावहियमायाय, आगओ य पडिक्कमे ॥८८॥**

हिन्दी पद्यानुवाद-

*विनय सहित भीतर आकर, गुरु के समीप आकर बोले ।
इरियावहिया का पाठ करे, फिर मार्ग शुद्धि मन में तोले ॥*

अन्वयार्थ—विणएण = विनय के साथ। पविसित्ता = प्रवेश करके। गुरुणो = गुरुदेव के। सगासे = समीप में। आगओ = आकर। मुणी = मुनि। इरियावहियं = ईर्यापथ की। आयाय = आलोचना करके। य पडिक्कमे = प्रतिक्रमण करे।

भावार्थ—गुरुदेव के समीप ईर्यावहिया के पाठ से आलोचना-प्रतिक्रमण करे अर्थात् भिक्षाकाल में लगे दोषों की शुद्धि करे। उसकी विधि इस प्रकार है—

**आभोइत्ताण नीसेसं, अइयारं जहक्कमं ।
गमणागमणे चेव, भत्तपाणे य संजए ॥८९॥**

हिन्दी पद्यानुवाद-

*संयत-मुनि आने जाने, और अशन-पान को लेने में ।
हो शुद्ध लगे अतिचारों से, क्रम से कर उनका चिन्तन मन में ॥*

अन्वयार्थ—संजए = संयमी साधु। गमणागमणे = गमनागमन। चेव = और। भत्तपाणे य = आहार-पानी ग्रहण करने में, जो भी दोष लगे हों। नीसेसं = उन सब। अइयारं = अतिचार दोषों का। जहक्कमं = यथाक्रम से। आभोइत्ताण = चिन्तन करे।

भावार्थ—भिक्षा से आकर मुनि गुरु के पास जब आलोचना करता है तो आहार-पानी के ग्रहण करने और आने-जाने में जो भी कोई दोष लगा हो तो उसका उपयोग पूर्वक चिन्तन करके सबको प्रकट करे।

**उज्जुप्पण्णो अणुव्विग्गो, अवक्खित्तेण चेयसा ।
आलोए गुरुसगासे, जं जहा गहियं भवे ॥९०॥**

हिन्दी पद्यानुवाद-

सरल बुद्धि अव्याकुल, मुनि शान्त हृदय धारण करके ।
कर आत्मालोचन गुरु समीप, जो ग्रहण किये जैसे जिनके ॥

अन्वयार्थ-उज्जुप्पणो = सरल मन वाला । अणुव्विग्गो = उद्वेगरहित साधु । अवक्खित्तेण = विक्षेप-चंचलता रहित । चेयसा = चित्त से । गुरुसगासे = गुरु की सेवा में । जं जहा = जो जिस प्रकार । गहियं = ग्रहण किया । भवे = हो । आलोए = उसी प्रकार यथार्थ आलोचना करे ।

भावार्थ-मन में कोई छिपाने का विचार नहीं लावे, सरल मन से चंचलता रहित होकर, जो जिस प्रकार लिया हो गुरु के समक्ष साफ-साफ कहकर आलोचना करे ।

ण सम्ममालोइयं हुज्जा, पुव्विं पच्छा व जं कडं ।
पुणो पडिक्कमे तस्स, वोसट्ठो चिंतए इमं ॥११॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

सम्यक् हुई नहीं आलोचना, आगे पीछे कृत-दोषों की ।
फिर प्रतिक्रमण कर ले उनका, संस्मृति करके इस गाथा की ॥

अन्वयार्थ-जं आलोइयं = जो आलोचना । सम्मं = सम्यक् प्रकार से । ण हुज्जा = नहीं की हो । व = अथवा । पुव्विंपच्छा = आगे पीछे । कडं = कहा हो । तस्स = उसके लिये । पुणो = फिर । पडिक्कमे = प्रतिक्रमण करे । वोसट्ठो = और कायोत्सर्ग करके । इमं = इस प्रकार । चिंतए = चिन्तन करे ।

भावार्थ-कोई दोष रह न जाय इस भावना से साधु ने जिस दोष की सम्यक् आलोचना नहीं की हो अथवा जो आगे-पीछे कहा गया हो, उसके लिये साधु फिर प्रतिक्रमण करे और कायोत्सर्ग करके इस प्रकार चिन्तन करे ।

अहो जिणेहिं असावज्जा, वित्ती साहूण देसिया ।
मोक्खसाहणहेउस्स, साहुदेहस्स धारणा ॥१२॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

अहो ! जिनेश्वर के द्वारा, मोक्षार्थ साधु तन धारण को ।
है दिया गया उपदेश दोष से, रहित धर्म के पालन को ॥

अन्वयार्थ-अहो = अहो । जिणेहिं = जिनेश्वर देव ने । मोक्ख-साहणहेउस्स = मोक्ष साधन

के निमित्त । साहुदेहस्स धारणा = एवं साधुओं के देह धारण के लिये । साहूण = साधुओं को । असावज्जा = कैसी-निर्दोष । वित्ती = वृत्ति । देसिया = बतलाई है ।

भावार्थ—कायोत्सर्ग में स्थित मुनि सोचता है कि अहो ! परम दयालु जिनेश्वर देवों ने मोक्ष-साधन में सहायक साधु के शरीर के धारण एवं पोषण के लिये कैसी निर्दोष वृत्ति बतलाई है कि साधु शरीर का भरण-पोषण भी करले और पाप के दोष से भी बचा रहे ।

णमुक्कारेण पारित्ता, करित्ता जिणसंथवं ।

सज्झायं पट्टवित्ताणं, वीसमेज्ज खणं मुणी ॥१३॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

णमुक्कार का पद कहकर, मुनि कायोत्सर्ग समाप्त करे ।

कर जिनस्तव स्वाध्याय करे, फिर क्षण भर का विश्राम करे ॥

अन्वयार्थ—णमुक्कारेण = नवकार 'नमो अरिहंताणं' पद से । पारित्ता (पारेत्ता) = कायोत्सर्ग का पालन करे, फिर । जिण संथवं = जिनेन्द्र स्तुति अर्थात् चौबीस तीर्थकरों की स्तुति रूप लोगस्स का । करित्ता = पाठ करे । सज्झायं = स्वाध्याय का । पट्टवित्ताणं (पट्टवेत्ताणं) = पाठ उच्चारण करके । मुणी = मुनि । खणं = क्षण भर के लिये । वीसमेज्ज = विश्राम करे ।

भावार्थ—कायोत्सर्ग में चिन्तन के पीछे मुनि “नमो अरिहंताणं” बोलकर कायोत्सर्ग को पूर्ण करे । फिर जिनेन्द्र स्तुति रूप लोगस्स के पाठ का उच्चारण करे और स्वाध्याय का (प्रस्थापन) प्रारम्भ कर क्षण भर के लिये विश्राम करे ।

वीसमंतो इमं चिंते, हियमट्ठं लाभमट्ठिओ ।

जइ मे अणुगहं कुज्जा, साहू हुज्जामि तारिओ ॥१४॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

लाभार्थी विश्राम घड़ी में, चिन्तन हितकारी करले ।

सोचे, भवसागर पार करूँ, यदि करें अनुग्रह मुनि कुछ ले ॥

अन्वयार्थ—लाभमट्ठिओ = ज्ञानादि के लाभ का अर्थी । साहू = साधु । वीसमंतो = विश्राम करता हुआ । हियमट्ठं = आत्म-हित के लिये । इमं = ऐसा । चिंते = सोचे कि । जइ = यदि अन्य साधुजन । मे = मेरे पर । अणुगहं = मेरे द्वारा भिक्षा में लाये गये आहार में से कुछ ग्रहण करने का अनुग्रह । कुज्जा = करें तो मैं । तारिओ = भव जल से पार । हुज्जामि (होज्जामि) = हो जाऊँ ।

भावार्थ—लाभार्थी मुनि आहार सेवन करने से पहले विश्राम करता हुआ, आत्म-हित के लिये ऐसा चिन्तन करे कि यदि मेरे द्वारा प्राप्त आहार में से सन्त कुछ लेने का अनुग्रह करें तो मैं भवसागर पार हो जाऊँ।

साहवो तो चिअत्तेणं, निमंतिज्ज जहक्कमं ।

जइ तत्थ केइ इच्छेज्जा, तेहिं सद्धिं तु भुंजए ॥१५॥

हिन्दी पद्यानुवाद—

हर्षित मन मुनि साधुजनों को, क्रम से आमन्त्रण देवे ।

यदि चाहे उनमें जो लेना, तो साथ उन्हीं के खा लेवे ॥

अन्वयार्थ—चिअत्तेणं = चिन्तन के पश्चात् । साहवो तो = प्रसन्नता पूर्वक साधुओं को । जहक्कमं = छोटे-बड़े क्रम से । निमंतेज्ज (निमंतिज्ज) = निमन्त्रित करे । जइ = यदि । तत्थ = उन साधुजनों में से । केइ = कोई । इच्छेज्जा (इच्छिज्जा) = खाना लेना चाहे । तु = तो । तेहिं = उनके । सद्धिं = साथ प्रेम पूर्वक । भुंजए = भोजन करे ।

भावार्थ—चिन्तन के बाद प्रसन्नतापूर्वक यथाक्रम से सब साधुओं को निमन्त्रित करे । उनमें से कोई मुनि चाहे, तो उनके साथ प्रेम से भोजन करना स्वीकार करे ।

अह कोइ ण इच्छेज्जा, तओ भुंजेज्ज एगओ ।

आलोए भायणे साहू, जयं अप्परिसाडियं ॥१६॥

हिन्दी पद्यानुवाद—

अगर नहीं चाहे कोई तो, करे अकेला ही भोजन ।

प्रकाश वाले भाजन में, रख ध्यान न गिरे वहाँ भोजन ॥

अन्वयार्थ—अह = कदाचित् । कोइ = कोई साधु लेना । ण इच्छेज्जा (इच्छिज्जा) = नहीं चाहे । तओ = तो । साहू = साधु । एगओ = एकाकी । आलोए = प्रकाश वाले । भायणे = पात्र में । जयं = यतना के साथ । अप्परिसाडियं = नीचे नहीं गिराते हुए । भुंजेज्ज (भुंजिज्ज) = आहार करे ।

भावार्थ—कदाचित् कोई भिक्षु भिन्न रुचि के कारण साथ खाना नहीं चाहे तो साधु प्रकाश वाले पात्र में यतना के साथ नीचे इधर-उधर नहीं गिराते हुए एकाकी भोजन कर ले ।

तित्तगं व कडुयं व कसायं, अंबिलं व महरं लवणं वा ।

एयलद्धमण्णट्ठपउत्तं, महुघयं व भुंजिज्ज संजए ॥१७॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

तीखा कड़वा और कषैला, मधुर अम्ल नमकीन तथा ।
साधु निमित्त दिया विधि से तो, मधु-घृत सम ले बिना व्यथा॥

अन्वयार्थ-तित्तगं = आहार तीखा हो । व = अथवा । कडुयं व = कड़वा हो । कसायं = कषैला हो । अंबिलं = अथवा खट्टा । व = अथवा । म्हरं = मीठा हो । वा = या । लवणं = नमकीन भोजन । अण्णट्टपउत्तं = जो गृहस्थ के लिये बना हो । एयलद्धं = विधि से प्राप्त उस भोजन को । संजए = साधु । महुघयं व = मधु और घी की तरह । भुंजिज्ज = शान्त मन से सेवन कर ले-खा ले ।

भावार्थ-साधु तीखा, कड़वा, कषैला, खट्टा, मीठा या नमकीन किसी प्रकार का भोजन हो जो गृहस्थ के लिये बना और विधिपूर्वक प्राप्त हो उसको मधु और घृत की तरह शान्त भाव से खा ले ।

अरसं विरसं वा वि, सूइयं वा असूइयं ।
उल्लं वा जइ वा सुक्कं, मंथुकुम्मास-भोयणं ॥१९८॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

अरस विरस अथवा बघार से, युक्त अयुक्त बना वैसा ।
बेर चूर्ण बाकुला उड़द का, भोजन आर्द्र शुष्क जैसा ॥

अन्वयार्थ-अरसं = (विधि से प्राप्त भोजन) अरस नीरस हो । वा वि = अथवा । विरसं = विरस पुराणा धान । सूइयं = बघार आदि से सुवासित । वा = अथवा । असूइयं = या संस्कारहीन । उल्लं = गीला । वा = अथवा । जइवा = चाहे । सुक्कं = सूखा । मंथु = बेर का चूर्ण । कुम्मास भोयणं = उड़द का भोजन हो ।

भावार्थ-केवल संयम-साधना के लिये जीने वाला मुनि जैसा भी आहार प्राप्त हो, रस रहित हो या नीरस, सुवासित हो अथवा संस्कार रहित, गीला हो, अथवा बेर का चूर्ण एवं उड़द के बाकुले आदि हो-

उप्पण्णं नाइहीलिज्जा, अप्पं वा बहुफासुयं ।
मुहालद्धं मुहाजीवी, भुंजिज्जा दोसवज्जियं ॥१९९॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

मिले धर्म मर्यादा से जो, प्रासुक भोजन अल्प अधिक ।
सहज प्राप्त निर्दोष वस्तु खाये, न लाये मन में शोक ॥

अन्वयार्थ-उप्पण्णं = विधि से प्राप्त हुए । अप्पं वा = थोड़े या । बहु = बहुत रूखा सूखा ।

नाइहीलिज्जा = भोजन हो तो भी उसकी हीलना नहीं करे, किन्तु । मुहालद्धं = निःस्वार्थ भाव से दिये गये । फासुयं = अचित्त आहार आदि का । मुहाजीवी = निर्जराकामी मुनि । दोसवज्जियं = संयोजना आदि के दोष रहित जानकर । भुंजिज्जा = शान्ति से सेवन करे ।

भावार्थ—अल्प मिले या अधिक मिले, लूखा हो या सूखा, उसकी निन्दा नहीं करे । किन्तु बिना स्वार्थ के गवेषणा, संयोजना आदि दोष रहित प्रासुक भोजन को समभाव से सेवन कर ले ।

दुल्लहा उ मुहादाई, मुहाजीवी वि दुल्लहा ।
मुहादाई मुहाजीवी, दो वि गच्छंति सुग्गइं ॥100॥
॥त्ति बेमि ॥

हिन्दी पद्यानुवाद—

निष्काम प्रदाता दुर्लभ है, दुर्लभ वैसे लेने वाले ।
दोनों ही सद्गति में जाते हैं, निष्काम दान जीवन वाले ॥
जम्बू ! महावीर से मैंने, जैसा सुना वही कहता ।
हैं सारी बातें वीर कथित, मैं अपनी बात नहीं कहता ॥

अन्वयार्थ—मुहादाई = निःस्वार्थ भाव से देने वाला दाता । दुल्लहा उ = दुर्लभ हैं । मुहाजीवी = बिना किसी अपेक्षा के जीने वाले सन्त । वि = भी । दुल्लहा = दुर्लभ हैं । मुहादाई = निःस्वार्थ भाव से देने वाला और । मुहाजीवी = निस्पृह जीवन जीने वाला । दो वि = ये दोनों । सुग्गइं = सद्गति को । गच्छंति = प्राप्त करते हैं ।

भावार्थ—संसार में बिना स्वार्थ के देने वाले दाता दुर्लभ हैं, वैसे ही बिना स्पृहा के याचक भी दुर्लभ हैं । कामना और इच्छा से दूर मुधादाता और दाता की प्रसन्नता के बिना अपेक्षा से लेने वाले मुहाजीवी भिक्षु दोनों ही सद्गति को प्राप्त करते हैं । उनके देने-लेने में कोई सौदा नहीं होता ।

॥ पाँचवाँ अध्ययन—प्रथम उद्देशक समाप्त ॥



द्वितीय उद्देशक

पडिग्गहं संलिहत्ताणं, लेवमायाइ-संजए ।
दुगंधं वा सुगंधं वा, सव्वं भुंजे ण छड्डए ॥१॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

अंगुलियों से पात्र पोंछ कर, लेप मात्र नहीं रखे समण ।
सुरभिगंध या अशुभिगंध हो, कुछ न तजे सब खाले अशन ॥

अन्वयार्थ-संजए = संयमी साधु । लेवमायाए = लेप मात्र से । पडिग्गहं = पात्र को । संलिहत्ताणं = अंगुली को पोंछकर । दुगंधं = दुर्गंध । वा = अथवा । सुगंधं = सुगन्ध । वा = अथवा । सव्वं = सब । भुंजे = खा ले । ण छड्डए = कुछ भी नहीं छोड़ें ।

भावार्थ-साधु खाने के पात्र को अच्छी तरह से पोंछ कर दुर्गन्ध अथवा सुगन्ध सब पदार्थ खा ले, कुछ भी शेष नहीं छोड़े ।

सेज्जा निसीहियाए, समावण्णो य गोयरे ।
अयावयट्ठा भुच्चाणं, जइ तेण न संथरे ॥२॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

स्थानक या स्वाध्याय स्थान में, ले आने पर शुद्ध आहार ।
प्राप्त अशन खा लेने पर यदि, हो न सके तन का निस्तार ॥

अन्वयार्थ-सेज्जा = निवास स्थान । निसीहियाए = स्वाध्याय या बैठने के स्थान में । य = और । गोयरे = गोचरी में । समावण्णो = गया हुआ मुनि । अयावयट्ठा = आवश्यकता से कुछ कम । भुच्चाणं (भोच्चाणं) = खाकर । जइ तेण = यदि उस आहार से । न संथरे = नहीं रह सके ।

टिप्पणी-इसका भावार्थ अगली गाथा में लिखा गया है ।

तओ कारणमुप्पण्णे, भत्तपाणं गवेसए ।
विहिणा पुव्व-उत्तेण, इमेणं उत्तरेण य ॥३॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

ऐसे कारण के होने पर, मुनि भिक्षार्थ पुनः जाये ।
पूर्व कथित विधि से अथवा, आगे जैसी विधि बतलाये ॥

अन्वयार्थ-तओ = तो। कारणमुप्पण्णे = कारण उत्पन्न होने पर। विहिणा पुव्व उत्तेण य = पूर्व कथित विधि से और। इमेणं उत्तरेण = आगे कही जाने वाली विधि से। भत्तपाणं = आहार-पानी की। गवेसए = साधु गवेषणा करे।

भावार्थ-इन दो गाथाओं में यह बतलाया गया है कि साधु अपने उपाश्रय या बैठने के स्थान में तथा गोचरी के क्षेत्र में अपर्याप्त आहार करके उतने भर से नहीं रह सके, क्षुधा आदि विशेष कारण की स्थिति में पहले कही हुई तथा आगे कही जाने वाली विधि से आहार-पानी की फिर गवेषणा करे।

कालेण णिक्खमे भिक्खू, कालेण य पडिक्कमे।

अकालं च विवज्जित्ता, काले कालं समायरे ॥4॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

उचित समय पर भिक्षा को, जायें और आयें मुनिजन।

छोड़ अकाल काल में सब, करणी करने का हो चिन्तन ॥

अन्वयार्थ-भिक्खू = साधु। कालेण = भिक्षा के लिये समय में ही। णिक्खमे = निकले। य = और। कालेण = समय पर ही। पडिक्कमे = लौट आवे। च = और। अकालं = अकाल को। विवज्जित्ता = छोड़कर। काले = जिस समय का जो कार्य हो उसे। कालं = उसी समय में। समायरे = सम्पन्न करे।

भावार्थ-साधु समय पर भिक्षा को निकले और समय पर ही लौट आवे। अकाल का वर्जन कर जिस समय का जो कार्य हो उसे उसी काल में सम्पन्न करना चाहिये।

अकाले चरसि भिक्खू, कालं ण पडिलेहसि।

अप्पाणं च किलामेसि, सण्णिवेसं च गरिहसि ॥5॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

जाते अकाल में भिक्षा को, नहीं ध्यान काल का जो रखते।

पहुँचाते निज को खेद और, वसति की वे निन्दा करते ॥

अन्वयार्थ-भिक्खू = हे भिक्षु। अकाले = तुम अकाल में। चरसि = भिक्षा को जाते हो। कालं = भिक्षा के समय का। ण पडिलेहसि = ध्यान नहीं करते हो, इससे। च = और। अप्पाणं = अपने आप को। किलामेसि = खिन्न करते हो। च = और। सण्णिवेसं = गाँव की। गरिहसि = निन्दा-हीलना करते हो।

भावार्थ—इसमें बताया गया है कि जो साधु भिक्षा के काल का बिना ध्यान किये असमय में भिक्षा को जाता है तब अगर भिक्षा नहीं मिलती है तो वह अपने आप को व्यर्थ कष्ट दिया ऐसा समझता है और गाँव की निन्दा करता है ।

**सइ काले चरे भिक्खू, कुज्जा पुरिसकारियं ।
अलाभु त्ति ण सोइज्जा, तवोत्ति अहियासए ॥६॥**

हिन्दी पद्यानुवाद—

*मुनि उचित समय में भिक्षा हित, जाने का पुरुषार्थ करे ।
अलाभ में नहीं सोच करे, तप मान भूख को सहन करे ॥*

अन्वयार्थ—भिक्खू = साधु । काले = भिक्षा का समय । सइ = होने पर । चरे = भिक्षा के लिये जावे और । पुरिसकारियं = पुरुषार्थ । कुज्जा = करे । अलाभुत्ति = भिक्षा का लाभ नहीं होने से । ण सोइज्जा = चिन्ता नहीं करे किन्तु । तवोत्ति (तवुत्ति) = आज मेरे तप होगा, ऐसा विचार कर । अहियासए = क्षुधा परीषह को शान्ति से सहन करे ।

भावार्थ—भिक्षा का समय होने पर जो साधु गोचरी को जाता है और पुरुषार्थ करता है, वह अलाभ होने पर शोक नहीं करता, किन्तु आज मेरे तप हो जायगा, ऐसा सोचकर क्षुधा आदि परीषह को सहन करता है ।

**तहेवुच्चावया पाणा, भत्तट्ठाए समागया ।
तं उज्जुयं ण गच्छिज्जा, जयमेव परिक्रमे ॥७॥**

हिन्दी पद्यानुवाद—

*ऊँचे नीच प्राणी वैसे, यदि अशन-पान हित हों आए ।
ना जाए उनके आगे हो, यतना से गति करता जाए ॥*

अन्वयार्थ—तहेव = इसी प्रकार, कभी । उच्चावया = उच्च नीच । पाणा = प्राणी । भत्तट्ठाए = अपने दाना पानी के लिये । समागया = आये हुए हों । तं = तो उनके । उज्जुयं = सामने । ण गच्छिज्जा = नहीं जावे, किन्तु । जयमेव = यतना पूर्वक । परिक्रमे (परक्कमे) = गमन करे ।

भावार्थ—कभी उच्च-हंस, गाय आदि अवच-काक, कुत्ते आदि छोटे-बड़े पशु-पक्षी दाना-पानी के लिये आये हुए हों, तो साधु उनके सामने से नहीं जावे, किन्तु यतना पूर्वक एक तरफ से गमन करे ताकि उनको अन्तराय नहीं पड़े ।

गोयरगपविट्टो उ, ण णिसीइज्ज कत्थई ।
कहं च न पबंधिज्जा, चिट्ठित्ताण व संजए ॥८॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

भिक्षा लेने को गया साधु, बैठे न कहीं घर में जाकर ।
ना कहे किसी को धर्मकथा, परिजन में वहाँ खड़ा रहकर ॥

अन्वयार्थ-गोयरगपविट्टो य = और गोचरी के लिये गया हुआ । संजए = साधु । कत्थई = कहीं पर । ण णिसीइज्ज = बैठे नहीं । च = और । चिट्ठित्ताण व = खड़ा रहकर भी । कहं = कथा वार्ता का । न पबंधिज्जा = विस्तार नहीं कहे ।

भावार्थ-साधु गोचरी के लिये जाकर कहीं बैठे नहीं और खड़े रहकर भी धर्म-कथा का विस्तार नहीं करे, बात नहीं करे ।

अगलं फलिहं दारं, कवाडं वा वि संजए ।
अवलंबिया ण चिट्ठिज्जा, गोयरगगओ मुणी ॥९॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

भिक्षा लेने को गया साधु, अगल व फलक तथा साँकल ।
ले अवलम्ब द्वार आदिक का, खड़ा रहे न कहीं क्षण पल ॥

अन्वयार्थ-गोयरगगओ = गोचरी में गया हुआ । मुणी = साधु । अगलं = अर्गला । फलिहं = परिघा यानी द्वार के पीछे देने की लकड़ी । दारं = द्वार । कवाडं = कपाट को । वा वि = अथवा । अवलंबिया = दीवार आदि का अवलम्बन लेकर । संजए = संयमी साधु । ण चिट्ठिज्जा = खड़ा नहीं रहे ।

भावार्थ-गोचरी के लिये गया हुआ साधु, अर्गला, परिघा, (द्वार के पीछे देने का काष्ठ) द्वार एवं कपाट को पकड़कर संयमवान् मुनि खड़ा नहीं रहे । ऐसा करने से लकड़ी के गिरने की सम्भावना से जीव-जन्तु की विराधना का भय रहता है । अतः विवेकी साधु दीवार आदि को बिना पकड़े यत्न से खड़ा रहे ।

समणं माहणं वा वि, किविणं वा वणीमगं ।
उवसंकमंतं भत्तट्ठा, पाणट्ठाए व संजए ॥१०॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

ब्राह्मण श्रमण दीन भिक्षुक, और कृपण पूर्व से हों जिस घर ।
उल्लंघन कर उन्हें न मुनिवर, अशन हेतु जाये उस घर ॥

अन्वयार्थ-समणं = बौद्ध भिक्षु अथवा श्रमण । माहणं = ब्राह्मण । वा वि = अथवा । किविणं = कृपण । वा = या । वणीमगं = याचक भिखारी को यदि । भत्तट्टा = भोजन के लिये । व = वा । पाणट्टाए = पानी के लिये । संजए = संयमी सन्त । उवसंकमंतं = घर में जाते देखे तो ।

भावार्थ-अगली गाथा के साथ लिखा गया है ।

तमइक्कमित्तु ण पविसे, ण चिट्ठे चक्खुगोयरे ।

एगंतमवक्कमित्ता, तत्थ चिट्ठिज्ज संजए ॥११॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

जाती दृष्टि जहाँ तक उनकी, वैसे पथ में न खड़ा होवे ।

किन्तु देख एकान्त भूमि, वैसे स्थल पर जा खड़ा रहे ॥

अन्वयार्थ-तं = उसको । अइक्कमित्तु = लाँघ करके । ण पविसे = प्रवेश नहीं करे । चक्खुगोयरे = दृष्टिगोचर हो वैसे । ण चिट्ठे = खड़ा न रहे, किन्तु । संजए = संयमी मुनि । एगंतं = एकान्त स्थल में । अवक्कमित्ता = जाकर । तत्थ = वहाँ । चिट्ठिज्ज = सावधानी से खड़ा रहे ।

भावार्थ (गाथा संख्या 10 व 11)-संयमी साधु गृहस्थ के घर में भोजन या पानी के लिये जाते हुए बौद्ध भिक्षु, ब्राह्मण, कृपण, याचकों को लाँघ कर, घर में प्रवेश नहीं करे । सामने दृष्टिगोचर हो वैसे खड़ा भी नहीं रहे, किन्तु एकान्त में जाकर दृष्टिगोचर न हो, इस प्रकार खड़ा रहे । सामने खड़े रहने से याचकों की अप्रीति का पात्र बनने की आशंका रहती है और उनको मिलने वाले सम्भावित दान की प्राप्ति में अन्तराय की सम्भावना रहती है ।

वणीमगस्स वा तस्स, दायगस्सुभयस्स वा ।

अप्पत्तियं सिया हुज्जा, लहुत्तं पवयणस्स वा ॥१२॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

इससे दाता और भिक्षु, या याचक दाता दोनों का ।

बढ़ता द्वेष तथा घट जाता, है महत्त्व जिनशासन का ॥

अन्वयार्थ-तस्स = उस । वणीमगस्स = याचक आदि । वा = अथवा । दायगस्स वा = दाता या । उभयस्स = दोनों को, लाँघकर जाने से । सिया = कदाचित् । अप्पत्तियं = अप्रीति । वा = अथवा । पवयणस्स = जिनशासन की । लहुत्तं = लघुता । हुज्जा = होगी ।

भावार्थ-याचक आदि को लाँघकर जाने से उस याचक या दाता की अथवा दोनों की अप्रीति हो

सकती है। कभी लोग यह सोचे कि श्रमणों को भोजन नहीं मिलता है, जिनशासन की ऐसी लघुता प्रकट होने की सम्भावना रहती है। इसलिये साधु उनको लाँघकर नहीं जावे।

**पडिसेहिए व दिण्णे वा, तओ तम्मि णियत्तिए ।
उवसंकमिज्ज भत्तट्ठा, पाणट्ठाए व संजए ॥13॥**

हिन्दी पद्यानुवाद-

दाता से वर्जित या भिक्षा पाकर, याचक के जाने पर।

अशन-पान हित जाये संयत, फिर उस दाता के घर पर ॥

अन्वयार्थ-पडिसेहिए = दाता द्वारा निषेध करने पर। व = या। दिण्णे = भिक्षा दे देने पर। तम्मि वा = या उस याचक आदि के। तओ = वहाँ से। णियत्तिए = हट जाने पर। संजए = साधु। भत्तट्ठा व = आहार के लिये अथवा। पाणट्ठाए = पानी के लिए। उवसंकमिज्ज = प्रवेश करे।

भावार्थ-दाता द्वारा याचक को निषेध करने पर या भिक्षा देने पर जब वह याचक चला जावे तब साधु आहार अथवा पानी के लिये उस घर में जावे।

**उत्पलं पउमं वा वि, कुमुयं वा मगदंतियं ।
अण्णं वा पुप्फसच्चित्तं, तं च संलुंचिया दए ॥14॥**

हिन्दी पद्यानुवाद-

उत्पल पद्म कुमुद अथवा, मालती लता के फूलों का।

हो अन्य सचित्त जो ऐसे ही, लुंचन कर वैसे फूलों का ॥

अन्वयार्थ-उत्पलं = उत्पल कमल। वा वि = अथवा। पउमं = पद्म-लाल कमल। वा = अथवा। कुमुयं = चन्द्र विकासी कमल और। मगदंतियं = मालती के फूल। वा = अथवा वैसे। अण्णं च = अन्य कोई। पुप्फसच्चित्तं तं = चित्त फूल हो उसको। संलुंचिया = छेदन करके। दए = दे।

भावार्थ-कोई गृहस्थ साधु को भिक्षा दे तो कमल, पद्म कमल अथवा चन्द्र विकासी कमल वा मालती के फूल तथा वैसे किसी अन्य सचित्त फूल को छेदन करके दे।

**तं भवे भत्तपाणं तु, संजयाण अकप्पियं ।
दित्तियं पडियाइक्खे, ण मे कप्पइ तारिसं ॥15॥**

हिन्दी पद्यानुवाद-

फिर दाता यदि भक्त-पान दे, तो अकल्प्य हो जाता है।

भिक्षा दात्री को मुनि बोले, वैसा मुझे नहीं कल्पता है ॥

अन्वयार्थ-तं = वह । भत्तपाणं तु = आहार-पानी । संजयाण = साधुओं के लिए । अकप्पियं = अग्राह्य । भवे = होता है, अतः । दितियं = देने वाली से । पडियाइक्खे = निषेध से कहे कि । मे = मुझको । तारिसं = वैसा आहार लेना । ण कप्पइ = नहीं कल्पता है ।

भावार्थ-ऐसा आहार-पानी साधुओं के लिए अग्राह्य होता है । अतः देने वाली से साधु निषेध की भाषा में कहे कि मुझको वैसा आहार लेना नहीं कल्पता है ।

उप्पलं पउमं वा वि, कुमुयं वा मगदंतियं ।

अण्णं वा पुप्फ-सच्चित्तं, तं च संमद्विया दए ॥16॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

उत्पल पद्म कुमुद अथवा, मालती लता के फूलों का ।

हो अन्य सचित्त जो ऐसे ही, मर्दन कर वैसे फूलों का ॥

अन्वयार्थ-उप्पलं = उत्पल कमल । वा वि = अथवा । पउमं = पद्म कमल । वा = अथवा । कुमुयं = चन्द्र विकासी कमल और । मगदंतियं = मालती के फूल । वा = अथवा वैसे । अण्णं = अन्य कोई । पुप्फसच्चित्तं = सचित्त फूल हो । तं च = और उसको । संमद्विया = मसलकर । दए = साधु को भिक्षा दे ।

भावार्थ-पहले की तरह कोई कमल आदि फूलों को मर्दन कर साधु को भिक्षा दे ।

तं भवे भत्तपाणं तु, संजयाण अकप्पियं ।

दितियं पडियाइक्खे, ण मे कप्पइ तारिसं ॥17॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

दे दाता यदि भक्त पान तो, वह अकल्प्य हो जाता है ।

भिक्षा दात्री को मुनि बोले, वैसा मुझे नहीं कल्पता है ॥

अन्वयार्थ-तं = वह । भत्तपाणं तु = आहार-पानी । संजयाण = साधुओं के लिये । अकप्पियं = अग्राह्य । भवे = हो जाता है अतः । दितियं = देने वाली से । पडियाइक्खे = कहे कि । मे = मुझको । तारिसं = वैसा आहार लेना । ण कप्पइ = नहीं कल्पता ।

भावार्थ-उस प्रकार का आहार-पानी साधुओं के लिये अग्राह्य होता है अतः देने वाली से साधु निषेध की भाषा में कहे कि मुझको वैसा आहार-पानी लेना नहीं कल्पता है ।

सालुयं वा विरालियं, कुमुयं उप्पलणालियं ।

मुणालियं सासवणालियं, इच्छुखंडं अणिव्वुडं ॥18॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

कमल ढाक का मूल कुमुद या, कमल तन्तु या नाल कमल ।

सरसों भाजी इक्षु खण्ड, जिन पर न हुआ है शस्त्र चलन ॥

अन्वयार्थ-सालुयं = कमल का मूल । विरालियं = विराली कंद । वा = अथवा । कुमुयं = कुमुद । उप्पलणालियं = उत्पल नालिका । मुणालियं = मृणालिका कमल तन्तु । सासवणालियं = सरसों की भाजी । उच्छुखंडं = इक्षुखण्ड । अणिव्वुडं = अशस्त्र परिणत यानी कच्चा हो ।

भावार्थ-साधु वनस्पति की हिंसा से बचने के लिये कमल का मूल, विराली कंद, चन्द्र विकासी कमल, कमल की नाल, कमल का तन्तु और सरसों की भाजी एवं गाँठ वाला इक्षु का खण्ड न ले तथा बिना गाँठ वाले में भी सार भाग कम, खल भाग अधिक होने से न ले ।

तरुणगं वा पवालं, रुक्खस्स तणगस्स वा ।

अण्णस्स वा वि हरियस्स, आमगं परिवज्जए ॥19॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

हो इमली तरु के या तृण के, तरुण पत्र वा कोंपल-दल ।

अन्य हरित भी हो सचित्त तो, छोड़े साधु उन्हें उस पल ॥

अन्वयार्थ-रुक्खस्स = वृक्ष । वा = या । तणगस्स = तृण के । तरुणगं वा = पत्ते अथवा । पवालं वा = कोंपलें तथा । अण्णस्स वि = अन्य भी । हरियस्स = हरित के पत्ते आदि । आमगं = कच्चे हों तो । परिवज्जए = साधु वर्जन करे ।

भावार्थ-साधु वृक्ष, तृण या अन्य किसी वनस्पति के पत्ते अथवा कोंपलों को ग्रहण नहीं करें ।

तरुणियं वा छिवाडिं, आमियं भज्जियं सइं ।

दिंतियं पडियाइक्खे, ण मे कप्पइ तारिसं ॥20॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

भुंजी हुई हो एक बार या कच्ची, फली लगे गृही देने को ।

भिक्षा दात्री से मुनि बोले, वैसा कल्पे नहीं लेने को ॥

अन्वयार्थ-तरुणियं = जिसमें बीज पके नहीं हो । छिवाडिं = वैसी मूँग आदि की फली । आमियं = कच्ची हो । वा सइं = अथवा एक बार । भज्जियं = भुंजी हुई हो । दिंतियं = देने वाली से साधु । पडियाइक्खे = निषेध करते हुए कहे कि । मे = मुझको । तारिसं = वैसा आहार । ण कप्पइ = नहीं कल्पता है ।

भावार्थ—मूँग आदि की कच्ची फली जो एक बार आग पर भुंजी गई हो साधु ग्रहण नहीं करे । देने वाले को मना कर दे ।

तहा कोलमणुस्सिण्णं, वेलुयं कासवणालियं ।

तिल-पप्पडगं णीमं, आमगं परिवज्जए ॥21॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

वैसे बिना उबाले जो है, बेर केर श्रीपर्णी फल ।

हो सचित्त तो साधु छोड़ दे, तिल पपड़ी या नीम का फल ॥

अन्वयार्थ—तहा = वैसे फली की तरह । कोलमणुस्सिण्णं = बिना उबाला बेर । वेलुयं = वंश करेला । कासवणालियं = (काश्यपनालिका) श्रीपर्णी का फल । तिल-पप्पडगं = तिल पपड़ी । णीमं = नीम की निम्बोली या कदम्बफल । आमगं = कच्चा । परिवज्जए = ग्रहण नहीं करे ।

भावार्थ—फली की तरह बिना उबाले बेर आदि फल भी कच्चे हों तो साधु उनका वर्जन कर दे ।

तहेव चाउलं पिट्ठं, वियडं वा तत्तऽणिव्वुडं ।

तिलपिट्ठ-पूइपिण्णागं, आमगं परिवज्जए ॥22॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

वैसे चावल का आटा, कुछ गर्म किया ठण्डा पानी ।

तिलकुट्टा एवं सरसों-खल, त्यागे सचित्त मुनि सुज्ञानी ॥

अन्वयार्थ—तहेव = इसी प्रकार । चाउलं = चावल आदि का । पिट्ठं = तत्काल का पिसा आटा । वा = या । वियडं = गरम जल । तत्तऽणिव्वुडं = जो पूरा गर्म नहीं हुआ है । तिलपिट्ठ = तिल का पिष्ट । पूइपिण्णागं = पोय और सरसों की खली । आमगं = ये सब कच्चे हों तो । परिवज्जए = इनका वर्जन करे ।

भावार्थ—साधु चावल अथवा गेहूँ का तत्काल पिसा हुआ आटा और तिल का कूटा, बराबर नहीं उबला हो वैसा पानी और सरसों की खली कच्ची, सचित्त हो तो उन्हें छोड़ दे ।

कविट्ठं माउलिंगं च, मूलगं मूलगत्तियं ।

आमं असत्थपरिणयं, मणसा वि ण पत्थए ॥23॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

कैथ बिजौरा मूला या, टुकड़ा मूले के कन्दों का ।
हो कच्चा शस्त्र-प्रयोग हीन, मुनि करे न ध्यान कभी उनका ॥

अन्वयार्थ-कविट्टं च = कपित्थ-कैथ और । माउलिंगं = बिजौरा । मूलगं = मूला । मूलगत्तियं = मूले के टुकड़े । आमं = कच्चे । असत्थपरिणयं = अशस्त्र परिणत । मणसा वि = मन से भी । ण पत्थए = नहीं चाहे ।

भावार्थ-कैथ, बिजौरा, मूला और मूले के टुकड़े कच्चे एवं शस्त्र परिणत न हुए हों तो उनको ग्रहण करने की साधु मन में इच्छा भी नहीं करे ।

तहेव फलमंथूणि, बीयमंथूणि जाणिया ।
बिहेलगं पियालं च, आमगं परिवज्जए ॥२४॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

वैसे ही बेर फलादि चूर्ण, और बीज-चूर्ण को जान श्रमण ।
हो दाख बहेड़ा फल कच्चा, तो कभी न उनको करे ग्रहण ॥

अन्वयार्थ-तहेव = बिजौरा आदि की तरह । फलमंथूणि = बेर आदि फलों का चूर्ण । बीयमंथूणि = बीजों का चूर्ण । जाणिया = जानकर । च = और । बिहेलगं = बहेड़ा । पियालं = तथा प्रियाल (रायण) का फल । आमगं = कच्चा हो तो । परिवज्जए = वर्जन करे ।

भावार्थ-फल और बीज आदि के चूर्ण बहेड़ा आदि कच्चे हों या मिश्र की आशंका हो तो उन्हें छोड़ दे ।

समुयाणं चरे भिक्खू, कुलमच्चावयं सया ।
णीयं कुलमइक्कम्म, ऊसढं णाभिधारए ॥२५॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

सामूहिक भिक्षा हित भिक्षु, ऊँचे नीचे घर में जाये ।
नीचे कुल को छोड़, केवल धनियों के घर नहीं जाये ॥

अन्वयार्थ-भिक्खू = साधु । सया = सदा । समुयाणं = सामुदायिक भिक्षा हेतु । कुलमुच्चावयं = छोटे बड़े घरों में । चरे = जावे । णीयं = छोटे । कुलं = घर को । इक्कम्म = छोड़कर । ऊसढं = ऊँचे धनी के घर में । णाभिधारए = जाने की धारणा नहीं करे ।

भावार्थ—साधु सदा धनी एवं निर्धन सभी घरों से भिक्षा करे । निर्धन घर को छोड़कर मात्र धनी के घर में जाने का विचार नहीं करे ।

अदीणो वित्तिमेसिज्जा, ण विसीइज्ज पंडिए ।

अमुच्छिओ भोयणम्मि, मायण्णे एसणारए ॥26॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

तज दीन भाव भिक्षा ढूँढ़े, पण्डित मुनि खेद कभी न करे ।

मूर्च्छित हो ना भोजन में, मात्रज्ञ एषणा चित्त धरे ॥

अन्वयार्थ—पंडिए = विचारवान् साधु । **अदीणो** = बिना दीन भाव के । **वित्ति** = भिक्षा की । **एसिज्जा** = गवेषणा करे । **ण विसीइज्ज** = नहीं मिलने पर खेद नहीं करे । **मायण्णे** = मात्रा का जानकार मुनि । **भोयणम्मि अमुच्छिओ** = भोजन में मूर्च्छा भाव नहीं रखते हुए । **एसणारए** = शुद्धाशुद्ध की एषणा (खोज) में सतर्क रहे ।

भावार्थ—भिक्षा के नहीं मिलने पर विचारक साधु कभी दीन भाव नहीं लावे, खेद नहीं करे । किन्तु आहार की मात्रा को जानने वाला मुनि सरस भोजन में मूर्च्छित न होकर निर्दोष आहार की एषणा में सावधान होकर लगा रहे ।

बहुं परघरे अत्थि, विविहं खाइमं साइमं ।

ण तत्थ पंडिओ कुप्पे, इच्छा दिज्ज परो ण वा ॥27॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

विविध भोज्य खादिम स्वादिम, घर में अनेक हैं वस्तु अभी ।

उसकी इच्छा वह दे ना दे, पण्डित मुनि कोप करे न कभी ॥

अन्वयार्थ—परघरे = गृहस्थ के घर में । **विविहं** = अनेक प्रकार के । **खाइमं साइमं** = खाद्य एवं स्वाद्य-मुखवास के पदार्थ । **बहुं** = बहुत प्रमाण में । **अत्थि** = है । **परो** = गृहस्थ । **दिज्ज** = देवे । **ण वा** = या नहीं देवे । **इच्छा** = यह उसकी इच्छा है । **तत्थ** = उस सम्बन्ध में । **पंडिओ** = विचारक मुनि । **ण कुप्पे** = कुपित नहीं होवे ।

भावार्थ—गृहस्थ के घर में अनेक प्रकार के मेवा, मिष्ठान्न और लौंग-सुपारी आदि बहुत प्रमाण में हैं । तथापि वह देवे या न देवे, यह उसकी इच्छा है । बुद्धिमान् साधु इस पर कुपित नहीं होवे । लाभालाभ में सम रहना ही मुनि का धर्म है ।

सयणासणवत्थं वा, भत्तं पाणं व संजए ।
अदितस्स ण कुप्पिज्जा, पच्चक्खे वि य दीसओ ॥28॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

शय्यासन, पट अशन-पान, प्रत्यक्ष दिखाई देने पर ।

ना दे तो भी कुपित न होवे, कभी संयमी उस जन पर ॥

अन्वयार्थ-संजए = संयमी साधु । सयणासणवत्थं = शय्या, आसन, बाजोट (चौकी) और वस्त्र । वा = अथवा । भत्तं पाणं = आहार-पानी । पच्चक्खे = प्रत्यक्ष (सामने) । दीसओ = दिखते हुए । वि य = भी । अदितस्स = गृहस्थ नहीं देवे तो । ण कुप्पिज्जा = उस पर क्रोध नहीं करे ।

भावार्थ-आहार की तरह अन्य पदार्थ, शय्या, आसन, वस्त्र, पात्र और आहारादि प्रत्यक्ष सामने दिख रहे हैं, फिर भी गृहस्थ यदि नहीं दे तो उस पर क्रोध नहीं करे ।

इत्थियं पुरिसं वा वि, डहरं वा महल्लगं ।
वंदमाणं ण जाइज्जा, णो य णं फरुसं वए ॥29॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

नर नारी हो या शिशु छोटा, अथवा बुढ़ा या परम तरुण ।

न करे याचना वंदन-क्षण, अथवा न कहे कुछ फरुष वचन ॥

अन्वयार्थ-इत्थियं = स्त्री । पुरिसं = पुरुष । वा वि = अथवा । डहरं = बालक । वा = या । महल्लगं = वृद्ध । वंदमाणं = जो वन्दना कर रहे हों उस समय उनसे । ण जाइज्जा = याचना नहीं करे । य णं = और (वन्दना नहीं करने पर अथवा न देने पर) उनको । फरुसं णो वए = कठोर वचन नहीं बोले ।

भावार्थ-भिक्षा में गये हुए साधु को स्त्री, पुरुष, बालक अथवा वृद्ध वन्दना करते हों, उनसे बीच में याचना नहीं करे और भिक्षा न मिलने की स्थिति में उनको रुक्ष वचन भी नहीं बोले ।

जे ण वंदे ण से कुप्पे, वंदिओ ण समुक्कसे ।
एवमण्णेसमाणस्स, सामण्णमणुचिट्ठइ ॥30॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

जो नहीं वन्दे क्रोध करे ना, वंदित हो नहीं गर्व धरे ।

साधुत्व सुदृढ़ बन जाता है, यों जिन शासन की आन धरे ॥

अन्वयार्थ-जे = जो । ण वंदे = वन्दना नहीं करे । से = उस पर । ण कुप्पे = क्रोध नहीं करे । वंदिओ = मान-सम्मान पाकर । ण समुक्कसे = मान नहीं करे । एवं = इस प्रकार । अण्णोसमाणस्स = अन्वेषण करने वाले का । सामण्णं = श्रमण धर्म । अणुचिट्ठइ = निराबाध निर्मल रहता है ।

भावार्थ-जो मुनि वन्दन नहीं करने पर क्रोध नहीं करता और मान-सम्मान पाकर गर्व नहीं करता, इस प्रकार अन्वेषण करने वाले का श्रमण धर्म बिना बाधा के अखण्ड टिका रहता है ।

सिया एगइओ लद्धुं, लोभेण विणिगूहइ ।

मा मेयं दाइयं संतं, दट्ठूणं सयमायए ॥31॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

अगर अकेला प्राप्त अशन, ले छिपा लोभ से कहीं श्रमण ।
दिखलाने पर सोचे यों, वे कर सकते हैं इसे ग्रहण ॥

अन्वयार्थ-सिया = कदाचित् । एगइओ = भिक्षा को गया हुआ अकेला साधु । लद्धुं = मनोज्ञ भोजन पाकर । लोभेण = खाने के लोभ से । विणिगूहइ = आहार को छिपाता है । मा = यदि । मेयं = इस आहार को । दाइयं संतं = दिखाया तो वे बड़े मुनि । दट्ठूणं = देखकर । सयमायए = स्वयं ले लेंगे, मुझे नहीं देंगे ।

भावार्थ-भिक्षार्थ गया हुआ एकाकी साधु अच्छा भोजन पाकर खाने के लोभ से उसे साधारण आहार से छिपाता है । सोचता है कि अच्छा भोजन देखकर वे स्वयं ले लेंगे, मुझे कदाचित् नहीं देंगे ।

अत्तट्ठागुरुओ लुब्धो, बहुं पावं पकुव्वइ ।

दुत्तोसओ य से होइ, णिव्वाणं च न गच्छइ ॥32॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

स्वार्थी एवं जिह्वा लोलुप, बहु पाप साधु वह करता है ।
जाता नहीं निर्वाण कभी, सन्तोष रहित जो रहता है ॥

अन्वयार्थ-अत्तट्ठागुरुओ = अपने उदर-भरण को प्रमुखता देने वाला । लुब्धो = लालची (लुब्ध) साधु । बहुं = बहुत । पावं = पाप का । पकुव्वइ = संचय करता है । य = और । दुत्तोसओ से होइ = वह कठिनाई से तुष्ट होता है । च = और । णिव्वाणं = निर्वाण को । न गच्छइ = प्राप्त नहीं करता ।

भावार्थ-उदर-भरण को प्रमुखता देने वाला, वह लुब्ध साधु बहुत पाप का संचय करता है और वह असन्तोषी निर्वाण को प्राप्त नहीं करता है ।

सिया एगइओ लद्धुं, विविहं पाणभोयणं ।
भद्गं भद्गं भोच्चा, विवण्णं विरसमाहरे ॥३३॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

एकाकी कर प्राप्त अगर, इस जग में विविध पान-भोजन ।

खाकर अच्छा-अच्छा संग में, लाये अस विरस भोजन ॥

अन्वयार्थ-एगइओ = भिक्षा में गया हुआ एकाकी मुनि । सिया = कदाचित् । विविहं = अनेक प्रकार के । पाणभोयणं = सरस आहार-पानी । लद्धुं = पाकर । भद्गं-भद्गं = अच्छा-अच्छा । भोच्चा = एकान्त में खाकर । विवण्णं = वर्ण रहित । विरसं = नीरस आहार । आहरे = उपाश्रय में लावे ।

भावार्थ-भिक्षा में गया हुआ अकेला मुनि कभी अनेक प्रकार का सरस भोजन पाकर अच्छा-अच्छा एकान्त में खा ले और नीरस आहार लेकर उपाश्रय में आवे ।

जाणंतु ता इमे समणा, आययट्ठी अयं मुणी ।
संतुट्ठो सेवए पंतं, लूहवित्ती सुतोसओ ॥३४॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

जानें इतने ये साधु मुझे, है आत्मारथी यह अहो ! श्रमण ।

वासी-सेवी लब्धाहारी, सन्तुष्ट अस करके भोजन ॥

अन्वयार्थ-ता = वह मार्ग में खाने वाला साधु सोचता है । इमे = ये । समणा = श्रमण । जाणंतु = जानें कि । अयं = यह । मुणी = मुनि । आययट्ठी = आत्मारथी है । पंतं = नीरस आहार को । संतुट्ठो = सन्तोषपूर्वक । सेवए = खाता है । लूहवित्ती = स्वादिष्ट भोजन की आकांक्षा नहीं करने से । सुतोसओ = सहज जैसा आहार मिले उसी में तुष्ट होने वाला है ।

भावार्थ-मार्ग में खाने वाला माया (कपट) वश सोचता है कि नीरस आहार देखकर गण के अन्य साधु सोचेंगे कि यह मुनि बड़ा आत्मारथी है । जो प्राप्त आहार को सन्तोष पूर्वक खाता है और सुस्वादु भोजन की आकांक्षा नहीं करने से सहज तुष्ट होने वाला है ।

पूयणट्ठा जसोकामी, माणसम्माणकामए ।
बहुं पसवई पावं, मायासल्लं च कुव्वइ ॥३५॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

पूजार्थी वा यशस्कामी, सम्मान मान का अति इच्छुक ।
पैदा करता है बहुत पाप, और माया शल्य धरे भिक्षुक ॥

अन्वयार्थ-पूयणट्टा = महिमा पूजा चाहने वाला । जसोकामी = यशस्कामी और ।
माणसम्माणकामए = मान सम्मान की इच्छा करने वाला । बहुं = बहुत । पावं = पापकर्म का । पसवई =
संचय करता है । च = और । मायासल्लं = माया शल्य का । कुव्वइ = सेवन करता है ।

भावार्थ-महिमा के लिये कपट करने वाला वह साधु अधिक पाप कर्म का संचय करता है और
माया रूपशल्य का सेवन करता है । (जो आत्मा के लिये अकल्याणकारी होता है) ।

सुरं वा मेरगं वा वि, अण्णं वा मज्जगं रसं ।
ससक्खं ण पिवे भिक्खू, जसं सारक्खमप्पणो ॥36॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

सुरा और मैरेयक को या मद्यजनक वैसे रस को ।
ना पीए भिक्षु जिन साक्षी, कर संरक्षण निज संयम को ॥

अन्वयार्थ-अप्पणो = अपने । जसं = निर्मल संयम का । सारक्खं = रक्षण करने वाला ।
भिक्खू = भिक्षु । सुरं = सुरा । वा = या । मेरगं = मेरक । वा वि = अथवा । अण्णं = अन्य । मज्जगं =
मादक । वा = या । रसं = रस । ससक्खं = अरिहन्त या आत्मा की साक्षी से । ण पिवे = नहीं पिये ।

भावार्थ-वह भिक्षु अपने संयम-धर्म को निर्मल रखने के लिये सुरा आदि किसी भी प्रकार के मादक
द्रव्य का आत्म-साक्षी से कभी उपयोग नहीं करे । संगति के दोष से कोई गृहस्थ दशा में मादक द्रव्य लेने वाला
रहा हो और फिर संयमी बन गया हो, वैसे भिक्षु को शिक्षा के लिये कहा गया है ।

पियए एगओ तेणो, ण मे कोई वियाणइ ।
तस्स पस्सह दोसाइं, णियडिं च सुणेह मे ॥37॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

बन चोर अकेला वह पीता, समझे न मुझे कोई जाने ।
देखो उनके इन दोषों को, माया उसकी सुन लो छाने ॥

अन्वयार्थ-तेणो = भगवान की आज्ञा का चोर । एगओ = एकाकी । पियए = पीता है, वह
सोचता है कि । मे = मुझे । कोई = कोई । ण वियाणइ = नहीं जानता । तस्स = उस मायाचारी के । दोसाइं

= दोषों को । पस्सह = देखो । च = और । मे = मेरे द्वारा । णियडिं = उसके कपटाचार को । सुणेह = श्रवण करो ।

भावार्थ—जो भगवान की आज्ञा का चोर छिपकर एकाकी पीता है और समझता है कि मुझे कोई नहीं जानता उस मायाचारी के दोषों को देखो और मुझसे उसके कपटाचार को श्रवण करो ।

**वड्ढइ सुंडिया तस्स, मायामोसं च भिक्खुणो ।
अयसो य अनिब्बाणं, सययं च असाहुया ॥३८॥**

हिन्दी पद्यानुवाद—

*बढ़ती मद-आसक्ति और, माया मिथ्या उस भिक्षु की ।
अपकीर्ति अतृप्ति हरक्षण में, ऐसी असाधुता भी उसकी ॥*

अन्वयार्थ—तस्स = उस । भिक्खुणो = अजितेन्द्रिय साधु की । सुंडिया = पानासक्ति और । मायामोसं = कपटपूर्ण मृषा । च = और । अयसो य = तथा अपकीर्ति । अनिब्बाणं च = अशान्ति और । सययं = निरन्तर (सतत) । असाहुया = असाधुता (उन्मत्तता) । वड्ढइ = बढ़ती है ।

भावार्थ—उपर्युक्त दोष के कारण उसकी पानासक्ति के साथ-साथ अपकीर्ति, अशान्ति और निरन्तर असाधुता बढ़ती रहती है ।

**णिच्चुव्विग्गो जहा तेणो, अत्तकम्मेहिं दुम्मई ।
तारिसो मरणंते वि, ण आराहेइ संवरं ॥३९॥**

हिन्दी पद्यानुवाद—

*ज्यों चोर स्वकृत दुष्कृत्यों से, है सदा व्याकुल बना रहता ।
दुर्बुद्धि मृत्यु क्षण तक भी वह, ना संवर आराधन करता ॥*

अन्वयार्थ—अत्तकम्मेहिं = अपने दुष्कर्मों से । दुम्मई = वह दुर्मति । तेणो जहा = चोर के समान । णिच्चुव्विग्गो = सदा उद्विग्न बना रहता है । तारिसो = वैसा साधक । मरणंते वि = मरणांत समय में भी । संवरं = संवर धर्म का । ण आराहेइ = आराधना नहीं कर पाता ।

भावार्थ—वैसा भिक्षु अपने दुष्कर्मों से चोर की तरह सदा उद्विग्न रहता है । वह अन्त समय में भी संवर धर्म की आराधना नहीं कर सकता ।

**आयरिए णाराहेइ, समणे यावि तारिसो ।
गिहत्था वि णं गरिहंति, जेण जाणंति तारिसं ॥४०॥**

हिन्दी पद्यानुवाद-

आचार्य श्रमण गण का वैसा, है साधु न करता आराधन ।
करते गृहस्थ उसकी निन्दा, जिस लिये जानते वे सब जन ॥

अन्वयार्थ-तारिसो = वैसा मायावी । आयरिए = आचार्य देव । यावि = और । समणे = साधु मण्डल को । णाराहेइ = विनयादि से सन्तुष्ट नहीं करता । गिहत्था वि = गृहस्थ भी । ण गरिहंति = उसकी निन्दा करते हैं । जेण = इसलिये कि । तारिसं = वे उसे मायावी । जाणंति = जानते हैं ।

भावार्थ-वैसा मायाचारी अपने गुरु आचार्य और साधुओं की विनयादि से सेवा नहीं करता है और न उन्हें सन्तोष उत्पन्न कराता है । गृहस्थ भी उसके वैसे आचार को जानकर उसकी निन्दा करते हैं ।

एवं तु अगुणप्पेही, गुणाणं च विवज्जए ।
तारिसो मरणंते वि, णाराहेइ संवरं ॥४१॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

इस तरह अगुण-दर्शी एवं, सद्गुण का त्यागी बना श्रमण ।
वह मृत्यु घड़ी के आने तक, संवर कर सकता नहीं ग्रहण ॥

अन्वयार्थ-एवं तु = इस प्रकार । अगुणप्पेही = अगुणप्रेक्षी (दुर्गुणों का धारक) । च = और । गुणाणं = गुणों का । विवज्जए = वर्जन करने वाला । तारिसो = वैसा भिक्षु । मरणंते वि = मरण काल में भी । संवरं = संवर धर्म की । ण आराहेइ = आराधना नहीं कर पाता ।

भावार्थ-इस प्रकार दुर्गुणों को धारण करने और सद्गुणों को छोड़ने वाला भिक्षु मरण काल में भी संवर धर्म की आराधना नहीं कर पाता ।

तवं कुव्वइ मेहावी, पणीयं वज्जए रसं ।
मज्जप्पमायविरओ, तवस्सी अइउक्कसो ॥४२॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

मेधावी मुनि तप करता, और स्निग्ध अशन वर्जन करता ।
मद प्रमाद विरत रहकर, मन में कुछ दर्प नहीं रखता ॥

अन्वयार्थ-मेहावी = जो बुद्धिमान साधु । मज्जप्पमायविरओ = मद और प्रमाद से बचकर । पणीयं = प्रणीत । रसं = रस का । वज्जए = वर्जन करता है । तवं = और तपस्या । कुव्वइ = करता है । अइउक्कसो = वह निरभिमान पूर्वक (निर्दोष) । तवस्सी = तपस्या वाला है ।

भावार्थ—जो मादक द्रव्य और प्रमाद से बचकर प्रणीत रस का वर्जन करते हुए तपस्या करता है, वह साधु दर्प रहित निर्दोष तप वाला है।

**तस्स पस्सह कल्लाणं, अणेगसाहुपूइयं ।
विउलं अत्थसंजुत्तं, कित्तइस्सं सुणेह मे ॥43॥**

हिन्दी पद्यानुवाद—

पूजित अनेक साधुजन से, देखो उसका कल्याण यहाँ ।
विपुलार्थ युक्त वर्णन उसका, सब सुनलो मुझसे आज यहाँ ॥

अन्वयार्थ—तस्स = उस शुद्धाचारी के । अणेगसाहुपूइयं = अनेक साधुओं से प्रशंसित । कल्लाणं = कल्याण को । पस्सह = देखो । अत्थसंजुत्तं = मोक्ष रूप अर्थ से युक्त साधना के । विउलं = विशाल मार्ग का । कित्तइस्सं = कीर्तन करूँगा । मे = तुम मेरे से । सुणेह = श्रवण करो ।

भावार्थ—उस शुद्धाचारी के कल्याण को देखो जो अनेक साधुओं से प्रशंसित है, निरुपम सुख रूप मोक्ष के पुरुषार्थ से युक्त उस विशाल मार्ग का मैं कीर्तन करूँगा, वह मेरे से श्रवण करो ।

**एवं तु गुणप्पेही, अगुणाणं च विवज्जए ।
तारिसो मरणंते वि, आराहेइ संवरं ॥44॥**

हिन्दी पद्यानुवाद—

इस प्रकार गुण का द्रष्टा, और दोषों का जो त्यागी है ।
वैसा मरणकाल में भी मुनि, संवर आराधन भागी है ॥

अन्वयार्थ—एवं तु = इस प्रकार । गुणप्पेही = गुणप्रेक्षी (गुणों का धारक) । च = और । अगुणाणं = दुर्गुणों का । विवज्जए = वर्जन करने वाला । तारिसो = वैसा भिक्षु । मरणंते वि = मरणांत समय में भी । संवरं = संवर धर्म की । आराहेइ = आराधना करता है ।

भावार्थ—दुर्गुणों का वर्जन करने वाला गुण ग्राहक भिक्षु अन्त समय में संवर धर्म की आराधना कर लेता है ।

**आयरिए आराहेइ, समणे यावि तारिसो ।
गिहत्था वि णं पूयंति, जेण जाणंति तारिसं ॥45॥**

हिन्दी पद्यानुवाद-

आचार्य श्रमण गण को वैसे, मुनिजन करते हैं आराधन ।
करते गृहस्थ उसकी पूजा, जिनने पहचाना वैसे जन ॥

अन्वयार्थ-तारिसो = वैयास भिक्षु । आयरिए या वि = आचार्य गुरु और । समणे = साधुओं की ।
आराहेइ = विनय आदि से सेवा करता है । गिहत्था वि = गृहस्थ भी । णं = उसकी । पूयंति = प्रशंसा
करते हैं । जेण = इसलिये कि वे । तारिसं = विनयादि गुणों को । जाणंति = जानते हैं ।

भावार्थ-वैयास भिक्षु आचार्य और साधु मण्डल की सेवा करता है, इसलिये गृहस्थ भी गुणवान
जानकर उसकी प्रशंसा करते हैं ।

तवतेणे वयतेणे, रूवतेणे य जे णरे ।
आयारभावतेणे य, कुव्वइ देवकिव्विसं ॥४६॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

तप, वचन और जो रूप चोर, आचार, भाव तस्कर जग में ।
किल्बिष बनकर पैदा होता, निजकृत कर्मों से सुरभव में ॥

अन्वयार्थ-जे = जो । णरे = नर-साधु । तवतेणे = तपस्तेन (चोर) । वयतेणे = व्रत या वचन
का चोर । रूवतेणे = रूपस्तेन । य = और । आयार-भावतेणे य = और आचार और भाव का चोर
(स्तेन) होता है । देवकिव्विसं = किल्बिष देव का । कुव्वइ = आयु बन्ध करता है ।

भावार्थ-जो साधु तप और व्रत रूप आचरण से जी चुराता है, वह किल्बिष देवों में उत्पन्न होता है ।

लद्धूण वि देवत्तं, उववण्णो देवकिव्विसे ।
तत्था वि से ण याणाइ, किं मे किच्चा इमं फलं ॥४७॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

पाकर भी देवत्व साधु, किल्बिष भव में पैदा होकर ।
वह वहाँ पहुँचकर भी, ना जाने, मिला सुफल किस करनी पर ॥

अन्वयार्थ-देवत्तं = देव भव । लद्धूण (लद्धुण) वि = प्राप्त करके भी । देवकिव्विसे =
किल्बिषी देवों में । उववण्णो = उत्पन्न होता है । तत्था वि = वहाँ पर भी । से = वह । ण याणाइ = यह नहीं
जान पाता कि । मे = मैंने । किं = क्या । किच्चा = करके । इमं = यह देवगति रूप । फलं = फल पाया है ।

भावार्थ—तपस्तेन आदि रूप से मायाचार करने वाला वह चोर साधु होकर भी किल्बिषी देव के रूप में उत्पन्न होता है, वहाँ उसको यह ज्ञान नहीं होता कि मैं क्या करके किल्बिषी देव रूप में उत्पन्न हुआ हूँ।

**तत्तो वि से चइत्ताणं, लब्भइ एलमूयगं ।
णरगं तिरिक्खजोणिं वा, बोही जत्थ सुदुल्लहा ॥48॥**

हिन्दी पद्यानुवाद—

*किल्बिष भव से भी चवकर वह, अजवत् गुँगा बन जायेगा ।
है बोधि जहाँ दुर्लभ वैसा, नारक तिर्यक् भव पाएगा ॥*

अन्वयार्थ—तत्तो वि = वहाँ से भी । चइत्ताणं = च्युत होकर । से = वह । एलमूयगं = बकरे के समान (मम्मण बोलने वाला) भव । लब्भइ = प्राप्त करेगा । वा = अथवा । णरगं = नरक । तिरिक्खजोणिं = तिर्यञ्चयोनि को प्राप्त है । जत्थ = जहाँ पर । बोही = उसको धर्म की प्राप्ति । सुदुल्लहा = अति दुर्लभ होती है ।

भावार्थ—वह मायाचारी साधु किल्बिषी देव के भव से निकलकर, बकरे के समान एल-मूक योनि में जाता है अथवा नरक तिर्यञ्च योनि को पाता है, जहाँ उसको सम्यक्त्व-धर्म की प्राप्ति अति दुर्लभ होती है ।

**एयं च दोसं दट्ठूण, णायपुत्तेण भासियं ।
अणुमायं पि मेहावी, मायामोसं विवज्जए ॥49॥**

हिन्दी पद्यानुवाद—

*उपर्युक्त दोष को देख यहाँ, जो ज्ञात-पुत्र ने कहा यही ।
अणुभर भी माया मिथ्या का, सेवन मुनि जन करे नहीं ॥*

अन्वयार्थ—णायपुत्तेण = ज्ञातपुत्र-महावीर द्वारा । भासियं = भाषित । एयं = इस प्रकार के । दोसं = दोष को । दट्ठूण = देखकर । च मेहावी = और बुद्धिमान साधु । अणुमायं पि = अल्प मात्र भी । मायामोसं = कपट सहित मृषा । विवज्जए = नहीं बोले ।

भावार्थ—ज्ञात पुत्र महावीर द्वारा कथित इस प्रकार के दोष को देखकर मेधावी साधु अल्पमात्र भी कपट युक्त मृषा नहीं बोले ।

**सिक्खिऊण भिक्खेसणसोहिं, संजयाण बुद्धाण सगासे ।
तत्थ भिक्खू सुप्पणिहिइंदिए, तिब्बलज्जगुणवं विहरिज्जासि ॥
त्ति बेमि ॥50॥**

हिन्दी पद्यानुवाद-

भिक्षा दोषों की शुद्धि सीख, संयमी ज्ञानी मुनिजन संग में।
दान्त तीव्र लज्जालु गुणी, मुनि विहारे निर्भय हो जग में ॥

अन्वयार्थ-बुद्धाण = तत्त्व के ज्ञाता-गीतार्थ। संजयाण = सन्तों के। सगासे = पास।
भिक्षवेसणसोहिं = भिक्षा की गवेषणा की शुद्ध विधि को। सिक्खिऊण = सीखकर। तिवलज्ज = दोष
से लजाने वाला। गुणवं = गुणवान्। भिक्खू = साधु। तत्थ = उस एषणा में। सुप्पणिहिंदिए =
जितेन्द्रिय और स्थिरचित्त होकर। विहरिज्जासि = विचरे। त्ति बेमि = ऐसा मैं कहता हूँ।

भावार्थ-सुधर्मा स्वामी कहते हैं-“तत्त्वज्ञ मुनियों के पास भिक्षा में एषणा शुद्धि की शिक्षा लेकर
दोषों से बचने वाला गुणवान् साधु आहार आदि की गवेषणा करने में जितेन्द्रिय और स्थिर चित्त होकर
विचरे।”

त्ति बेमि = (इति ब्रवीमि) ऐसा मैं कहता हूँ।

॥ पाँचवाँ अध्ययन-द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥



छठा अध्ययन

महाचार कथा

उपक्रम

छठे अध्ययन का नाम महाचार कथा है। तीसरे अध्ययन की अपेक्षा इसमें आचार-स्थान का विस्तार से वर्णन होने से इसका नाम महाचार कथा है। जैसाकि निर्युक्तिकार ने कहा है- “जो पुर्वि उद्दिष्टो, आयारो सो अहीणमइरित्तो। सच्चेव य होइ कहा, आयारकहाए महईए। नि. 245” तीसरे अध्ययन में निषेध पक्ष में अनाचारों का कथन किया गया है। किन्तु इस अध्ययन में आचार के 18 स्थानों का सहेतुक वर्णन किया गया है। हिंसा-मृषा-अदत्त त्याग, मैथुन विरति, परिग्रह त्याग, रात्रि-भोजन-विरमण आदि को दो-दो, तीन-तीन गाथाओं द्वारा हेतुपूर्वक समझाया गया है। छोटे-बड़े सब साधुओं के लिये इन 18 स्थानों का पालन करना आवश्यक बतलाया है। श्रमणाचार को संक्षेप में सरल ढंग से लिखकर सूत्रकार ने सर्व साधारण पाठकों के लिए बड़ा उपकार किया है।

श्रमण जीवन की चर्या में इन 18 स्थानों में जैन साधु के आचार का सम्पूर्ण प्रतिपादन हो जाता है। श्रमण के आचार गोचर को भयंकर कहा है। यहाँ सूत्रोक्त 18 स्थानों में साध्वाचार की संक्षिप्त झांकी प्रस्तुत की गई है, जो इस प्रकार है-

“वयछक्कं कायछक्कं, अकप्पो गिहिभायणं। पलिअंक निसेज्जा य सिणाणं सोभवज्जणं।” (नि. 268) हिंसा, मृषा, अदत्त, मैथुन, परिग्रह और रात्रि भोजन के विरमण रूप 6 व्रत के 6 स्थान। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रसकाय की रक्षा के 6 स्थान, इस तरह 12। सदोष आहार, उपाश्रय, वस्त्र और पात्र का त्याग 13, गृहस्थ के भाजन में आहार-पानी वर्जन 14, पर्यंक और गृहस्थ के यहाँ बैठने का त्याग 15-16 स्नान त्याग 17, शरीर और वस्त्रादि की सजावट करना, शोभा बढ़ाना इन दोनों का त्याग 18। ये 18 स्थान श्रमण-निर्ग्रन्थ के लिये वर्जनीय हैं। इस प्रकार पंच महाव्रत से लेकर शरीर की विभूषावर्जन तक के मूलोत्तर गुणरूप सम्पूर्ण साधु आचार का वर्णन होने से इस अध्ययन को “महाचार कथा” कहा गया है। निर्युक्तिकार ने इसका दूसरा नाम ‘धर्मार्थकाम’ भी बतलाया है। अध्ययन की चतुर्थ गाथा में साधु को ‘धर्मार्थकाम’ कहा गया है। जैसे-‘हंदि धम्मत्थकामाणं’ मोक्ष रूप धर्म के अर्थ की कामना करने वाले निर्ग्रन्थों का आचार इसमें बतलाया गया है। इसी बात को निर्युक्तिकार निम्न शब्दों में कहते हैं-

धम्मस्स फलं मोक्खो, सासयमयलं सिवं अणाबाहं ।

तमभिप्पेया साहू तम्हा, धम्मत्थ कामत्ति ॥ नि.265 ॥

अर्थात् धर्म का फल मोक्ष है, जो शाश्वत, अनुपम, शिव-उपद्रव रहित और निराबाध है। साधु उसकी इच्छा रखने वाले हैं, इसलिये इस अध्ययन का नाम 'धर्मार्थकाम' भी रखा गया है। इसमें कुल 69 गाथाएँ हैं।

साधक हिंसा, मृषावाद, मैथुन और रात्रि-भोजन आदि का त्याग क्यों करे, इसकी सहेतुकता बताकर इस अध्ययन में व्रत ग्रहण की शिक्षा दी गई है। जैसे- 'अविस्सासो य भूयाणं, तम्हा मोसं विवज्जए' मृषावाद लोगों में अविश्वास का कारण है, इसलिये इसका वर्जन करना चाहिये।

इसी प्रकार अन्य स्थानों के विषय में भी बताया गया है। अध्ययन बहुत ही मननीय और पुनः पुनः पठनीय है। पंचम अपरिग्रह व्रत में घी, तेल, गुड़ आदि के संचय करने का ही नहीं, इसकी सन्निधि की इच्छा का भी निषेध किया गया है। परिग्रह-त्यागी के पास वस्त्र-पात्र-कम्बल आदि कैसे? इसके उत्तर में यहाँ कहा गया है-तं पि सजंम-लज्जट्ठा, धारन्ति परिहरन्ति य (दशवै. गाथा 20)।

अर्थात् वस्त्र, पात्र आदि भी निर्ग्रन्थ, संयम और लज्जा के लिये ही रखते और उपयोग में लेते हैं। इसलिये यह परिग्रह नहीं है। "मुच्छा परिग्गहो वुत्तो, इइ वुत्तं महेसिणा", क्योंकि मूर्च्छा को ही परिग्रह कहा गया है। साधु सर्वत्र संयम की रक्षा के निमित्त वस्त्र-पात्र आदि उपधि को ग्रहण करते हैं। वे अपने शरीर पर भी ममत्व भाव का सेवन नहीं करते। छठे रात्रि-भोजन विरमण स्थान में रात्रि-भोजन के ग्रहण के दोष को बतलाकर उसका निषेध करने के साथ मुनि की चर्या का उल्लेख करते हुए कहा है- "अहो णिच्चं तवोकम्मं सव्वबुद्धेहि वणिण्यं । जा य लज्जा समावित्ती एगभत्तं च भोयणं ।"

अर्थात् साधु का आश्चर्यजनक नित्य तप है, संयम के अनुकूल वृत्ति रखना और एक भक्त का भोजन। (विशेष विवरण टिप्पणी में देखें)।

नाण-दंसण-संपन्नं, संजमे य तवे रयं ।

गणिमागमसंपन्नं, उज्जाणम्मि समोसढं ॥1॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

ज्ञान और दर्शन वाले, संयम और तप के जो धारक ।

उद्यान पधारे गणिप्रवर, आगम विद्या के थे ज्ञायक ॥

अन्वयार्थ-नाणदंसणसंपन्नं = सम्यक् ज्ञान और दर्शन से युक्त। संजमे = सतरह प्रकार के संयम। य = और। तवे रयं = अन्तरंग और बहिरंग तप में रमण करने वाले। आगमसंपन्नं = आगमों के ज्ञाता। गणिं = आचार्य देव। उज्जाणम्मि = नगरी के उद्यान में। समोसढं = पधारे।

भावार्थ—किसी समय नगर के बहिरस्थ उद्यान में ज्ञान दर्शन से युक्त, संयम और तपस्या में रमण करने वाले आगमों के ज्ञाता आचार्य का पदार्पण हुआ। नये साधुओं को देखकर नागरिकों में जिज्ञासा होनी सहज है। इस जिज्ञासा से प्रेरित होकर नगर के प्रमुख, आचार्य से पूछते हैं—

**रायाणो रायमच्चा य, माहणा अदुव खत्तिया ।
पुच्छंति णिहु अप्पाणो, कंहं भे आयारगोयरो ? ॥2॥**

हिन्दी पद्यानुवाद—

राजा राजमन्त्री ब्राह्मण, क्षत्रिय सब शुद्ध हृदय वाले ।
आकर पूछे सविनय गणी से, आचार संत कैसा पाले ? ॥

अन्वयार्थ—रायाणो = राजा । रायमच्चा = राजमन्त्री । य = और । माहणा = ब्राह्मण । अदुव = अथवा । खत्तिया = क्षत्रियों ने । णिहुअप्पाणो = स्थिरमन और भक्तिपूर्वक आचार्य देव से । पुच्छंति = पूछा कि । भे = हे भगवन् ! आपका । आयारगोयरो = आचार-गोचर । कंहं = किस प्रकार का है ?

भावार्थ—विधि से अनभिज्ञ नगरी के राजा, राजमन्त्री, ब्राह्मण एवं क्षत्रिय आदि स्थिर मन और विनय से पूछने लगे—“महाराज ! आपका आचार धर्म कैसा है ?”

**तेसिं सो णिहुओ दंतो, सव्वभूयसुहावहो ।
सिक्खाए सुसमाउत्तो, आयक्खइ वियक्खणो ॥3॥**

हिन्दी पद्यानुवाद—

निश्चल मन दमितेन्द्रिय वे, सुखदायक सारे जीवों के ।
शिक्षा में सम्पन्न विचक्षण, बोले उत्तर उन प्रश्नों के ॥

अन्वयार्थ—तेसिं सो = उन राजा आदि को । णिहुओ = स्थिर चित्त । दंतो = जितेन्द्रिय । सव्वभूयसुहावहो = सब प्राणियों के सुखैषी । सिक्खाए = आसेवना और ग्रहण शिक्षा से । सुसमाउत्तो = युक्त वह । वियक्खणो = विचक्षण आचार्य । आयक्खइ = अपना आचार धर्म बतलाते हैं ।

भावार्थ—स्थिरचित्त, जितेन्द्रिय और सब जीवों के हितकारी, शिक्षा सम्पन्न वे विचक्षण आचार्य उन राजा एवं मन्त्रियों को अपना आचार बताते हुए कहने लगे ।

**हंदि धम्मत्थकामाणं, निगंथाणं सुणेह मे ।
आयारगोयरं भीमं, सयलं दुरहिट्टियं ॥4॥**

हिन्दी पद्यानुवाद-

देवानुप्रिय ! सुनलो मुझसे, उन धर्मेच्छुक निर्ग्रन्थों का ।
महाभीम आचार कहा जो, भैक्ष्य कठिन कायर मन का ॥

अन्वयार्थ-हंदि = अय जिज्ञासुओं ! धम्मत्थकामाणं = धर्मार्थ कामी । निगंथाणं = निर्ग्रन्थों का । सयलं = सम्पूर्ण । आचारगोयरं = आचार गोचर जो । भीमं = कठोर है और । दुरहिट्टियं = कायर जनों के लिये जो दुःशक्य है । मे = वह मेरे से । सुणेह = श्रवण करो ।

भावार्थ-आचार्य कहते हैं कि हे जिज्ञासुओं ! धर्माभिलाषी निर्ग्रन्थों का सम्पूर्ण आचार जो कठोर है एवं साधारण जनों के लिये अत्यन्त कठिन है, इसका संक्षिप्त वर्णन कैसा है, वह मुझ से सुनो ।

णणत्थ एरिसं वुत्तं, जं लोए परमदुच्चरं ।
विउलट्ठाणभाइस्स, ण भूयं ण भविस्सइ ॥५॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

ऐसा न कहा अन्यत्र कहीं, पालन जिसका है अति दुष्कर ।
होगा न हुआ मोक्षार्थी का, आचार उच्च इससे बढ़कर ॥

अन्वयार्थ-एरिसं = इस प्रकार का । परमदुच्चरं = परम दुष्कर आचार । णणत्थ = अन्यत्र-अन्यमतों में कहीं । ण = नहीं । वुत्तं = कहा गया है । जं = जो । विउलट्ठाणभाइस्स = विपुल स्थान-मोक्षगामी पुरुषों के लिये । लोए = लोक में अन्यत्र । ण भूयं = हुआ नहीं । ण भविस्सइ = और होगा भी नहीं ।

भावार्थ-निर्ग्रन्थों का ऐसा मार्ग लोक में अन्यत्र कहीं नहीं कहा गया है । विपुल मोक्षरूप अर्थ के भागी सुसाधुओं का मार्ग ऐसा हुआ नहीं और होगा नहीं ।

स खुडुगवियत्ताणं, वाहियाणं च जे गुणा ।
अखंड फुडिया कायव्वा, तं सुणेह जहा तहा ॥६॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

हो बालक वृद्ध तथा रोगी, सबके हित जो गुण होते हैं ।
वे अखंड पालन करते हैं, है जैसे उनको कहते हैं ॥

अन्वयार्थ-स खुडुगवियत्ताणं = बालक, वृद्ध । च = और । वाहियाणं = रोग ग्रस्तों के लिये । जे गुणा = जो गुण (आचार) का । अखंड फुडिया = अखण्ड और स्पष्ट रूप से । कायव्वा = पालन करने योग्य है । तं जहा = उसका स्वरूप जैसा है । तहा = वैसा । सुणेह = श्रवण करो ।

भावार्थ—गाथा में बताया गया है कि यह आचार-गोचर छोटे-बड़े सब साधुओं के लिये पालन करने के योग्य है। बालक, वृद्ध और रोगी आदि सभी साधकों के लिये जो गुण निर्दोष पालन योग्य हैं, उनका भी यथातथ्य वर्णन श्रवण करो।

**दस अट्ट य ठाणाइं, जाइं बालोऽवरज्झइ ।
तत्थ अण्णयरे ठाणे, णिगंथत्ताउ भस्सइ ॥७॥**

हिन्दी पद्यानुवाद—

जो बाल अठारह स्थानों में, अपराध धर्म का करता है।
उनमें से कहीं प्रमादी बन, निर्ग्रन्थ धर्म से गिरता है ॥

अन्वयार्थ—दस = दश। य = और। अट्ट = आठ। ठाणाइं = ये अठारह आचार के स्थान हैं। जाइं = जिनमें। बालो = मन्दमति साधु। अवरज्झइ = दण्ड का भागी होता है। तत्थ = उन 18 स्थानों में। अण्णयरे ठाणे = किसी एक स्थान में भी चूक गया तो वह मुनि। णिगंथत्ताउ = निर्ग्रन्थत्व से यानी निर्ग्रन्थ धर्म से। भस्सइ = फिसल (भ्रष्ट हो) जाता है।

भावार्थ—निर्ग्रन्थ साधु-साध्वी के 18 आचार स्थान हैं। मंदमति इनमें से किसी एक स्थान पर भी विराधना कर गया तो निर्ग्रन्थ धर्म से यानी साधु-धर्म से भ्रष्ट हो जाता है।

**वयच्छक्कं कायच्छक्कं, अकप्पो गिहिभायणं ।
पलियंक णिसिज्जा य, सिणाणं सोहवज्जणं ॥८॥**

हिन्दी पद्यानुवाद—

षट्काय यतन, षट् व्रतपालन, अशनादिक अकल्प अरु गृहि भाजन।
पर्यंक-निषद्या और स्नान, शोभा शृंगार करे वर्जन ॥

अन्वयार्थ—वयच्छक्कं = छः व्रत पालन। कायच्छक्कं = षट्काय का रक्षण। अकप्पो = अकल्पनीय वस्त्रादि। गिहिभायणं = गृहस्थ के भाजन। पलियंक = पलंग। णिसिज्जा = निषद्या। सिणाणं = स्नान करना। य = और। सोहवज्जणं = शरीर की शोभा व उसका शृंगार करने का वर्जन निर्ग्रन्थ का आचार है।

भावार्थ—1. अहिंसा, 2. सत्य, 3. अदत्तादान-विरमण, 4. ब्रह्मचर्य, 5. अपरिग्रह, 6. रात्रि-भोजन विरमण व्रत, 7. पृथ्वीकाय रक्षण, 8. अप्काय रक्षण, 9. तेऊकाय रक्षण, 10. वायुकाय रक्षण, 11. वनस्पति काय रक्षण, 12. त्रसकाय रक्षण, 13. अकल्पनीय पिण्ड, शय्या, वस्त्र, पात्र आदि नहीं लेना,

14. गृहिभाजन गृहस्थों के बर्तन-थाल कटोरे आदि का उपयोग नहीं करना, 15. पलंग, 16. निषद्या यानी गादी, तकिये, कुर्सी आदि, 17. स्नान, 18. तेल पाउडर आदि का वर्जन करना। इन 18 स्थानों में साधु के मूल आचार का परिचय मिलता है।

**तत्थिमं पढमं ठाणं, महावीरेण देसियं ।
अहिंसा णिउणा दिट्ठा, सव्वभूएसु संजमो ॥९॥**

हिन्दी पद्यानुवाद-

अष्टादश उन स्थानों में, प्रभु ने देखा है इसे प्रथम ।
है सफल अहिंसा इस जग में, सब प्राणी में रखना संयम ॥

अन्वयार्थ-तत्थिमं = उन अठारह स्थानों में। सव्वभूएसु संजमो = सब जीवों पर यतना करने रूप। इमं = इसको। महावीरेण = महावीर प्रभु ने। पढमं = पहला। ठाणं = स्थान। देसियं = बतलाया है। अहिंसा = अहिंसा को प्रभु ने। णिउणा = निपुण-पाप से बचाने में सक्षम। दिट्ठा = देखा है।

भावार्थ-अठारह स्थानों में सब जीवों पर यतना करने रूप अहिंसा को भगवान महावीर ने अक्षय सुख देने में और पापों से बचाने में सक्षम देखा है। यह प्रथम स्थान है।

**जावंति लोए पाणा, तसा अदुव थावरा ।
ते जाणमजाणं वा, ण हणे णो वि घायए ॥१०॥**

हिन्दी पद्यानुवाद-

जितने इस जग में प्राणी हैं, त्रस अथवा स्थावर के भव में।
उनको जाने या अनजाने, ना मारे न मरवाये जग में ॥

अन्वयार्थ-लोए = सम्पूर्ण लोक में। तसा = त्रस। अदुव = अथवा। थावरा = स्थावर। जावंति = जितने भी। पाणा = प्राणी हैं। ते जाणे = उनको जानते। वा = अथवा। अजाणं = अजानते। ण हणे = स्वयं हिंसा करे नहीं। णो वि घायए = और न उनकी घात (हिंसा) किसी दूसरे से करवाए।

भावार्थ-सम्पूर्ण तीन लोक में त्रस अथवा स्थावर-स्थितिशील जितने भी जीव हैं, उनकी निर्ग्रन्थ साधु-साध्वी स्वयं हिंसा करे नहीं, एवं दूसरों से भी करवाए नहीं। उपलक्षण से अनुमोदन भी समझ लेना चाहिये यानी उनकी हिंसा करने वाले का अनुमोदन भी करे नहीं।

**सव्वे जीवा वि इच्छंति, जीविउं ण मरिज्जिउं ।
तम्हा पाणिवहं घोरं, णिगंथा वज्जयंति णं ॥११॥**

हिन्दी पद्यानुवाद-

सभी जीव जीना चाहते, कोई भी मरण नहीं चाहता ।

इसलिये जीव-वध है दारुण, निर्ग्रन्थ सदा वर्जन करता ॥

अन्वयार्थ-सब्वे = सब त्रस और स्थावर । **वि** = भी । **जीवा** = जीव । **जीविउं** = जीना । **इच्छंति** = चाहते हैं । **मरिज्जिउं** = मरना । **ण** = नहीं चाहते । **तम्हा** = इसलिये । **पाणिवहं** = प्राणी वध रूप हिंसा को । **घोरं** = भयंकर जानकर । **णिगंथा** = निर्ग्रन्थ साधु । **वज्जयंति णं** = वर्जन करते हैं ।

भावार्थ-संसार के त्रस और स्थावर सभी जीव जीना चाहते हैं, मरना कोई नहीं चाहता । इन्द्रासन का इन्द्र और मल में रहने वाला कीड़ा दोनों को भी अपना-अपना जीवन प्रिय है, इसलिये प्राणिवध को भयंकर जानकर निर्ग्रन्थ साधु इसका सर्वदा वर्जन करते हैं ।

अप्पणट्ठा परट्ठा वा, कोहा वा जइ वा भया ।

हिंसगं ण मुसं बूया, णो वि अण्णं वयावए ॥12॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

अपने या परजन के हित में, भय तथा क्रोध के कारण से ।

ना बोले हिंसक झूठ कभी, ना ही बुलवाये परजन से ॥

अन्वयार्थ-अप्पणट्ठा = अपने लिये । **वा** = या । **परट्ठा** = दूसरे परिजन के लिये । **कोहा** = क्रोध से । **वा** = अथवा । **जइ वा भया** = अथवा भय से भी । **हिंसगं** = हिंसाजनक पीड़ाकारी । **ण** = न । **मुसं बूया** = झूठ बोले । **अण्णं** = दूसरे से झूठ । **वयावए वि** = बोलावे भी । **णो** = नहीं ।

भावार्थ-दूसरे व्रत में निर्ग्रन्थ साधु अपने प्रयोजन से या किसी दूसरे के लिये क्रोध से अथवा भय एवं लोभादि के कारण से परपीड़ाकारी, मृषावचन स्वयं बोले नहीं एवं दूसरे से बोलावे भी नहीं ।

मुसावाओ य लोगम्मि, सब्बसाहूहिं गरिहिओ ।

अविस्सासो य भूयाणं, तम्हा मोसं विवज्जए ॥13॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

है सभी साधुओं के द्वारा, मिथ्या भाषण जग में निन्दित ।

झूठे पर सबका अविश्वास, अतएव झूठ कर दे वर्जित ॥

अन्वयार्थ-लोगम्मि य = और संसार में । **सब्बसाहूहिं** = सब साधुओं ने । **मुसावाओ** = मृषावाद को । **गरिहिओ** = गर्हित-निन्दित माना है । **य** = और । **भूयाणं** = जन समूह में । **अविस्सासो** = अविश्वास का कारण है । **तम्हा** = इसलिये । **मोसं** = मृषावाद का । **विवज्जए** = वर्जन करना उचित है ।

भावार्थ—मृषा-असत्य भाषण संसार में सब मतों के साधुओं ने निन्दित माना है और यह व्यवहार में भी अविश्वास का कारण है। इसलिये निर्ग्रन्थ मुनि को असत्य-भाषण का सर्वथा वर्जन कर देना चाहिये।

**चित्तमंतमचित्तं वा, अप्पं वा जइ वा बहुं ।
दंतसोहणमित्तं पि, उग्गहं सि अजाइया ॥14॥**

हिन्दी पद्यानुवाद-

यदि हो सचित्त अथवा अचित्त, थोड़ी अथवा हो वस्तु बहुत ।
है दंत-विशोधन का तृण भी, बिन याचे लेना नहीं उचित ॥

अन्वयार्थ—चित्तमंतं = चेतनावान् पशु, पक्षी, शिष्यादि । वा = अथवा । अचित्तं = अचित्त-सोना, चाँदी, शास्त्र आदि । अप्पं = अल्प । वा = अथवा । बहुं = बहुत । जइ वा दंतसोहणमित्तं पि = यदि वह दाँत कुरेदने के लिए तृणमात्र भी है तब भी । उग्गहं सि = स्वामी की अनुमति । अजाइया = याचना बिना ग्रहण करना अदत्त ग्रहण है ।

भावार्थ—जैन साधु का व्रत है कि मनुष्य, पक्षी, पशु आदि सजीव और शास्त्र पुस्तक आदि निर्जीव पदार्थ थोड़ा हो अथवा बहुत हो, निर्ग्रन्थ साधु दन्त-शोधन के लिये भी तृणमात्र भी स्वामी की आज्ञा बिना नहीं लें । ऐसा लेना अदत्त ग्रहण है ।

**तं अप्पणा ण गिण्हंति, णो वि गिण्हावए परं ।
अण्णं वा गिण्हमाणं पि, णाणुजाणंति संजया ॥15॥**

हिन्दी पद्यानुवाद-

करते न ग्रहण हैं स्वयं उसे, ना औरों से करवाते हैं।
लेते हुए अदत्त अन्य को, मुनि अनुमोदन ना करते हैं॥

अन्वयार्थ—तं = वैसा दाता की बिना अनुमति वाला पदार्थ जो अदत्त है, उसको । अप्पणा = स्वयं । ण गिण्हंति = ग्रहण नहीं करते । परं = दूसरे से । णो वि गिण्हावए = ग्रहण करवाते नहीं । अण्णं वा = अथवा अन्य । गिण्हमाणं पि = ग्रहण करने वाले का भी । संजया = संयमी साधु । णाणुजाणंति = अनुमोदन नहीं करते ।

भावार्थ—निर्ग्रन्थों का तीसरा व्रत है कि साधु अदत्त पदार्थ को स्वयं ग्रहण करते नहीं, दूसरे से ग्रहण करवाते नहीं और दूसरे अदत्त ग्रहण करने वाले का भी अनुमोदन करते नहीं ।

**अबंभचरियं घोरं, पमायं दुरहिट्टियं ।
णायरंति मुणी लोए, भेयाययणवज्जिणो ॥16॥**

हिन्दी पद्यानुवाद-

है घोर प्रमाद अब्रह्मचर्य, और दुष्परिणाम विधायक है।
आचरण न मुनि जग में करते, यह संयम धर्म विघातक है॥

अन्वयार्थ-भेयाययणवज्जिणो = चारित्र भंग के स्थानों का वर्जन करने वाले। मुणी = मुनिजन।
लोए = लोक में। अबंभचरियं = अब्रह्मचर्य को। घोरं = भयंकर। पमायं = प्रमाद। दुरहिद्वियं = एवं
दुःखदायी मानकर। गायरंति = आचरण नहीं करते हैं।

भावार्थ-संयम-धर्म को दूषित करने वाले कारणों का वर्जन करने वाले मुनि अब्रह्मचर्य को भयंकर
प्रमाद और दुःख का हेतु जानकर सदा उसका वर्जन करते हैं।

**मूलमेयमहम्मस्स, महादोससमुस्सयं ।
तम्हा मेहुणसंसर्गं, णिगंथा वज्जयंति णं ॥17॥**

हिन्दी पद्यानुवाद-

है अधर्म का मूल तथा, वर्धक है सब गुरु-दोषों का।
अतएव साधु जन तज देते, संसर्ग यहाँ सब मैथुन का॥

अन्वयार्थ-एयं = यह अब्रह्मचर्य। अहम्मस्स = अधर्म का। मूलं = मूल है। महादोससमुस्सयं
= बड़े दोषों को बढ़ाने वाला है। तम्हा = इसलिये। णिगंथा = निर्ग्रन्थ साधु। मेहुणसंसर्गं = मैथुन के
संसर्ग को। वज्जयंति णं = वर्जन करते हैं।

भावार्थ-अब्रह्मचर्य सब अधर्मों का मूल है और बड़े दोषों को बढ़ाने वाला है, ऐसा जानकर निर्ग्रन्थ
मुनि मैथुन का वर्जन करते हैं।

**विडमुब्भेइमं लोणं, तिल्लं सप्पिं च फाणियं ।
ण ते संणिहिमिच्छंति, णायपुत्तवओरया ॥18॥**

हिन्दी पद्यानुवाद-

विड लवण समुद्र लवण एवं, साधारण लवण तेल गुड़ भी।
जो वीर-वचन में रत है मुनि, ना रक्खे इनको पास कभी॥

अन्वयार्थ-णायपुत्तवओरया = ज्ञात पुत्र के वचनों में अनुरक्त। ते = वे मुनि पंचम व्रत में। विडं
= विड लवण। उब्भेइमं = समुद्री लवण। लोणं = सादा नमक। तिल्लं = तेल। सप्पिं = सर्पि-घी। च
= और। फाणियं = गीले गुड़ को। संणिहिं = रात्रि में रखना। ण = नहीं। इच्छंति = चाहते हैं।

भावार्थ—महावीर प्रभु के वचनों में श्रद्धा रखने वाले मुनि सब प्रकार का अचित्त लवण, तेल, घी और गुड़ आदि पदार्थों को रात्रि में पास रखने की इच्छा भी नहीं करते ।

**लोहस्सेस अणुप्फासे, मण्णे अण्णयरामवि ।
जे सिया संणिहिकामे, गिही पव्वइए ण से ॥19॥**

हिन्दी पद्यानुवाद—

है यह लोभ प्रभाव कदाचित्, कोई कुछ सन्निधि चाहे ।
इससे गृहस्थ वह बन जाता, प्रव्रजित रूप ना शोभाये ॥

अन्वयार्थ—एस = खाद्य वस्तुओं को रात में रखना । लोहस्स = लोभ का । अणुप्फासे = एक प्रभाव है । मण्णे = तीर्थंकर मानते हैं कि । अण्णयरामवि = थोड़ी सी भी । जे = जो । सिया = कदाचित् । संणिहिकामे = संग्रह की इच्छा करता है । से = वह आचार में । गिही = गृहस्थ है । पव्वइए = साधु । ण = नहीं है ।

भावार्थ—ब्रह्मचर्य और असंग्रह साधु के मुख्य व्रत हैं । जो साधु रात में घी, तेल, गुड़ आदि पास में रखता है, वह लोभ का प्रभाव है । इसलिए प्रभु ने कहा कि जो थोड़ा भी खाद्य आदि पदार्थ का रात को संग्रह करने की इच्छा करता है, वह आचार में गृहस्थ है, साधु नहीं ।

**जं पि वत्थं व पायं वा, कंबलं पायपुंछणं ।
तं पि संजम-लज्जट्ठा, धारंति परिहरंति य ॥20॥**

हिन्दी पद्यानुवाद—

मुनि, वस्त्र पात्र अथवा कम्बल, या रजोहरण करते धारण ।
वे भी संयम लज्जा हित में, करते प्रयोग अथवा धारण ॥

अन्वयार्थ—जं पि = जो भी । वत्थं = वस्त्र । व = और । पायं = पात्र । वा = अथवा । कंबलं = कम्बल । पायपुंछणं = रजोहरण रखते हैं । तं पि = वह भी । संजम लज्जट्ठा = संयम की रक्षा और लज्जा के लिये । धारंति = रखते हैं । य परिहरंति = और पहनते एवं उपयोग में लेते हैं ।

भावार्थ—साधु के पास वस्त्र, पात्र, शास्त्र आदि देखकर शंका हो सकती है कि फिर ये वस्त्रादि क्यों रखते हैं ? उत्तर में शास्त्र कहता है—साधु जो वस्त्र, पात्र, कम्बल और रजोहरणादि संयम-धर्म की रक्षा करने के लिये रखते हैं और उपयोग में लाते हैं, उनको संग्रह करने की इच्छा से नहीं रखते ।

**ण सो परिग्गहो वुत्तो, णायपुत्तेण ताइणा ।
मुच्छा परिग्गहो वुत्तो, इइ वुत्तं महेसिणा ॥21॥**

हिन्दी पद्यानुवाद-

उस त्रायी ज्ञातपुत्र प्रभु ने, ना इन्हें परिग्रह बतलाया है ।

आसक्ति परिग्रह कहलाती, ऐसा जिनवर ने गाया है ॥

अन्वयार्थ—ताड़णा = षट्काय के रक्षक । **णायपुत्तेण** = ज्ञात पुत्र ने । **सो** = वह वस्त्रादि धारण । **परिग्रहो** = परिग्रह । **ण** = नहीं । **वुत्तो** = कहा है । **मुच्छा** = क्योंकि मूर्च्छा । **परिग्रहो** = परिग्रह । **वुत्तो** = कहा है । **इइ** = ऐसा । **महेसिणा** = महर्षि महावीर ने । **वुत्तं** = कहा है ।

भावार्थ—षट्काय जीवों के रक्षक श्रमण भगवान महावीर ने वस्त्रादि उपकरण रखने को परिग्रह नहीं कहा है । क्योंकि वास्तव में तो उनमें मूर्च्छा यानी आसक्ति रखने को महर्षि महावीर ने परिग्रह बतलाया है ।

सव्वत्थुवहिणा बुद्धा, संरक्खणपरिग्रहे ।

अवि अप्पणो वि देहम्मि, णायरंति ममाइयं ॥22॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

सर्वत्र उपधि धारक ज्ञानी, संरक्षण हेतु परिग्रह में ।

रखते ममत्व ना थोड़ा भी, अपने भी तो प्यारे तन में ॥

अन्वयार्थ—बुद्धा = तत्त्व के ज्ञाता मुनि । **सव्वत्थ** = सर्वदा । **उवहिणा** = रजोहरण, मुखवस्त्रिका आदि उपकरण । **संरक्खण** = संयम रक्षण के लिये । **परिग्रहे** = ग्रहण करते हैं । **अवि** = तो क्या वे । **अप्पणो वि** = अपने ही । **देहम्मि** = शरीर पर भी । **ममाइयं** = ममता भाव का । **णायरंति** = आचरण नहीं करते ।

भावार्थ—जिन शासन के ज्ञाता मुनि सर्वत्र रजोहरणादि उपकरणों को संयम की रक्षा के लिये ही ग्रहण करते हैं । स्थविरकल्पी ही नहीं, कम से कम दो उपकरण—रजोहरण व मुखवस्त्रिका जिनकल्पी मुनि भी रखते हैं । उन उपकरणों पर उनका ममत्व नहीं होता । उपकरण की क्या बात, ज्ञानवान् मुनि अपने शरीर पर भी मूर्च्छाभाव तथा ममता भाव नहीं रखते ।

अहो णिच्चं तवोकम्मं, सव्वबुद्धेहिं वण्णियं ।

जा य लज्जा समावित्ती, एगभत्तं च भोयणं ॥23॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

अहो ! सभी तीर्थङ्कर ने यह, नित्य कर्म तप बतलाया ।

भिक्षा से एक समय भोजन, है संयम के अनुरूप कहा ॥

अन्वयार्थ-अहो = आश्चर्य है। सव्वबुद्धेहिं = सभी तीर्थङ्करों ने। णिच्चं = ऐसा नित्य। तवोकम्मं = तप कर्म। वण्णियं = वर्णन किया है। जा य = जो कि। लज्जासमा = संयम के अनुकूल। वित्ति = वृत्ति-जीविका। एगभत्तं च = और एक बार। भोयणं = आहार करना कहा है।

भावार्थ-साधुओं के लिये तीर्थङ्करों ने ऐसा नित्य तप कर्म कहा है कि संयम के अनुकूल वृत्ति हो और कारण को छोड़कर केवल एक बार (यानी दिन में ही) आहार ग्रहण हो।

संतिमे सुहुमा पाणा, तसा अदुव थावरा ।

जाइं राओ अपासंतो, कहमेसणियं चरे ॥24॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

ये सूक्ष्म जीव रहते भू पर, त्रस अथवा स्थावर योनि के।

रजनी में दृष्टि न आते हैं, निर्दोष अशन ले किस घर से ॥

अन्वयार्थ-इमे सुहुमा = ये बहुत से सूक्ष्म। पाणा = प्राणी। तसा = त्रस। अदुव = अथवा। थावरा = स्थावर। संति = हैं। जाइं = जो। राओ = रात्रि में। अपासंतो = दृष्टिगोचर नहीं होते, फिर। एसणियं = निर्दोष भिक्षा के लिये रात्रि में। कहं = कैसे। चरे = भ्रमण हो सकता है?

भावार्थ-बहुत से सूक्ष्म प्राणी त्रस अथवा स्थावर के रूप में रहते हैं जो रात्रि में दृष्टिगोचर नहीं होते, ऐसी स्थिति में रात्रि को निर्दोष भिक्षा के लिये कैसे जाना हो सकता है? अर्थात् नहीं हो सकता है। इसलिये साधु रात्रिकाल में भिक्षार्थ नहीं जाता।

उदउल्लं बीयसंसत्तं, पाणा णिवडिया महिं ।

दिया ताइं विवज्जिज्जा, राओ तत्थ कहं चरे ॥25॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

कच्चा, जल बीजादि युक्त, पृथ्वी पर प्राणी रहते हैं।

दिन में वे टाले जा सकते, कैसे निशि में टल सकते हैं? ॥

अन्वयार्थ-महिं = भूमि पर। उदउल्लं = पानी का गीलापन। बीयसंसत्तं = सचित्त बीजों का संसर्ग। पाणा = और पतंगादि प्राणी। णिवडिया = पड़े होते हैं। ताइं = उनका। दिया = दिन में। विवज्जिज्जा = बचाव किया जा सकता है। राओ = रात्रि में। तत्थ = उनकी रक्षा में। कहं = कैसे। चरे = चला जायेगा?

भावार्थ-भूमि पर कहीं सचित्त बीज बिखरे होते हैं, कहीं पानी भरा या गीला होता है, कहीं पतंगादि

गिरे होते हैं, उनको दिन में देखकर बचाया जा सकता है, किन्तु रात में उन्हें कैसे बचा सकते हैं ? रात्रि में सूक्ष्म जीवों की रक्षा कर सकना सम्भव नहीं होता ।

**एयं च दोसं ददृष्टुं, गायपुत्तेण भासियं ।
सव्वाहारं ण भुजंति, णिगंथा राइभोयणं ॥26॥**

हिन्दी पद्यानुवाद-

सूक्ष्म दृष्टि से इन दोषों को, देख वीर ने कहा वचन ।

निर्ग्रन्थ सकल अशनादि का, ना करते हैं निशि में भक्षण ॥

अन्वयार्थ-गायपुत्तेण = ज्ञात पुत्र श्री महावीर द्वारा । **भासियं** = कथित । **एयं** = इस । **दोसं** = दोष को । **ददृष्टुं** = देखकर । **णिगंथा** = निर्ग्रन्थ मुनि । **राइभोयणं** = रात्रि भोजन में । **सव्वाहारं** = अशन आदि कोई आहार । **ण** = नहीं । **भुजंति** = सेवन करते हैं ।

भावार्थ-जिनेश्वर भगवान महावीर ने रात्रि-भोजन में छोटे-बड़े जीवों की हिंसा का दोष कहा है । इस बात को ध्यान में लेकर निर्ग्रन्थ छठे व्रत में किसी भी प्रकार का आहार, जो खाया अथवा पिया जाय, रात्रि को नहीं करते हैं । खाने की तो बात ही क्या, ब्रती साधु रात में कभी दिन में खाये हुए पदार्थ का गुचलका भी आ जाय, तो उसे भी पीछा निगलना दोष रूप मानता है ।

**पुढविकायं न हिंसंति, मणसा वयसा कायसा ।
तिविहेण करणजोएण, संजया सुसमाहिया ॥27॥**

हिन्दी पद्यानुवाद-

हिंसा न करे पृथ्वीकायिक की, तन, मन एवं निज वचनों से।

सम्यक् समाधि वाले संयत, त्रिकरण तथा त्रियोगों से ॥

अन्वयार्थ-सुसमाहिया = समाधि भाव वाला । **संजया** = संयमी साधु । **पुढविकायं** = पृथ्वीकाय की । **न हिंसंति** = हिंसा नहीं करते । **मणसा** = मन । **वयसा** = वचन और । **कायसा** = काया से । **तिविहेण करण जोएण (जोएणं)** = तीन करण एवं तीन योग से ।

भावार्थ-सातवें स्थान में सुसमाधिस्थ साधु के लिये पृथ्वीकायिक जीवों की हिंसा का सर्वथा निषेध बतलाया है । शस्त्र परिणत अचित्त पृथ्वी काय के अतिरिक्त सूक्ष्म-बादर आदि सब पृथ्वीकायिक जीवों की हिंसा का साधु कृत-कारित-अनुमोदन रूप तीन करण और तीन योग अर्थात् मन, वाणी और काया से वर्जन करते हैं ।

पुढविकायं विहिंसंतो, हिंसइ उ तयस्सिए ।
तसे य विविहे पाणे, चक्खुसे य अचक्खुसे ॥28॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

पृथ्वीकायिक हिंसा करते, आश्रित का भी वध करता है ।
त्रस स्थावर अथवा सूक्ष्म स्थूल, चाक्षुष बिन चाक्षुष हरता है ॥

अन्वयार्थ-पुढविकायं = पृथ्वीकाय के जीवों की । विहिंसंतो = हिंसा करने वाला । तयस्सिए = तदाश्रित यानी पृथ्वी के आश्रित । चक्खुसे = चाक्षुष । य = और । अचक्खुसे = अचाक्षुष । विविहे = विविध प्रकार के । तसे य पाणे = त्रस और स्थावर प्राणियों की । हिंसइ उ = हिंसा कर लेता है ।

भावार्थ-पृथ्वीकायिक जीवों की हिंसा करते समय केवल पृथ्वीकाय के जीवों की ही हिंसा नहीं होती, बल्कि तदाश्रित अन्य अनेक चाक्षुष एवं अचाक्षुष त्रस और स्थावर जीवों की भी हिंसा हो जाती है । पृथ्वी के आश्रय में छोटे-बड़े कीड़े, जीव-जन्तु आदि छिपे रहते हैं, उनका और पृथ्वी के छेदन-भेदन करते समय तदाश्रित जलकाय, वनस्पतिकाय और वायुकाय के जीवों का आरम्भ भी सहज ही हो जाता है ।

तम्हा एयं वियाणित्ता, दोसं दुग्गइवड्ढणं ।
पुढविकायसमारंभं, जावज्जीवाए वज्जए ॥29॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

दुर्गति वर्द्धक यह दोष कहा, इसलिये जान करके मन से ।
पृथ्वीकायिक का आरम्भ तज, जीवन भर शुद्ध हृदय तन से ॥

अन्वयार्थ-तम्हा = इसलिये । दुग्गइवड्ढणं = नरकादि दुर्गति को बढ़ाने वाले । एयं = इस । दोसं = दोष को । वियाणित्ता = जानकर साधु । पुढविकाय समारंभं = पृथ्वीकाय के आरम्भ (की हिंसा) का । जावज्जीवाए = जीवन भर के लिये । वज्जए = वर्जन करता है ।

भावार्थ-पृथ्वीकाय की विराधना करना दोष है । अतः यह दुर्गति को बढ़ाने वाली है । यह जानकर कल्याणार्थी साधु पृथ्वीकाय के जीवों के आरम्भ का जीवन भर के लिये वर्जन कर दे । (मन्दमति लोग धर्म, अर्थ और काम के लिये हिंसा करते हैं वे दुर्गति में जाते हैं । जैसा कि आचारांग सूत्र में कहा है-“धम्मा, अत्था, कामा हणंति.....” आदि । महाव्रती साधु सनिमित्तक या अनिमित्तक पृथ्वीकाय की हिंसा नहीं करते । इसकी विस्तृत जानकारी के लिये आचारांग सूत्र का प्रथमाध्ययन और इसी दशवैकालिक सूत्र का चतुर्थ धर्म-प्रज्ञप्ति नामक अध्ययन जिज्ञासु के लिये द्रष्टव्य है ।)

आउकायं न हिंसंति, मणसा वयसा कायसा ।
तिविहेण करणजोएण, संजया सुसमाहिया ॥30॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

अपकाय की हिंसा नहीं करते, मन से वाणी वा काया से ।
चित्तसमाधियुक्त संयमी, त्रिविधकरण और योगों से ॥

अन्वयार्थ-सुसमाहिया = समाधि भाव वाले । संजया = संयमी साधु । मणसा = मन । वयसा = वचन । कायसा = और काया से । तिविहेण = त्रिविध । करणजोएण (करण जोएणं) = करण और योग से । आउकायं = अपकाय की । न हिंसंति = हिंसा नहीं करते हैं ।

भावार्थ-अपकाय जल-जीवों का पिण्ड है । जलकाय और उसके आश्रित सहस्रों अन्य जीव अन्यमत में भी माने गये हैं । उनमें भी बिना छुने पानी के उपयोग का निषेध किया गया है । आचारांग के प्रथम अध्ययन और दशवैकालिक के चतुर्थ अध्ययन में अपकाय के जीवों की हिंसा पर विस्तार से विचार किया गया है । यहाँ निर्ग्रन्थ के धर्म स्थान की अपेक्षा से कहा गया है कि संयमी साधु त्रिविध करण और योगों से मन, वचन और काया से जलकाय के जीवों की लेश मात्र भी हिंसा नहीं करते हैं ।

आउकायं विहिंसंतो, हिंसइ उ तयस्सिए ।
तसे य विविहे पाणे, चक्खुसे य अचक्खुसे ॥31॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

अपकायिक की हिंसा करते, तदाश्रित का भी वध करता है ।
त्रस स्थावर नाना जीवों को, चाक्षुष बिन चाक्षुष हरता है ॥

अन्वयार्थ-आउकायं = अपकाय की । विहिंसंतो = हिंसा करने वाला । तयस्सिए = जल के आश्रित । चक्खुसे य = चाक्षुष और । अचक्खुसे = अचाक्षुष । विविहे = विविध प्रकार के । तसे य पाणे = त्रस और स्थावर प्राणियों की । हिंसइ = हिंसा करता है ।

भावार्थ-क्योंकि जल में अगणित चलते फिरते प्राणी हैं, इसलिये यह कहा गया है कि जलकाय के जीवों की हिंसा करने वाला जल के आश्रित दृश्य, अदृश्य, अगणित जीवों की भी हिंसा करता है ।

तम्हा एयं वियाणित्ता, दोसं दुग्गइवइढणं ।
आउकायसमारंभं, जावज्जीवाए वज्जए ॥32॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

दुर्गतिवर्द्धक दोष कहा, अतएव जान करके मन से ।

अपूकायिक का वध तज देना, जीवन भर शुद्ध हृदय तन से ॥

अन्वयार्थ-तम्हा एयं दुग्गइवइढणं = इसलिये इस दुर्गति को बढ़ाने वाले । दोसं = दोष को । वियाणित्ता = जानकर साधु । जावज्जीवाए = जीवन भर के लिये । आउकायसमारंभं = अपूकाय के आरम्भ का । वज्जए = सर्वथा वर्जन करते हैं ।

भावार्थ-आठवें धर्म स्थान में निर्ग्रन्थों के लिये अपूकाय के जीवों की हिंसा का निषेध किया गया है क्योंकि पृथ्वीकाय की तरह अपूकाय की हिंसा भी दुर्गति को बढ़ाने वाली है, इसलिये इस दोष को जानकर साधु जीवन भर के लिये अपूकाय के समारम्भ का वर्जन करते हैं ।

जायतेयं न इच्छंति, पावगं जलइत्तए ।

तिक्खमण्णयरं सत्थं, सव्वओ वि दुरासयं ॥33॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

जात तेज है पाप जनक, इनका मुनि जलन नहीं करते ।

तीक्ष्ण अन्यतर शस्त्र बड़ा, सब ओर जीव पकड़े जाते ॥

अन्वयार्थ-जायतेयं = साधु जाततेज यानी अग्नि को । पावगं = पापकारी जानकर । जलइत्तए = जलाना । न इच्छंति = नहीं चाहते हैं । तिक्खं = यह तीक्ष्ण और । अण्णयरं = अन्य शस्त्रों से एक अनोखा । सत्थं = शस्त्र है । सव्वओ वि = सभी तरफ से । दुरासयं = धारवाला होने से इसको सहना कठिन है ।

भावार्थ-नवम धर्मस्थान में अग्नि के आरम्भ का वर्णन किया गया है । इसे शास्त्रकारों ने एक बहुत भयंकर शस्त्र की उपमा दी है और इसीलिये इसको पापकारी कहा है । भाला, बर्छी, तलवार आदि शस्त्र तो एक ओर से ही हानि करते हैं, किन्तु अग्नि ऐसा शस्त्र है कि जो सब ओर से प्राणियों के लिये तापकारी है, इसलिये निर्ग्रन्थ मुनि अग्नि को जलाना नहीं चाहते हैं ।

पाइणं पडिणं वा वि, उइढं अणुदिसामवि ।

अहे दाहिणओ वा वि, दहे उत्तरओ वि य ॥34॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

पूर्व और पश्चिम अथवा, ऊँचे और अनुदिक जीवों को ।

दक्षिण-उत्तर या अधोभाग से, दहन करे पावक जग को ॥

अन्वयार्थ-पाइणं (पाईणं) = पूर्व । वा = अथवा । पडिणं (पडीणं) = पश्चिम । उड्ढं = ऊर्ध्व दिशा । अणुदिसामवि = तथा अनुदिशाओं से भी । अहे = नीची दिशा । दाहिणओ = दक्षिण दिशा । वा वि = अथवा । उत्तरओ वि य = और उत्तर दिशा की ओर से भी । दहे = यह जलाती रहती है ।

भावार्थ-अग्निकाय सब ओर से प्राणियों को जलाती रहती है । पूर्व दिशा, पश्चिम दिशा, ऊर्ध्व दिशाओं की ओर अनुदिशा, नीचे की ओर, दक्षिण और उत्तर दिशाओं की ओर से पास में आये पदार्थों और प्राणियों को जला देती है । (अग्निकाय के जीवों का शरीर ऐसी ही दाह प्रकृति वाला होता है, इसलिये पाँच स्थावरों में से पृथ्वी, जल और वनस्पति में तो देव गति से आकर जीव उत्पन्न होते हैं, किन्तु तेजस्काय और वायुकाय में नहीं ।)

भूयाणमेसमाघाओ, हव्ववाहो ण संसओ ।
तं पईवपयावट्ठा, संजया किंचि णारभे ॥35॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

पावक प्राणी का है घातक, और द्रव्य विनाशक निस्संशय ।
अतएव प्रकाश प्रतापन को, आरम्भ न करते हैं संजय ॥

अन्वयार्थ-एसं = यह । हव्ववाहो = हव्य का वहन करने वाली यानी अग्नि । भूयाणं = जीवों के लिये । आघाओ = घात करने वाली है । ण संसओ = इसमें संशय की बात नहीं है । तं = इसलिये । संजया = साधु । पईवपयावट्ठा = प्रकाश और ताप के लिये । किंचि = किंचित् मात्र भी अग्नि का । णारभे = आरम्भ नहीं करते ।

भावार्थ-साधु प्रकाश और ताप के लिये कभी अग्नि का किंचित् मात्र भी आरम्भ नहीं करते, क्योंकि अग्नि चाहे चकमक से उत्पन्न होने वाली हो, सूर्य किरण के चूल्हे, बेट्टी, गैस या विद्युत् आदि से उत्पन्न हुई हो, सर्व विनाशकारी और सचित्त है । दयाव्रती साधु इससे होने वाले जीववध में किसी प्रकार की शंका नहीं करता ।

तम्हा एयं वियाणित्ता, दोसं दुग्गइवड्ढणं ।
तेउकायसमारंभं, जावज्जीवाए वज्जए ॥36॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

इसलिए दोष दुर्गति वर्द्धक, परिचय पावक का जान श्रमण ।
दे छोड़ अग्नि का समारम्भ, हो निर्मल मन यावज्जीवन ॥

अन्वयार्थ-तम्हा = इसलिये । दुग्गइवड्ढणं = दुर्गति बढ़ाने वाले । एयं = इस । दोसं = दोष को । वियाणित्ता = जानकर । तेउकायसमारंभं = अग्निकाय के आरम्भ का साधु । जावज्जीवाए = जीवन भर के लिये । वज्जए = वर्जन कर दे ।

भावार्थ-उपर्युक्त दोष को जानकर साधु जीवन पर्यन्त अग्निकाय के आरम्भ का वर्जन करते हैं । यह साधु का नौवाँ आचार स्थान है ।

अणिलस्स समारंभं, बुद्धा मण्णंति¹ तारिसं ।
सावज्जबहुलं चेयं, णेयं ताईहिं सेवियं ॥37॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

वायुकाय का समारम्भ, प्रभु अग्निकाय जैसा कहते ।
है पाप बहुल अतएव नहीं, त्रायी-मुनि यह सेवन करते ॥

अन्वयार्थ-बुद्धा = तीर्थङ्कर देव । अणिलस्स समारंभं = वायुकाय के आरम्भ को । तारिसं = अग्निकाय के समान ही । मण्णंति = मानते हैं (अथवा 'भण्णंति' = बतलाते हैं) । एयं च = और वह वायुकाय । सावज्जबहुलं = पाप की बहुलता वाला है । ताईहिं = षट्काय के रक्षक मुनियों ने । एयं = इसलिये इसका आरम्भ । ण = नहीं । सेवियं = सेवन किया है ।

भावार्थ-तीर्थङ्कर देव वायुकाय के आरम्भ को तेजस्काय के समान मानते हैं । (प्रचण्ड वायु के झोंके से भी हजारों-लाखों वृक्ष धराशायी हो जाते हैं । वायु अग्नि को भी प्रज्वलित करती है ।) इसको पाप बहुल मानकर षट्काय के रक्षक मुनिजन फूँक अथवा पंखे आदि से वायु का संचालन नहीं करते । वायुकाय की रक्षा के लिये मुख पर भी मुँहपत्ती धारण करते हैं । इस प्रकार साधु वायुकाय का आरम्भ नहीं करते ।

तालियंटेण पत्तेण, साहाविहुयणेण वा ।
ण ते वीडुमिच्छंति, वेयावेऊण वा परं ॥38॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

तालवृत्त या अन्य पत्र, तरु शाखा पंखा या बीजण ।
वे करते नहीं हवा इनसे, पर से न कराते कभी 'श्रमण' ॥

अन्वयार्थ-ते = वे निर्ग्रन्थ । तालियंटेण = तालवृत्त । पत्तेण = पत्ते से । वा = अथवा । साहाविहुयणेण = शाखा के हिलाने से । वीडुं = हवा कराना । ण = नहीं । इच्छंति = चाहते । परं = दूसरे से । वेयावेऊण = हवा कराना भी । वा = नहीं चाहते ।

1. भण्णंति - पाठान्तर ।

भावार्थ—निर्ग्रन्थ मुनि वायुकाय की रक्षा के लिये तालवृत्त, पंखा या शाखा के कम्पन, हाथ, कपड़े का छोर, पुट्टे आदि से हवा करते नहीं और दूसरों से हवा करवाते नहीं। दूसरे ने पंखा चालू किया है तो वहाँ बैठकर उसका अनुमोदन भी करते नहीं।

जं पि वत्थं व पायं वा, कंबलं पायपुंछणं ।
ण ते वायमुईरंति, जयं परिहरंति य ॥३९॥

हिन्दी पद्यानुवाद—

जो वस्त्र पात्र कम्बल अथवा, मुनि धर्म चिह्न है रजोहरण ।
वे इनसे हवा नहीं करते, करते संयम पूर्वक धारण ॥

अन्वयार्थ—ते = वे साधु। व जं पि = और जो भी। वत्थं = वस्त्र। पायं = पात्र। कंबलं = कम्बल। वा पायपुंछणं = अथवा रजोहरण आदि से। वायं = वायु का। ण उईरंति = प्रेरण या संचालन नहीं करते, किन्तु। जयं = यतना पूर्वक। य परिहरंति = उसका परिहार करते हैं।

भावार्थ—साधु वस्त्र, पात्र, कम्बल और रजोहरण आदि से भी वायु का संचालन नहीं करे। वस्त्रादि को वैसे ही रखे और धारण करे, जिससे वस्त्र आदि हवा में ध्वजा की तरह लहरावे नहीं।

तम्हा एयं वियाणित्ता, दोसं दुग्गइवड्ढणं ।
वाउकायसमारंभं, जावज्जीवाए वज्जए ॥४०॥

हिन्दी पद्यानुवाद—

इसलिये दोष-दुर्गति वर्द्धक, है वायुकाय का उपमर्दन ।
यह जान वायु का संचालन, दे छोड़ श्रमण सारे जीवन ॥

अन्वयार्थ—तम्हा = इसलिये मुनिजन। दुग्गइवड्ढणं = दुर्गति को बढ़ाने वाले। एयं = इस। दोसं = दोष को। वियाणित्ता = जानकर। जावज्जीवाए = जीवन भर के लिये। वाउकाय समारंभं = वायुकाय के आरम्भ को। वज्जए = वर्जन करते हैं। यह उनका दसवाँ आचार स्थान है।

भावार्थ—उपर्युक्त चार गाथाओं द्वारा वायुकाय की पाप बहुलता का और साधुओं द्वारा विविध साधनों से उनकी हिंसा नहीं करने का उपदेश दिया गया है।

वणस्सइं ण हिंसंति, मणसा वयसा कायसा ।
तिविहेण करण जोएण^१, संजया सुसमाहिया ॥४१॥

1. जोएणं - इति पाठान्तर।

हिन्दी पद्यानुवाद-

करते न वनस्पतिकायिक की, हिंसा तन मन या वचनों से ।
सम्यक् समाधि वाले संयत, वे त्रिविध करण और योगों से ॥

अन्वयार्थ-सुसमाहिया = उत्तम समाधि भाव वाले । **संजया** = संयमी मुनि । **वणस्सइं** = वनस्पतिकाय की । **मणसा** = मन । **वयसा** = वचन । **कायसा** = और काया से । **तिविहेण** = तीन प्रकार के । **करणजोएण** = करण और योगों से । **ण हिंसंति** = हिंसा नहीं करते हैं ।

भावार्थ-जिनके मन में विकार नहीं ऐसे उत्तम समाधि सम्पन्न मुनि तीन प्रकार के करण और योगों से (मूल, कन्द, खंघ, त्वचा, शाखा, प्रवाल, पत्र, फूल, फल और बीज इनमें से किसी प्रकार की वनस्पति) की हिंसा नहीं करते । वनस्पति में कई एकास्थिक, बहु बीज और साधारण अनन्त जीवी भी होते हैं । साधु सचित्त का त्यागी होने से किसी भी प्रकार की वनस्पति की हिंसा नहीं करता है ।

वणस्सइं विहिंसंतो, हिंसई उ तयस्सिए ।
तसे य विविहे पाणे, चक्खुसे य अचक्खुसे ॥42॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

हरितकाय की हिंसा करते, तदाश्रित का भी वध करता है ।
त्रस और विविध प्राणी-जीवन, चाक्षुष बिन चाक्षुष हरता है ॥

अन्वयार्थ-वणस्सइं = वनस्पतिकाय की । **विहिंसंतो** = हिंसा करने वाला । **तयस्सिए** = उसके आश्रित । **विविहे** = उनके प्रकार के । **तसे य** = त्रस और । **पाणे** = जीव । **चक्खुसे य** = चाक्षुष एवं । **अचक्खुसे** = अचाक्षुषों की । **हिंसई उ** = हिंसा कर बैठता है ।

भावार्थ-वनस्पतिकाय की हिंसा करने वाला, प्रत्यक्ष में तो एक वनस्पति की ही हिंसा करता है, परन्तु गहराई से देखने पर वनस्पति-पत्र, फूल, फल, आदि के आश्रित हजारों सूक्ष्म जीवों की हिंसा भी कर बैठता है । गोभी के फूल और कई हरे पत्तों आदि पर वैसे ही रंग-रूप के हजारों सूक्ष्म जीवों को तो चर्म चक्षुओं से भी अनायास देखा जा सकता है ।

तम्हा एयं वियाणित्ता, दोसं दुग्गइवड्ढणं ।
वणस्सइसमारंभं, जावज्जीवाए वज्जए ॥43॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

दुर्गति वर्द्धक यह दोष कहा, इसलिये जानकर के मन से ।
हरितकाय का वध छोड़े, जीवन भर श्रमण स्वयं तन से ॥

अन्वयार्थ-तम्हा = इसलिये । दुग्गइवइढणं = दुर्गति को बढ़ाने वाले । एयं = इस । दोसं = दोष को । वियाणित्ता = जानकर (संयमी साधक) । जावज्जीवाए = जीवन पर्यन्त के लिये । वणस्सइसमारंभं = वनस्पतिकाय के आरम्भ का । वज्जए = वर्जन करते हैं ।

भावार्थ-अतः वनस्पतिकाय के जीवों के वध रूपी दोष, जो पापजनक और दुर्गति देने वाला है, को जानकर साधु भोजन-पान आदि आवश्यक कारणों से भी वनस्पति काय की हिंसा का जीवन भर के लिये वर्जन करते हैं । यह उनका 11वाँ आचार स्थान है । पृथ्वीकाय, जलकाय, तेजस्काय और वायुकाय की तरह वनस्पतिकाय के भी एक ही स्पर्श इन्द्रिय है । रसना, नासिका, चक्षु और कर्ण इन्द्रियाँ उनमें नहीं हैं, फिर भी इनकी ज्ञान चेतना कुछ स्थूल रूप में जानी जाती है । जैसे-खिलना, कुम्हलाना आदि ।

तसकायं ण हिंसंति, मणसा वयसा कायसा ।
तिविहेण करणजोएण, संजया सुसमाहिया ॥44॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

त्रसकायिक का वध ना करते, तन मन अथवा निज वचनों से ।
सम्यक् समाधि वाले संयत, निज त्रिविध योग या करणों से ॥

अन्वयार्थ-सुसमाहिया = सम्यग् समाधिशील । संजया = साधु । मणसा = मन से । वयसा = वचन से । कायसा = काया से । तिविहेण = तीन प्रकार के । करणजोएण (करणजोएणं) = करण और योगों से । तसकायं = त्रसकायिक जीवों की । ण हिंसंति = हिंसा नहीं करते ।

भावार्थ-समाधिशील साधु मन, वचन और काया से तीन प्रकार के करण और तीन प्रकार के योगों से त्रसकायिक-बेइन्द्रिय से लेकर संज्ञी पंचेन्द्रिय तक के जीवों की हिंसा नहीं करते ।

तसकायं विहिंसंतो, हिंसइ उ तयस्सिए ।
तसे य विविहे पाणे, चक्खुसे य अचक्खुसे ॥45॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

त्रसकायिक की हिंसा करते, आश्रित का भी वध करता है ।
स्थावर त्रस वा सूक्ष्म स्थूल, चाक्षुष बिन चाक्षुष को हरता है ॥

अन्वयार्थ-तसकायं = त्रसकाय की । विहिंसंतो = हिंसा करने वाला । तयस्सिए = उनके आश्रित । चक्खुसे य = चाक्षुष और । अचक्खुसे = अचाक्षुष । विविहे य = और अनेक प्रकार के । तसे = त्रस । पाणे = प्राणियों की । हिंसइ उ = हिंसा करते हैं ।

भावार्थ—1. अण्डज, 2. पोतज, 3. जरायुज, 4. रसज, 5. संस्वेदिम, 6. सम्मूर्च्छिम, 7. उद्भिज, और 8. औपपातिक ये मुख्य त्रस कायिक जीव हैं। इनके पशु, पक्षी और मनुष्य के शरीर के आश्रित कृमि, यूका आदि जीव रहते हैं। जब कोई एक त्रस जीव की हिंसा करता है, तो उसके आश्रित एवं उससे पलने वाले चाक्षुष, अचाक्षुष अनेक जीवों की हिंसा भी कर लेता है।

तम्हा एयं वियाणित्ता, दोसं दुग्गइवड्ढणं ।

तसकायसमारंभं, जावज्जीवाए वज्जए ॥46॥

हिन्दी पद्यानुवाद—

दुर्गति वर्द्धक, यह दोष कहा, इसलिये जान करके मन से।

त्रस की हिंसा छोड़े मुनि वर, जीवन भर वाणी से तन से ॥

अन्वयार्थ—तम्हा = त्रसकाय की हिंसा पाप बढ़ाने वाली है, इसलिये। दुग्गइवड्ढणं = दुर्गति को बढ़ाने वाले। एयं = इस। दोसं = दोष को। वियाणित्ता = जानकर। तसकायसमारंभं = त्रसकाय के आरम्भ को। जावज्जीवाए = जीवन भर के लिये। वज्जए = वर्जन कर दे।

भावार्थ—उपर्युक्त गाथा में त्रसकाय की हिंसा को अधिक दोष वाली जानकर साधुजनों को इसे सदा के लिये वर्जन करना चाहिए।

जाइं चत्तारिऽभुज्जाइं, इसिणाहारमाइणि ।

ताइं तु विवज्जंतो, संजमं अणुपालए ॥47॥

हिन्दी पद्यानुवाद—

जो चार अकल्प कहे मुनि के, पट पात्र तथा शय्या भोजन।

उन सबका करके त्याग श्रमण, संयम का सतत करे पालन ॥

अन्वयार्थ—जाइं = जो। आहारमाइणि = आहार आदि (पिण्ड, शय्या, वस्त्र, पात्र)। चत्तारि = चार पदार्थ। इसिणा = मुनियों के लिये। अभुज्जाइं = अग्राह्य हैं। ताइं तु = उनका। विवज्जंतो = वर्जन करते हुए। संजमं = शुद्ध संयम-धर्म का। अणुपालए = वे पालन करें।

भावार्थ—छह व्रत और छह काय के जीवों की रक्षा का उपदेश देकर इस गाथा में बतलाया गया है कि आत्मारथी मुनि वस्त्र, पात्र, आहार और शय्या (शास्त्र) भी कल्पनीय ही ग्रहण करें। महाव्रतों की और षट्काय जीवों की विराधना से बचने के लिये सदोष आहार आदि का त्याग करना आवश्यक है, इसलिये अकल्प के त्याग को 13वां स्थान कहा गया है।

पिंडं सिज्जं च वत्थं च, चउत्थं पायमेव य ।
अकप्पियं ण इच्छिज्जा, पडिगाहिज्ज कप्पियं ॥48॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

भोजन, शय्या, वस्त्र तथा, चौथा है पात्र कहा जाता ।
इनमें अकल्प को ना चाहे, और कल्प ग्रहण में है आता ॥

अन्वयार्थ-पिंडं = चारों प्रकार के आहार । सिज्जं = शय्या, ठहरने का स्थान । च वत्थं = और वस्त्र कम्बल । च = और । चउत्थं = चौथा । पायमेव य = और पात्र, उपलक्षण से पाट, चौकी शास्त्र आदि । अकप्पियं = अकल्पनीय सदोष । ण = नहीं । इच्छिज्जा = चाहे । कप्पियं = निर्दोष-कल्पनीय ही । पडिगाहिज्ज = ग्रहण करे ।

भावार्थ-आरम्भ से बचने के लिये साधु सदोष अशन पानादि चारों आहार, मकान अथवा पाट आदि तथा वस्त्र, पात्र, रजोहरण आदि सदोष हों या जो साधु के निमित्त से बनाये गये हों अथवा खरीदे गये हों, को ग्रहण नहीं करें । निर्दोष होने से जो कल्पनीय हों, उन्हीं को साधु ग्रहण करे ।

जे णियागं ममायंति, कीयमुद्देसियाहडं ।
वहं ते समणुजाणंति, इइ वुत्तं महेसिणा ॥49॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

आमन्त्रित क्रीत तथा उद्देशिक, आहत जो साधु ग्रहण करते ।
जिनवर बोले वे अनुमोदन, षट्कायिक वध का हैं करते ॥

अन्वयार्थ-जे = जो साधु । णियागं = आमन्त्रित-नित्यपिण्ड । कीयं = साधु के लिये खरीद कर लाये हुए । उद्देसिय = साधु के लिये आरम्भ पूर्वक बनाये हुए । आहडं = पर घर से सामने लाये हुए आहार आदि को । ममायंति = ग्रहण करते हैं । ते = वे साधु । वहं = हिंसा की । समणुजाणंति = अनुमोदना करते हैं । इइ = ऐसा । महेसिणा = महर्षि महावीर ने । वुत्तं = कहा है ।

भावार्थ-श्रमण आरम्भ का सम्पूर्ण त्यागी है, अतएव उसको कृत, कारित, और अनुमोदन का मन, वाणी, और काया से त्याग होता है । आहार-वस्त्र, पात्र आदि आवश्यक पदार्थ के ग्रहण करने में भी अगर हिंसा की सम्भावना देखे और औद्देशिक, क्रीत, आहत आदि दोषों की सम्भावना देखे तो वैसे दोषयुक्त आहारादि को भी वह अकल्पनीय मानकर ग्रहण नहीं करता । उसके ग्रहण करने में भगवान् ने हिंसा की अनुमोदना बतलाई है । यह 13वां स्थान है ।

तम्हा असणपाणाइं, कीयमुद्देसियाहडं ।
वज्जयंति ठियप्पाणो, णिगंथा धम्मजीविणो ॥50॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

इसलिये क्रीत और औद्देशिक, अशनादिक आहत को मुनिजन ।
आत्म स्थित तथा धर्मजीवी, मन से करते इनका वर्जन ॥

अन्वयार्थ-तम्हा = दोष का कारण है इसलिये । ठियप्पाणो = संयम में स्थित आत्मा वाले ।
धम्मजीविणो = धर्म जीवी । णिगंथा = निर्ग्रन्थ मुनि । कीयमुद्देसियाहडं = खरीदे हुए औद्देशिक और
आहत यानी सामने लाये हुए । असणपाणाइं = अशन पानादि का । वज्जयंति = वर्जन करते हैं ।

भावार्थ-संयम में जिनका मन स्थिर है वैसे धर्मजीवी निर्ग्रन्थ मुनि जो अशनादि क्रीत, औद्देशिक,
आहत, आधाकर्म दोषों से दूषित हो, उसको कभी ग्रहण नहीं करते । वे ऊपर बताये गये निर्दोष (दोषों से
रहित) अशनादि पदार्थों से ही अपनी संयम यात्रा चलाते हैं ।

कंसेसु कंसपाएसु, कुंडमोएसु वा पुणो ।
भुंजंतो असणपाणाइं, आयारा परिभस्सइ ॥51॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

कांसे के प्याले कांस्य पात्र, या कांस्यकुण्ड में पान अशन ।
खाता आचार भ्रष्ट होता, खो देता निज संस्कार श्रमण ॥

अन्वयार्थ-कंसेसु = गृहि भाजन कांसी के कटोरे । कंसपाएसु = कांस्य पात्र थाली आदि । वा
पुणो = अथवा फिर । कुंडमोएसु = कुण्डे के आकार वाले कांसे के भाजन में । असणपाणाइं = अशन-
पान आदि आहार । भुंजंतो = खाता हुआ । आयारा = साधु के आचार धर्म से । परिभस्सइ = फिसल
जाता है, भ्रष्ट हो जाता है ।

भावार्थ-जो मुनि कांसी के बर्तनों में भोजन करता है वह अपने आचार धर्म से भ्रष्ट होता है । साधु-
साध्वी के लिये तीन प्रकार के पात्र ग्रहण करने योग्य बतलाये हैं, अलावु-तुम्बपात्र, काष्ठ पात्र और मिट्टी के
पात्र । काँचपात्र आदि में अशन पानादि करना नहीं बताया । चिकित्सालय में चिकित्सा के निमित्त चीनी के
बर्तन, काँच के प्याले आदि उपयोग में लेना पड़े तो अपवाद समझें । जलादि ग्रहण करने में मिट्टी का भांड
लिया जा सकता है । अतः वस्त्र साफ करने को यदि मिट्टी का बर्तन काम में लिया जाय तो शास्त्र विरुद्ध प्रतीत
नहीं होता । शास्त्र में “भुंजंतो असण-पाणाइं” अशन-पान का भोग ही इन मिट्टी के भांडों में करने का
निषेध किया है, जलादि ग्रहण करने एवं वस्त्र साफ करने एवं धोने का नहीं ।

आगे गृहिभाजन में होने वाले दोष बतलाये हैं । यह चौदहवाँ आचार है ।

सीओदगसमारंभे, मत्तधोयणछड्डणे ।
जाइं छणंति भूयाइं, दिट्ठो तत्थ असंजमो ॥52॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

शीतल जल का समारम्भ और अशन पात्र प्रक्षालन में ।
मरते कितने जीव, असंयम को देखा प्रभु ने उनमें ॥

गृहस्थ के कांस्य पात्रादि में आहार करने पर उसे माँजना या धोना होगा, इसलिये कहा-

अन्वयार्थ-सीओदगसमारंभे = ऐसे पात्रों को धोने एवं साफ करने में कच्चे जल का आरम्भ होगा । मत्तधोयणछड्डणे (मत्तधोअणछड्डणे) = पात्र धोकर पानी अयतना से फैका जाएगा । जाइं = जिससे । भूयाइं = जीवों की । छणंति = हिंसा होगी । तत्थ = इस प्रकार ऐसे बर्तनों की सफाई के कार्य में । असंजमो = षट्कायिक जीवों का असंयम । दिट्ठो = देखा गया है ।

भावार्थ-साधु पात्र इसलिये रखता है कि भोजन करते समय अन्नादि के कण नीचे गिरने से वे असंयम का कारण नहीं बनें । गृहस्थ के पात्र में आहार करने से सचित्त जलादि का आरम्भ अवश्यंभावी है । जैसा कि कहा है-

पच्छाकम्मं पुरेकम्मं, सिया तत्थ ण कप्पइ ।
एयमट्ठं ण भुंजंति, णिग्गंथा गिहिभायणे ॥53॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

पश्चात् पुरः कर्म के कारण, कल्प नहीं है वहाँ अशन ।
अतः गृहस्थों के बर्तन में, निर्ग्रन्थ नहीं करते भोजन ॥

अन्वयार्थ-तत्थ = गृहस्थ के पात्र में भोजन करने से । पच्छाकम्मं = खाने के बाद बर्तन साफ करना । पुरेकम्मं = देने से पहले हाथ आदि धोना । सिया = सम्भव है अतः यह । ण कप्पइ = नहीं कल्पता है । एयमट्ठं = इसलिये । णिग्गंथा = निर्ग्रन्थ साधु । गिहिभायणे = गृहस्थ के कांस्य पात्रादि में । ण भुंजंति = भोजन नहीं करते हैं ।

भावार्थ-अपरिग्रही साधु खाना खाने के लिये कांस्य पात्रादि ग्रहण नहीं करता । इसलिये उसको पात्र चोरी जाने का खतरा नहीं । फिर काष्ठ-पात्र में उसके व्रतीपन का सहज परिचय भी प्राप्त होगा और काष्ठ पात्र में सचित्त जल के आरम्भ का दोष भी बचता है । यह गृहिभाजन में भोजन-त्याग का 14वां आचार स्थान है ।

आसंदी पलियंकेसु¹, मंचमासालएसु वा ।
अणायरियमज्जाणं, आसइत्तु सइत्तु वा ॥54॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

कुर्सी पलंग माचा पीढी, ऐसे ही शयन तथा आसन ।
उन पर सोने तथा बैठने, का संयमी को है वर्जन ॥

अन्वयार्थ-आसंदी = बेंत की बनी कुर्सी या मुड्डे पर । पलियंकेसु = पलंग पर । मंच = मंच तथा । वा = अथवा । आसालएसु = जिसके पीछे सहारा हो । आसइत्तु = ऐसे आसनों पर बैठना । वा = अथवा । सइत्तु = सोना । अज्जाणं = आर्य पुरुष-साधुओं के लिये । अणायरियं = आचरण योग्य नहीं है ।

भावार्थ-त्यागमूर्ति साधु भोग भावना से विरत होता है । फिर वह ऐसे आसन पर बैठता है जिसको वह अच्छी तरह से देख सके एवं उसका प्रतिलेखन कर सके । यह सम्भव नहीं होने के कारण मुनि आसंदी, पलंग और मंच तथा सहारे वाले आसन बैठने के लिये एवं सोने के लिये ग्रहण नहीं करता ।

णासंदी पलियंकेसु², ण णिसिज्जा ण पीढए ।
णिगंथाऽपडिलेहाए, बुद्धवुत्तमहिट्टगा ॥55॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

आसंदी और पर्यकों पर, आसन तथा पीठ ऊपर ।
प्रतिलेखन सम्भव हो न जहाँ, ना बैठे मुनि जिन श्रद्धाकर ॥

अन्वयार्थ-बुद्धवुत्तमहिट्टगा = भगवान के वचनों पर अधिष्ठित (स्थिर) रहने वाले । णिगंथा = निर्ग्रन्थ । आसंदीपलियंकेसु = आसंदी-कुर्सी एवं पलंग पर । ण = नहीं सोवे । ण णिसिज्जाण पीढए = रूई की गादी पर तथा मुड्डे आदि पर नहीं बैठे, नहीं सोवे, क्योंकि । अपडिलेहाए = उनकी प्रतिलेखना नहीं हो सकती ।

भावार्थ-क्योंकि सूक्ष्म जीवों की प्रतिलेखना नहीं हो सकती इसलिये शास्त्र-वचनों पर श्रद्धा रखने वाले, स्थिर रहने वाले एवं उन पर आचरण करने वाले मुनि बेंत की कुर्सी या पलंग और मुड्डे-गादी आदि पर न बैठें, न खड़े हों एवं न शयन करें । प्राचीन सन्तों ने राजसभाओं आदि में भी कुर्सी को स्वीकार नहीं कर अपनी मर्यादा का सम्यक् पालन किया । आज हमें भी उस परम्परा पर चलने का ध्यान रखना चाहिये ।

1. पलिअंकेसु - पाठान्तर ।

2. पलिअंकेसु - पाठान्तर ।

गंभीरविजया एए, पाणा दुप्पडिलेहगा ।
आसंदी पलियंको य, एयमट्टं विवज्जिया ॥56॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

कुर्सी पलंग के जीवों का, होता है बहुत कठिन निर्णय ।
ये दुष्कर प्रतिलेखन वाले, अतएव त्याग दे इन्हें सदय ॥

अन्वयार्थ-एए = जिनमें दोष बतलाये हैं वे कुर्सी आदि । गंभीरविजया = गम्भीर छिद्र वाले होते हैं । पाणा = खटमल आदि प्राणी । दुप्पडिलेहगा = इनमें कठिनाई से देखे जाते हैं । एयमट्टं = इसलिये निर्ग्रन्थों ने । आसंदी = कुर्सी । य = और । पलियंको = पलंग का । विवज्जिया = विवर्जन किया है ।

भावार्थ-जैन साधु अपने उपकरणों का दोनों समय अवलोकन करता है । वह ऐसी वस्तु को नहीं रखता जिसमें भीतर छिपे जीव-जन्तु नहीं देखे जा सकें । कुर्सी, पलंग, मंच आदि की बनावट गहरे छिद्र वाली होने से सरलता से वे देखे नहीं जा सकते, इसलिये साधु इनका वर्जन करते हैं । यह साधु का 15वां आचार स्थान है ।

गोयरगपविट्टस्स, णिसिज्जा जस्स कप्पइ ।
इमेरिसमणायारं, आवज्जइ अबोहियं ॥57॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

बैठे गृहस्थ के घर में जो, भिक्षा लेने को गया श्रमण ।
वह अनाचार को पाता है, मिथ्यात्व (अबोधि), रूप जिसका वर्णन ॥

अन्वयार्थ-गोयरगपविट्टस्स = गोचरी में गया हुआ । जस्स णिसेज्जा = जो साधु गृहस्थ के घर में ऐसे कुर्सी आदि उपकरणों पर या वैसे भी निषद्या । कप्पइ = करता है यानी बैठता है । इमेरिसं = आगे बताया जाने वाले । अणायारं = अनाचार दोष का सेवन करने से । अबोहियं = वह मिथ्यात्व को, अबोधि को । आवज्जइ = प्राप्त करता है ।

भावार्थ-गृहस्थ के घर गोचरी आदि के कारण से गया हुआ साधु गोचरी लेकर तत्काल लौट जाता है । घर में बैठकर या खड़े-खड़े भी कथा कहने का विस्तार नहीं करता । अगर आवश्यकता समझे तो मात्र एक उदाहरण से अधिक नहीं कहता । घर में बैठने से अगली गाथा में कहे अनुसार दोष लगता है जो अबोधि यानी मिथ्यात्व का कारण होता है ।

विवत्ती बंभचेरस्स, पाणाणं च वहे वहो ।
वणीमगपडिग्घाओ, पडिकोहो अगारिणं ॥58॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

ब्रह्मचर्य का नाश, प्राणवध में संयम का भी वध है।

याचक के हो अन्तराय, मुनि के प्रति क्रोध विवर्द्धक है॥

अन्वयार्थ-बंभचेरस्स = घर में बैठने से ब्रह्मचर्य के नियम का। **विवत्ती** = विनाश होता है। **च** = और। **पाणाणं** = प्राणियों के। **वहे** = समारम्भ से। **वहो** = संयम जीवन का वध होता है। **वणीमगपडिग्घाओ** = अन्य याचक या भिखारी के लाभ में भी अन्तराय लगती है। **अगारिणं** = तथा गृहपति को। **पडिकोहो** = क्रोध होता है।

भावार्थ-साधु यदि गृहस्थ के घर में बैठेगा तो उसके ब्रह्मचर्य व्रत के सम्बन्ध में शंका होगी और आधाकर्मि आहार तैयार किया गया तो प्राणियों के वध से उसके संयम-गुण की घात होगी। माँगने के लिये आये हुए भिखारी आदि को अशनादि के मिलने में अन्तराय भी लगेगी। घर के कार्य में व्यवधान पड़ने से गृहपति को क्रोध होगा। वह यही चाहेगा कि महाराज जितना जल्दी हो चले जायें।

अगुत्ती बंभचेरस्स, इत्थीओ वा वि संकणं।

कुसीलवड्ढणं ठाणं, दूरओ परिवज्जए॥59॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

ब्रह्मचर्य का हो ना गोपन, शंका हो नारी दर्शन से।

कुशीलवर्द्धक स्थान मान, छोड़े मुनि रहकर दूर इसे॥

अन्वयार्थ-बंभचेरस्स = गृहस्थ के बाल बच्चों वाले घर में ठहरने से ब्रह्मचर्य धर्म की। **अगुत्ती** = गुप्ति यानी बाढ़ का पालन नहीं होगा। **वा वि** = अथवा। **इत्थीओ** = सुन्दर रमणियों के संग से। **संकणं** = ब्रह्मचर्य व्रत में शंका उत्पन्न होगी। **कुसीलवड्ढणं** = अतः साधु कामराग बढ़ाने वाले। **ठाणं** = स्थान का। **दूरओ** = दूर से। **परिवज्जए** = परित्याग करे।

भावार्थ-ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिये नव वाडें बताई गई हैं। गृहस्थ के घर में बैठने से उन नव वाडों में से 1-2-3-4-6 का सम्यक् पालन नहीं होता। घर में स्त्रियों के बीच बैठने से ब्रह्मचर्य की सुरक्षा नहीं होती। स्त्रियों का अति संसर्ग शंका का कारण होता है। इसलिये कुशील बढ़ाने वाले स्थान का मुनि दूर से ही वर्जन कर दे। उत्तराध्ययन सूत्र के 16वें अध्ययन में ब्रह्मचर्य के दश समाधि स्थान बतलाये गये हैं। घर में बैठने से इनका पालन नहीं होता। अतः साधु गृहस्थ के घर में नहीं बैठे।

तिण्हमण्णयरागस्स, णिसिज्जा जस्स कप्पइ।

जराए अभिभूयस्स, वाहियस्स तवस्सिणो॥60॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

इन तीनों में से कोई भी, है सकता बैठ गृही घर में।
बैठना वृद्ध तपस्वी रुग्ण साधु का, दोष न माना पर घर में॥

अन्वयार्थ-जराए = वृद्धावस्था से। अभिभूयस्स = घिरे हुए। वाहियस्स = व्याधि से पीड़ित। तवस्सिणो = और तपस्वी। तिण्हं = इन तीनों में से। अण्णयरागस्स = जो कोई भी हो। जस्स = उसको। णिसिज्जा = गृहस्थ के घर में बैठना। कप्पइ = कल्पता है।

भावार्थ-गृहस्थ के घर में न बैठना यह श्रमण का 16वां आचार है। कभी वृद्धावस्था से आ गई थकान के कारण, रोग के कारण शारीरिक शक्ति क्षीण होने से चक्कर आ जाने से अथवा विकट तप के कारण हुई शारीरिक कमजोरी इन तीन कारणों में से किसी कारण से मजबूरी में आवश्यक हो जाने से कोई साधु गृहस्थ के घर में बैठ जाता है तो वह भगवन्तों की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करता।

वाहिओ वा अरोगी वा, सिणाणं जो उ पत्थए।
वुक्कंतो होइ आचारो, जढो हवइ संजमो ॥61॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

रोगी अथवा निरोगी मुनि, यदि स्नान कभी भी करता है।
आचार भंग होता उसका, संयम से पीछे हटता है॥

अन्वयार्थ-वाहिओ = रोगी। वा = अथवा। अरोगी = निरोग होकर। वा = अथवा। जो उ = जो भी। सिणाणं = स्नान की। पत्थए = इच्छा करता है। आचारो = वह तप-नियम के आचार का। वुक्कंतो = उल्लंघन। होइ = करता है, और। संजमो = उसका संयम। जढो = जड़ (परित्यक्त, मलिन)। हवइ = हो जाता है।

भावार्थ-सतरहवें आचार स्थान में बतलाया गया है कि साधु रोगी हो या निरोग, यदि वह स्नान की इच्छा करता है तो वह आचार-धर्म का उल्लंघन करता है और अपने संयम को दूषित करता है।

संतिमे सुहुमा पाणा, घसासु भिलगासु य।
जे य भिक्खू सिणायंतो, वियडेणुप्पलावए ॥62॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

क्षार और चिकनी मिट्टी में, सूक्ष्म बहुत से प्राणी हैं।
करके स्नान भिक्षु उनको, देते पीड़ा मनमानी हैं॥

अन्वयार्थ-घसासु = पोली। य = और। भिलगासु = दरार वाली भूमि में। संतिमे = ये हैं। सुहुमा = सूक्ष्म। पाणा = कीड़े आदि प्राणी। जे य = और जिनको। सिणायंतो = स्नान करता हुआ। भिक्खू = भिक्षु-साधु। वियडेण = अचित्त जल से। उप्पलावए (उप्पिलावए) = बहा देगा-डुबा देगा।

भावार्थ-साधु यदि स्नान करेगा तो स्नान का गिरा हुआ पानी इधर-उधर बहकर जायेगा, जिससे भूमि की दरार में रहे हुए सूक्ष्म जीव-कीड़ी, मकड़ी आदि उस पानी से बह जायेंगे या मिट्टी में दब जायेंगे जो उनके लिये कष्ट एवं प्राण वध का कारण होगा।

तम्हा ते ण सिणायंति, सीएण-उसिणेण वा।

जावज्जीवं वयं घोरं, असिणाणमहिट्टगा ॥63॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

अतएव न गर्म, शीत जल से, वे स्नान साधु जन करते हैं।

जीवन भर स्नान रहित होकर, दुस्सह व्रत पालन करते हैं॥

अन्वयार्थ-तम्हा = इसलिये। ते = वे निर्ग्रन्थ मुनि। सीएण = शीतल जल। वा = या। उसिणेण = गर्म पानी से। ण सिणायंति = स्नान नहीं करते हैं। जावज्जीवं = जीवन पर्यन्त। असिणाणं = स्नान वर्जन रूप। घोरं = घोर-कठिन। वयं = व्रत के पालन में। अहिट्टगा = टिके रहते हैं।

भावार्थ-पानी में बह जाने से जीवों की हिंसा होती है इसलिये निर्ग्रन्थ मुनि ठण्डे अथवा गर्म जल से स्नान नहीं करते। इस प्रकार जीवन भर के लिये स्नान-वर्जन रूप इस कठोर व्रत के पालन में मुनि अधिष्ठित रहते हैं। यह मुनि का सतरहवां आचार स्थान हुआ।

सिणाणं अदुवा कक्कं, लोद्धं¹ पउमगाणि य।

गायस्सुव्वट्टणट्ठाए, णायरंति कयाइ वि ॥64॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

स्नान योग्य सुगंधित पिष्ट, और लोद्र पद्मकेशर सुरभित।

करने शरीर का संमर्दन, करते हैं श्रमण इन्हें वर्जित॥

अन्वयार्थ-सिणाणं = स्नान। अदुवा = अथवा। कक्कं = चन्दनादि का मिश्रित कल्क। लोद्धं = लोद्र। य = और। पउमगाणि = पद्मकेशर आदि चूर्ण। गायस्सु = शरीर पर। उव्वट्टणट्ठाए = उद्वर्तन (उबटन) करने के लिये। कयाइ = मुनि कभी। वि = भी। णायरंति = उपयोग में नहीं लेते।

1. लुद्धं - पाठान्तर।

भावार्थ—ब्रह्मचारी साधु स्नान तथा शरीर पर मर्दन करने के लिये कल्क, लोध्र, पद्मचूर्ण का कभी भी उपयोग नहीं करते। ब्रह्मचर्य की सुरक्षा के लिये शास्त्र में जहाँ 10 गुप्तियाँ बताई गई हैं वहीं नवमी वाड़ विभूषा-वर्जन को कहा गया है। विभूषा-वर्जन से साधक कामिनियों के लिये आकर्षण का केन्द्र नहीं रहता और बाह्य तप की आराधना भी निर्विघ्न हो जाती है।

**गणिगिस्स वा वि मुंडस्स, दीहरोमणहंसिणो ।
मेहुणा उवसंतस्स, किं विभूसाइ कारियं ॥65॥**

हिन्दी पद्यानुवाद-

नग्न तथा पूरे मुण्डित, हैं केश नखादि बड़े जिनके ।
उपशान्त हुए जो मैथुन से, क्या शोभा से मतलब उनके ॥

अन्वयार्थ—गणिगिस्स = जो अत्यल्प वस्त्र रखने से नग्नवत् हैं। वावि = अथवा। मुंडस्स = द्रव्य-भाव से मुण्डित हैं और। दीहरोमणहंसिणो = जो बड़े हुये नख तथा केश वाले हैं। मेहुणा = मैथुन भाव से। उवसंतस्स = जो उपशान्त हैं, उनको। विभूसाइ = विभूषा यानी तन की सजावट से। किं कारियं = क्या प्रयोजन है ?

भावार्थ—साधु को विभूषा क्यों नहीं करनी, इसके लिये शास्त्रकार उपदेश देते हुए कहते हैं—जो अत्यल्प वस्त्र रखने से नग्नवत् रहते हैं केशलुंचन और राग-वर्जन के कारण द्रव्य-भाव से मुण्डित हैं तथा जो बड़े हुये केशवाले हैं और मैथुन विषय भोगादि से उपशान्त हैं, उनको विभूषा से क्या प्रयोजन है ?

**विभूसावत्तियं भिक्खू, कम्मं बंधइ चिक्कणं ।
संसारसायरे घोरे, जेणं पडइ दुरुत्तरे ॥66॥**

हिन्दी पद्यानुवाद-

तन की शोभा के हेतु भिक्षु, दुश्छेद्य कर्म बन्धन करता ।
दुस्तर घोर भवाब्धि मध्य, उस कारण से आकर पड़ता ॥

अन्वयार्थ—विभूसावत्तियं = विभूषा के निमित्त से। भिक्खू = साधु। चिक्कणं = चिकने-निकाचित। कम्मं = कर्मों का। बंधइ = बन्ध करता है। जेणं = जिससे जीव। दुरुत्तरे = कठिनाई से पार करने योग्य। घोरे = घोर-भयंकर। संसारसायरे = संसार सागर में। पडइ = गिर जाता है।

भावार्थ—जैन साधु राग-विजय का पथिक है विभूषा करने से उसमें काम राग की वृद्धि होती है, अपने रूप लावण्य और कान्ति का मोह उत्पन्न होता है, जिससे चिकने कर्मों का बन्ध होता है। कर्म से भारी बनी आत्मा दुस्तर-भयंकर संसार-सागर में गिरकर जन्म-मरण करती रहती है।

विभूसावत्तियं चेयं, बुद्धा मण्णंति तारिसं ।
सावज्जबहुलं चेयं, णेयं ताईहिं सेवियं ॥६७॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

शोभा की इच्छा जिस मन में, प्रभु ने उसको वैसा माना ।

शोभा है पाप बहुल जग में, मुनि ने सेवन गर्हित जाना ॥

अन्वयार्थ-बुद्धा = ज्ञानवान् । विभूसावत्तियं = शरीर की शोभा या विभूषा के निमित्त से होने वाले । चेयं = उस कार्य को । तारिसं = वैसा चिकना, बन्ध वाला । मण्णंति = मानते हैं । चेयं = और ऐसा । एयं सावज्जबहुलं = इस पाप की बहुलता वाले विभूषा कार्य को । ताईहिं = षट्काय के रक्षक मुनियों ने । ण सेवियं = कभी सेवन नहीं किया है ।

भावार्थ-बुद्धिमान् साधु शरीर की शोभा के निमित्त से होने वाली विभूषा को रागवर्द्धक होने से चिकने बन्ध का कारण मानकर षट्काय की रक्षार्थ, पाप की बहुलता वाले इस विभूषा कार्य का कभी आचरण नहीं करते हैं ।

खवंति अप्पाणममोहदंसिणो, तवे रया संजम अज्जवे गुणे ।
धुणंति पावाइं पुरेकडाइं, णवाइं पावाइं ण ते करंति ॥६८॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

तप संयम आर्जव गुण में रत, मोक्षार्थी दोष नष्ट करता ।

पहले के पाप खपा करके, वह नूतन पाप नहीं करता ॥

अन्वयार्थ-अमोहदंसिणो = निर्मोह भाव से तत्त्व का दर्शन करने वाले । अप्पाणं = कर्मण शरीर या कषाय आत्मा का । खवंति (खर्वेति) = क्षय करते हैं । तवे संजम = तप में तथा सतरह प्रकार के संयम में । अज्जवे गुणे = और आर्जव भाव आदि गुणों में । रया = रमण करने वाले । पुरेकडाइं पावाइं = पूर्वकृत पाप कर्मों का । धुणंति = क्षय करते हैं और । णवाइं = नवीन । पावाइं = पाप कर्मों का । ते = वे । ण करंति = बन्ध नहीं करते ।

भावार्थ-निर्मोह भाव से तत्त्व का दर्शन करने वाले मुनि, कर्मण शरीर एवं कषाय आत्मा को क्षीण करते हैं, तप में रमण करने वाले, संयम और आर्जव भाव आदि गुणों से युक्त साधक-पूर्वकृत पापकर्मों का क्षय करते हैं और मोह-विजय के कारण नवीन पाप कर्मों का बन्ध नहीं करते हैं ।

सओवसंता अममा अकिंचणा, सविज्जविज्जाणुगया जसंसिणो ।
 उउप्पसण्णे विमले व चंदिमा, सिद्धिं विमाणाइं उवेंति¹ ताइणो ॥69॥
 त्ति बेमि ॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

उपशान्त परिग्रह मोह रहित, आत्मज्ञ ज्ञान युक्त यशकामी ।
 स्वच्छ शरद् के विमल चन्द्रवत्, जाते विमान शिवपद स्वामी ॥

अन्वयार्थ-अठारह प्रकार के आचार की साधना करने वाले । सओवसंता = सदा उपशान्त ।
 अममा = ममता रहित । अकिंचणा = और अपरिग्रही । सविज्जविज्जाणुगया = आत्म-विद्या के
 ज्ञान का अनुगमन करने वाले । जसंसिणो = यशस्वी पुरुष । उउप्पसण्णे = शरद्काल की निर्मल स्वच्छ
 ऋतु में । विमले व = विमल तथा । चंदिमा = चन्द्र की तरह । ताइणो = षट्काय के रक्षक मुनि ।
 सिद्धिं = सिद्ध गति । विमाणाइं = या वैमानिक देव के पद को । उवेंति = प्राप्त करते हैं । त्ति बेमि =
 ऐसा मैं कहता हूँ ।

भावार्थ-पूर्व कथित 18 आचार-धर्मों की निर्दोष आराधना करने वाले वे सदा उपशान्त, ममत्वरहित
 और अपरिग्रही मुनि, आत्म-विद्या के ज्ञान पर चलने वाले, षट्काय के रक्षक यशस्वी पुरुष, कर्म मल को दूर
 कर शरद्काल की निर्मल (स्वच्छ) ऋतु में विमल चन्द्र के समान सिद्धि पद को या वैमानिक देव के भव को
 प्राप्त करते हैं-ऐसा मैं कहता हूँ ।

1. उवेंति - पाठान्तर ।

॥ छठा अध्ययन समाप्त ॥



सातवाँ अध्ययन

वक्क सुद्धि (वाक्य शुद्धि)

उपक्रम

छठे अध्ययन में आचार कथा का वर्णन किया गया। वह आचार-धर्म वचन शुद्धि के बिना पूर्ण नहीं होता। क्योंकि मृषावाद विरमण आचार-धर्म का मुख्य अंग होने से उसके लिये वचन-शुद्धि एवं वाच्य-अवाच्य का ज्ञान आवश्यक है।

इस सप्तम अध्ययन में वाक्य-शुद्धि (वचन-शुद्धि) का वर्णन किया जायेगा। सत्यव्रती कैसी भाषा बोले अथवा कैसी नहीं, जिससे कि उसका सत्य व्रत निर्मल रह सके, इस दृष्टि से इस अध्ययन में वर्णित चार प्रकार की भाषाओं में से असत्य और मिश्र को छोड़कर सत्य एवं व्यवहार भाषा का ही वह प्रयोग करे। सत्य भी सावद्य और पर पीड़ाकारी हो तो वैसा सत्यवचन भी नहीं बोले। कहा गया है कि “जा य सच्चा अवत्तव्वा, सच्चामोसा य जा मुसा। जा य बुद्धेहिऽणाइन्ना, न तं भासेज्ज पण्णवं।”

अर्थात् जो भाषा सत्य होकर भी अवक्तव्य यानी प्रकट करने योग्य नहीं है और जो मिश्र तथा मिथ्या है, जो ज्ञानियों द्वारा अनाचीर्ण है, वैसी भाषा सत्यव्रती नहीं बोले। तब कैसी भाषा बोले तो बताया गया है कि साधु सत्य भाषा, व्यवहार भाषा और पापरहित, कोमल और जो सन्देह रहित हो, आवश्यक होने पर वैसी भाषा का प्रयोग करे। इस प्रकार प्रस्तुत अध्ययन में बोलने का निषेध भी है और विधान भी। अवाच्य वचन नहीं बोलने से गुप्ति का आराधन होता है। जबकि शास्त्र विहित वचन बोलने से समिति का भी पालन होता है। जो स्व-पर दोनों के लिये लाभकारी है। स्त्री-पुरुष और दृष्टि में आने वाले भवन एवं वनादि को देखकर साधु कैसी भाषा का प्रयोग करे और किसको किन शब्दों में पुकारे, प्रस्तुत अध्ययन में इसका भी सरल और स्पष्ट भाषा में प्रतिपादन किया गया है। पूर्वाचार्यों की परम्परा के अनुसार यह अध्ययन सत्य प्रवाद नामक पूर्व से उद्धृत किया गया है। बोलने से पहले सत्यव्रती को ‘क्या बोलना’ चाहिये, इसका विचार कर लेना चाहिये। आचार्य हरिभद्र के अनुसार जिसको सावद्य और निरवद्य वचन का भेद ज्ञात नहीं, उसका बोलना भी उचित नहीं। फिर उसके द्वारा देशना देने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। निर्युक्तिकार ने विवेकपूर्ण बोलने को भी मौन की तरह तप कहा है, जैसे- “वयण-विभत्ती-कुसलो वओगयं बहुविहं वियाणंतो। दिवसंपि भासमाणो

तहावि वयगुत्तयं पत्तो ।” अर्थात् वचन के वाच्य-अवाच्य आदि विविध प्रकारों को जानने वाला वचन-विभाग में कुशल मुनि यदि दिन भर भी बोले तो उसे भी वचन गुप्ति को प्राप्त हुआ समझना चाहिये ।

श्रमण के आचार-धर्म में वाक्य-शुद्धि का प्रमुख स्थान है । श्रमणाचार का शुद्ध पालन और प्रतिपादन वही कर सकेगा जिसको भाषा शुद्धि का पूर्ण ज्ञान होगा । इसलिये सप्तम अध्ययन में भाषा शुद्धि का कथन किया जाता है-

**चउण्हं खलु भासाणं, परिसंखाय पण्णवं ।
दुण्हं तु विणयं सिक्खे, दो न भासिज्ज सव्वसो ॥१॥**

हिन्दी पद्यानुवाद-

निश्चय से चारों भाषा के, मुनि प्राज्ञ स्वरूप अवगत करके ।
दो से शुद्ध विनय सीखें, दो बोले नहीं भूल करके ॥

अन्वयार्थ-पण्णवं = प्रज्ञावान् मुनि । चउण्हं = सत्य भाषा, असत्य भाषा, मिश्र भाषा और व्यवहार भाषा इन चार । भासाणं = भाषाओं का । खलु = निश्चय । परिसंखाय = ज्ञान करके । दुण्हंतु (दोण्हंतु) = दो सत्य और व्यवहार भाषाओं को तो । विणयं = विनय से । सिक्खे = सीखे और । दो = मिश्र तथा असत्य दो भाषाओं को । सव्वसो = सर्वथा । न = नहीं । भासिज्ज = बोले ।

भावार्थ-संयमी पुरुष के लिये भाषा का विवेक रखना बहुत आवश्यक है । भाषा के मुख्य चार प्रकार हैं-1. सत्यभाषा, 2. असत्यभाषा, 3. मिश्रभाषा और 4. व्यवहार भाषा । फिर प्रत्येक के अलग-अलग भेद बतलाये गये हैं । आचारांग और प्रश्नव्याकरण सूत्र में भाषा के वाच्य-अवाच्य का बहुत विस्तार से वर्णन किया गया है । साधु को सत्य और व्यवहार इन दो भाषाओं में ही संभाषण करना चाहिये । असत्य और मिश्रवचन उसके लिये सदा वर्जनीय कहे गये हैं । संयमी असत्य के समान जो पीड़ाकारी हो वैसी सत्य भाषा भी नहीं बोले । उसको कैसी भाषा बोलनी चाहिये और कैसी नहीं बोलनी चाहिये इसका विचार किया जाता है ।

**जा य सच्चा अवत्तव्वा, सच्चामोसा य जा मुसा ।
जा य बुद्धेहिंणाइन्ना¹, न तं भासिज्ज पण्णवं ॥२॥**

हिन्दी पद्यानुवाद-

जो सत्य मगर हो अवक्तव्य, मिथ्या या सत्य झूठ मिश्रित ।
जिनवर से जो है अननुज्ञात, बोले न प्राज्ञ कर दे वर्जित ॥

1. नाइण्णा, नाइन्ना - पाठान्तर ।

अन्वयार्थ-जा = जो भाषा । **सच्चा** = सत्य होकर भी । **अवत्तव्वा** = अवक्तव्य (सावद्य होने से बोलने योग्य नहीं) है । **य** = और जो । **सच्चामोसा** = मिश्र । **य जा** = जो फिर । **मुसा** = मृषा भाषा है । **जा य** = फिर जो । **बुद्धेहिं** = ज्ञानियों के द्वारा । **अणाइन्ना (अणाइण्णा)** = अनाचीर्ण निषिद्ध कही गई है । **तं** = उस भाषा को । **पण्णवं** = बुद्धिमान साधु । **न भासिज्ज (भासेज्ज)** = नहीं बोले ।

भावार्थ-जो भाषा सत्य होकर भी अप्रिय तथा मर्मकारी होने से अवक्तव्य है, फिर जो भाषा मिश्र और मिथ्या है, वस्तु का विपरीत रूप से कथन करने वाली है तथा जिस भाषा का तीर्थङ्कर और गणधरों ने सेवन नहीं किया, किन्तु अवाच्य कहा है, उस भाषा का मतिमान को सदैव वर्जन करना चाहिये । सत्य और असत्य मिश्रित हो, उसे मिश्र कहते हैं । जीव मिश्र, अजीव मिश्र, अनन्त मिश्र, परित्त मिश्र आदि मिश्र के भेद हैं । पत्र आदि सहित को अनन्तकाय कहना अनन्त मिश्र है । ऐसे ही आमन्त्रणी 1, आज्ञापनी 2, याचनी 3, पुच्छणी 4, प्रज्ञापनी 5 आदि भाषा के अनेक प्रकार हैं ।

असच्चमोसं सच्चं च, अणवज्जमकक्कसं ।

समुप्पेहमसंदिद्धं, गिरं भासिज्ज पण्णवं ।।3।।

हिन्दी पद्यानुवाद-

व्यवहार सत्य भाषा को भी, प्रिय हितकर बना प्राज्ञ बोलें ।

गुण दोषों का करके विचार, सन्देह रहित भाषा बोलें ॥

अन्वयार्थ-पण्णवं = बुद्धिमान साधु कैसी भाषा बोले तो कहा । **असच्चमोसं** = व्यवहार भाषा लोक व्यवहार में प्रचलित भाषा । **च** = और । **सच्चं** = सत्य भाषा । **अणवज्जं** = जो दोष रहित हो । **अकक्कसं** = कोमल और मधुर हो । **गिरं** = वैसी भाषा । **समुप्पेहं** = अच्छी तरह सोचकर । **असंदिद्धं** = सन्देह रहित । **भासिज्ज (भासेज्ज)** = बोले ।

भावार्थ-बुद्धिमान् साधु ऐसी भाषा बोले जो लोक व्यवहार में प्रचलित और सत्य हो । दूषित भाषा अगर सत्य भी हो तो साधु नहीं बोले । वे सदा निर्दोष और मधुर वचन, भले बुरे का विचार कर सन्देह रहित-स्पष्ट रूप से समझ में आवे ऐसी भाषा बोले ।

‘सत्यं ब्रूयात्, प्रियं ब्रूयात्, मा ब्रूयात् सत्यमप्रियम् ।’ सन्त इस उक्ति का पालन करते हैं । समुप्पेहं यानी पहले बुद्धि से सोचकर फिर बोलना चाहिये । जैसे-अन्धा पुरुष आगे चलने वाले का अनुसरण करता है, वैसे ही बुद्धि के अनुसार वचन की प्रवृत्ति होनी चाहिये । जैसे कि निर्युक्ति में कहा है-

पुव्वं बुद्धीइ पेहित्ता, पच्छा वयमुदाहरे ।

अचक्खुओ व नेतारं, बुद्धिमन्नेउ ते गिरा ॥292॥

एयं च अट्टमण्णं वा, जं तु नामेइ सासयं ।
स भासं सच्चमोसं पि, तं पि धीरो विवज्जए ॥४॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

पूर्वोक्त अन्य दोषों वाली, जो शाश्वत पद से दूर करे ।
ऐसी न मिश्र भाषा का भी, मुनि धीर कभी व्यवहार करे ॥

अन्वयार्थ-एयं च = और सावद्य और कर्कशता वाले इस । अट्टं = अर्थ को । वा = अथवा ऐसे ।
अण्णं = अन्य अर्थ को । जं तु = जो । सासयं = शाश्वत मोक्ष को । नामेइ = प्रतिकूल या बाधक है । स
= वह साधु । सच्चमोसंपि = सत्यामृषा-मिश्र भी । भासं = दोष युक्त सत्य को । तं पि = उसका भी ।
धीरो = धैर्यवान् बुद्धिमान् साधु । विवज्जए = वर्जन करे ।

भावार्थ-बुद्धिमान् एवं धीर साधु सावद्य एवं कठोरता वाले इस वचन को अथवा इस प्रकार का
अन्य भी वचन जो शाश्वत मोक्ष का बाधक है, वह मिश्र हो या अप्रिय सत्य हो उसका धीर साधक वर्जन कर
दे । कभी ऐसी भाषा नहीं बोले ।

वितहंपि तहा मुत्तिं, जं गिरं भासए नरो ।
तम्हा सो पुट्ठो पावेणं, किं पुण जो मुसं वए ॥५॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

कल्पित असत्य मूर्ति जैसी, जिस भाषा को कोई बोले ।
उससे वह पाप बंध करता, फिर क्या? जो साफ झूठ बोले ॥

अन्वयार्थ-वि तहं पि = असत्य भी । तहामुत्तिं = जो बाह्य वेश से सत्य आकार एवं स्वरूप
वाली लगती हो । जं = जिस । गिरं = भाषा को । नरो = व्रती पुरुष । भासए = बोलता है । तम्हा = उस
वचन को बोलने से । सो = वह वक्ता । पावेणं = पाप कर्म से । पुट्ठो = स्पष्ट होता है । पुण (पुणं) =
फिर । जो = जो व्यक्ति । मुसं = स्पष्ट झूठ बोलता है । किं वए = उसका तो कहना ही क्या ।

भावार्थ-जो सत्य के आकार वाला भी झूठ वचन कोई बोलता है, तो उस वचन को बोलने में वक्ता
पाप कर्म से स्पष्ट होता है । जैसे-स्त्री वेष में स्थित किसी पुरुष को कोई यह कहे कि यह महिला आ रही है,
गा रही है आदि । ऐसे वचन बोलते हुए वक्ता पाप कर्म का बन्ध कर लेता है । तब जो साक्षात् झूठ वचन
बोलता है, उसके पाप बन्ध में तो शंका ही क्या है ?

तम्हा गच्छामो वक्खामो, अमुगं वा णे भविस्सइ ।
अहं वा णं करिस्सामि, एसो वा णं करिस्सइ ॥६॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

अतः वहाँ जाऊँगा उसको, बोलूँगा अमुक कार्य होगा ।

अथवा मैं कार्य करूँगा वह, या वह मुनि ऐसा कर लेगा ॥

अन्वयार्थ-सत्य के आकार वाला भी मृषा वचन बन्ध का कारण होता है-तम्हा = इसलिये । गच्छामो = हम कल जाएँगे ही । वक्खामो = बोलेंगे ही । वा = अथवा । अमुगं णे = अमुक कार्य । भविस्सइ (भविस्सई) = हमारा होगा ही । वा णं = अथवा । अहं = मैं । करिस्सामि = उस कार्य को करूँगा ही । वा णं = अथवा । एसो = यह उस कार्य को । करिस्सइ (करिस्सई) = अवश्य करेगा ही ।

एवमाइ उ जा भासा, एस कालम्मि संकिया ।

संपयाईअमट्टे वा, तं पि धीरो विवज्जए ॥७॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

भूत भविष्यत् वर्तमान में, सन्देह भरी जो भी भाषा ।

मुनि धीर त्याग दे उसको भी, जो भी होए व्यवहृत भाषा ॥

अन्वयार्थ-एवमाइउ = इस प्रकार की । जा = जो । भासा = भाषाएँ । एस कालम्मि = भविष्य काल के लिये । संकिया = शंकाजनक हो । वा = अथवा । संपयाईअमट्टे = वर्तमान तथा भूतकाल का अर्थ शंका युक्त हो । धीरो = धीर पुरुष । तं पि = ऐसा वचन भी । विवज्जए = नहीं बोले ।

भावार्थ-(गाथा 6 तथा 7) सत्य के आकार वाला कथन भी पाप-बन्ध का कारण होता है । इस लिये हम कल जायेंगे ही, अगले दिन व्याख्यान करेंगे ही अथवा यह कार्य होगा ही, मैं उस कार्य को करूँगा ही अथवा वह इस कार्य को अवश्य करेगा ही, इस प्रकार भविष्य काल में जो शंका जनक हो अथवा वर्तमान और भूत में जिसका अर्थ शंकित हो, धीर पुरुष को ऐसा वचन नहीं बोलना चाहिये । निश्चयकारी भाषा बोलने में भविष्य में वैसा नहीं होने पर लोक में हँसी और स्वयं के मन में खेद तथा आकुलता उत्पन्न होती है । अतः सत्यव्रती को ऐसे निश्चयकारी वचन नहीं बोलने चाहिये ।

अइयम्मि य कालम्मि, पच्चुप्पणमणागए ।

जमट्टं तु न जाणिज्जा, एवमेयं ति नो वए ॥८॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

भूत भविष्यत् वर्तमान का, हो जिसका कुछ ज्ञान नहीं ।

उस अनजाने के बारे में, निश्चय की भाषा कहे नहीं ॥

अन्वयार्थ-अइयम्मि (अईयम्मि) = बीते हुए। कालम्मि = काल में। य = और। पच्चुप्पण्णं = वर्तमान तथा। अणागए = भविष्य काल की। जमट्ठं = जिस वस्तु को अच्छी तरह। न = नहीं। जाणिज्जा = जाने। तु = उस विषय में। ति = ऐसा ही है। एवमेयं = इस प्रकार। नो वए = निश्चयकारी भाषा नहीं बोले।

भावार्थ-साधु की भाषा बहुत महत्वपूर्ण और प्रामाणिक होती है। अतः उसको इतना ही बोलना चाहिये जो वस्तुतः यथार्थ हो। भूत, भविष्य अथवा वर्तमान काल के जिस पदार्थ को वह यथावत् नहीं जाने, उस सम्बन्ध में कोई निर्णायक बात नहीं कहे। इतना ही कहे कि ऐसा देखा, सुना या पढ़ा है, निश्चय में जैसा अतिशय ज्ञानी ने कहा है या कहेंगे, वही प्रमाण है।

अइयम्मि य कालम्मि, पच्चुप्पण्णमणागए ।
जत्थ संका भवे तं तु, एवमेयं ति नो वए ॥९॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

भूत भविष्यत् वर्तमान में, हो संशय उत्पन्न कहीं ।
उसके लिये कभी भी पर को, निश्चय भाषा कहे नहीं ॥

अन्वयार्थ-अइयम्मि (अईयम्मि) = बीते हुए। कालम्मि = काल में। य = और। पच्चुप्पण्णं = वर्तमान अथवा। अणागए = भविष्य काल में। जत्थ = जिस विषय में। संका = शंका। भवे = हो। तं तु = उस विषय में। ति = ऐसा ही है। एवमेयं = इस प्रकार। नो वए = नहीं बोले।

भावार्थ-भूतकाल में जो हो चुका है एवं वर्तमान और भविष्यकाल में भी जिस वस्तु अथवा घटना के सम्बन्ध में शंका हो, उसके सम्बन्ध में यह ऐसा ही है, इस तरह अवधारिणी भाषा नहीं बोलनी चाहिये। भूतकाल के आचार्यों ने अपने ग्रन्थों में जो बात कही है, जब तक उस विषय में उनका दृष्टिकोण सही नहीं समझ लिया जाय तब तक निश्चयात्मक रूप से कुछ कहने से वह कथन मतभेद का कारण हो जाता है। इसलिये विवेकी पुरुषों को आग्रह पूर्ण भाषा का प्रयोग नहीं करना चाहिये।

अइयम्मि य कालम्मि, पच्चुप्पण्णमणागए ।
निस्संकिंयं भवे जं तु, एवमेयं ति निद्दिसे ॥१०॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

भूत भविष्यत् वर्तमान में, हो यदि ज्ञान पूर्ण निश्चित ।
उसके बारे में ऐसा है, कहना मुनिजन को है समुचित ॥

अन्वयार्थ-अइयम्मि (अईयम्मि) = बीते हुए । **कालम्मि =** काल में । **य =** और । **पच्चुप्पणं =** वर्तमान तथा । **अणागए =** भविष्यकाल में । **जं =** जो अर्थ या घटना । **निस्संकिंयं =** शंका रहित । **भवे =** हो । **तु =** तो । **ति =** ऐसा ही है । **एवमेयं =** यह निर्णायक भाषा । **निहिसे =** बोलनी चाहिये ।

भावार्थ-भाषा के आग्रह पूर्ण लेखन-पठन और संभाषण ही धार्मिक सम्प्रदायों में परस्पर टकराहट के कारण होते हैं । अतः शास्त्रकारों ने कहा है कि जिस विषय को यथावत् नहीं जानो अथवा जिस बात के लिये शंका हो, वह ऐसा ही है, इस प्रकार एकान्त लेखन या भाषण मत करो । भूत, भविष्य और वर्तमान कालीन जिस घटना अथवा वस्तु के सम्बन्ध में प्रमाण पूर्वक जानकारी होकर मन शंका रहित हो, तभी उस विषय में निश्चयात्मक कथन करो-अन्यथा नहीं ।

तहेव फरुसा भासा, गुरुभूओवघाइणी ।

सच्चा वि सा न वत्तव्वा, जओ पावस्स आगमो ॥11॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

वैसे ही भाषा कठोर, बहुजीव-घातिनी होती है ।

वह सत्य मगर वक्तव्य नहीं, जो पापवर्द्धिनी होती है ॥

अन्वयार्थ-तहेव = मृषा और निश्चयकारिणी भाषा के समान । **भासा =** जो भाषा । **फरुसा =** कठोर और । **गुरुभूओवघाइणी =** बहुत से जीवों को कष्ट पहुँचाने वाली है । **वि सा =** वह । **सच्चा =** सत्य भाषा भी । **न वत्तव्वा =** बोलने योग्य नहीं है । **जओ =** क्योंकि उससे । **पावस्स =** पाप का । **आगमो =** संचय होता है ।

भावार्थ-पूर्वोक्त सदोष भाषा की तरह जो कठोर भाषा बहुत से जीवों का उपमर्दन करने वाली हो, वैसी भाषा सत्य होकर भी बोलने योग्य नहीं होती, क्योंकि उससे पापकर्म का बन्ध होता है । कठोर भाषा से परस्पर का प्रेम भंग हो जाता है और कुल, जाति एवं संघ में वात्सल्य की वृद्धि में कमी आती है ।

तहेव काणं काणे त्ति¹, पंडगं, पंडगे² त्ति वा ।

वाहियं वा वि रोगि त्ति, तेणं चोरेत्ति³ णो वए ॥12॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

ऐसे ही काणे को काणा, नामर्द नपुंसक को कहना ।

रोगी को रोगी, तस्कर को, है तस्कर नहीं उचित कहना ॥

1. काणत्ति

2. पंडगत्ति - पाठान्तर

3. चोरत्ति ।

अन्वयार्थ-तहेव = कठोर भाषा की तरह ही। काणं = काणे को। काणे त्ति = काणा है। वा = अथवा। पंडगं = हिंजड़े को। पंडगे त्ति = हिंजड़ा है। वा वि = तथा। वाहियं = रोगी को। रोगित्ति = रोगी है। तेणं = चोर को। चोरे = चोर है। त्ति णो वए = ऐसा भी नहीं कहे।

भावार्थ-व्रती के लिये सत्य भाषा का कथन भी, जो पीड़ाकारी और अप्रिय हो, वर्जित किया गया है। कहा है कि काणे को काणा, पंडग को पंडग, रोगी को रोगी, चोर को चोर और अन्धे को अन्धा ऐसा अप्रिय वचन नहीं बोले। जैसे-अन्धे को सूरदास कहने से काम निकलता है और उसे अप्रिय भी नहीं लगता है तो व्रती ऐसे कटु एवं पीड़ाकारी सत्य को भी बड़े प्रियकारी ढंग से बोले, इसी में उसकी कुशलता है।

एएण अन्नेण अट्टेण, परो जेणुवहम्मइ ।
आयारभावदोसण्णू, न तं भासिज्ज पण्णवं ॥13॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

ऐसे ही अन्य तदर्थों से, जो पर हित में पीड़ाकारी।

आचार भाव-दोषज्ञ प्राज्ञ, ना बोले वैसा दुःखकारी ॥

अन्वयार्थ-आयारभावदोसण्णू = आचार भाव के दोष को जानने वाला। पण्णवं (पन्नवं) = बुद्धिमान् साधु। एएण = पूर्वोक्त अर्थ से। अन्नेण = ऐसे ही अन्य। अट्टेण = अर्थ से। जेण = जिसके द्वारा। परो = सुनने वाला। उवहम्मइ = कष्ट प्राप्त करे। तं = ऐसे वचन। न भासिज्ज (भासेज्ज) = नहीं बोले।

भावार्थ-साध्वाचार के दोष को जानने वाला प्रज्ञावान् मुनि इस प्रकार के या अन्य प्रकार के शब्दों से जिनसे सुनने वाले का मन कष्ट अनुभव करे वैसे शब्द, वैसी बात, वैसी वाणी अथवा वैसे पीड़ाकारी वचन कभी नहीं बोले।

तहेव होले गोलेत्ति, साणे वा वसुले त्ति य ।
दमए दुहए वा वि, नेवं भासिज्ज पण्णवं ॥14॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

अरे ! दुराचारी जारज ! श्वान गरीब नीच निष्ठुर।

तथा अभागे आदि वचन, ना कहे प्राज्ञ जो हो न मधुर ॥

अन्वयार्थ-तहेव = ऐसे ही। पण्णवं = बुद्धिमान् साधु। होले = किसी को हे ! होल। गोले (गोलि) = हे ! लंपट। त्ति = ऐसे। वा = अथवा। साणे = हे ! कुत्ता। य = और। त्ति = ऐसे ही। वसुले

(वसुलि) = हे ! दुराचारी । दमए = हे ! कंगाल । वावि = अथवा । दुहए = हे ! भाग्यहीन । एवं = इस प्रकार के शब्दों से । न भासिज्ज (भासेज्ज) = सम्बोधित नहीं करे, ऐसे शब्द न बोले ।

भावार्थ—ऐसे ही बुद्धिमान् साधु किसी को हल्के शब्दों से जैसे—हे होल, हे लंपट, हे कुत्ते, हे लुच्चे, हे कंगाल, हे अभागे, आदि अपशब्दों से सम्बोधित न करे । किसी को ऐसे कड़वे मर्मभेदी वचन बोलना सत्य महाव्रती को शोभा नहीं देता । लोक में कहावत है कि साधु की परीक्षा शब्दों से होती है । पुराने समय की घटना है कि एक गाँव में शीत ऋतु के समय एक चक्षुहीन सन्त धूप में बैठे थे । उधर से ठाकुर की सवारी निकली । आगे छड़ी लेकर दरोगा जा रहा था । उसने कहा—“आन्धा ! राम-राम ।” बाबा ने कहा—“गोला राम-राम ।” पीछे कामदार आया । उसने बाबाजी को आन्धा नहीं बोलकर कहा—“सूरदास ! राम राम ।” बाबाजी ने कहा—“कामदार राम-राम ।” फिर दीवानजी का घोड़ा निकला, उसने कहा—“सूरदासजी ! राम-राम ।” बाबाजी ने उत्तर में कहा—“दीवान जी ! राम-राम ।” जब ठाकुर सा. आये तो उन्होंने कहा—“सूरदास जी महाराज ! राम-राम ।” सूरदास बोले—“ठाकुर साहब ! राम-राम ।” ठाकुर ने पूछा—“महाराज ! आपके आँखें नहीं हैं, फिर भी आपने सबको पहचाना कैसे ?” सूरदासजी बोले—“मैंने उनकी अलग-अलग बोली से पहचाना कि ये कौन-कौन हैं ।”

अज्जिए पज्जिए वा वि, अम्मो माउस्सिय त्ति य ।

पिउस्सिए भायणिज्ज त्ति, धूए णत्तुणिए त्ति य ॥15॥

हिन्दी पद्यानुवाद—

हे दादी ! या परदादी, हे परनानी माँ मौसी होती ।

यह भाषा मुनि को कल्प्य नहीं, भाणजी भुआ दोहिती पोती ॥

अन्वयार्थ—अज्जिए = हे, आर्थिक (दादी) । पज्जिए = हे नानी, हे परदादी । वा वि = अथवा । अम्मो = हे माँ । माउस्सियत्ति (माउसिय त्ति) = हे मौसी । य = और । पिउस्सिए = हे भुआ । भायणिज्ज (भाइणेज्ज) = हे भाणजी । त्ति = इसी तरह । धूए = हे बेटी । य = और । णत्तुणिएत्ति (णत्तुणिअ त्ति) = हे दोहिती ! इस प्रकार संसार के इन सम्बोधनों या सम्बन्धों से किसी को न बुलावे ।

भावार्थ—साधु को मोह बढ़ाने वाले और हल्के अप्रिय शब्दों से भी किसी स्त्री को सम्बोधित नहीं करना चाहिये । जैसे—दादी, नानी, परदादी, परनानी, माँ, मौसी, भानजी, बेटी, पोती, दोहिती आदि । ऐसे शब्द मोह बढ़ाने वाले होने से साधु के लिए वर्जित कहे गये हैं ।

हले हल्लित्ति अण्णित्ति, भट्टे सामिणि गोमिणि ।

होले गोले वसुलित्ति, इत्थियं णेवमालवे ॥16॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

हे सखि ! अन्ने ! भट्टे ! स्वामिनि !, हे गोमिनि ! से प्रिय आमन्त्रण ।

हे होले ! हे गोले ! वसुलि ! यों न नारी को कहे श्रमण ॥

अन्वयार्थ-हले = हे हले । हल्लित्ति (हलित्ति हलेत्ति) = हे सखि । अण्णित्ति (अन्नेत्ति) = हे अण्णे । भट्टे = हे भट्टे । सामिणि = हे स्वामिनी । गोमिणि = हे गोमिनी । होले = हे मूर्ख । गोले = हे गोली । वसुलित्ति (वसुलेत्ति) = हे दुश्शीले । एवं = ऐसे शब्दों से । इत्थियं = स्त्री को । ण आलवे = नहीं पुकारे ।

भावार्थ-ऐसे ही हल्के शब्दों से बोलना भी उचित नहीं कहा जाता है । जैसे-हे हले, हे अन्ने, हे भट्टे, हे स्वामिनी, हे गोमिनी, हे गोले, हे वसुलि आदि । साधु ऐसे शब्दों से स्त्री को सम्बोधित नहीं करे ।

णामधिज्जेण णं बूया, इत्थीगुत्तेण वा पुणो ।

जहारिहमभिगिज्झ, आलविज्ज लविज्ज वा ॥17॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

ले नारी का नाम गोत्र से, उच्चारण करके बोले ।

यथायोग्य गुणपूर्वक चाहे, एक अनेक बार बोले ॥

अन्वयार्थ-णं = उस स्त्री को । णामधिज्जेण = नाम से । बूया = बोले । वा = अथवा । पुणो = फिर । इत्थीगुत्तेण (इत्थीगोत्तेण) = स्त्री के गोत्र से । जहारिहमभिगिज्झ = यथायोग्य गुणों को ग्रहण करके । आलविज्ज (आलवेज्ज) = एक बार बोले । वा = या । लविज्ज (लवेज्ज) = अनेक बार बोले ।

भावार्थ-साधु को स्त्री से कभी बोलना हो, तो नाम से अथवा स्त्री के गोत्र से उसे सम्बोधित करे । यथायोग्य वृद्ध हो तो-माँजी, श्राविका, सम्पन्न घर की हो तो सेठानी, मास्टरनीजी, तपसणजी आदि गुणों के अनुसार सम्बोधित करे ।

अज्जए पज्जए वा वि, वप्पो चुल्लपिउ त्ति य ।

माउलो भाइणिज्ज त्ति, पुत्ते णत्तुणिय त्ति य ॥18॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

हे दादा ! नाना ! परदादा ! परनाना ! और पिता ! काका !

मामा ! भाणेज ! पुत्र ! पोता ! दौहित्र ! न कहना मुनिजन का ॥

अन्वयार्थ-अजए = हे दादा । पजए = हे परदादा । वा वि = अथवा । वप्पो = हे पिताजी । चुल्लपिउ = हे चाचाजी । त्ति य = और फिर । माउलो = हे मातुल । भाइणिज्ज (भाईणेज्ज) = हे भानजे । त्ति = ऐसे ही । पुत्ते = हे पुत्र । य = और । णत्तु णिय त्ति = हे दौहित्र, हे पौत्र, इस प्रकार के सांसारिक सम्बन्ध के शब्दों से न पुकारे ।

भावार्थ-साधु संसार के संयोग सम्बन्धों को त्याग चुका है । अतः वह बाप, दादा, परदादा, नाना, चाचा, बाबा, भाई, मामा, पुत्र, मित्र, दौहित्र आदि सम्बन्धों से किसी को पुकारेगा-तो मोह भाव की जागृति का होना सम्भव है । फिर सुनने वाले भी सम्बन्ध सुनकर राग करेंगे । इसलिये आत्मारथी सन्त उनको संसारी सम्बन्ध अथवा हल्के नामों से नहीं पुकारे । किन्तु सामान्य भाई बहन अथवा श्रावक के नाम से पुकारे, यही अधिक हितकर है ।

हे भो हलित्ति, अण्णित्ति, भट्टे सामिय गोमिए ।

होल गोल वसुलित्ति, पुरिसं णेवमालवे ॥19॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

हे भो, हल और अन्न भट्टा, हे गोमिक होल गोल स्वामी ।

मुनि के लिये वसूल आदि, नर को कहना न उचित कभी ॥

अन्वयार्थ-हे भो (हो) हलित्ति (हलेत्ति) = हे हले । अण्णित्ति (अण्णेत्ति) = हे अन्ने । भट्टे (भट्टा) = हे भट्ट । सामिय = हे स्वामिन् । गोमिए = हे गोमिक । होल = हे होल । गोल = हो गोल । वसुलित्ति = हे दुराचारी । एवं = इस प्रकार हीनता सूचक शब्दों से । पुरिसं = पुरुष को साधु । ण आलवे = नहीं बोले ।

भावार्थ-फिर हे हले ! हे अन्ने ! हे भट्ट ! हे स्वामिन् ! हे ग्वाले ! हे होल ! हे गोल ! हे दुराचारी ! हे दस नम्बरी ! इस प्रकार किसी पुरुष को साधु नहीं बोले । कैसे बोले यह आगे बताया गया है-

णामधिज्जेण णं बूया, पुरिस गुत्तेण वा पुणो ।

जहारिहमभिगिज्झ, आलविज्ज लविज्ज वा ॥20॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

लेकर नाम पुरुष का अथवा, कर उसका गोत्रोच्चारण ।

पदपूर्वक एक अनेक बार, उसको सम्बोधित करे श्रमण ॥

अन्वयार्थ-णं = उसको । णामधिज्जेण (णामधेज्जेण) = नाम लेकर । वा = अथवा । पुणो

= फिर । पुरिसगुत्तेण = पुरुष के गोत्र से । बूया = बोले । जहारिहं = यथा योग्य शिक्षा, दीक्षा अवस्था को । अभिगिज्झ = ग्रहण कर । आलविज्ज = एक बार । वा = अथवा । लविज्ज = अनेक बार बोले ।

भावार्थ—किसी पुरुष को सम्बोधन करना हो तो उसके नाम से या गोत्र एवं उपनाम से पुकारे । गुण अवस्था आदि से यथायोग्य ग्रहण कर, अवस्था वाले को बाबाजी, शिक्षित को पण्डितजी इत्यादि प्रकार से कहकर एक बार अथवा आवश्यकता हो तो अनेक बार बोले ।

**पंचिंदियाण पाणाणं, एस इत्थी अयं पुमं ।
जाव णं न विजाणिज्जा, ताव जाइत्ति आलवे ॥21॥**

हिन्दी पद्यानुवाद—

पंचेन्द्रिय प्राणी का जब तक, नर नारी भेद न जान सके ।
तब तक जाति की संज्ञा से, सम्बोधन करना उचित लगे ॥

अन्वयार्थ—पंचिंदियाण = पाँच इन्द्रिय वाले । पाणाणं = गो, महिष आदि प्राणियों में । एस इत्थी = यह स्त्री है । अयं पुमं = या यह नर है । जाव णं = जब तक बराबर । न = नहीं । विजाणिज्जा (विजाणेज्जा) = जान ले । ताव = तब तक । जाइत्ति = जाति—गौ जाति, महिष जाति । आलवे = इस प्रकार बोले ।

भावार्थ—पशुओं में दूरी आदि के कारण जब तक पंचेन्द्रिय प्राणियों में यह नर है या मादा—स्त्री है, ऐसा बराबर जान नहीं ले तब तक गाय, भैंस या बैल है, यह नहीं कहकर गौ जाति, महिष जाति, श्वान आदि जाति वाचक पद से कथन करे ।

**तहेव मणुसं¹ पसुं, पक्खिं वा वि सरीसिवं²
थूले पमेइले वज्झे, पाइमेत्ति य णो वए ॥22॥**

हिन्दी पद्यानुवाद—

वैसे ही मनुज चतुष्पद पक्षी, अजगर आदि सरीसृप को ।
मोटा तुंदिल वध्य पाच्य है, कहना उचित नहीं उनको ॥

अन्वयार्थ—तहेव = वैसे ही । मणुसं = मनुष्य । वा वि = अथवा । पसुं = किसी पशु । पक्खिं = पक्षी को तथा । सरीसिवं = अहि, अजगर आदि सरक कर चलने वाले को । थूले = यह स्थूल मोटा है । पमेइले = मेदवाला है । वज्झे = वध्य है । पाइमेत्ति (पाइमिति) = पकाने योग्य । य = और । णो वए = नहीं बोले ।

1. माणुसं - पाठान्तर ।

2. सरिसिवं - पाठान्तर ।

भावार्थ—वैसे ही किसी मनुष्य, गौ-महिषादि पशु, पक्षी, अथवा सर्प नोलिया, मच्छ आदि को देखकर यह मोटा है, खूब चर्बी वाला है, मारने योग्य है, पकाने योग्य है इस प्रकार की हिंसा जनक सावद्य भाषा संयमी मुनि कभी नहीं बोले। आवश्यकता से कुछ कहना पड़े तो इस प्रकार बोले—

परिवुद्धे त्ति णं बूया, बूया उवचिय त्ति य ।

संजाए पीणिए वा वि, महाकाय त्ति आलवे ॥23॥

हिन्दी पद्यानुवाद—

सामर्थ्यवान् उनको बोले, अथवा परिपुष्ट अंगवाला ।

या मुदित अभूतपूर्व कोई, अतिशय विशाल काया वाला ॥

अन्वयार्थ—परिवुद्धे णं = बढ़ा हुआ शक्ति सम्पन्न है। **त्ति बूया** = ऐसा बोले। **य** = और। **उवचिय (उवचिए)** = भरे हुए शरीर वाला है। **त्ति बूया** = ऐसा बोले। **संजाए** = सब अंगों से परिपूर्ण। **पीणिए** = पुष्ट। **वा वि** = अथवा। **महाकाय (महाकाए)** = विशालकाय है। **त्ति** = इस प्रकार। **आलवे** = बोले।

भावार्थ—यह शक्ति सम्पन्न है, भरे पूरे शरीर वाला है, परिपूर्ण अंग-उपांग वाला है, परिपुष्ट और विशालकाय वाला है, ऐसे निर्दोष, निर्वद्य और शोभनीय शब्दों से बोले। सावद्य वचनों का प्रयोग नहीं करे।

तहेव गाओ दुज्झाओ, दम्मा गोरहगत्ति य ।

वाहिमा रहजोगि त्ति, णेवं भासिज्ज पण्णवं ॥24॥

हिन्दी पद्यानुवाद—

है दोहन के योग्य गाय, बछड़े निग्रह के योग्य सभी ।

हल और शकट लायक देखो, ना प्राज्ञ श्रमण यह कहे कभी ॥

अन्वयार्थ—तहेव = उसी प्रकार। **गाओ** = गायें। **दुज्झाओ** = दुहने योग्य हैं। **त्ति य** = ऐसा और। **गोरहग** = बछड़े। **दम्मा** = दमन करने योग्य हैं अथवा खस्सी करने योग्य हैं। **वाहिमा** = खेत में हल चलाने योग्य हैं। **रहजोगि (रहजोगत्ति)** = अथवा रथ में जोतने योग्य हैं। **पण्णवं** = बुद्धिमान् साधु। **एवं** = इस प्रकार। **ण भासिज्ज (भासेज्ज)** = सावद्य वचन कभी नहीं बोले।

भावार्थ—जो वचन आरम्भवर्द्धक या किसी को पीड़ाकारक हो, वैसे वचन साधु नहीं बोले, जैसे—ये गाय, भैंस आदि दुहने योग्य हैं, बछड़े दमन करने योग्य हैं, हल में जोतने योग्य हैं और रथ में जोतने योग्य हैं। ऐसी भाषा बुद्धिमान् साधु कभी नहीं बोले।

जुवं गवेत्ति णं बूया, धेणुं रसदयत्ति य ।
रहस्से महल्लए वा वि, वए संवहणेत्ति य ॥25॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

संयमी तरुण बैल बोले, और गाय दुधारु को रसदा ।
यह छोटा है यह बैल बड़ा, मुनि कहे उसे संवहन सदा ॥

अन्वयार्थ-गवेत्ति णं = यह बैल । जुवं = युवा है । य = और । धेणुं = दुधारु धेनु को ।
रसदयत्ति = (दुधारु) रसदा ऐसा । बूया = कहे । रहस्से = यह ह्रस्व-छोटा बैल है । वा (वि) = अथवा ।
महल्लए = बड़ा वृषभ है । य = और । संवहणेत्ति = संवहन योग्य है ऐसा । वए = बोले ।

भावार्थ-गाय, बैल के लिये आवश्यकता से कभी बोलना पड़े तो वह बैल युवा है, धेनु या महिष
दुधारु है, बैल छोटा अथवा बड़ा है तथा वहन योग्य है, उठाये हुए भार को पार पहुँचाने वाला है, इस प्रकार
साधु संयत भाषा में बोले । आरम्भ की वृद्धि हो और पशु को पीड़ा हो, ऐसे वचन नहीं बोले ।

तहेव गंतुमुज्जाणं, पव्वयाणि वणाणि य ।
रुक्खा महल्ल पेहाए, णेवं भासिज्ज पण्णवं ॥26॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

विचरण करते मुनि प्राज्ञ कभी, उद्यान शैल वन में जाकर ।
ना बोले ऐसे वचन देख, दृढ विटप विशाल खड़ा पाकर ॥

अन्वयार्थ-तहेव = वैसे ही । उज्जाणं = उद्यान-बगीचे में । पव्वयाणि = तथा पर्वत । य =
और । वणाणि = वनों में । गंतुं = जाकर । रुक्खा महल्ल = बड़े-बड़े वृक्षों को । पेहाए = देखकर ।
पण्णवं = बुद्धिमान साधु । एवं = इस प्रकार । ण भासिज्ज = नहीं बोले ।

भावार्थ-विचरण करते मुनि कभी उद्यान, पर्वत और वनों में पहुँचे, वहाँ ताल, तमाल, सागवान
आदि के बड़े-बड़े वृक्ष दृष्टिगोचर हों तो बुद्धिमान साधु उनको देखकर आगे कही जाने वाली सदोष भाषा नहीं
बोले ।

अलं पासायखंभाणं, तोरणाणं गिहाणं य ।
फलिहगलनावाणं, अलं उदगदोणिणं ॥27॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

ये वृक्ष महल के स्तम्भ योग्य, फाटक मकान रचने वाले ।
परिघा अर्गला नाव तथा, जल पात्र सुखद बनने वाले ॥

अन्वयार्थ-पासाय खंभाणं = भवन के खम्भों के लिये। **तोरणाणं** = तोरण द्वार आदि के लिये। **य** = और। **गिहाणं** = घर के लिये। **अलं** = अच्छे पर्याप्त होंगे। **फलिहग्गलनावाणं** = नगर द्वार की परिघा, आगल और नौका के लिये तथा। **उदगदोणिणं** = जल कुण्डी के लिये। **अलं** = अच्छे हैं।

भावार्थ-वन में अच्छे-अच्छे वृक्षों को देखकर संयमी ऐसा नहीं बोले कि ये वृक्ष अच्छे हैं। इनकी लकड़ी भवन के खम्भों के लिये, तोरण और घर की छत के लिये तथा नगर द्वार की परिघा, आगल, नौका और जलकुण्डी के लिये अच्छी है, ऐसी सावद्य भाषा नहीं बोले।

पीढए चंगबेरे य, नंगले मइयं सिया।

जंतलट्टी व नाभी वा, गंडिया व अलं सिया ॥28॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

ये पीढ पायली हल चौकी, के लगते हैं निर्माण योग्य।

कोल्हू पहिए के मध्य भाग, अथवा सुनार-उपकरण योग्य ॥

अन्वयार्थ-पीढए = पीढ-बाजोट। **चंगबेरे** = चंगेरी-काष्ठपात्री। **य** = और। **नंगले** = नंगल हल्की मूठ। **मइयं सिया** = तथा खेत को सम करने के लिये फेरा जाने वाला काष्ठ। **जंतलट्टी (जंतलट्टी)** = घाणी की लाट। **व** = और। **नाभी** = चाक की नाभि। **वा** = अथवा। **गंडिया** = गंडिका-एरन के लिये। **व अलं सिया** = अच्छा होगा।

भावार्थ-अच्छे वृक्षों को देखकर यह कहना कि यह काष्ठ पीढ-बाजोट, चंगेरी, नंगल (हल की मूठ) या खेत में घुमाने के बड़े काष्ठ के लिये, कोल्हू की लाट, चक्र की नाभि अथवा एरन के लिये ठीक है, साधु के लिये निषिद्ध है। क्योंकि यह सावद्य भाषा है।

आसणं सयणं जाणं, होज्जा वा किंचुवस्सए।

भूओवघाइणिं भासं, णेवं भासिज्ज पण्णवं ॥29॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

इससे शयन यान आसन, या साधु उपाश्रय बनें सभी।

ना ऐसी प्राणहरी भाषा, मुनि प्राज्ञ किसी से कहे कभी ॥

अन्वयार्थ-आसणं वा = फिर पाट आदि आसन। **सयणं** = सोने के लिये बड़ा पाट। **जाणं** = यान पालकी आदि। **उवस्सए** = उपाश्रय के लिये। **किंच** = कुछ। **होज्जा (हुज्जा)** = उपयोगी होगा। **एवं भूओवघाइणिं** = इस प्रकार हिंसा वर्द्धक। **भासं** = भाषा। **पण्णवं** = बुद्धिमान् साधु। **ण भासिज्ज** = नहीं बोले।

भावार्थ—जंगल के वृक्षों को देखकर साधु यह कहे कि ये वृक्ष उपाश्रय के लिये छोटा पाट, सोने का बड़ा पाट, यान, कपाट आदि के लिये उपयोगी होगा तो इसे भगवन्तों ने हिंसाकारी भाषा बताया है। ऐसी हिंसा कारक भाषा बुद्धिमान् को कभी नहीं बोलनी चाहिये। साधु उपाश्रय के निर्माण कार्य से भी उपरत होता है, इसलिये उसके लिये इस सम्बन्ध में तटस्थ रहना ही अच्छा है।

तहेव गंतुमुज्जाणं, पव्वयाणि वणाणि य ।

रुक्खा-महल्ल-पेहाए, एवं भासिज्ज पण्णवं ॥३०॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

प्राज्ञ-साधु विचरण करते, जाकर उद्यान शैल वन में।

उन बड़े विटप को देख-देख, कह सकते ऐसे जन जन में॥

अन्वयार्थ—तहेव = वैसे ही। उज्जाणं = उद्यान। पव्वयाणि = पर्वत। य = और। वणाणि = वनों में। गंतुं = जाकर। रुक्खामहल्ल = बड़े-बड़े वृक्षों को। पेहाए = देखकर। पण्णवं = बुद्धिमान् साधु। एवं = इस प्रकार। भासिज्ज = बोले।

भावार्थ—जंगल में विचरण करते हुए कभी मुनि को उद्यान, पर्वत और वन प्रदेशों के प्राकृतिक रमणीय दृश्यों को एवं बड़े-बड़े वृक्षों को देखकर आवश्यकता वश उनका परिचय देना पड़े तो बुद्धिमान् ऐसी निर्दोष भाषा में बोले, जैसा कि आगे की गाथा में बताया जा रहा है।

जाइमंता इमे रुक्खा, दीहवट्टा महालया ।

पयायसाला विडिमा, वए दरिसणित्ति य ॥३१॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

ये उच्च जाति वाले तरु हैं, लम्बे और गोल तथा विस्तृत।

परिपूर्ण प्रशाखा शाखा से, यों बोले विटप सुघड़ सज्जित॥

अन्वयार्थ—इमे = ये। रुक्खा = वृक्ष। जाइमंता = अच्छी जाति वाले हैं। दीहवट्टा = लम्बे वर्तुलाकार हैं। महालया = विस्तार वाले हैं। पयायसाला = शाखाएँ खूब फैली हुई हैं। विडिमा = प्रतिशाखा वाले हैं। य = और। दरिसणित्ति = दर्शनीय हैं। वए = ऐसा बोले।

भावार्थ—ये वृक्ष अच्छी जाति वाले हैं, लम्बे वर्तुलाकार हैं, बहुत विस्तार वाले हैं, इनकी शाखा और प्रतिशाखाएँ भी बहुत फैली हुई हैं, इसलिये ये दर्शनीय हैं। संयमी साधु इसके अतिरिक्त उनके सम्बन्ध में कोई अन्य सावद्यादि वचन नहीं बोले।

तहा फलाइं पक्काइं, पायखज्जाइं णो वए ।
 वेलोइयाइं टालाइं, वेहिमाइ त्ति णो वए ॥32॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

वैसे ये स्वयं पके हैं फल, ना कहे खाद्य होंगे पककर ।
 हैं तत्क्षण खाद्य योग्य कोमल, या दो भागों में कटने पर ॥

अन्वयार्थ-तहा = वृक्षों की तरह । फलाइं = ये फल । पक्काइं = अच्छे पके । पायखज्जाइं = पका कर खाने लायक हैं । णो वए = इस प्रकार की सावद्य भाषा नहीं बोले । वेलोइयाइं = अविलम्ब तोड़ने योग्य हैं । टालाइं = कोमल हैं । वेहिमाइ त्ति = चाकू से काटकर खाने योग्य हैं इस प्रकार । नो वए = साधु नहीं बोले ।

भावार्थ-वैसे ही फलों के विषय में कभी बोलने का प्रसंग आवे तो ये फल अच्छे पके हैं, पकाकर खाने योग्य हैं, मौसम के अनुकूल हैं, गुठली नहीं आने से कोमल हैं, दो टुकड़े कर के खाने योग्य हैं, इस प्रकार का कथन आरम्भजनक है और आहार संज्ञा उत्पन्न करने वाला है, इसलिये मुनि ऐसा कथन नहीं करे । न ऐसी भाषा ही बोले ।

असंथडा इमे अंबा, बहुनिवट्टिमा¹ फला ।
 वएज्ज बहुसंभूया, भूयरूवत्ति² वा पुणो ॥33॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

बहु फल वाले ये आम्र विटप, असमर्थ भार ढाने में हैं ।
 फल चुके तथा फल लगने से, अतिशय सुन्दरता इनमें हैं ॥

अन्वयार्थ-इमे = ये । अंबा = आम वृक्ष । असंथडा = फल के भार धारण करने में असमर्थ हैं । बहुनिवट्टिमा फला = बहुत से फलों के गुच्छों से युक्त । बहुसंभूया = एक साथ अधिक फल लगे हैं । वा = अथवा । पुणो = पुनः । भूयरूवत्ति = कोमल हैं । वएज्ज = इस प्रकार बोले ।

भावार्थ-फलों के सम्बन्ध में कभी कहना पड़े तो साधु इस प्रकार बोले-ये आम्र वृक्ष फल धारण करने में असमर्थ हैं, बहुत से फलों के गुच्छों से युक्त हैं, एक साथ बहुत फल उत्पन्न हुए हैं, गुठली नहीं पड़ने से कोमल हैं । इस प्रकार कारण होने पर बोले ।

तहेवोसहिओ पक्काओ, नीलियाओ छवीइ य ।
 लाइमा भज्जिमाओत्ति¹, पिहुखज्जत्ति णो वए ॥34॥

1. बहुनिव्वडिमा - पाठान्तर ।

2. भूअरूवत्ति - पाठान्तर ।

हिन्दी पद्यानुवाद-

ऐसे ये पक गये अन्न, कोमल वा योग्य तोड़न के हैं।

काटने तथा भूँजने योग्य, ना होला खाने योग्य कहे ॥

अन्वयार्थ—तहेवोसहिओ (तहेवोसहीओ) = इसी प्रकार—धान्य के सम्बन्ध में भी है कि ये शालि आदि धान्य। **पक्काओ** = पक चुके हैं। **नीलियाओ छवीइ य** = फलियाँ नीली हैं। **लाइमा** = लूनने—काटने योग्य हैं। **भज्जिमाओत्ति** = भूनने लायक हैं। **पिहुखज्जत्ति** = अग्नि में सेंक कर खाने योग्य हैं। **णो वए** = इस प्रकार सावद्य वचन नहीं बोलें।

भावार्थ—फलों की तरह धान्य के सम्बन्ध में भी—ये शालि, जौ, आदि पक चुके हैं, फलियाँ नीली हैं, काटने योग्य हो गई हैं, भूनकर खाने योग्य हैं, होले आदि की तरह आग पर सेक कर खाने योग्य हैं, ऐसी सावद्य भाषा प्रसंग आने पर भी साधु नहीं बोले।

रूढा बहुसंभूया, थिरा ऊसढा² वि य।

गब्भियाओ पसूयाओ, ससाराओत्ति³ आलवे ॥35॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

अंकुरित सुविस्तृत हुए शालि, दृढ़ अंगों से अति शोभित हैं।

काण्डादि—समृद्ध मंजरी युत, बोले दाने से सज्जित हैं ॥

अन्वयार्थ—रूढा = धान्य के अंकुर निकल गये हैं। **बहु संभूया** = पत्र आदि बहुत फैल गये हैं। **थिरा** = स्थिर। **य** = और। **ऊसढा वि** = धान्य ऊँचे आ गये हैं। **गब्भियाओ** = सिट्टे निकलने वाले हैं। **पसूयाओ** = सिट्टे निकल चुके हैं। **ससाराओत्ति** = दाने पड़ गये हैं। **आलवे** = इस प्रकार बोले।

भावार्थ—प्रसंग वश धान्य के सम्बन्ध में कुछ कहना पड़े तो—शालि आदि के अंकुर निकल गये हैं, पत्र फैल चुके हैं, स्थिर जमकर धान्य ऊपर आ गये हैं। सिट्टों में दूध निकल आया, सिट्टे निकलने वाले हैं या सिट्टे निकल गये हैं, उनमें दाने भी पड़ चुके हैं, साधु इस प्रकार निर्दोष वचन बोले।

रूढ़ आदि शब्दों से वनस्पति की 7 अवस्थाएँ कही गई हैं। इनका क्रम बीज के अंकुरित होकर पुनः बीज होने तक है। चूर्णिकार ने इनकी व्याख्या इस प्रकार की है—1. अंकुरित को रूढ़, 2. विकसित को बहु संभूत, 3. बीजांकुर की उत्पादक शक्ति को स्थिर, 4. सुसंवर्द्धित स्तम्भ को उत्सृत, 5. भुट्टा न निकला हो उसे गर्भित, 6. भुट्टा निकलने पर प्रसूत और 7. दाने पड़ने पर ससार कहा है।

1. भज्जिमाउत्ति - पाठान्तर।

2. ओसढा - पाठान्तर।

3. ससाराउ त्ति - पाठान्तर।

तहेव संखडिं नच्चा, किच्चं कज्जं त्ति नो वए ।
तेणगं वा वि वज्झि त्ति, सुत्तिथत्ति य आवगा ॥३६॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

ना बोले मृतक विवाह हेतु, करना है जीमनवार उचित ।
ना चोर देख वध योग्य कहे, शुभ तीर्थ नदी को भी वर्जित ॥

अन्वयार्थ-तहेव = उसी प्रकार । संखडिं = जीमनवार को । नच्चा = जानकर । किच्चं = यह काम । कज्जं त्ति = करणीय है । तेणगं = चोर को । वा वि = और भी । वज्झि त्ति (वज्झेत्ति) = यह वध्य है ऐसा । य = और । आवगा = नदी को । सुत्तिथ त्ति (सुत्तिथि त्ति) = यह सरलता से तैरने योग्य है । नो वए = साधु इस प्रकार नहीं बोले ।

भावार्थ-धान्य के समान ही यदि कभी गाँव में जीमनवार हो तो मृत्यु भोज आदि के जीमनवार को जानकर, यह गाँव का काम है, करने योग्य है, ऐसा कहना सावद्य वचन है, चोर को देखकर, यह फाँसी देने योग्य है ऐसा और नदियों को देखकर, यह आराम से तैरने योग्य हैं, ऐसे हिंसाकारी सावद्य वचन साधु नहीं बोले ।

संखडिं संखडिं बूया, पणियट्ट त्ति तेणगं ।
बहुसमाणि तित्थाणि, आवगाणं वियागरे ॥३७॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

जीमन को जीमनवार कहे, और चोर देख बोले यह जन ।
जीवन-पण से है स्वार्थ निरत, और नदी देख बोले तट सम ॥

अन्वयार्थ-संखडिं = संखडी को यानी जीमनवार को । संखडिं = षट्काय जीवों की हिंसा रूप संखडी । बूया = कहे । तेणगं = चोर को । पणियट्ट त्ति = धन का अर्थी ऐसा कहे । आवगाणं = नदियों के सम्बन्ध में । बहुसमाणि तित्थाणि = बहुत समान तीर्थ तटवाली हैं । वियागरे = ऐसा कथन करे ।

भावार्थ-जीमन षट्काय जीवों के प्राण हरण करने वाला होने से उसे संखडि कहे । चोर को अर्थ के लिये अपने जीवन को बाजी पर लगाने वाला कहे और नदियों को देखकर इनके तट तीर्थ (किनारे) सम हैं, साधु ऐसी निर्दोष भाषा बोले ।

तहा नईओ पुण्णाओ, कायतिज्ज त्ति नो वए ।
नावाहिं तारिमाओ त्ति^१, पाणिपिज्ज त्ति नो वए ॥३८॥

१. तरिमाउ त्ति, तारिमाउ त्ति -पाठान्तर

हिन्दी पद्यानुवाद-

ना कहे नदी यह उदकभरी, तन से तैरी जा सकती है।
या नावों से है पार योग्य, सुख पेया कहला सकती है॥

अन्वयार्थ-तहा = तथा। पुण्णाओ = भरी हुई। नईओ = नदियों को। कायतिज्ज त्ति = काया से तिरने योग्य है ऐसा। नो वए = नहीं कहे। नावाहिं = नौकाओं के द्वारा। तारिमाओ त्ति = तिरने योग्य है ऐसा। पाणिपिज्ज = तथा यह सुख पेय है तट पर बैठा कोई भी अंजलि से पानी पी सकता है। त्ति = इस प्रकार भी। नो वए = नहीं बोले।

भावार्थ-तथा भरी हुई नदियों को देखकर ये शरीर से तिरने योग्य हैं या नौका से पार करने योग्य हैं और ये ऐसी सुख पेया हैं कि तट पर बैठा बच्चा भी आराम से इनका पानी पी सकता है, साधु ऐसा नहीं कहे।

बहुवाहडा अगाहा, बहुसलिलुप्पिलोदगा।
बहुवित्थडोदगा या वि, एवं भासिज्ज पण्णवं ॥39॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

जल भरी अगाध वेगवाली, विस्तार-उदग-क्षेत्रों वाली।
मुनि प्राज्ञ कहें ऐसी भाषा, जो हो उनकी मर्यादा वाली॥

अन्वयार्थ-बहुवाहडा = जल से पूर्ण भरी हुई है। अगाहा = अगाध गहराई वाली है। बहुसलिलुप्पिलोदगा = पानी की अधिकता से तरंगे उछलकर तटों से टकराती हैं। यावि (वा वि) = और भी। बहुवित्थडोदगा = बहुत विस्तृत उदक वाली है। पण्णवं = बुद्धिमान् साधु। एवं = ऐसी। भासिज्ज (भासेज्ज) = निर्दोष भाषा बोले।

भावार्थ-नदियों को देखकर साधु इस प्रकार बोले कि यह नदी जल से पूर्ण भरी हुई है, अगाध जल वाली है, दूसरी बड़ी नदी के पानी से होड़ लेने वाली है और इसका पानी बहुत फैला हुआ है। इस प्रकार बुद्धिमान् साधु को निर्दोष वचन बोलने चाहिये।

तहेव सावज्जं जोगं, परस्सट्ठाए¹ निट्ठियं।
कीरमाणं त्ति वा णच्चा, सावज्जं न लवे मुणी ॥40॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

भूत भविष्यत वर्तमान में, परहित जान पाप का कर्म।
मुनि बोले सावद्य वचन ना, हो जिससे उत्पन्न अधर्म॥

1. परस्सट्ठा य, परस्सट्ठा अ - पाठान्तर।

अन्वयार्थ-तहेव = ऐसे ही । परस्सट्ठाए = किसी दूसरे के लिये । निट्ठियं = भूतकाल में किये गये । सावज्जं जोगं = पाप सहित कार्य । कीरमाणं ति = जो किया जा रहा हो । वा = या भविष्य में होने वाला । णच्चा = जानकर अच्छा है ऐसा । सावज्जं = सदोष वचन । मुणी = मुनि । न लवे = कभी नहीं बोले ।

भावार्थ-मुनि हिंसा जनक प्रवृत्ति का कृत, कारित एवं अनुमोदन से त्यागी होता है । अतः किसी दूसरे के लिये किये गये अथवा जो किया जा रहा है वैसे क्रियमाण सावद्य हिंसा आदि पाप वाले कार्यों के लिये अच्छा किया इत्यादि प्रकार के सावद्य वचन मुनि नहीं बोले ।

सुकडे ति सुपक्के ति, सुच्छिण्णे सुहडे मडे ।

सुणिट्ठिए सुलट्ठेति, सावज्जं वज्जए मुणी ॥४१॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

सुकृत सुपक्व सुच्छिन्न और, सुन्दर हतमृत न कहे श्रमण ।

सुन्दर नष्ट तथा रुचिर, ऐसा सब पाप वचन वर्जन ॥

अन्वयार्थ-सुकडे ति (सुकडि ति) = यह भोजन अच्छा किया । सुपक्के ति (सुपक्किति) = यह अच्छा पकाया । सुच्छिण्णे = अच्छा भेदन किया । सुहडे = अच्छा हरण किया । मडे = अच्छा मरा । सुणिट्ठिए (सुनिट्ठिय) = अच्छा रस निष्पन्न हुआ । सुलट्ठे ति = बहुत सुन्दर है इस प्रकार के । सावज्जं = सावद्य वचनों का । मुणी = मुनि । वज्जए = वर्जन करे ।

भावार्थ-(1) भोजन आदि के सम्बन्ध में साधु ऐसा नहीं कहे कि यह भोजन अच्छा बनाया, साग अच्छा पकाया, शाक-पत्रादि का अच्छा छेदन किया, करेले अथवा कैर का कड़वापन अच्छा दूर किया, सत्तू में घी अच्छा भरा, रंग-घृत आदि से यह साग अच्छा स्वादिष्ट व सुन्दर हो गया, इस प्रकार के सावद्य वचनों का मुनि वर्जन करे ।

(2) क्रिया के सम्बन्ध में-

1. सुकडे ति-यह प्रीतिभोज या यह भोजन अच्छा किया ।
2. सुपक्केति-यह शत पाक एवं सहस्र पाक तेल अच्छा पकाया ।
3. सुच्छिण्णे-यह भयंकर वन अच्छा काटा ।
4. सुहडे-इस कंजूस का धन चोर हरण कर ले गए यह अच्छा हुआ ।
5. मडे-वह दुष्ट मर गया, अच्छा हुआ ।

6. सुणिट्टिए-इस अहंकारी का धन नष्ट हुआ सो अच्छा हुआ ।
7. सुलट्टेत्ति-हृष्ट-पुष्ट अवयव वाली यह कन्या सुंदरांगी है, विवाह योग्य है, अच्छी है । इस प्रकार की सावद्य भाषा साधक नहीं बोले ।
- (3) किन्तु इस प्रकार के निरवद्य वचन बोले कि-
 1. सुकडेत्ति-तपस्वी वृद्धों की इस मुनि ने अच्छी सेवा की ।
 2. सुपक्केत्ति-आतापना तप से तन अच्छा तपाया ।
 3. सुच्छिण्णे-मोह के बन्धनों का अच्छा छेदन किया ।
 4. सुहडे-स्वाध्याय से अज्ञान अन्धकार का हरण अच्छा किया ।
 5. मडे-पण्डित मरण अच्छा प्राप्त किया ।
 6. सुणिट्टिए-अप्रमादी बनकर कर्मों का अच्छा नाश किया ।
 7. सुलट्टेत्ति-अमुक की क्रिया अति सुन्दर है, तप की कान्ति से अमुक का चेहरा सुन्दर लग रहा है ।

पयत्तपक्कत्ति व पक्कमालवे, पयत्तच्छिण्णत्ति व छिण्णमालवे ।

पयत्तलट्टत्ति व कम्महेउयं, पहारगाढ त्ति व गाढमालवे ॥42॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

श्रमपूर्ण पक्व को पका कहे, श्रम छिन्न वस्तु को छिन्न कहे ।

कर्म हेतु से कर्म नष्ट, गाढ़ प्रहार को गाढ़ कहे ॥

अन्वयार्थ-व = तथा । पक्कं = अच्छे पके हुए को । पयत्तपक्कत्ति = प्रयत्न से आरम्भ से, पक्व हुआ ऐसा । आलवे = कथन करे । व = तथा । छिण्णं = अच्छे कटे को । पयत्तच्छिण्ण त्ति = प्रयत्न-छिन्न । आलवे = कहे । व = और । पयत्तलट्टत्ति = सधे अभ्यास से किये हुए को । कम्महेउयं = कर्म हेतुक कहे । व = एवं । गाढं = गाढ़ को । पहारगाढत्ति = प्रहार-गाढ़ । आलवे = ऐसा कहे ।

भावार्थ-सावद्य भाषा से बचने के लिये साधु कैसे वचन बोले, इसके लिए कहते हैं-अच्छे पके को प्रयत्न पक्व, अच्छे कटे को प्रयत्न छिन्न कहे, अभ्यास बल से किये गये को कर्म हेतुक और गाढ़ को प्रहार गाढ़ कहे । इन शब्दों में परिश्रम का ही उल्लेख किया गया है । जो जिस तरह किया जाय उसको वैसा कहना सावद्य नहीं है, निरवद्य है ।

सव्वुक्कसं परग्घं वा, अउलं नत्थि एरिसं ।
अविक्कियमवत्तव्वं, अचियत्तं चेव नो वए ॥43॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

यह सबसे सुन्दर मूल्यवान, अनुपम इसके सम और नहीं ।
यह अविक्रीत वर्णन से बाहर, मुनि दुःखद वचन कुछ कहे नहीं ॥

अन्वयार्थ-सव्वुक्कसं = वह वस्तु सबसे उत्कृष्ट है । वा = अथवा । परग्घं = बहुत मूल्य वाली है । अउलं = यह अतुल है । एरिसं = ऐसी वस्तु । नत्थि = अन्यत्र नहीं मिलती । अविक्कियं = यह बेचने योग्य नहीं है । च अवत्तव्वं = इसका मोल कहा नहीं जा सकता और । अचियत्तं एव = यह अप्रीति कारक भी है । नो वए = साधु ऐसा नहीं बोले ।

भावार्थ-विक्रय की वस्तुओं के सम्बन्ध में प्रसंगवश कहना पड़े तो-यह सबसे उत्कृष्ट है, बहुत अधिक मूल्यवान है, इसके समान दूसरी वस्तु नहीं होने से यह अतुल है, यह बेची नहीं जा सकती, क्योंकि इसका मूल्य कहा नहीं जा सकता और यह वस्तु बहुत गन्दी है, प्रीतिकर नहीं है । ऐसे सावद्य वचन साधु नहीं बोले ।

सव्वमेयं वइस्सामि, सव्वमेयं त्ति नो वए ।
अणुवीइ सव्वं सव्वत्थ, एवं भासिज्ज पण्णवं ॥44॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

ऐसा सब कुछ मैं कह दूँगा, या उसने ऐसा कहा सभी ।
ना प्राज्ञ कहे करके विचार, और बोले प्रिय सर्वत्र सभी ॥

अन्वयार्थ-एयं = यह शास्त्र या प्रवचन । सव्वं = मैं सब । वइस्सामि = बोल दूँगा । सव्वमेयं त्ति = उसका कथन सब ऐसा ही है यों साधु । नो = नहीं । वए = बोले । पण्णवं = बुद्धिमान् साधु । सव्वत्थ = सब स्थानों पर । सव्वं = सब कुछ । अणुवीइ = सोच-विचार कर । एवं = इस प्रकार । भासिज्ज (भासेज्ज) = बोले ।

भावार्थ-ब्रती साधक कभी भावावेग में यह नहीं कहे कि मैं यह सम्पूर्ण प्रवचन इसी प्रकार ऐसा ही बोल दूँगा, उसने सब ऐसा ही कहा है, इस प्रकार नहीं कहे । किन्तु बुद्धिमान्-पहले तोले फिर बोले, इस उक्ति के अनुसार पहले सर्वत्र सब बात सब तरफ से सोच-विचारकर फिर आगे बताई शैली से कहे ।

सुक्कीयं वा सुविक्कीयं, अकिज्जं किज्जमेव वा ।
इमं गिण्ह इमं मुंच, पणियं¹ नो वियागरे ॥45॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

अच्छी खरीद बिक्री अच्छी, यह क्रेय पण्य अक्रेय नहीं ।

यह ले लो और दो उसे छोड़, मुनि बोले ऐसे वचन नहीं ॥

अन्वयार्थ-सुक्कीयं = अच्छा खरीदा । **वा** = अथवा । **सुविककीयं** = अच्छा बेचा । **अकिज्जं (अकेज्जं)** = यह खरीदने योग्य नहीं है । **वा** = अथवा । **किज्जमेव (केज्जमेव)** = यह खरीदने लायक है । **इमं** = यह । **गिण्ह (गेण्ह)** = खरीद लो । **इमं** = यह । **मुंच** = छोड़ दो । **पणियं** = पण्य के विषय में । **नो वियागरे** = ऐसा नहीं कहे ।

भावार्थ-क्रय-विक्रय के प्रसंग से किसी को रागवश साधु यह नहीं कहे कि यह अच्छा खरीदा, कारण कि फिर यह महंगा होने वाला है अथवा अच्छे में बेचा दिया, क्योंकि आगे इसके भाव घटने वाले हैं, यह खरीदने योग्य नहीं है, या यह खरीदने योग्य है, इसको खरीद लो, इसको मत खरीदो, इस प्रकार पण्य वस्तु के सम्बन्ध में कुछ कहना साधु के लिये उचित नहीं है ।

अप्पघे वा महघे वा, कए वा विक्कए वि वा ।

पणियट्ठे समुप्पण्णे, अणवज्जं वियागरे ॥46॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

अल्प मूल्य या अधिक मूल्य, क्रय एवं विक्रय वस्तु के बारे में ।

पण्य वस्तु का पा प्रसंग, निरवद्य वचन कहे सारे में ॥

अन्वयार्थ-अप्पघे = अल्पमूल्य के । **वा** = अथवा । **महघे** = अधिक मूल्य के पण्य को । **वा** = और । **कए** = खरीदने । **वा** = अथवा । **विक्कए** = बेचने के सम्बन्ध में । **वि वा** = एवं । **पणियट्ठे** = काम का प्रसंग । **समुप्पण्णे** = उत्पन्न होने पर । **अणवज्जं** = निरवद्य वचन । **वियागरे** = बोले ।

भावार्थ-साधु आरम्भ-परिग्रह का त्यागी है । अतः उसे किसी से खरीद-बिक्री के सम्बन्ध में चाहे वस्तु कम कीमत की हो या अधिक कीमती, प्रसंग पाकर ऐसी भाषा बोलनी चाहिये जो निर्दोष हो । त्याग-विराग की ओर प्रेरित करना ही साधु का काम है, और वह क्या खरीदे, क्या नहीं इस सम्बन्ध में साधु को तटस्थ रहकर अनीति से बचने का ही उपदेश देना चाहिये ।

तहेवासंजयं धीरो, आस एहि करेहि वा ।

सयं चिट्ठ वयाहित्ति¹, नेवं भासिज्ज पण्णवं ॥47॥

1. वयाहीति - पाठान्तर ।

हिन्दी पद्यानुवाद-

गृहदारी को ना धीर प्राज्ञ, मुनि बोले बैठो या आओ ।
खड़ा रहो कुछ करो और, मरजी है जहाँ चले जाओ ॥

अन्वयार्थ-तहेव = (खरीद बिक्री के समान) वैसा ही । धीरो = धीर मुनि । असंजयं = असंयति गृहस्थ को । आस = बैठो । एहि = आओ । वा = अथवा । करेहि = यह काम करो । सयं = सो जाओ । चिट्ट = खड़े रहो । वयाहिति = चले जाओ । एवं = इस प्रकार । पण्णवं = बुद्धिमान् । न = नहीं । भासिज्ज (भासेज्ज) = बोले ।

भावार्थ-संयमी साधु गृहस्थ को संसार की प्रवृत्ति के सम्बन्ध में आओ, बैठो, यह काम करो, सो जाओ, खड़े रहो, चले जाओ, खाओ, पीओ आदि नहीं कहे । असंयमी को आने, जाने आदि का कहना, असंयमी द्वारा होने वाले गमनागमन के आरम्भ में निमित्त बनता है, अतः साधु को खास आवश्यकता से कुछ कहना हो तो यहाँ ठहरने का अभी अवसर नहीं है, जाने के लिये अभी आप उधर अवसर देख लें या दया पाल लें, संतों को आहार करना है, ऐसी निरवद्य भाषा बोले ।

बहवे इमे असाहू, लोए वुच्चंति साहुणो ।
न लवे असाहुं साहुत्ति, साहुं साहुत्ति आलवे ॥48॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

जग में बहुत असाधु वेष, धारण कर साधु कहाते हैं ।
असाधु को ना साधु कहे, साधु ही साधु कहाते हैं ॥

अन्वयार्थ-लोए = लोक में । इमे = ये । बहवे = बहुत से । असाहू = असाधु भी । साहुणो = साधु नाम से । वुच्चंति = कहे जाते हैं, किन्तु बुद्धिमान् । असाहुं = असाधु को । साहुत्ति = साधु है ऐसा । न लवे = नहीं कहे । साहुं = गुण सम्पन्न साधु को ही । साहुत्ति = साधु नाम से । आलवे = कथन करे ।

भावार्थ-संसार में बहुत से वेषधारी असाधु होकर भी भक्तों के द्वारा रागवश साधु कहे जाते हैं । इसलिये बुद्धिमान् को चाहिये कि असाधु को साधु न कहे । गुणों से सम्पन्न साधु का ही साधु रूप से कथन करे ।

नाणदंसणसंपन्नं, संजमे य तवे रयं ।
एवं गुणसमाउत्तं, संजयं साहुमालवे ॥49॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

सम्पन्न ज्ञान दर्शन से जो, संयम और तप में लीन सदा ।
इन गुणों से युक्त तपस्वी को, उपयुक्त कथन है साधु सदा ॥

अन्वयार्थ—नाणदंसण संपन्नं = जो सम्यक् ज्ञान और दर्शन से युक्त हैं। संजमे = संयम। यं = तथा। तवे = तपस्या में। रयं = रमण करने वाले हैं। एवं = ऐसे। गुणसमाउत्तं = संयम गुणों से युक्त। संजयं = संयमी को ही। साहुमालवे = साधु रूप से कथन करे।

भावार्थ—साधु वेष से नहीं, गुणों से होता है। साधु का अर्थ साधना करने वाला है। सच्चे सोने की तरह उसमें खोट नहीं आता। जो सम्यग्ज्ञान, और श्रद्धा सम्पन्न है, तथा 17 प्रकार के संयम और तप में रमण करने वाला है, ऐसे गुण युक्त संयति को ही साधु नाम से कथन करना चाहिये।

**देवाणं मणुयाणं च, तिरियाणं च विग्गहे ।
अमुयाणं जओ होउ, मा वा होउत्ति नो वए ॥50॥**

हिन्दी पद्यानुवाद—

देवों के और मनुष्यों के, या तिर्यचों के विग्रह में।
जीत इसी की हो या ना, यह कहे न साधु कभी जग में ॥

अन्वयार्थ—देवाणं मणुयाणं = देव, मनुष्य। च = और। तिरियाणं = तिर्यच्चों के। च = और। विग्गहे = विग्रह यानी युद्ध में। अमुयाणं = अमुकों की। जओ होउ = जय हो। वा = अथवा। मा = अमुक की नहीं। होउत्ति = हो, इस प्रकार। नो वए = नहीं बोले।

भावार्थ—भूत, प्रेत आदि देव, मनुष्य और पशुओं की लड़ाई में साधु लड़ने वालों में से अमुक जीत जावे अथवा अमुक हार जावे, इस प्रकार राग-द्वेष वर्द्धक वचन नहीं बोले।

**वाओ वुट्ठं च सीउण्हं, खेमं धायं सिवं त्ति वा ।
कयाणु होज्ज एयाणि, मा वा होउत्ति णो वए ॥51॥**

हिन्दी पद्यानुवाद—

वायु वृष्टि सदीं गर्मी, शुभ धान्य और कल्याण कथन।
कब होंगे अथवा ना होंगे, ऐसे ना बोले कभी श्रमण ॥

अन्वयार्थ—वाओ = वायु। वुट्ठं = वृष्टि। च = और। सीउण्हं = शीत-उष्ण। खेमं = नीरोगता। धायं = सुभिक्ष। वा = अथवा। सिवं त्ति = शिव-निरुपद्रवता। एयाणि = ये सब। कयाणु होज्ज (हुज्ज) = कब होंगे। मा होउ = ये कब नहीं होंगे। त्ति = इस प्रकार। णो वए = नहीं कहे।

भावार्थ—ऋतु परिवर्तन के विषय में साधु वायु, वृष्टि, शीत, उष्ण, क्षेम, सुभिक्ष और शिव-उपद्रव रहितता, ये सब कब होंगे अथवा ये सब कब नहीं होंगे, ऐसा नहीं बोले।

तहेव मेहं व नहं व माणवं, न देव देवत्ति गिरं वइज्जा ।
सम्मुच्छिए उन्नए वा पओए, वइज्ज वा वुट्ठ बलाहइत्ति ॥52॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

वैसे नभ मेघ और मानव को, नहीं कभी देवेन्द्र कहे ।
पुद्गल परिणमन और उन्नत, या बरसा हुआ पयोद कहे ॥

अन्वयार्थ-तहेव = इसी प्रकार । मेहं = मेघ । व = या । नहं = नभ । व = या । माणवं = मानव को । देव देवत्ति = देव-देव ऐसी । गिरं = भाषा । न वइज्जा = नहीं बोले । सम्मुच्छिए = पयोद बादल उमड़ रहे हैं । वा = अथवा । उन्नए = ऊपर उठ रहे हैं अथवा । वा पओए = जल से भरे हुए हैं अथवा । वुट्ठबलाहइ = मेघ बरस गया है । ति = ऐसा । वइज्ज = बोले ।

भावार्थ-वात आदि के समान मेघ आदि के लिये प्रसंग आने पर मेघ, नभ, या मानव को देव-देव ऐसा नहीं बोले, बल्कि मेघ उमड़ रहा है, उन्नत होकर झुक रहा है अथवा अब तो मेघ बरस गया, इस प्रकार साधु निर्दोष भाषा बोले ।

अंतलिक्ख त्ति णं बूया, गुज्झाणुचरिय त्ति य ।
रिद्धिमंतं नरं दिस्स, रिद्धिमंतं त्ति आलवे ॥53॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

नभ को अन्तरिक्ष बोले, या देव गमन का मार्ग कहे ।
देव ऋद्धिवाले मानव को, ऋद्धिमान् यह वचन कहे ॥

अन्वयार्थ-अंतलिक्खत्तिणं (अंतलिक्खे त्ति णं) = आकाश के लिये अन्तरिक्ष ऐसा । य = और । गुज्झाणु चरियत्ति = गुह्यक आदि देवों से अनुचरित है ऐसा । बूया = कहे । रिद्धिमंतं = ऋद्धिमान् । नरं = मनुष्य को । दिस्स = देखकर । रिद्धिमंतंत्ति = यह सम्पत्तिशाली है ऐसा । आलवे = कथन करे ।

भावार्थ-मेघ या नभ को देव कहने के बदले अन्तरिक्ष और गुह्यकादि देवों का गमनागमन का मार्ग है ऐसा बोले । ऋद्धिमान् या ओजस्वी, तेजस्वी मनुष्य को देखकर यह ऋद्धिमान्, ओजस्वी, तेजस्वी अथवा शक्तिमान् है, इस प्रकार बोले ।

तहेव सावज्जणुमोयणी गिरा, ओहारिणी जा य परोवघाइणी ।
से कोह लोह-भय (हास) माणवो, ण हासमाणो वि गिरं वइज्जा ॥54॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

पापानुमोदिनी निश्चय की, पर घातक जो वाणी जग में ।
क्रोध लोभ भय हास युक्त, नर ना बोले हँसकर भव में ॥

अन्वयार्थ-तहेव = वैसे ही । सावज्जणुमोयणी = निश्चयकारी और सावद्य-पाप का अनुमोदन करने वाली । य = और । ओहारिणी = अवधारिणी तथा । जा = जो । परोवघाइणी से = अन्य जीवों को पीड़ा देने वाली हो वैसी । गिरा = भाषा । कोह लोह भय हास = क्रोध, लोभ, भय या हास्य वश होकर । माणवो = मानव । हासमाणो वि = हँसता हुआ भी । गिरं = भाषा को । ण वइज्जा (वएज्जा) = नहीं बोले ।

भावार्थ-फिर संयमी साधु ऐसी भाषा जो पाप का अनुमोदन करने वाली हो, जो निश्चयकारी हो और अन्य जीवों को पीड़ाकारी हो, क्रोध के वश, लोभ के वश, भय के वश अथवा हँसी-मजाक में भी नहीं बोले । क्रोधादि के आवेश में बोली गई भाषा सत्य व्रत को मलिन करने वाली होती है ।

सवक्कसुद्धि¹ समुपेहिया मुणी, गिरं च दुट्ठं परिवज्जए सया ।

मियं अदुट्ठं अणुवीइ भासए, सयाण मज्झे लहइ पसंसणं ॥55॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

वाक्य शुद्धि को देख श्रमण, दे दुष्ट वचन को छोड़ सदा ।

परिमित दोष रहित चिन्तन कर, वक्ता पाता सत्कीर्ति सदा ॥

अन्वयार्थ-स = वह । मुणी = मुनि । वक्कसुद्धि = वाक्यशुद्धि का । समुपेहिया = अच्छी तरह विचार कर । सया = सदा । दुट्ठं = दुष्ट । गिरं = भाषा का । परिवज्जए = वर्जन करे । च = और । मियं = मित यानी नपे तुले शब्दों वाली । अदुट्ठं = निर्दोष भाषा । अणुवीइ = सोचकर । भासए = बोलता है, वह । सयाण = सत्पुरुषों के । मज्झे = मध्य में । पसंसणं = प्रशंसा को । लहइ = प्राप्त करता है ।

भावार्थ-मुनि वाक्यशुद्धि की शिक्षा का सम्यक् प्रकार से विचार करके दोषयुक्त वाणी का सदा के लिए त्याग कर दे । जो विचारपूर्वक नपी-तुली दोष रहित भाषा बोलता है वह सज्जनों के समूह में प्रशंसा प्राप्त करता है । उसका व्रत भी निर्दोष रहता है ।

भासाए दोसे य गुणे य जाणिया, तीसे य दुट्ठे परिवज्जए सया ।

छसु संजए सामणिए सया जए, वइज्ज बुद्धे हियमाणुलोमियं ॥56॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

जान दोष गुण भाषा के, उसके दोषों को सदा तजे ।

छः में संयत साधुता निरत, मुनि हितप्रद वाणी सतत भजे ॥

1. सुवक्कसुद्धि - पाठान्तर ।

अन्वयार्थ-भासाए = भाषा के। दोसे = दोषों को। य = और। गुणे = गुणों को। जाणिया = जानकर। य = और। तीसे य = उसके। दुट्टे = दोषों का। सया = सदा। परिवज्जए = वर्जन करे। छसु संजए = छह काय के जीवों पर संयम वाला। सामणिए बुद्धे = संयम में सदा प्रयत्नशील बुद्धिमान् साधु। सया जए = सदा यत्न करे। हियं = हितकारी तथा। आणुलोमियं (अणुलोमियं) = अनुकूल वचन। वइज्ज (वएज्ज) = बोले।

भावार्थ-षट्कायिक जीवों पर संयम करने वाला मुनि भाषा के गुण और दोषों को जानकर उस भाषा के दोषों को सदा के लिये त्याग दे तथा श्रमण धर्म में सदा रमण करने वाला बुद्धिमान् मुनि हितकारी तथा जो सबके लिये अनुकूल हो, वैसी भाषा बोले।

परिक्खभासी सुसमाहि इंदिए, चउक्कसायावगए अणिस्सिए।
स निद्धुणे धुण्णमलं पुरेकडं, आराहए लोगमिणं तहा परं ॥
॥त्ति बेमि ॥५७॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

बोले सोच जितेन्द्रिय मुनि, कर दूर कषाय हो द्रव्य रहित।
हटा पुराकृत कर्मबन्ध, करता इह-परभव आराधित ॥

अन्वयार्थ-परिक्खभासी = गुण-दोषों की परीक्षा करके बोलने वाला। सुसमाहिइंदिए = इन्द्रियों को शब्दादि विषयों से बचाने वाला वश में रखने वाला। चउक्कसायावगए = क्रोध आदि चारों कषायों से दूर। अणिस्सिए = संसार के प्रपंचों से मुक्त। स = वह साधु। पुरेकडं = पूर्वकृत। धुण्णमलं = ढीले किये गये कर्म मल को। निद्धुणे = अलग कर दे। तहा = और इस तरह वह। लोगमिणं = इस लोक और। परं = पर लोक की। आराहए = आराधना कर लेता है।

भावार्थ-लाभालाभ की परीक्षा करते हुए बोलने वाला, शब्दादि विषयों से इन्द्रियों को वश में रखने वाला, क्रोध आदि चारों कषायों से अलग और संसार के प्रपंचों से मुक्त वह साधु अपने पूर्वकृत कर्ममल को अलग कर देता है और इस लोक तथा परलोक की आराधना करता है अर्थात् दोनों लोक सुधार लेता है, आराध लेता है।

त्ति बेमि = (इति ब्रवीमि) ऐसा मैं कहता हूँ।

॥ सातवाँ अध्ययन समाप्त ॥



आठवीं अध्ययन

आयारप्पणिहि (आचार-प्रणिधि)

उपक्रम

पिछले अध्ययन में वाक्यशुद्धि का कथन किया गया। अब आचार प्रणिधि नामक अष्टम अध्ययन का वर्णन करते हैं। इसका पूर्वापर सम्बन्ध इस प्रकार है—वाक्य शुद्धि अध्ययन में वचन सम्बन्धी गुण-दोष के जानकार साधु को निर्दोष वचन बोलना चाहिए—ऐसा कहा गया है। निर्दोष वचन आचार में स्थिर चित्तवाले का होता है, इसलिये यहाँ साधु को आचार में यत्नवान् होना चाहिये, यह बतलाते हैं, क्योंकि—

सुप्पणिहिअजोगी पुण न लिप्पई, पुव्वभणिअदोसेहिं ।

निद्वहई अ कम्माइं, सुक्कतणाइं जहा अग्गी ॥३०७॥

प्रणिधान रहित का निरवद्य भाषण भी सावद्य के समान होता है। इस सम्बन्ध में इस अष्टम अध्ययन में आचार का कथन करते हैं। पहले, तीसरे और छठे अध्ययन में आचार के विषय में कहा गया। वह आचार यहाँ पर भी वैसा ही निधि के रूप से कहा जाता है। आचार में मन, वाणी और काया की स्थिरता ही आचार प्रणिधि है। जैसा कि निर्युक्तिकार ने कहा है—

तम्हा उ अप्पसत्थं, पणिहाणं उज्झिऊण समणेणं ।

पणिहाणंमि पसत्थे, भणिओ आयारपणिहित्ति ॥३०८॥

सुप्रणिहित योगवान् मुनि दोषों से लिप्त नहीं होता, किन्तु जैसे सूखे तृणों को अग्नि शीघ्र जला देती है, वैसे ही उन दोषों को वह शीघ्र ही जला देता है। इसलिये अप्रशस्त प्रणिधान को छोड़कर साधु को प्रशस्त प्रणिधान में मन को रमाना चाहिये।

आयारप्पणिहिं लद्धं, जहा कायव्व भिक्खुणा ।

तं भे उदाहरिस्सामि, आणुपुव्विं सुणेह मे ॥१॥

हिन्दी पद्यानुवाद—

आचार-प्रणिधि को पाकर के, मुनि को क्या आवश्यक करना ।

मैं क्रमिक कहूँगा तुम्हें उसे, वह सावधान होकर सुनना ॥

अन्वयार्थ-आचारप्पणिहिं = आचार-सम्पदा को । लब्धुं = पाकर । भिक्खुणा = भिक्षु को । जहा कायव्व = जैसा करना चाहिये । तं भे = वह मैं तुमको । उदाहरिस्सामि = कहूँगा । आणुपुव्विं = आनुपूर्वी-क्रम से उसे । मे सुणेह = मुझ से सुनो ।

भावार्थ-सुधर्मा स्वामी अपने शिष्यों को कहते हैं-“आचार की बहुमूल्य निधि को पाकर साधु को किस प्रकार आचरण करना चाहिये, वह मैं तुमसे कहूँगा । उसको तुम ध्यानपूर्वक क्रम से श्रवण करो । तीसरे अध्ययन में संयमी के लिए निषिद्ध आचार का कथन किया गया था और आचार-कथा के रूप में अठारह स्थानों का परिचय दिया गया था । इस आठवें अध्ययन में आचार की उस जानकारी को पाकर क्या करना चाहिये, वह मैं कहता हूँ ।”

पुढविदग-अगणिमारुय, तणरुक्ख सबीयगा ।

तसा य पाणा जीवत्ति, इइ वुत्तं महेसिणा ॥२॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

पृथ्वी जल अग्नि वायु तथा, तृण तरु आदि के बीज सहित ।

त्रस तथा गतिशील कहे प्राणी, हैं महर्षि जन से जीव कथित ॥

अन्वयार्थ-पुढविदगअगणिमारुय = पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय और वायुकाय । तणरुक्खसबीयगा = तृण, वृक्ष आदि बीज पर्यन्त वनस्पतिकाय । तसा य पाणा जीवत्ति = और बेइन्द्रियादि त्रस, ये जीव हैं । इइ महेसिणा = ऐसा महर्षियों ने । वुत्तं = कहा है ।

भावार्थ-संसार में छह प्रकार के जीव हैं, जिन्हें षट्जीवनिका अध्ययन में बता चुके हैं । जैसे-1. पृथ्वीकाय, 2. जलकाय, 3. अग्निकाय, 4. वायुकाय, 5. तृण वृक्ष आदि बीज पर्यन्त वनस्पतिकाय और 6. त्रसकाय । ये प्राणी छह काया के जीव हैं, ऐसा गौतमादि महर्षियों ने कहा है ।

तेसिं अच्छणजोएण, णिच्चं होयव्वयं सिया ।

मणसा काय-वक्केण, एवं भवइ संजए ॥३॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

उनकी हिंसा का नित्य त्याग, करके ही हम हिंसा त्यागी ।

तन मन और वचन द्वारा, होता संयत संयम भागी ॥

अन्वयार्थ-तेसिं = उनके साथ । मणसा काय वक्केण = मन, वचन और काय योग से । णिच्चं अच्छणजोएण = सदा अहिंसक भाव से । होयव्वयंसिया = रहना चाहिये । एवं = इस प्रकार अहिंसक रहने वाला । संजए = संयमी साधु । भवइ = होता है ।

भावार्थ—अहिंसक साधु को इन सब जीवों के प्रति मन, वचन और काय द्वारा सदा अहिंसक भाव से रहना है, छोटे से छोटे जीव की भी हिंसा नहीं करनी है, उन्हें कष्ट नहीं देना है। ऐसा पूर्ण अहिंसक ही संयत होता है। साधु किसी भी प्रकार के जीव की हिंसा नहीं करता।

**पुढविं भित्तिं सिलं लेलुं, नेव भिंदे न संलिहे ।
तिविहेण करणजोएण, संजए सुसमाहिए ॥४॥**

हिन्दी पद्यानुवाद—

त्रिकरण तथा त्रियोगों से, पृथ्वी भित्तादि शिला पत्थर ।
ढेले को भेदे लिखे नहीं, संयत शीलाराधन तत्पर ॥

अन्वयार्थ—सुसमाहिए = उत्तम समाधि वाला। संजए = साधु। तिविहेण = तीन प्रकार से। करण = करना, कराना, अनुमोदन और। जोएण = तीन योग—मन, वचन और काया से। पुढविं = पृथ्वी। भित्तिं सिलं लेलुं = भीत की दरार, शिला, तथा ढेले को। नेव भिंदे = भेदन नहीं करे, और। न संलिहे = उन पर रेखा नहीं खींचे।

भावार्थ—समाधिवन्त साधु, कृत, कारित, अनुमोदन से और मन, वचन, काया के योग से पृथ्वी, भित्ति, शिला, ढेला, मुरड का कंकर आदि विविध सचित्त पृथ्वी का भेदन नहीं करे, और उन पर रेखा नहीं खींचे, खोदने, तोड़ने आदि क्रियाओं से पृथ्वीकाय की विराधना नहीं करे।

**सुद्ध पुढवीए, न निसीए, ससरक्खम्मि य आसणे ।
पमज्जित्तु, निसीइज्जा, जाइत्ता जस्स उग्गहं ॥५॥**

हिन्दी पद्यानुवाद—

न बैठे शुद्ध धरा ऊपर, ना रजयुत आसन के ऊपर ।
परिमार्जन कर बैठे उस पर, भूमिपति की अनुमति लेकर ॥

अन्वयार्थ—सुद्ध पुढवीए = शुद्ध पृथ्वी, जो सचित्त है, उस पर। य = और। ससरक्खम्मि = सचित्त रज से संस्पृष्ट। आसणे = पाट आदि आसन पर। न निसीए (निसिए) = नहीं बैठे। पमज्जित्तु = अचित्त पृथ्वी पर बैठना हो तो प्रमार्जन करके। जस्स = जिसके निश्राय में हो उसकी। उग्गहं = अनुमति। जाइत्ता = लेकर। निसीइज्जा (निसीएज्जा) = बैठे।

भावार्थ—अपने शरीर की गर्मी से पृथ्वी के जीवों की विराधना न हो, इसलिये मुनि शुद्ध सचित्त पृथ्वी पर नहीं बैठे। फिर सचित्त रज से भरे—पाट आदि आसन पर भी नहीं बैठे। अचित्त भूमि पर भी बैठना हो तो वहाँ भी प्रमार्जन करके जिसके स्वामित्व में वह भूमि हो उसकी अनुमति प्राप्त करके यतना से बैठे।

सीओदगं न सेविज्जा, सिलावुट्ठं हिमाणि य ।
उसिणोदगं तत्तफासुयं, पडिगाहिज्ज संजए ॥६॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

शीतल जल सेवन करे नहीं, ओले वर्षा जल या हिम को ।
उष्ण-तप्त-प्रासुक जल जो हो, संयत ग्रहण करे उनको ॥

अन्वयार्थ-सीओदगं = सचित्त ठण्डे जल का । न सेविज्जा (सेवेज्जा) = सेवन नहीं करे । य = और । सिलावुट्ठं = शिला-ओले, वर्षा । हिमाणि = हिम-बर्फ को नहीं लेवे । उसिणोदगं = उष्ण जल । तत्तफासुयं = जो तपकर प्रासुक हो चुका है । संजए = संयमी गवेषणा कर । पडिगाहिज्ज (पडिगाहेज्ज) = उसको ग्रहण करे ।

भावार्थ-जल के सम्बन्ध में शास्त्रकारों ने कहा है कि संयमी साधु-सचित्त शीतल जल और ओले, वर्षा तथा हिम के पानी का सेवन नहीं करे । पानी जीवों का पिण्ड है । इसलिये संयम-प्रेमी मुनि तृषा का परीषह सहन करके भी सचित्त जल को ग्रहण नहीं करे । उष्ण जल, अग्नि पर तप कर जो निर्जीव हो चुका है, वैसा पानी और पाँचवें अध्ययन में जैसा अचित्त जल व धोवन का वर्णन किया गया है, वैसा अचित्त जल मुनि ग्रहण करे ।

उदउल्लं अप्पणो कायं, नेव पुंछे न संलिहे ।
समुप्पेह तहाभूयं, नो णं संघट्टए मुणी ॥७॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

जल से गीले अपने तन को, मुनि ना पोंछे व मले नहीं ।
निज आर्द्र-देह को देख श्रमण, छूए भी उसको कभी नहीं ॥

अन्वयार्थ-उदउल्लं = सचित्त जल से गीले । अप्पणो कायं = अपने शरीर को । नेव पुंछे = कभी पोंछे नहीं । न संलिहे = रेखा खींचे या मले नहीं । तहाभूयं = तथा-भूत यानी ऐसे गीले शरीर व वस्त्रादि को । समुप्पेह = देखकर । मुणी = मुनि । नो णं संघट्टए = उनका संघट्टन यानी स्पर्श भी नहीं करे ।

भावार्थ-वर्षा-काल में कभी कारणवश गमनागमन करते हुए मुनि का शरीर सचित्त पानी से गीला हो जाय, तो उस गीले शरीर आदि को पोंछना नहीं तथा हाथ से मलना भी नहीं । साधु तथाभूत यानी ऐसे सचित्त जल से गीले हुए शरीर आदि का संघट्टन भी नहीं करे । यानी जब तक शरीर स्वयमेव शुष्क न हो जाय, तब तक कोई क्रिया न करे ।

इंगालं अगणिं अच्चिं, अलायं वा सजोइयं ।
न उंजिज्जा न घट्टिज्जा, नो णं निव्वावए मुणी ॥८॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

अंगार अग्नि या अर्चि तथा, अधजला दारु जो अग्नि सहित ।
ना दीप्त और संस्पर्श करे, या उन्हें बनाये अग्नि रहित ॥

अन्वयार्थ-इंगालं = अंगार-जलते कोयले । अगणिं = अग्नि । अर्चि = अग्नि की ज्वाला ।
वा = अथवा । सजोइयं = अग्नि सहित । अलायं = तृण या लकड़ी के अग्रभाग पर जलती आग को । न
उंजिज्जा (उंजेज्जा) = प्रदीप्त करे नहीं । न घट्टिज्जा (घट्टेज्जा) = घर्षण करे नहीं । मुणी णं = मुनि,
उस अग्नि को । नो निव्वावए = बुझावे भी नहीं ।

भावार्थ-मुनि अग्निकाय की रक्षा के लिये, जलते हुए कोयले की अग्नि, अग्नि की ज्वाला, अग्नि
सहित लकड़ी को या तृणाग्रवर्ती आग को न प्रदीप्त करे, न घर्षण करे और न बुझावे । अग्नि का जलाना जैसे
हिंसा जनक है, वैसे ही उसका बुझाना भी हिंसा का कारण है । भगवती सूत्र में अग्नि के जलाने में महा आरम्भ
और बुझाने में अपेक्षाकृत अल्प आरम्भ बतलाया है ।

तालियंटेण पत्तेण, साहाए विहुयणेण वा ।
न वीइज्ज अप्पणो कायं, बाहिरं वा वि पुगलं ॥९॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

तालवृन्त या कमल पत्र से, शाखा के कम्पन से तन को ।
ना हवा करे अपने तन को, या किसी बाहरी पुद्गल को ॥

अन्वयार्थ-तालियंटेण = ताल पत्र के बीजणे से । पत्तेण = कदली केली आदि के पत्ते से । वा
= अथवा । साहाए विहुयणेण = शाखा और पंखे से या शाखा को धुजा (हिला) करके । अप्पणो कायं
= अपने शरीर को । वा = अथवा । बाहिरं = बाहर गर्म भोजन आदि । पुगलं (पोगलं) वि = किसी
पुद्गल को भी । न वीइज्ज (वीएज्ज) = हवा करे नहीं ।

भावार्थ-तेजस्काय के समान वायुकाय की हिंसा से भी बचने के लिये कहा गया है कि साधु
तालवृन्त, कदली-केले-केली आदि का पत्र, शाखा और पंखा चलाकर अपने शरीर, गर्म दूध, भोजन
आदि बाह्य पदार्थ को हवा नहीं करे । इस प्रकार की हवा से वायुकाय के असंख्य जीवों के अतिरिक्त, सूक्ष्म
त्रस की भी हिंसा होना सम्भव है । बिजली के पंखे से तो कई बार पक्षियों-चिड़ी, कबूतर आदि के मरने एवं
आदमी के हाथ आदि कटने तक की घटनाएँ हो चुकी हैं । अतः संयमी किसी प्रकार के पंखे से हवा नहीं करे ।

तण-रुक्खं न छिंदिज्जा, फलं मूलं व कस्सइ ।
आमगं विविहं बीयं, मणसा वि न पत्थए ॥१०॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

ना काटे तृण और तरुओं को, अथवा उनके फल मूलों को ।
हैं कच्चे विविध बीज जग में, मुनि मन से ना चाहे उनको ॥

अन्वयार्थ-तण-रुक्खं = तृण और वृक्ष का । न छिंदिज्जा = छेदन नहीं करे । फलं व = किसी वृक्ष के फल अथवा । कस्सइ मूलं = मूल को नहीं काटे । विविहं = विविध प्रकार के । आमगं = कच्चे सचित्त । बीयं = बीज को । मणसा वि = मन से भी । न पत्थए = नहीं चाहे ।

भावार्थ-साधु वनस्पति काय की रक्षा के लिये-किसी तृण और वृक्ष का छेदन नहीं करे तथा किसी वृक्ष के फल एवं मूल-फूल आदि को भी नहीं काटे । अनेक प्रकार के सचित्त बीजों का सेवन करने की मन से भी इच्छा नहीं करे । लोक में भी बीज का भोजन निषिद्ध माना गया है, क्योंकि वह एक बीज हजारों की वृद्धि का निमित्त होता है । बीज का नाश हजारों के नाश का कारण समझा जाता है ।

गहणेसु न चिट्ठिज्जा, बीएसु हरिएसु वा ।
उदगम्मि तहा णिच्चं, उत्तिंगपणगेसु वा ॥11॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

कानन कुंजों या बीजों पर, अथवा हरित काय ऊपर ।
मुनि वैसे नित्य वनस्पति पर, ना ठहरे लीलन फूलन पर ॥

अन्वयार्थ-गहणेसु = गहन वन कुंजों में । वा = अथवा । बीएसु = बीजों पर । हरिएसु तहा = हरित तथा । उदगम्मि = उदक नामक अनन्तकाय वनस्पति पर । उत्तिंग वा = सर्पछत्र और । पणगेसु = लीलन-फूलन काई पर । णिच्चं = साधु कभी । न चिट्ठिज्जा = न खड़ा रहे, न बैठे, न सोवे ।

भावार्थ-साधु वृक्ष-समूह के बीच अथवा बीज और दूब आदि हरित पर खड़ा नहीं रहे । उदक नाम की अनन्तकाय वनस्पति विशेष, सर्पछत्र तथा काई फूलन पर भी कभी खड़ा न रहे, न बैठे, न सोवे, न उन पर से होकर गमनागमन करे ।

तसे पाणे न हिंसिज्जा, वाया अदुव कम्मुणा ।
उवरओ सव्वभूएसु, पासिज्ज विविहं जगं ॥12॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

वाणी या काय योग से भी, त्रस प्राणी का वध नहीं करे ।
सब जीव-घात से उपरत हो, इस विविध जगत् का ध्यान धरे ॥

अन्वयार्थ-वाया = वचन । अदुव = अथवा । कम्मुणा = काय योग व मन से । तसे पाणे =

त्रस प्राणियों की। न हिंसिज्जा = हिंसा नहीं करे। सव्वभूएसु = सब प्राणिमात्र पर। उवरओ = हिंसा से उपरत हो। विविहं = नर नारकादि विविध। जगं = जगत् को। पासिज्ज = ज्ञान दृष्टि से आत्मवत् देखे।

भावार्थ—पृथ्वीकाय आदि पाँच स्थावरों के पश्चात् सूत्रकार कहते हैं कि वचन, काय और मन से त्रस जीवों की भी हिंसा नहीं करे। मुनि संसार के जीव मात्र पर हिंसा भाव से उपरत होकर नर-नारकादि चतुर्गतिक जगत् को ज्ञान-दृष्टि से आत्मवत् देखे। उनके दुःख को अपना दुःख समझे।

**अट्ट सुहुमाइं पेहाए, जाइं जाणित्तु संजए।
दयाहिगारी भूएसु, आस चिट्ठ सएहि वा ॥13॥**

हिन्दी पद्यानुवाद—

देख आठ इन सूक्ष्मों को, जिनको प्रज्ञा से जाने जो संजय।
सोए बैठे या खड़ा रहे, सब भूतों में वह सदा हृदय ॥

अन्वयार्थ—अट्ट = आठ। सुहुमाइं = सूक्ष्म शरीर वाले जीव हैं। जाइं = जिनको। पेहाए = बुद्धि से। जाणित्तु = जानकर। संजए = संयमी साधु। भूएसु = प्राणि मात्र पर। दयाहिगारी = दया का अधिकारी होकर। आस = बैठे। चिट्ठ = खड़ा रहे। वा = अथवा। सएहि = शयन करे।

भावार्थ—सम्पूर्ण प्राणि जगत् की दया पालने के लिये मनुष्य और पशुओं के समान सूक्ष्म शरीरी जीवों को भी जानना आवश्यक है। अतः शास्त्रकारों ने बतलाया है कि आठ प्रकार के सूक्ष्म शरीरी जीव हैं जिनको बुद्धि पूर्वक जानकर ही साधु प्राणि मात्र की दया का अधिकारी होता है। जो लोक व्यवहार में देखे जाने वाले स्थूल चेतना वाले जीवों के अतिरिक्त सूक्ष्म जीव और अप्रकट चेतना वाले स्थावर काय के जीवों में जीव तत्त्व नहीं मानते, वे उनकी रक्षा कैसे करेंगे ?

**कयराइं अट्ट सुहुमाइं, जाइं पुच्छिज्ज संजए।
इमाइं ताइं मेहावी, आयक्खिज्ज वियक्खणो ॥14॥**

हिन्दी पद्यानुवाद—

हैं कौन-कौन वे आठ सूक्ष्म, पूछे मुनि उनको गुरुजन से।
मेधावी और कुशल गुरुवर, हैं वे सब साफ कहेँ उनसे ॥

अन्वयार्थ—संजए = संयमवान् शिष्य ने। पुच्छिज्ज = पूछा कि। अट्टसुहुमाइं = वे आठ सूक्ष्म जीव। कयराइं = कौन से हैं। जाइं = जिनको जानकर साधु दया का अधिकारी होता है। वियक्खणो = विचक्षण। मेहावी = मेधावी गुरु। आयक्खिज्ज = उत्तर में कहते हैं। इमाइं ताइं = वे आठ सूक्ष्म ये हैं—

भावार्थ—शिष्य के पूछने पर कि वे आठ सूक्ष्म जीव कौन से हैं, जिनको जानकर साधक अहिंसा का पूर्ण पालन करने वाला होता है, मेधावी विचक्षण गुरु ने कहा कि वे आठ सूक्ष्म जीव आगे कहे जाते हैं, जिनका जीवदया के लिये ज्ञान करना परम आवश्यक है।

सिणेहं पुष्पसुहुमं च, पाणुत्तिंगं तहेव य ।

पणगं बीय हरियं च, अंडसुहुमं च अट्टमं ॥15॥

हिन्दी पद्यानुवाद—

स्नेह सूक्ष्म और पुष्प सूक्ष्म, या प्राणि उत्तिंग सूक्ष्म होते ।

पनक बीज और हरित सूक्ष्म, आठवें अण्ड सूक्ष्म होते ॥

अन्वयार्थ—सिणेहं = स्नेह सूक्ष्म । पुष्पसुहुमं = पुष्प सूक्ष्म । च = और । पाण = प्राण सूक्ष्म । तहेव उत्तिंगं य = तथा उत्तिंग सूक्ष्म और । पणगं = पनक सूक्ष्म । बीय = बीज सूक्ष्म । हरियं च = हरित सूक्ष्म और । च अट्टमं = और आठवाँ । अंड सुहुमं = अंड सूक्ष्म ।

भावार्थ—दृष्टिगोचर होने वाले त्रस जीवों के समान सूक्ष्म शरीर धारी जीवों की रक्षा का उपदेश देते हुए आठ प्रकार के सूक्ष्म बताये गये हैं । इनमें स्नेह सूक्ष्म 1, पुष्प सूक्ष्म 2, प्राण सूक्ष्म 3, उत्तिंग सूक्ष्म 4, पनक सूक्ष्म 5, बीज सूक्ष्म 6, हरित सूक्ष्म 7, और अण्ड सूक्ष्म 8 । प्राण और अण्ड दो त्रस और 6 स्थावर काय सूक्ष्म कहे हैं ।¹ चूर्णिकार ने आठ सूक्ष्म की व्याख्या में इस प्रकार लिखा है—

1. स्नेह सूक्ष्म पाँच प्रकार का है—ओस 1, हिम 2, महिका 3, करक 4 और हरतणु 5 ।
2. पुष्प सूक्ष्म में—बड, उंबर आदि के फूल, तथा ऐसे ही वर्ण वाले कठिनाई से देखे जाने वाले फूल गिने गये हैं ।
3. प्राण सूक्ष्म में—अनुद्धरी—कुंथु राशि जो चलने पर दिखती है, स्थिर अवस्था में ज्ञात नहीं होती, गिनी गई है ।
4. उत्तिंग सूक्ष्म में चींटी—कीड़ी नगरा का नगर अथवा जहाँ जो प्राणी कठिनाई से दृष्टिगोचर हों, सम्मिलित हैं ।
5. पनक सूक्ष्म—काई (पनक—लीलण—फूलण) । यह पाँच वर्ण की होती है, खासकर वर्षा—काल में उपकरण के समान रंग वाली होती है ।
6. बीज सूक्ष्म—सरसों और शालि आदि के मुखमूल पर होने वाली कर्णिका बीज सूक्ष्म कहलाती है ।

1. स्थानांग सूत्र का आठवाँ स्थान ।

7. हरित सूक्ष्म-तत्काल उत्पन्न, पृथ्वी के समान वर्ण वाला अंकुर, यह भी सहज दृष्टिगम्य नहीं होता ।
8. अंड सूक्ष्म-पाँच प्रकार का है-मधुमक्खी 1, कीड़ी 2, मकड़ी 3, ब्राह्मणी 4 और गिरगिट के अण्डे 5 ।

**एवमेयाणि जाणित्ता, सव्वभावेण संजए ।
अप्पमत्तो जए णिच्चं, सव्विंदिय समाहिए ॥16॥**

हिन्दी पद्यानुवाद-

सर्वभाव से संयत मुनि, ऐसे ही इन्हें जान करके ।
अप्रमत्त हो करें यत्न, सर्वदा स्व-इन्द्रिय वश करके ॥

अन्वयार्थ-एवमेयाणि = इस प्रकार इन आठ प्रकार के सूक्ष्मों को । सव्वभावेण = सब प्रकार से । जाणित्ता = जानकर । सव्विंदिय = सब इन्द्रियों के । समाहिए = संयमवाला । संजए = संयति-साधु । णिच्चं = सदा । अप्पमत्तो = अप्रमत्त यानी प्रमाद रहित होकर । जए = जीव रक्षा में यत्न करे ।

भावार्थ-संयमशील साधु इस प्रकार इन आठों सूक्ष्म जीवों को लिंग, जाति, स्वभाव आदि सब प्रकार से जानकर इन्द्रियों के शब्दादि विषयों से विरक्त एवं प्रमाद रहित होकर इन जीवों की यतना में सदा प्रयत्नशील रहे, सावधान रहे ।

**धुवं च पडिलेहिज्जा, जोगसा पायकंबलं ।
सिज्जमुच्चारभूमिं च, संथारं अदुवासणं ॥17॥**

हिन्दी पद्यानुवाद-

यथासमय प्रतिलेखन करना, कम्बल पात्र अन्यून अतिरिक्त ।
उच्चार भूमि शय्या आसन, संस्तारक का हो योग सहित ॥

अन्वयार्थ-पायकंबलं = पात्र, वस्त्र और कम्बल का । च = और । सिज्जं = शय्या-उपाश्रय का । उच्चारभूमिं = मल-मूत्रादि त्यागने की भूमि का । च = और । संथारं = संस्तारक भूमि बैठने के स्थान का । अदुव = अथवा । आसनं = आसन का मुनि । धुवं = नित्य यथा समय । जोगसा = प्रमाणोपेत अर्थात् विधि पूर्वक । पडिलेहिज्जा = प्रतिलेखन करे, अवलोकन करे ।

भावार्थ-जीव रक्षा के लिये साधु अपने पास की वस्तुओं का नित्य अवलोकन प्रतिलेखन करता है, जो इस प्रकार है-तीन प्रकार के काष्ठ, तुम्ब और मृणमय (मिट्टी) के पात्र, वस्त्र-कम्बल, उपाश्रय-रहने का

स्थान, मल-मूत्रादि त्यागने के स्थान तथा संथार-पाट आदि, आसन। मुनि उन्हें प्रतिदिन दोनों समय प्रमाणोपेत-हीनाधिकता रहित विधिपूर्वक देखे तथा इनका प्रमार्जन करे। (इनके प्रतिलेखन अवलोकन अथवा प्रमार्जन करने की विस्तृत विधि उत्तराध्ययन सूत्र के 26वें अध्ययन में बताई गई है।)

उच्चारं पासवणं खेलं, सिंघाणजल्लियं ।

फासुयं पडिलेहिता, परिट्ठाविज्ज संजए ॥18॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

मल मूत्र नाक के मल अथवा, कफ का संयत मुनि त्याग करे।

प्रासुक प्रदेश को देख-देख, परिष्ठापन का ध्यान धरे ॥

अन्वयार्थ-**फासुयं** = जीव रहित अचित्त भूमि को। **पडिलेहिता** = देखकर। **संजए** = संयमी साधु। **उच्चारं** = उच्चार-मल। **पासवणं** = लघुनीति। **खेलं** = कफ। **सिंघाण** = सिंघान-नाक का मल। **जल्लियं** = शरीर के मल-मेल आदि को। **परिट्ठाविज्ज** = अचित्त भूमि देखकर विधिपूर्वक परठे-उत्सर्ग करे।

भावार्थ-शरीर के मल को गिराने के लिये संयमी साधु को कहा गया है कि उसको वह जहाँ-तहाँ नहीं गिराए। उसके लिये उत्तराध्ययन के 24वें अध्ययन में विस्तार से कहा गया है। खासकर ऐसी जन्तु रहित भूमि पर जहाँ उत्सर्ग करने में किसी को पीड़ा न हो, मलादि उत्सर्ग का कथन किया गया है। मल, मूत्र, कफ, नासिका का मल, शरीर का मल, नख-केश आदि जो भी त्यागने योग्य पदार्थ हैं, उनको निर्जीव भूमि देखकर साधु यत्न से परिष्ठापन करे, गिराये।

पविसित्तु परागारं, पाणट्ठा भोयणस्स वा ।

जयं चिट्ठे मियं भासे, न य रूवेसु मणं करे ॥19॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

पान और भोजन कारण, करके प्रवेश संयत गृही-घर।

यतना से रुके अल्प बोले, मन दे न किसी वस्तु ऊपर ॥

अन्वयार्थ-**पाणट्ठा** = पानी। **वा** = अथवा। **भोयणस्स** = आहार के लिये। **परागारं** = गृहस्थ के घर में। **पविसित्तु** = प्रवेश करके साधु। **जयं चिट्ठे** = यतना से खड़ा रहे। **मियंभासे** = परिमित बोले। **य** = और। **रूवेसु** = घर में रही हुई नाना प्रकार की वस्तुओं के रूप पर। **मणं** = कभी मन। **न करे** = नहीं करे।

भावार्थ-भिक्षा जीवी होने से साधु को आवश्यक वस्तु के लिये गृहस्थ के घर जाना पड़ता है।

इसके लिये शास्त्र कहता है कि-आहार अथवा पानी आदि के लिये गृहस्थ के घर में प्रवेश करके साधु वहाँ घर में यतना से खड़ा रहे, आवश्यकतानुसार परिमित भाषण करे। इधर-उधर की बात नहीं करे। घर के विविध सामान और शृंगार-साधन तथा स्त्री आदि के सचित्त-अचित्त रूपों पर कभी ध्यान नहीं देवे। उन पर मन नहीं करे।

**बहुं सुणेइ कण्णेहिं, बहुं अच्छीहिं पिच्छइ ।
न य दिट्ठं सुयं सव्वं, भिक्खू अक्खाउमरिहइ ॥20॥**

हिन्दी पद्यानुवाद-

कानों से सुनते बहुत बात, आँखों से बहुत देखते हैं ।
देखा और सुना सब कुछ, मुनि कथन नहीं कर सकते हैं ॥

अन्वयार्थ-कण्णेहिं = साधु कानों से। बहुं = बहुत। सुणेइ = सुनता है। अच्छीहिं = आँखों से। बहुं = बहुत। पिच्छइ = देखता है, किन्तु। भिक्खू = साधु के लिये। सव्वं = सब कुछ। दिट्ठं = देखा। य = और। सुयं = सुना। न अक्खाउमरिहइ = उसका कथन करना योग्य नहीं होता।

भावार्थ-साधु छोटे-बड़े अनेक घरों में भिक्षार्थ जाता है। वह बहुत देखता और सुनता है, किन्तु उसकी मर्यादा है कि वह जो कुछ आँख से देखता और कानों से सुनता है उन सब देखी, सुनी बात को बाहर किसी को कहता नहीं। उसकी इस गम्भीरता और प्रामाणिकता से ही वह लोक में विश्वासपात्र माना जाता है।

मुनि मेतार्य के लिये कहा जाता है कि एक दिन वे भिक्षा लेने किसी स्वर्णकार के घर पहुँचे। स्वर्णकार सन्तों का भक्त था अतः मुनि को देखकर वह अपना काम छोड़कर भिक्षा देने के लिये मुनि के साथ घर के भीतर गया। बाहर सुवर्णमय जौ के दाने थाल में पड़े थे। अचानक एक मुर्गा आया। वह सुवर्ण के दानों को चुग गया। मुनि को भिक्षा देकर जब स्वर्णकार अपने स्थान पर लौटा तो उसे सुवर्ण के दाने नहीं दिखाई दिये। उसने इधर-उधर देखा पर कहीं दाने नहीं मिले तो उसने महाराज को आवाज देकर पूछा-“महाराज ! अभी आप आये तब मेरी दरी पर सुवर्णमय जौ के दाने पड़े थे, पर मैं आपको भिक्षा देकर तुरन्त ही वापिस आकर देखता हूँ कि सुवर्ण के जौ नहीं हैं। आपने किसी को लेते देखा हो तो बताओ ?” मुनि ने मुर्गे को उधर से निकलते देखकर भी इसलिये नहीं कहा कि इस मूक प्राणी को कष्ट होगा। स्वर्णकार के द्वारा दो-तीन बार पूछने पर भी जब मुनि कुछ नहीं बोले, तब स्वर्णकार ने उन्हीं को अपराधी मानकर, मुनि के सिर पर गीला चमड़ा बांधकर बाड़े में धूप वाले स्थान पर खड़ा कर दिया। ज्यों-ज्यों चमड़ा सूखता गया मुनि का कष्ट बढ़ता गया। फिर भी उन्होंने मुर्गे को दोषी नहीं बताया। सहसा इसी बीच एक लकड़ी बेचने वाला आया। सुनार ने वह लकड़ी की भारी खरीद ली। जब भील ने लकड़ी की भारी गिराई, तो भारी गिरने की तेज

आवाज से मुर्गे ने बीट कर दी। बीट में स्वर्णमय जौ ज्यों के त्यों निकल आये। स्वर्णकार जो चिन्तित था, उन जौ को देखकर घबराया और पश्चात्ताप करने लगा-अहो ! मैंने एक निरपराध मुनि को कठोर पीड़ा देकर बड़ा भारी अपराध किया है। उसने शीघ्र जाकर मुनि के सिर से चमड़ा हटाया पर तब तक तो मुनि का प्राणांत हो चुका था। इस तरह मुनि ने प्राण देकर भी देखी हुई घटना मुर्गे की दया के लिये नहीं बताई।

सुयं वा जइ वा दिट्ठं, न लविज्जोवघाइयं ।

न य केण उवाएण, गिहिजोगं समायरे ॥21॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

सुनी हुई अथवा देखी, पर-पीड़क जो बात कहीं।

ना कहे किसी युक्तिबल से भी, आचरण गृहस्थ सम करे नहीं ॥

अन्वयार्थ-सुयं वा = सुनी हुई अथवा। जइ वा दिट्ठं = देखी हुई अथवा। उवघाइयं = जो पीड़ाकारी हो। न लविज्ज = वैसी भाषा साधु नहीं बोले। य केण उवाएण = और किसी भी उपाय से। गिहिजोगं = गृहस्थ योग्य कर्म का। न समायरे = आचरण नहीं करे।

भावार्थ-साधु गृहस्थ के यहाँ देखी और सुनी हुई घटनाओं में से जो पर पीड़ा कारक हो, किसी को कुछ नहीं बतावे। किसी भी उपाय से, शादी-विवाह, व्यापार जैसा गृहस्थोचित कर्म का आचरण नहीं करे।

निट्ठाणं रसणिज्जूढं, भद्दगं पावगं ति वा ।

पुट्ठो वा वि अपुट्ठो वा, लाभालाभं न निदिसे ॥22॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

शोभन सरस विरस अथवा, भिक्षान्न अरुचिकर हों जैसे।

पूछे तथा बिना पूछे, ना कहे अलाभ लाभ वैसे ॥

अन्वयार्थ-निट्ठाणं = चटनी मसाला युक्त मिष्टान्न भोजन का। रसणिज्जूढं = जिससे रस निकल गया हो वैसे भोजन का। भद्दगं वा = सरस अथवा। पावगं ति = विरस। पुट्ठो वा वि = पूछने पर अथवा। अपुट्ठो = बिना पूछे। लाभालाभं = लाभ-अच्छा मिला अथवा कुछ नहीं मिला। न निदिसे = इस प्रकार का कोई कथन नहीं करे।

भावार्थ-भिक्षार्थ गया हुआ साधु भिक्षा में सरस मिले अथवा नीरस, अच्छा हो या बुरा, किन्तु साधु पूछने पर अथवा बिना पूछे लाभ हुआ या नहीं हुआ, इस प्रकार गृहस्थ की हल्की लगे वैसी बात नहीं कहे। क्योंकि संयमी मुनि-लाभालाभ में सन्तुष्ट होता है।

न य भोयणम्मि गिद्धो, चरे उंछं अयंपिरो ।
अफासुयं न भुंजिज्जा, कीयमुद्देसियमाहडं ॥23॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

अनासक्त कुल उच्च छोड़, श्लाघा निंदा से ना लाये ।
औद्देशिक क्रीत तथा आहत, अप्रासुक भोजन ना खाये ॥

अन्वयार्थ-भोयणम्मि = भोजन में । गिद्धो = गृद्ध होकर । उंछं न य = उच्चकुलों में नहीं । चरे = जावे । अयंपिरो = दाता की श्लाघा वा निन्दा नहीं करता हुआ सामूहिक भिक्षा हेतु जावे । अफासुयं = अप्रासुक सचित्त । कीयं = खरीद कर लाया हुआ । उद्देसियं = साधु के उद्देश्य से बनाया गया । आहडं = और सामने लाया हुआ, भूल से आ भी जाय तो भी ऐसा आहार मुनि । न भुंजिज्जा = न ले तथा न उसका सेवन करे ।

भावार्थ-भोजन में गृद्ध होकर साधु साधारण घरों को छोड़कर सम्पन्न-ऊँचे घरों में नहीं जावे, किन्तु बिना बोले थोड़ा-थोड़ा अनेक घरों से भिक्षा की गवेषणा करे । अप्रासुक-सचित्तादि और साधु को देने के लिये खरीदकर लाया हुआ, औद्देशिक-साधु के निमित्त बनाया हुआ तथा सामने लाया हुआ अन्नादि ग्रहण नहीं करे । कभी अज्ञात दशा में या अनजान में आ भी जाय और लेने के बाद पता चल जाय तो उसका उपयोग नहीं करे । विधिपूर्वक उसे अन्यत्र परठ दे ।

सन्निहिं च न कुव्विज्जा, अणुमायं पि संजए ।
मुहाजीवी असंबद्धे, हविज्ज जगनिस्सिए ॥24॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

अणु भर भी संनिधि करे नहीं, संयत इस धरती पर आकर ।
निर्लिप्त सकल प्राणी पालक, या रहे मुहाजीवी बनकर ॥

अन्वयार्थ-च = और । संजए = संयमी साधु । अणुमायं पि = अणुमात्र भी । सन्निहिं = घी, तेल, गुड़ आदि का संग्रह-रातबासी । न कुव्विज्जा = नहीं करे क्योंकि वह । मुहाजीवी = आहार के बदले गृहस्थ के प्रति सेवा या धन से रहित जीवन वाला । असंबद्धे = आहार या किसी घर से अलिप्त अथवा गृहस्थों के प्रतिबन्ध से मुक्त । जग = सामान्य रूप से जन साधारण के । निस्सिए = निश्चित । हविज्ज (होज्ज) = होता है ।

भावार्थ-भविष्य काल की चिन्ता से मुनि अणुमात्र अर्थात् अल्प मात्र घी, तेल, गुड़, भोजन आदि का भी संग्रह नहीं करे । रात को बासी भी नहीं रखे । साधु बिना किसी सेवा-विद्या आदि के बदले जीने वाले, घर

तथा आहार से अलिप्त, एवं अन्न-पानादि के लिये मुनि जन साधारण के आश्रित होता है। स्थानांग सूत्र के अनुसार-छह काय, गण, राजा, गृहपति और शरीर, इन पाँच की निश्रा में साधु के संयम की साधना होती है।

लूहवित्ती सुसंतुष्टे, अप्पिच्छे सुहरे सिया ।

आसुरत्तं न गच्छिज्जा, सुच्चा णं जिणसासणं ॥25॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

नीरस खाकर जीने वाला, सन्तुष्ट सुतृप्त अल्पकामी ।

जिनशासन की महिमा सुनकर, ना करे क्रोध मुनि सुज्ञानी ॥

अन्वयार्थ-लूहवित्ती = रूक्ष द्रव्यों से जीविका चलाने वाला साधु। **सुसंतुष्टे** = प्राप्त निर्दोष आहार में सन्तुष्ट रहने वाला। **अप्पिच्छे** = अल्प इच्छा वाला। **सुहरे** = सरलता से तृप्त होने वाला, जिसको तृप्त करना कठिन नहीं होता। **सिया** = हो और। **जिणसासणं** = जिन शासन को। **सुच्चा णं** = सुनकर। **आसुरत्तं** = क्रोध। **न गच्छिज्जा** = नहीं करने वाला हो।

भावार्थ-अच्छा साधु रूक्ष द्रव्यों से जीवन चलाने वाला, यथा लाभ सन्तुष्ट, अल्प इच्छा वाला होने से जिसको तृप्त करना सरल होता है, वह प्रतिकूल प्रसंग में भी जिनशासन के उपशम प्रधान वचनों को सुनकर क्रोध भाव को प्राप्त नहीं होता। जिनशासन में क्रोध को नारकीय कर्मबन्ध का प्रमुख कारण कहा है। क्रोध का निमित्त पाकर भी क्रोध नहीं करना, इसके लिये ज्ञान का आलम्बन लेना चाहिये। जैसे कहा है-

अक्कोसहणणमारण-धम्मभंसाण बालसुलभाण ।

लाभं मन्नति धीरो, जहुत्तराणं अभावमि ॥

अज्ञानियों के लिये साधु को क्रोध में गाली देना, मारना-पीटना और धर्मभ्रष्ट करना सुलभ है। साधु को कोई गाली दे, तो साधु सोचे कि यह गाली ही देता है, चलो पीटता तो नहीं। यदि कोई पीटे, तो साधु सोचे कि पीटा ही है, मारा तो नहीं है। मारने पर सोचे कि चलो इसने मेरा धर्म तो नहीं लूटा। इस प्रकार साधु ज्ञान-भाव से क्रोध का शमन करे। विशेष विवरण उत्तराध्ययन-सूत्र के दूसरे अध्ययन के आक्रोश-वध परीषह के प्रसंग में देखें।

कण्णसुक्खेहिं सदेहिं, पेमं नाभिनिवेसए ।

दारुणं कक्कसं फासं, काएण अहियासए ॥26॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

कानों के सुखकर शब्दों में, मुनि राग नहीं उत्पन्न करे ।

दारुण कठोर-प्रतिकूल स्पर्श, निज तन से मुनिजन सहन करे ॥

अन्वयार्थ—**कण्ण सुक्खेहिं** = कर्ण प्रिय-मधुर मनोहर । **सद्देहिं** = शब्दों से योग्य मुनि । **पेम्मं** = रागभाव । **नाभिनिवेसए** = प्राप्त नहीं करे तथा इसी तरह । **दारुणं** = दारुण-भयंकर । **कक्कसं** = कर्कश-कठोर । **फासं** = स्पर्श को । **काएण** = काया से । **अहियासए** = राग-द्वेष रहित होकर सहन करे ।

भावार्थ—जितेन्द्रिय समताधारी मुनि शब्दादि विषयों से विरक्त होता है । सुख दुःख का कारण राग है । इसलिये संयमी के लिये कहा गया है कि वह कर्णप्रिय-मृदु मनोहर शब्दों में राग कर उसमें रंगावे नहीं । वैसे ही दारुण-पीड़ाकारी कठोर स्पर्श को भी हर्षित मन से सहन कर ले । उत्तराध्ययन सूत्र के 32वें अध्ययन में कहा है कि—

सदे विरत्तो मणुओ विसोगो, एएण दुक्खोहपरंपरेण ।
न लिप्पइ भवमज्जे वि संतो, जलेण वा पोक्खरिणी पलासं ॥47॥

शब्द के विषय में राग रहित रहने वाला मनुष्य शोक मुक्त होकर संसार में रहते हुए भी इस दुःख-परम्परा में लिप्त नहीं होता । जैसे जलाशय में कमल का पत्ता जल में लिप्त नहीं होता । ऐसे ही अन्य रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि विषयों के लिये भी जानें ।

खुहं पिवासं दुस्सिज्जं, सीउण्हं अरइं भयं ।
अहियासे अव्वहिओ, देह दुक्खं महाफलं ॥27॥

हिन्दी पद्यानुवाद—

भूख प्यास और दुःशय्या, शीतोष्ण अरति एवं भय को ।
उद्वेग रहित हो सहन करे, देता तन का दुःख शुभ फल को ॥

अन्वयार्थ—**खुहं** = क्षुधा-भूख । **पिवासं** = पिपासा-प्यास । **दुस्सिज्जं** = विषम शय्या । **सीउण्हं** = सर्दी गर्मी-शीत उष्ण । **अरइं** = अरति और । **भयं** = सिंह, सर्प आदि के भय को । **अव्वहिओ** = (अदीन भाव से) साधु । **अहियासे** = सहन करे, दीनता नहीं लावे । **देहदुक्खं** = क्योंकि शरीर के कष्ट को सहन करना । **महाफलं** = महाफल का कारण है । इससे सहिष्णुता भी बढ़ती है ।

भावार्थ—साधु को सहिष्णुता की शिक्षा देते हुए कहा गया है कि भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी, विषम शय्या, और अरति तथा सप्त विध भयों को मुनि बिना व्यथा के अदीन भाव से सहन करे, क्योंकि शरीर के दुःख को सहन करना महालाभ का कारण है, यानी मोक्ष का कारण है । वास्तव में साधु “पुढवीसमे मुणी हविज्जा” पृथ्वी के समान समभाव से सुख-दुःख को सहने वाला होता है ।

अत्थंगयम्मि आइच्चे, पुरत्था य अणुग्गए ।
आहारमाइयं सव्वं, मणसा वि न पत्थए ॥28॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

सूर्य डूबने के पीछे या, उदयकाल से पूर्व कहीं ।
आहार आदि सब कुछ मन से, लेने की इच्छा करे नहीं ॥

अन्वयार्थ-आइच्चे = सूर्य के । अत्थंगयम्पि = अस्त हो जाने पर । य = और । पुरत्था = पूर्व दिशा से । अणुगए = उदित नहीं होने तक । आहारमाइयं = अशन-पान खाद्य-स्वाद्य आदि । सव्वं = सब प्रकार का आहार साधु । मणसा = मन से । वि न = भी नहीं । पत्थए = चाहे ।

भावार्थ-साधु सूर्य अस्त होने पर और प्रातःकाल पूर्व दिशा में सूर्य का उदय न हो जाय तब तक अशन पान आदि सब प्रकार के आहार का सेवन करना तो दूर की बात है, किन्तु मन से ग्रहण करने की भी इच्छा नहीं करे ।

अतिंतिणे अचवले, अप्पभासी मियासणे ।
हविज्ज उअरे दंते, थोवं लद्धुं न खिंसए ॥29॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

अतिंतिण अचपल, मितभाषी, अल्पाशी जो हैं जहाँ श्रमण ।
जो उदर दमन करने वाले, पा थोड़ा क्रोध न लाये मन ॥

अन्वयार्थ-अतिंतिणे = साधु अरस या अल्प आहार मिलने पर तुनतुन यानी प्रलाप नहीं करता । अचवले = चंचलता रहित । अप्पभासी = अल्प भाषी और । मियासणे = मितभोजी । उअरे = आहार की इच्छा का । दंते = दमन करने वाला । हविज्ज = होता है । थोवं = वह साधु थोड़ा । लद्धुं = प्राप्त होने पर । न खिंसए = गृहस्थ की निंदा भी नहीं करता ।

भावार्थ-भिक्षार्थ गृहस्थ के घर गया हुआ साधु, इच्छित आहार नहीं मिलने पर या अल्प मिलने पर प्रलाप (तुन तुन) नहीं करता । चपलता रहित, आवश्यकतानुसार अल्पभाषी, परिमित भोजी और उदर के सम्बन्ध में यथा लाभ सन्तुष्ट रहने वाला होता है । थोड़ा पाकर भी गृहस्थ की निंदा नहीं करता । 'तवोत्ति अहियासए' इस शास्त्र वचन के अनुसार उसे तप समझकर शान्त मन से सहन करता है ।

न बाहिरं परिभवे, अत्ताणं न समुक्कसे ।
सुअलाभे न मज्जिज्जा, जच्चा तवस्सि बुद्धिए ॥30॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

मुनि करे न पर का तिरस्कार, और आत्म-प्रशंसा करे नहीं ।
श्रुतलाभ जाति से या तप से, अथवा मति से मद करे नहीं ॥

अन्वयार्थ—बाहिरं = अपने से भिन्न दूसरे का। परिभवे = अनादर। न = नहीं करे। अत्ताणं = अपना। समुक्कसे = उत्कर्ष-ऊँचापन। न = नहीं दिखावे। सुअ (सुय) = श्रुतज्ञान एवं। जच्चा तवस्सि बुद्धि = उच्चजाति, तपस्या और बुद्धि के। लाभे = लाभ का। न मज्जिज्जा = मद नहीं करे।

भावार्थ—मुनि दूसरों का तिरस्कार अथवा अनादर नहीं करे। अर्थात् कुल, बल, रूप, तप, बुद्धि, जाति एवं ऐश्वर्य आदि का किसी भी प्रकार का मद मुनि न करे। अपनी बड़ाई नहीं करे। श्रुतज्ञान का बल पाकर मेरे समान शास्त्रज्ञ कौन है ऐसा मान नहीं करे। इसी प्रकार मेरे समान लब्धिमान्, उच्च जातिमान्, तपस्या और बुद्धि में मेरे समान कौन है, ऐसा गर्व नहीं करे। गर्व करने से नीच गोत्र कर्म का बन्ध होता है। अतः साधु को किसी प्रकार का मद नहीं करना चाहिये।

**से जाणमजाणं वा, कट्टु आहम्मियं पयं ।
संवरे खिप्पमप्पाणं, बीयं तं न समायरे ॥31॥**

हिन्दी पद्यानुवाद—

जाने या अनजाने में, यदि धर्म हीन मुनि कर्म करे।
ले उससे निज को शीघ्र हटा, ना दुहराकर वह कर्म करे ॥

अन्वयार्थ—से = वह साधु। जाणं = जानपन से। वा अजाणं = अथवा अजानपन से। आहम्मियं = कोई धर्म विरुद्ध। पयं = कार्य। कट्टु = कर बैठे तो वैसा करके। खिप्पं = शीघ्र ही। अप्पाणं = अपनी आत्मा को पाप से। संवरे = दूर कर ले। तं = उस पर। बीयं = दूसरी बार। न समायरे = आचरण नहीं करे।

भावार्थ—साधु शुद्धिप्रिय होता है। वह दोषों से सदा दूर रहना चाहता है। इसलिये कभी जानते हुए या अनजान स्थिति में कोई धर्म विरुद्ध कार्य उससे हो जाय तो वह तत्काल अपने आपको दोष से दूर कर लेता है और दूसरी बार वैसे दोष का सेवन नहीं करता है। शुद्धि करने का प्रकार बतलाते हैं—

**अणायारं परक्कम्म, नेव गूहे न णिणहवे ।
सुई सया वियडभावे, असंसत्ते जिइंदिए ॥32॥**

हिन्दी पद्यानुवाद—

अनाचार का सेवन कर, नहीं गोपे न अस्वीकार करे।
निर्मल सरल मन दोष रहित, मुनि दान्तगुणी होकर विचरे ॥

अन्वयार्थ—अणायारं = अनाचार-धर्म विरुद्ध कार्य का। परक्कम्म = कभी सेवन हो जाये तो। न एव गूहे = उसे गुरु के पास अधूरा कहकर न छिपावे। न णिणहवे = न असली बात को अस्वीकार करे यानी अपने अनाचार को स्पष्ट रूप से सरल मन से स्वीकार कर ले। सया = सदा। सुई = निर्मल मति

वाला । जिइंदिए = जितेन्द्रिय मुनि । वियडभावे = शुद्ध हृदय से गुरु के समक्ष अपना धर्म विरुद्ध कार्य प्रकट कर दे । असंसत्ते = दोष का संसर्ग नहीं रखे ।

भावार्थ—नहीं चाहते हुए भी कभी साधु से धर्म विरुद्ध अनाचार का सेवन हो जाय तो उसे ऊँचा-नीचा कहकर छिपाने की चेष्टा नहीं करे और चूक (भूल) को अस्वीकार भी नहीं करे । किन्तु जैसा हो वैसा गुरु के समक्ष बालक की तरह सरल भाव से दोष की आलोचना कर गुरुदत्त प्रायश्चित्त से अपनी आत्मा को शुद्ध करले । क्योंकि सरल मन से दोष की आलोचना करने वाला ही आराधक होता है ।

अमोहं वयणं कुज्जा, आयरियस्स महप्पणो ।

तं परिगिज्झ वायाए, कम्मणा उववायए ॥३३॥

हिन्दी पद्यानुवाद—

पूजनीय आचार्य वचन को, सफल बनाये शिष्य सदा ।

तहत्ति कर ग्रहण करे उसको, कार्यों में पालन करे सदा ॥

अन्वयार्थ—आयरियस्स = आचार्य । महप्पणो = महाराज के । वयणं = वचन को । अमोहं = व्यर्थ न । कुज्जा = जाने दे । तं = उस आज्ञा को । परिगिज्झ वायाए = वचन से तहत्ति बोलकर स्वीकार करे । कम्मणा = और क्रियात्मक रूप में । उववायए = उसे परिणत करे । गुरु आज्ञा का पूर्ण रूप से पालन करे ।

भावार्थ—विनीत शिष्य संयमनिष्ठ आचार्य महाराज की आज्ञा को व्यर्थ नहीं जाने दे । आज्ञा को 'तथास्तु' ऐसा आदर सूचक वचन कहकर स्वीकार करे और जैसा करने को कहा है, उसी प्रकार उसे क्रिया में उतारे—वैसा ही आचरण करे । गुरु वचनों के यथार्थ पालन से आचार में तेजस्विता आती है ।

अधुवं जीवियं णच्चा, सिद्धिमगं वियाणिया ।

विणियट्टिज्ज भोएसु, आउं परिमियमप्पणो ॥३४॥

हिन्दी पद्यानुवाद—

जान विनश्वर जीवन मुनि, और मोक्ष मार्ग का निश्चय कर ।

परिमित अपनी आयु को जान, जीए मुनि भोग विरत बन कर ॥

अन्वयार्थ—अप्पणो = अपने । जीवियं = जीवन को । अधुवं = नश्वर-अस्थायी और । आउं = आयुकाल को । परिमियं = परिमित । णच्चा = जानकर, समझकर । सिद्धिमगं = ज्ञान-क्रियात्मक मोक्ष-मार्ग का । वियाणिया = सम्यग् परिज्ञान करके । भोएसु = मुमुक्षु भोगों से । विणियट्टिज्ज = निवृत्ति करे ।

भावार्थ—मुमुक्षु साधक अपने जीवन को क्षण भंगुर एवं विनश्वर जानकर, अपने आयु काल को परिमित समझकर एवं रोग और शोक से आक्रान्त देखकर, अविनश्वर मोक्ष के रत्नत्रयात्मक मार्ग का ज्ञान प्राप्त करके शब्दादि काम सुखों से निवृत्त होवे।

**बलं थामं च पेहाए, सद्धामारोगमप्पणो ।
खित्तं कालं च विण्णाय, तहप्पाणं निजुंजए ॥३५॥**

हिन्दी पद्यानुवाद—

देख स्वयं के तन मन बल को, श्रद्धा और स्वास्थ्य श्रमण तोले ।
कर ज्ञान क्षेत्र कालादिक का, अपने को उसी तरह जोड़े ॥

अन्वयार्थ—बलं = शरीर का बल । च = और । थामं = पराक्रम, मनोबल और । अप्पणो = अपने । सद्धां = श्रद्धा । आरोगं = आरोग्य को । पेहाए = देखकर । खित्तं = क्षेत्र । च = और । कालं = काल । तह = तथा अपनी परिस्थिति को । विण्णाय = जानकर-साधक । अप्पाणं = अपनी आत्मा को । निजुंजए = संयम पथ पर नियुक्त करे ।

भावार्थ—मुमुक्षु को प्रेरणा देते हुए महर्षि कहते हैं—अपने तन बल, मनबल, पराक्रम, अपनी दृढ़ता एवं आरोग्य को जानकर और क्षेत्र तथा काल की अनुकूलता-प्रतिकूलता को देखकर मुमुक्षु साधक अपने आपको संयम की साधना में नियोजित करे ।

उचित शक्ति पाकर कार्य नहीं करने वाला पश्चात्ताप का भागी होता है । किसी ने बल पाकर सेवा और तपस्या नहीं की, बुद्धि पाकर शास्त्र का अभ्यास नहीं किया और धन पाकर उचित क्षेत्र में दान नहीं दिया तो उसे पछताना पड़ता है । वैसे ही अपनी शक्ति के उपरान्त केवल देखा-देखी एक को तप करते देखा तो स्वयं ने भी चालू कर दिया, यह भी लाभकारी नहीं होता । विवेकी पुरुष को चाहिये कि योग्य साधनों को पाकर विवेक पूर्वक उनका सदुपयोग करने में प्रमाद नहीं करे ।

**जरा जाव न पीलेइ, वाही जाव न वड्डइ ।
जाविंदिया न हायंति, ताव धम्मं समायरे ॥३६॥**

हिन्दी पद्यानुवाद—

जब तक न बुढ़ापा पीड़ा दे, और रोग नहीं बढ़ता तन में ।
जब तक इन्द्रिय बल क्षीण न हो, तब तक रमण कर लो धर्म में ॥

अन्वयार्थ—जाव = जब तक । जरा = वृद्धावस्था । न पीलेइ = शरीर को पीड़ा नहीं देती-जीर्ण नहीं करती । वाही = व्याधि । जाव = जब तक । न वड्डइ = तन में नहीं फैलती । जाविंदिया = श्रोत्र,

चक्षु आदि इन्द्रियाँ जब तक । न हायंति = क्षीण नहीं होतीं । ताव = तब तक । धम्मं = सम्यग् श्रुतचारित्र रूप धर्म का । समायरे = आचरण कर लेना चाहिये ।

भावार्थ—जब तक वृद्धावस्था शरीर को बलहीन नहीं कर देती और विविध प्रकार की व्याधियाँ जो तन में दबी पड़ी हैं, वे जब तक फैल नहीं जातीं और श्रोत्र आदि इन्द्रियाँ जब तक क्षीण नहीं होतीं, तब तक धर्म की आराधना हो सकती है । जब शरीर शिथिल हो जाएगा और इन्द्रियाँ काम करने में सक्षम नहीं रहेंगी, तब इच्छा होते हुए भी सेवा-भक्ति और व्रत रूप धर्म की आराधना नहीं कर सकोगे ।

कोहं माणं च मायं च, लोभं च पाववड्ढणं ।

वमे चत्तारि दोसे उ, इच्छंतो हियमप्पणो ॥३७॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

क्रोध मान माया एवं, है लोभ पापवर्द्धक जग में ।

जो चाहते हैं अपने हित को, ये चार दोष तज दें भव में ॥

अन्वयार्थ—अप्पणो = अपना । हियं = हित । इच्छंतो = चाहने वाले को । पाववड्ढणं = पाप की वृद्धि करने वाले । कोहं च = क्रोध और । माणं च = मान और । मायं च = माया व । लोभं = लोभ । चत्तारि दोसे उ = इन चार दोषों का अवश्य । वमे = त्याग कर देना चाहिये ।

भावार्थ—जिसको अपना हित साधन करना है, उसके लिये आवश्यक है कि सब पापों के मूल, क्रोध, मान-अहंकार, कपट और लोभ-लालच इन चार दोषों का, जिनको कषाय कहते हैं, परित्याग कर दे । कषाय, जन्म-मरण को बढ़ाने वाले हैं तथा मन-मस्तक को तपाने वाले हैं । अनशन आदि बाह्य तपस्या के साथ क्रोध आदि कषायों का उपशम किया जाय तो महालाभ का कारण हो सकता है ।

कोहो पीडं पणासेइ, माणो विणयणासणो ।

माया मित्ताणि णासेइ, लोभो सव्वविणासणो ॥३८॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

क्रोध प्रीति का नाशक है, और मान विनय का है नाशक ।

मित्रता की माया नाशक है, और लोभ सभी का है नाशक ॥

अन्वयार्थ—कोहो = क्रोध । पीडं पणासेइ = प्रीति को नष्ट करता है । माणो = मान । विणयणासणो = विनय गुण को नष्ट करने वाला है । माया = माया-कपट । मित्ताणि = मित्रता को । णासेइ = समाप्त करती है और । लोभो = लोभ । सव्व = सब सद्गुणों का । विणासणो = नाश करने वाला है ।

भावार्थ—संसार के विविध विषों में क्रोध सबसे बड़ा विष है। इससे प्रीति नष्ट होती है और ज्ञानादि गुण बिना आग के ही भस्म हो जाते हैं। मान—जहाँ घमण्ड है वहाँ पूज्य पुरुषों का विनय नहीं टिकता। वर्षों शिष्यभाव से सेवा में रहने वाला जमालि, इस अहंकार के कारण ही गुरु द्रोही—कुशिष्य हो गया। माया, मैत्री भाव को नष्ट करती है और लोभ सभी सद्गुणों का विनाश करने वाला है।

**उवसमेण हणे कोहं, माणं मद्दवया जिणे ।
मायं चज्जवभावेण, लोभं संतोसओ जिणे ॥३९॥**

हिन्दी पद्यानुवाद—

उपशम से क्रोध भाव जीते, मृदुता से जीते मान सदा ।
ऋजुता से माया को जीते, संतोष भाव से लोभ सदा ॥

अन्वयार्थ—कोहं = क्रोध को। उवसमेण = उपशम यानी क्षमा भाव से। हणे = नष्ट करे। मद्दवया = मार्दव भाव से। माणं जिणे = मान (गर्व) पर विजय प्राप्त करे। च = और। अज्जवभावेण = सरल भाव से। मायं = कपट पर विजय पाए। लोभं = लोभ को। संतोसओ = संतोष वृत्ति से। जिणे = जीते।

भावार्थ—प्रेम या उपशम भाव से क्रोध को हटाया जाता है। मार्दव भाव से मान को जीता जाता है और आर्जव—सरल भाव से माया पर और सन्तोष से लोभ पर विजय पाई जाती है। उदाहरण के रूप में सुदर्शन कुमार के उपशम भाव के सम्मुख अर्जुन के शरीर का यक्ष शान्त हो गया। दशार्णभद्र के मार्दव भाव ने इन्द्र के मान को खण्डित कर दिया। महावीर की सरलता के सम्मुख—पण्डित सोमिल की माया चूर—चूर हो गयी। कपिल के मन की लालसा को सन्तोष भाव ने हवा में उड़ा दिया।

**कोहो या माणो य अणिग्गहीया, माया य लोहो य पवड्ढमाणा ।
चत्तारि एए कसिणा कसाया, सिंचंति मूलाइ पुणब्भवस्स ॥४०॥**

हिन्दी पद्यानुवाद—

हैं क्रोध मान अविजित जिसके, और माया लोभ बढ़े जिसके।
चारों कषाय ये सींच रहे, जगती में मूल पुनर्भव उसके ॥

अन्वयार्थ—अणिग्गहीया = उपशम और विनय भाव से अनिग्रहीत। कोहो य माणो = क्रोध और मान तथा। पवड्ढमाणा = निरंकुशता से बढ़ते हुए। य = और। माया य लोहो = माया और लोभ भाव। य = और। ए = ये। कसिणा = आत्मा को मलिन करने वाले। चत्तारि = चार। कसाया = कषाय। पुणब्भवस्स = पुनर्भव रूप संसार के। मूलाइ सिंचंति = मूल का सिंचन करते हैं।

भावार्थ—क्रोध आदि कषाय संसार-वृक्ष को बढ़ाने वाले हैं। अतः कहा है कि उपशम और विनय से अनियन्त्रित क्रोध और मान तथा बढ़ते हुए माया और लोभ के कलुषित भाव ये चारों मलिन कषाय जन्म-मरण रूप संसार वृक्ष के मूल का सिंचन करने वाले हैं। मुमुक्षु को सदा सावधान मन से इनका निग्रह करना चाहिये।

रायणिएसु विणयं पउंजे, धुवसीलयं सययं न हावइज्जा ।

कुम्मुव्व अल्लीण पलीण गुत्तो, परक्कमिज्जा तवसंजमम्मि ॥41॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

रत्नाधिक में विनय करे, अष्टादश सहस्र शील पाले।

कच्छपवत् अंग छिपा रखे, तप संयम में मन को डाले ॥

अन्वयार्थ—रायणिएसु = रत्नाधिक चारित्र वृद्ध एवं ज्ञानवृद्ध साधुओं में। **विणयं** = विनय का। **पउंजे** = प्रयोग करे। **धुवसीलयं** = ध्रुवशीलता को अर्थात् अठारह हजार शीलांग की रक्षा को। **सययं** = कभी। **न हावइज्जा** = कम नहीं होने दे। **कुम्मुव्व** = कछुए के समान। **अल्लीणपलीणगुत्तो** = इन्द्रियों को वश में रखने वाला। **तव संजमम्मि** = तप संयम में। **परक्कमिज्जा** = अपना पराक्रम दिखावे।

भावार्थ—जिन शासन की मर्यादा में वय, वैभव और उच्चकुल की अपेक्षा भी चारित्र की महिमा अधिक मानी गई है। व्रतियों में छोटे-बड़े का क्रम भी चारित्र पर्याय से ही माना जाता है। इस दृष्टि से शास्त्रकारों ने कहा कि दीक्षा वृद्ध साधुओं में वन्दन-विनय का प्रयोग करो एवं ध्रुवशीलता को कभी कम मत होने दो। कच्छप के समान अपने अंग और इन्द्रियों को वश में रखकर, तप-संयम में अपनी शक्ति लगाते रहो, उसमें अपना पराक्रम दिखाते रहो।

निदं च न बहु मणिज्जा, सप्पहासं विवज्जए ।

मिहो कहाहिं न रमे, सज्झायम्मि रओ सया ॥42॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

निद्रा को अधिक सम्मान न दे, और अट्टहास का त्याग करे।

आसक्त न लोक कथा में हो, स्वाध्याय आदि में ध्यान धरे ॥

अन्वयार्थ—निदं = निद्रा को। **बहु मणिज्जा** = अधिक आदर। **न** = नहीं दे। **च** = और। **सप्पहासं** = अट्टहास का। **विवज्जए** = वर्जन करे। **मिहो कहाहिं** = आत्मार्थी साधक परस्पर विकथाओं के सुनने, कहने में। **न रमे** = रमण नहीं करे, किन्तु। **सया** = सदा। **सज्झायम्मि** = स्वाध्याय में। **रओ** = रत रहें।

भावार्थ—साधु निद्रा को अधिक आदर नहीं दे। प्रतिक्रमण में प्रतिदिन ‘पगाम सिज्जाए, निगाम सिज्जाए’ पाठ से इसकी आलोचना की जाती है। हँसी मजाक या अट्टहास नहीं करे। परस्पर इधर-उधर की कथा वार्ता में समय नहीं गँवाते-खोते हुए, वाचना, पृच्छा रूप स्वाध्याय में सदा रमण करे। नीतिकारों ने बुद्धिमान् की पहचान में यही कहा है कि—“काव्य शास्त्रविनोदेन, कालो गच्छति धीमताम्।” विद्वानों का समय काव्य-शास्त्र के विनोद में जाता है। वैसे धर्मानुरागी श्रमणों को स्वाध्याय के अनुशीलन और चिन्तन में ही सदा तत्पर रहना चाहिए।

**जोगं च समणधम्मम्मि, जुंजे अणलसो धुवं ।
जुत्तो य समणधम्मम्मि, अट्ठं लहइ अणुत्तरं ॥43॥**

हिन्दी पद्यानुवाद—

आलस्य शून्य होकर निश्चय, दश श्रमण धर्म में लीन रहे।
सर्वोत्तम फल वह प्राप्त करे, जो श्रमण धर्म में लगा रहे ॥

अन्वयार्थ—अणलसो = साधु आलस्य रहित होकर। च = और। समणधम्मम्मि = श्रमण धर्म में। जोगं = मन, वाणी और काया योग को। धुवं = अखण्डित। जुंजे = जोड़े। य = और। समणधम्मम्मि = क्षान्ति आदि श्रमण धर्म में। जुत्तो = जुड़ा हुआ मुनि। अणुत्तरं = मुक्ति रूप सर्वश्रेष्ठ। अट्ठं = अर्थ को। लहइ = प्राप्त करता है।

भावार्थ—मुमुक्षु श्रमण आलस्य रहित होकर क्षान्ति, मुक्ति, आर्जव, मार्दव, लाघव, सत्य, संयम, तप, त्याग, ब्रह्मचर्यवास रूप श्रमण धर्म में निरन्तर मन, वाणी एवं काय योग को जोड़े रहें। जो श्रमण धर्म में संलग्न होता है वह सर्वश्रेष्ठ मोक्ष रूप अर्थ को प्राप्त करता है। दशविध धर्म की साधना से संचित कर्मों का क्षय और आने वाले कर्मों का पूर्ण निरोध होता है।

**इहलोग पारत्तहियं, जेणं गच्छइ सुग्गइं ।
बहुस्सुयं पज्जुवासिज्जा, पुच्छिज्जत्थ विणिच्छयं ॥44॥**

हिन्दी पद्यानुवाद—

जो उभयलोक का हितकर है, जिससे है सुगति प्राप्त होती।
उस निश्चयार्थ के बारे में, गुरु सेवा आवश्यक होती ॥

अन्वयार्थ—जेणं = जिस ज्ञान से। इहलोग = इस लोक और। पारत्तहियं = परलोक में हित होता है और साधक। सुग्गइं = सुगति। गच्छइ = प्राप्त करता है। जेणं = उसके लिये। बहुस्सुयं = बहुश्रुत की। पज्जुवासिज्जा = पर्युपासना करे और उनसे। पुच्छिज्जत्थ = तत्त्व का अर्थ पूछकर। विणिच्छयं = निश्चय करें।

भावार्थ—जो शास्त्रार्थ के गम्भीर ज्ञाता हैं, उनकी पर्युपासना से ही अनुत्तर अर्थ की प्राप्ति होती है। तीर्थङ्करों के समय में जब किसी को दीक्षित किया जाता था, तब उसे ज्ञान-प्राप्ति के लिये स्थविरों के पास रक्खा जाता था। “थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइ एकारस अंगाइं अहिज्जइ।” इस पाठ से ज्ञान-प्राप्ति के लिए बहुश्रुत-स्थविरों की उपासना करने की पद्धति प्राचीन काल से सिद्ध होती है। ज्ञानार्थी को उभयलोक में हितकारी और जिससे सुगति की प्राप्ति होती है, उस तात्पर्य के लिये जिज्ञासु को बहुश्रुत की उपासना करनी चाहिये।

हत्थं पायं च कायं च, पणिहाय जिइंदिए।

अल्लीणगुत्तो निसीए, सगासे गुरुणो मुणी ॥45॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

हाथ पैर और काया को, मुनि संयम में जोड़े रखकर।

गुरु के समीप में जा बैठे, मन वचन काय का रक्षण कर॥

अन्वयार्थ—हत्थं = हाथ। पायं च = और पैर। कायं च = और शरीर को। पणिहाय = संयम में रखकर। जिइंदिए = जितेन्द्रिय मुनि। अल्लीण = गुरु चरणों में मर्यादा से बैठने वाला। गुत्तो = गुरु आज्ञा में दत्तचित्त-गुप्त हो। मुणी = मुनि। गुरुणो सगासे = गुरु के समीप। निसीए = बैठे।

भावार्थ—गुरु के पास कैसे बैठना, इसकी विधि बतलाते हुए कहा है कि—विनीत शिष्य हाथ; पैर और शरीर, के अंगोपाङ्गों को संयम में रखकर जितेन्द्रिय गुरुचरणों में बैठने की मर्यादा को जानकर, यानी गुरु आज्ञा में दत्तचित्त होकर वचन गुप्ति एवं विधि पूर्वक गुरु के समीप बैठे।

न पक्खओ न पुरओ, नेव किच्चाण पिट्ठओ।

न य उरुं समासिज्जा, चिट्ठिज्जा गुरुणंतिए ॥46॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

न अगल बगल या आगे में, ना उन्हें पीठ पीछे में कर।

गुरु के समीप में बैठे मुनि, ना जंघा पर जंघा रखकर॥

अन्वयार्थ—पक्खओ = गुरु के पार्श्व भाग में यानी बराबर में। न = नहीं बैठे। पुरओ न = आगे भी नहीं बैठे। किच्चाण = आचार्यों के। पिट्ठओ = पीछे भी सटकर। नेव = नहीं बैठे। न य = और न। उरुं = उरु से उरु (जंघा)। समासिज्जा = लगा कर अर्थात् जंघा अड़ा कर। गुरुणंतिए = गुरु के समीप। चिट्ठिज्जा = बैठे।

भावार्थ—गुरु के समीप बैठते हुए शिष्य को यह ध्यान रखना चाहिये कि वह गुरु के बराबर में नहीं बैठे, जिससे कि उनके चिन्तन में बाधा पड़े। आगे इसलिये न बैठे कि आगे बैठने से गुरु को वंदना करने वाले दूसरे शिष्यों को व भक्तों को व्यवधान होगा। पीछे भी, अधिक निकट बैठने से अविनय होगा। जंघा से जंघा अड़ाकर बैठने से भी गुरु की आशातना की सम्भावना रहती है। अतः विनीत शिष्य को विवेक पूर्वक शिष्टता से बैठना चाहिये। ताकि गुरुदेव के इंगिताकार को वह देख सके और किसी को किसी प्रकार का व्यवधान भी नहीं हो। विशेष विवेचन उत्तराध्ययन सूत्र के प्रथम अध्ययन आदि में देखना चाहिये।

**अपुच्छिओ न भासिज्जा, भासमाणस्स अंतरा ।
पिट्ठिमंसं न खाइज्जा, मायामोसं विवज्जए ॥४७॥**

हिन्दी पद्यानुवाद—

ना बोले कभी बिना पूछे, या भाषण बीच नहीं बोले ।
चुगली या निन्दा करे नहीं, मायामय झूठ नहीं बोले ॥

अन्वयार्थ—अपुच्छिओ = बिना पूछे गुरु के समक्ष। न भासिज्जा = नहीं बोले। भासमाणस्स = गुरुदेव किसी से बात करते हों तब। अंतरा = बीच में नहीं बोले। पिट्ठिमंसं = पृष्ठ मांस—चुगली तथा निन्दा। न खाइज्जा = नहीं करे। माया मोसं = माया—मृषा—कपटपूर्ण झूठ का। विवज्जए = वर्जन करे।

भावार्थ—शिष्टाचार की शिक्षा देते हुए शास्त्रकारों ने कहा है—बिना पूछे गुरु के समक्ष मत बोलो और गुरु किसी के साथ बात करते हों तब भी बीच में मत बोलो। पृष्ठ—मांस यानी किसी की पीठ पीछे बुराई नहीं करो और कपटपूर्ण मृषावाद का सर्वथा वर्जन कर दो। यह शिष्टजनों का सर्वजनानुमोदित आचार है।

**अप्पत्तियं जेण सिया, आसु कुप्पिज्ज वा परो ।
सव्वसो तं न भासिज्जा, भासं अहियगामिणीं ॥४८॥**

हिन्दी पद्यानुवाद—

जिससे होता हो अविश्वास, या अन्य कुपित हो जाता हो ।
मुनि कभी नहीं बोले पर से, अपकार—करी जो भाषा हो ॥

अन्वयार्थ—जेण = जिस वचन से। अप्पत्तियं = अप्रीति। सिया = उत्पन्न हो। वा = अथवा। परो = अन्य सुनने वाला व्यक्ति। आसु = जिससे शीघ्र। कुप्पिज्ज = कुपित हो जाय। तं = वैसा वचन तथा। अहियगामिणीं भासं = अहितकारी भाषा। सव्वसो न = कभी नहीं। भासिज्जा = बोले।

भावार्थ—भाषा सम्बन्धी विवेक के विषय में सूत्रकार आगे कहते हैं कि—जिस प्रकार के वचन से सुनने वालों में अप्रीति उत्पन्न हो जाय तथा सुनने वाला जिससे शीघ्र कुपित हो जाय, परस्पर में उत्तेजना फैले,

वैसा वचन और किसी का अहित हो ऐसी भाषा सर्वथा नहीं बोले। भाषा का इस प्रकार का विवेक रखने से परिवार में सदा शान्ति और प्रसन्नता बनी रहती है।

दिट्ठं मियं असंदिद्धं, पडिपुण्णं वियं जियं ।

अयंपिरमणुव्विगं, भासं निसिर अत्तवं ॥49॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

मुनि दृष्ट अर्थमित निःसंशय, परिपुष्ट व्यक्त और वशवाली ।

उद्वेग रहित और ऊँच-नीच, बोले भाषा निजगुण वाली ॥

अन्वयार्थ-अत्तवं = आत्मवान्-ज्ञानादि गुणवान् मुनि । **दिट्ठं** = दृष्ट विषय वाली । **मियं** = परिमित शब्द वाली । **असंदिद्धं** = सन्देह रहित । **पडिपुण्णं** = प्रतिपूर्ण । **वियं** = व्यक्त । **जियं** = अत्यन्त जमी हुई । **अयंपिरं** = चपलता और । **अणुव्विगं** = उद्वेग रहित । **भासं निसिर** = भाषा बोले ।

भावार्थ-ज्ञानादि गुणों में रमण करने वाला आत्मवान् साधु बोलने के प्रसंग पर आँखों देखी या जो प्रामाणिक हो वैसी ही बात कहे, इधर-उधर से सुनी हुई बात को बढ़ा-चढ़ाकर नहीं कहे। सन्देह वाली द्वयार्थक भाषा नहीं बोले, किन्तु श्रोता बराबर समझ सके, ऐसे व्यक्त और परिमित शब्दों वाली भाषा बिना चपलता के उद्वेग रहित बोले। चंचलता या घबराहट की बात सुनने वाला चिन्ता में पड़ सकता है, अतः ऐसी भाषा भी कभी नहीं बोले।

आयारपण्णत्तिधरं, दिट्ठिवायमहिज्जगं ।

वायविक्खलियं णच्चा, न तं उवहसे मुणी ॥50॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

मुनि अंग उपांगों के धारक, और दृष्टिवाद पढ़ने वाले ।

न कभी हँसे ऐसे मुनि पर, जो स्खलित वचन भी कह डाले ॥

अन्वयार्थ-आयारपण्णत्तिधरं = आचार-भाषा के नियमों का जानकार । **दिट्ठिवायमहिज्जगं** = दृष्टिवाद का अध्ययन करने वाले भी । **वायविक्खलियं** = बोलते समय कदाचित् प्रमादवश उच्चारण में चूक जाए । **णच्चा** = ऐसा जानकर । **तं** = उसका । **मुणी** = मुनि । **न उवहसे** = उपहास नहीं करे ।

भावार्थ-बोलने की स्खलना पर मुनि उपहास नहीं करे। इस ओर ध्यान दिलाते हुए कहा गया है कि साधु भाषा के नियम और लिंग भेद आदि के ज्ञाता तथा काल, कारक, प्रकृति, प्रत्यय आदि पढ़ने वाला मुनि भी बोलते समय कभी चूक गया तो उसकी स्खलना जानकर मुनि उसका उपहास नहीं करे। टीकाकार ने आचार का

अर्थ-लोच, अस्नान आदि व्यवहार, प्रज्ञप्ति का अर्थ समझाना और दृष्टिवाद का अर्थ श्रोताओं की अपेक्षा जीवादि के सूक्ष्म अर्थ का प्रतिपादन किया है। यहाँ पर व्यवहार भाष्य का एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

एक क्षुल्लकाचार्य प्रज्ञप्ति कुशल थे। एक दिन भुरुण्ड राज ने उनसे पूछा-“भगवन् ! देवता गत काल को कैसे नहीं जानते, इसको स्पष्ट समझाइये ?” राजा के प्रश्न पर आचार्य एकदम खड़े हो गये। आचार्य को खड़ा होते देखकर राजा भी तत्काल खड़ा हो गया। आचार्य क्षीरासव लब्धिवान् थे। उन्होंने उपदेश प्रारम्भ किया। उनकी वाणी में दूध की मिठास टपक रही थी। एक प्रहर बीत गया। आचार्य ने पूछा-“राजन् ! तुम्हें खड़े हुए कितना समय हुआ है ?” राजा ने उत्तर दिया-“भगवन् ! अभी-अभी खड़ा हुआ हूँ।” आचार्य ने कहा-“एक प्रहर बीत चुका है, तुम उपदेश की वाणी में आनन्द मग्न होकर जैसे गतकाल को नहीं जान सके, वैसे ही देवता भी गीत और वाद्य के श्रवण में आनन्द-विभोर होकर गतकाल को नहीं जानते।” राजा निरुत्तर था। (व्यवहार भाष्य 4/3 से)।

**नक्खत्तं सुमिणं जोगं, णिमित्तं, मंतभेसजं ।
गिहिणो तं न आइक्खे, भूयाहिगरणं पयं ॥51॥**

हिन्दी पद्यानुवाद-

*नक्षत्र स्वप्न फल और योग, एवं निमित्त विद्या औषध ।
मुनि कहे गृहस्थों को न इन्हें, कारण ये जीव विनाशक पद ॥*

अन्वयार्थ-नक्खत्तं = ग्रह नक्षत्र। **सुमिणं** = शुभाशुभ-स्वप्न। **जोगं** = वशीकरणादि योग। **णिमित्तं** = भूमि कंप आदि अष्टांग निमित्त। **मंत** = मन्त्र और। **भेसजं** = अतिसार आदि की औषधि। **तं** = ये सब। **भूयाहिगरणं** = प्राणि-हिंसा के। **पयं** = स्थान हैं। इनका मुनि। **गिहिणो** = गृहस्थों को। **न आइक्खे** = कथन नहीं करे।

भावार्थ-साधु संसार के आरम्भ-परिग्रह का त्यागी होने से त्याग-विराग का उपदेश करता है। गृहस्थ के घरेलू प्रपंचों से दूर रहने के कारण वह गृहस्थ से मन्त्र, तन्त्र और ज्योतिष आदि की बात नहीं करता। अतः वह आकाश के ग्रह गोचर, शुभाशुभ स्वप्न के फल, वशीकरणादि योग, भूत-भविष्य के निमित्त, मन्त्र-विद्या और औषध-भैषज्य की बात नहीं करे, क्योंकि इनको जानकर गृहस्थ आरम्भ करेगा जो त्रस स्थावर जीवों की हिंसा का कारण होगा। अतः साधु के लिये ये निषिद्ध कहे गये हैं।

**अण्णट्ठं पगडं लयणं, भइज्ज सयणासणं ।
उच्चार-भूमि संपण्णं, इत्थीपसुविवज्जियं ॥52॥**

हिन्दी पद्यानुवाद-

उच्चार-भूमि से युक्त तथा, पशु महिला या क्लीब रहित ।

स्वीकार करे मुनि शयनासन, यदि स्थानक निर्मित हों परकृत ॥

अन्वयार्थ-लयणं = जो मकान । **अण्णट्टं** = गृहस्थ के अन्य प्रयोजन हेतु अथवा दूसरों के लिये । **पगडं** = बनाया हुआ हो । **उच्चारभूमि संपण्णं** = और जो उच्चार-मल मूत्रादि परठने की भूमि से युक्त हो । **इत्थी पसु विवज्जियं** = और जो स्त्री, पशु-पडंग से रहित हो उसको तथा वैसे ही । **सयणासणं** = शयन-आसन-पाट-पाटिया आदि । **भइज्ज** = सेवन करे यानी अपने उपयोग में ले ।

भावार्थ-सम्पूर्ण हिंसा का त्यागी साधु कैसे मकान में ठहरे जिससे कि वह हिंसा दोष से बच सके । इस सम्बन्ध में शास्त्रकार कहते हैं-साधु गृहस्थ के लिये बनाये हुए मकान का, जो मल-मूत्रादि उत्सर्ग योग्य भूमि से युक्त हो, स्त्री, पशु एवं नपुंसक से रहित हो, जहाँ पर स्त्रियों की दृष्टि नहीं पड़े तथा वैसे ही अन्य प्रयोजन हेतु बनाये गये पाट-पाटिया का उपयोग करे । साधु के उद्देश्य से बनाये गये उपाश्रय एवं आसनादि आधाकर्म आदि दोष युक्त होने से साधु के लिये अग्राह्य होते हैं ।

विवित्ता य भवे सिज्जा, नारीणं न लवे कहं ।

गिहि-संथवं न कुज्जा, कुज्जा साहुहिं संथवं ॥53॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

एकान्त उपाश्रय हो मुनि का, नारी से वह नहीं कथा करे ।

ना करे गृहस्थों से परिचय, मुनियों से परिचय सदा करे ॥

अन्वयार्थ-सिज्जा = संयमी के ठहरने का स्थान । **विवित्ता य** = एकान्त और दोष रहित । **भवे** = हो । **नारीणं** = केवल नारियों के मध्य में । **कहं** = कथा । **न लवे** = नहीं करे । **गिहि संथवं** = गृहिजनों का संसर्ग अति परिचय । **न कुज्जा** = नहीं करे । **साहुहिं** = साधुओं के साथ । **संथवं कुज्जा** = परिचय करे ।

भावार्थ-साधु की संयम-साधना निर्दोष रहे और उसमें राग की मात्रा नहीं बढ़े, इस दृष्टि से शास्त्रकार कहते हैं कि-52वीं गाथा में कहे अनुसार स्त्री, पशु, पडंग आदि से रहित स्थान में वह ठहरे । एकान्त स्थान हो वहाँ स्त्रियों को कथा नहीं कहे । केवल स्त्रियों के बीच कथा नहीं करे । जैसाकि प्रश्न-व्याकरण सूत्र के चतुर्थ संवर द्वार में कहा गया है कि-“**नारिजणस्स मज्झे न कहेयव्वा कहा ।**” स्त्री समुदाय में हास्य रस की कथा करने से मोहभाव की जागृति होती है जो स्वपर दोनों के लिये अहितकर है । नारियों के अतिरिक्त गृहिजनों का अति परिचय भी प्रमाद-वृद्धि का कारण होने से वर्जित कहा गया है । साधु-साध्वी को ज्ञान दर्शन चारित्र की वृद्धि के लिये साधु पुरुषों के साथ संसर्ग करना ही हितकर कहा गया है ।

जहा कुक्कुडपोयस्स, णिच्चं कुललओ भयं ।
एवं खु बंभयारिस्स, इत्थी-विग्गहओ भयं ॥54॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

जैसे मुर्गी के शावक को, रहता विडाल का हरदम भय ।
वैसे ही ब्रह्मव्रती मुनि को, नारी शरीर से प्रतिक्षण भय ॥

अन्वयार्थ-जहा = जैसे । कुक्कुड पोयस्स = मुर्गी के नन्हे बच्चे को । णिच्चं = सदा । कुललओ भयं = विडाल (बिल्ली) का भय रहता है । एवं खु = इसी तरह । बंभयारिस्स = ब्रह्मचारी को । इत्थीविग्गहओ = स्त्री के शरीर से । भयं = भय होना चाहिये ।

भावार्थ-मुर्गी या कबूतर के बच्चे को विडाल यानी बिल्ली से सदा भय रहता है । वे बच्चे बिल्ली के पास नहीं जाते, क्योंकि पक्षी के बच्चे को बिल्ली से मृत्यु का खतरा होता है । वैसे ही ब्रह्मचारी स्त्री के सुन्दर तन से डरता रहे । इसका अर्थ यह है कि साधु स्त्री के अंगोपाङ्ग को राग की दृष्टि से नहीं देखे-कभी नजर चली भी जाय, तो संयमभाव की हानि के डर से तत्काल दृष्टि हटा ले । इससे उसका ब्रह्मव्रत निर्मल रहेगा, वह कामना का शिकार नहीं होगा ।

चित्तभित्तिं न णिज्झाए, नारिं वा सुअलंकियं ।
भक्खरं पि व दट्ठूणं, दिट्ठिं पडिसमाहारे ॥55॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

भित्ति-चित्र भी ना देखे, या आभूषण भूषित नारी को ।
आँख मींच ले देख मिचे ज्यों, सहस्र किरण के सूरज को ॥

अन्वयार्थ-चित्तभित्तिं = स्त्री के चित्रवाली भीत को । वा = अथवा । सुअलंकियं = वस्त्र आभूषणों से अलंकृत । नारिं = नारी को भी । न निज्झाए = टकटकी लगा कर नहीं देखे, कदाचित् उधर दृष्टि पड़ जाय तो । पि व = जैसे । भक्खरं = मध्याह्न के सूर्य को । दट्ठूणं = देखकर । दिट्ठिं = तत्काल दृष्टि को । पडिसमाहारे = लोग खींच लेते हैं, वैसे ही साधु अपनी दृष्टि उधर से तत्काल खींच ले ।

भावार्थ-अनादि काल से आत्मा के पीछे मोहकर्म लगा है, जो नाम मात्र का निमित्त पाकर ही प्रगट हो जाता है । वैराग्य जगाने के लिये तो कई बार उपदेश सुनाने की आवश्यकता होती है । पर राग उत्पन्न करने के लिये उपदेश की आवश्यकता भी नहीं पड़ती । वह अनायास उत्पन्न होता है । चित्र में स्त्री रूप को अथवा अलंकार युक्त नारी को देखकर कामराग जगने की सम्भावना को देखकर, शास्त्रकार ने कहा है कि मध्याह्न के सूर्य को देखकर जैसे उधर से तत्काल दृष्टि हटा ली जाती है, वैसे ही स्त्री पर दृष्टि पड़ते ही साधु तत्काल अपनी दृष्टि उधर से खींच ले ।

हृत्थ-पाय-पडिच्छिन्नं, कण्ण-नास-विगप्पियं ।
अवि वाससइं नारिं, बंभयारी विवज्जए ॥56॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

छिन्न हाथ पावों वाली, और कटी नाक कानों वाली ।
संग तजे उस नारी का भी, चाहे हो सौ वर्षों वाली ॥

अन्वयार्थ-हृत्थपाय पडिच्छिन्नं = जिसके हाथ-पैर कटे हों । कण्ण नास विगप्पियं = नाक-कान काट लिये गये हों वैसी । वाससइं = सौ वर्ष की आयु वाली । अवि = भी । नारिं = वृद्धा नारी का । बंभयारी विवज्जए = ब्रह्मचारी वर्जन करे, उससे दूर रहे ।

भावार्थ-साधु को ब्रह्मभाव की दृढ़ता के लिये पूर्ण सतर्क रहने की शिक्षा देते हुए कहा गया है कि जिसके हाथ-पैर कटे हों, नाक-कान आदि अंगोपांग भी काट लिये गये हों या गल गये हों, विकृत हो गये हों, वैसी शतायु-वृद्धा नारी का भी ब्रह्मचारी संसर्ग नहीं करे । यद्यपि ऐसी वृद्धा को देखकर कामना जागृत नहीं होती तथापि स्त्री मात्र से दूर रहने की भावना को बिना अपवाद के क्रियात्मक रूप देने को कहा गया है ।

विभूसा इत्थिसंसग्गो, पणीयं रसभोयणं ।
नरस्सऽत्तगवेसिस्स, विसं तालउडं जहा ॥57॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

तन-मंडन संगति नारी की, करना घृतादि रस का सेवन ।
विष ताल पुट की तरह इन्हें, जाने आत्मान्वेषी जन ॥

अन्वयार्थ-अत्तगवेसिस्स = आत्मा का हित चाहने वाला । नरस्स = मनुष्य साधु के लिये । विभूसा = वस्त्र-विलेपनादि से शरीर की शोभा बढ़ाना । इत्थिसंसग्गो = स्त्री जनों का विशेष परिचय करना । पणीयं रसभोयणं = बलवर्द्धक सरस भोजन का सेवन करना । तालउडं = तालपुट । विसं = विष के । जहा = समान है ।

भावार्थ-जीवन को सुरक्षित रखने के लिये जैसे विषैले भोजन से बचना आवश्यक होता है, वैसे ही आत्म-कल्याणार्थी के लिये कहा गया है कि संयमी साधु अपने व्रत की सुरक्षा के लिये शरीर की शोभा, विभूषा, सजावट, महिलाओं का अधिक संसर्ग और बलवर्द्धक-सरस भोजन को तालपुट विष के समान घातक समझकर इनसे पूर्ण सावधान रहे । विष तो खाने पर ही प्राण हरण करता है पर स्त्री-संसर्ग तो दर्शन और स्मरण मात्र से आत्मगुणों की हानि कर बैठता है । अतः कल्याणार्थी को लोकेषणा के चक्र में न पड़कर विभूषा आदि से बचने का ध्यान रखना चाहिये ।

अंग-पच्चंग-संठाणं, चारुल्लविय-पेहियं ।
इत्थीणं तं न णिज्झाए, कामरागविवड्ढणं ॥58॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

नारी के अंग-उपांगों को, भूक्षेप मनोहर भाषण को ।
अनुराग सहित ना देखे मुनि, ये सारे काम विवर्द्धन को ॥

अन्वयार्थ-इत्थीणं = स्त्रियों के । अंगपच्चंग = अंग-उपांग । संठाणं = आकार, प्रकार ।
चारुल्लविय = मृदु मनोहर संभाषण । पेहियं = कटाक्ष पूर्वक देखना, ये सब । कामरागविवड्ढणं =
कामराग बढ़ाने वाले हैं । तं = अतः उनको टकटकी लगाए । न णिज्झाए = नहीं देखे ।

भावार्थ-रागी हो या विरागी, संसार के दृश्य पदार्थ दोनों को दृष्टिगोचर होते हैं, परन्तु दोनों के
देखने में अन्तर है । संयमी साधु के लिये कहा गया है कि वह स्त्रियों के अंग-उपांग और उनकी आकृति को,
मृदु-मनोहर सम्भाषण को तथा उनके कटाक्ष को काम राग बढ़ाने वाला जानकर रागदृष्टि से नहीं देखे । शरीर
की बदलती हुई पर्यायों का तुरन्त ध्यान रखते हुए वह यह सोचे कि तन की सुन्दरता सदा एकसी रहने वाली
नहीं है । यह तो अनित्य, अशुचि और मलभृत (मल-मूत्र से भरे हुए) पात्र की तरह अस्पृश्य है ।

विसएसु मणुण्णेषु, पेमं नाभिनिवेसए ।
अणिच्चं तेसिं विण्णाय, परिणामं पुग्गलाण उ ॥59॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

शब्दादि विषय के पुद्गल का, परिणाम बदलना मन धर के ।
वैसे मनोज्ञ विषयों में मुनि, ना करे प्रेम निश्चय करके ॥

अन्वयार्थ-तेसिं = उन-शब्द-रूपादि । पुग्गलाण उ = पुद्गलों के । अणिच्चं = क्षण-क्षण
बदलने वाले । परिणामं = परिणमन को । विण्णाय = जानकर संयमी । मणुण्णेषु = मनोज्ञ, शब्द, रूप,
गंध आदि । विसएसु = विषयों में । पेमं नाभिनिवेसए = राग नहीं करे । मनोज्ञ में राग की तरह अमनोज्ञ में
द्वेष भी नहीं करे ।

भावार्थ-पौद्गलिक वस्तुओं का यह स्वभाव है कि अभी जो सुन्दर और शुभ दृष्टिगोचर होती है,
वह क्षणान्तर में अशुभ एवं असुन्दर प्रतीत होने लगती है । दो-चार दिनों के ज्वर में सुन्दर से सुन्दर दिखने
वाले बाल एवं युवा का भरा-पूरा-सुडोल चेहरा, ढीला-पीला पड़ जाता है, आँखें भीतर धँस जाती हैं और
तन की कांति फीकी पड़ जाती है । फिर उस पर राग कैसा ? अतः शास्त्रकार कहते हैं कि पुद्गलों के बदलते
हुए परिणमन को जानकर मुनि मनोज्ञ विषयों में राग नहीं करे ।

पोग्गलाण परिणामं, तेसिं णच्चा जहा तथा ।
विणीयतिण्हो विहरे, सीईभूएण अप्पणा ॥६०॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

इष्ट अनिष्ट जैसा तैसा, परिणाम जान उन पुद्गल का ।

शीतल आत्मा के संग श्रमण, विहरे कर वर्जन कामों का ॥

अन्वयार्थ-तेसिं = उन । पोग्गलाण (पोग्गलाणं) = पुद्गलों के । परिणामं = वर्ण, गंध, रस, स्पर्शादि परिणाम को । जहा-तथा = जैसा है वैसा । णच्चा = जानकर मुनि । विणीयतिण्हो = तृष्णा (इच्छा) रहित होकर । सीईभूएण = शीतलीभूत । अप्पणा = आत्मा से । विहरे = विचरण करे ।

भावार्थ-मनुष्य शुभाशुभ पुद्गल पर्यायों पर मोहित तभी तक होता है, जब तक कि वह पुद्गल के परिणमन शील स्वभाव को नहीं जान लेता है । ज्यों ही उनकी असलियत जान लेता है वह मनोज्ञ पदार्थ को पाकर राग में और अमनोज्ञ को पाकर घृणा-द्वेष में लिप्त नहीं होता । सुबुद्धि प्रधान ने महाराजा जितशत्रु के साथ सर्वगुणसम्पन्न राजसी भोजन किया । पर पुद्गल के परिवर्तनशील स्वभाव को जानकर उसने राग नहीं किया । उसने राजा को यह विश्वास करा दिया कि दृश्य जगत् के पदार्थ शुभ से अशुभ और अशुभ से शुभ होते रहते हैं । इन पर राग अथवा द्वेष करना वस्तु तत्त्व की अनभिज्ञता का द्योतक है ।

जाइ सद्धाइ णिक्खंतो, परियायट्ठाणमुत्तमं ।
तमेव अणुपालिज्जा, गुणे आयरियसम्मए ॥६१॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

जिस श्रद्धा से घर को छोड़ा, उत्तम दीक्षा पद प्राप्त किया ।

अनुपालन करें उसी का हम, जिन सम्मत सब जग मान लिया ॥

अन्वयार्थ-जाइ (जाए) = जिस । सद्धाइ (सद्धाए) = श्रद्धा एवं भावना से । उत्तमं = उत्तम । परियायट्ठाणं = संयम पर्याय के स्थान की ओर । णिक्खंतो = निकले हैं । तमेव = उसी श्रद्धा और । आयरियसम्मए = आचार्य सम्मत । गुणे = गुणों का । अणुपालिज्जा (अणुपालेज्जा) = विधि पूर्वक पालन करना चाहिये ।

भावार्थ-मानव मन की गति बड़ी विचित्र है । वह संसार के विविध लुभावने भावों को देखकर इधर-उधर भटक जाता है । वह क्षण में रागी तो क्षण में विरागी बन जाता है । इसके लिये कहा है कि “कबहूँ मन दौड़त भोगन पै, कबहूँ मन योग की रीति संभारी ।” रथनेमि जैसे पुरुषोत्तम विचलित हो गये तब अन्य की तो बात ही क्या है ? मन की इस दुर्बलता से बचने के लिये शास्त्रकार कहते हैं कि जिस श्रद्धा से उत्तम संयम-धर्म की ओर तुम आगे बढ़े हो, उसी श्रद्धा से उस उत्तम संयम-धर्म का पालन करते रहो ।

तवं चिमं संजम-जोगयं च, सज्झायजोगं च सया अहिट्टए ।
सूरे व सेणाइ समत्तमाउहे, अलमप्पणो होइ अलं परेसिं ॥62॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

यह तप संयम योग नित्य, स्वाध्याय योग का आचारी ।
सैन्यास्त्र युक्त हो शूर सदृश, स्व-पर का होता हितकारी ॥

अन्वयार्थ-व = जिस प्रकार । समत्तमाउहे = समस्त अस्त्र, शस्त्रों से युक्त । सूरे = शूर । सेणाइ (सेणाए) = चतुरंगिणी सेना के बीच । अलं = रक्षा में समर्थ होता है, वैसे । इमं च तवं = इस बारह प्रकार के तप में । संजमजोगयं = संयम यानी वृत्तियों का निग्रह करने में । च = और जो । सया = सदा । सज्झाय जोगं = वाचना-पृच्छा आदि स्वाध्याय योग में । च = और । अहिट्टए = अधिष्ठित रहता है, वह । अप्पणो = अपने और । परेसिं = दूसरों की रक्षा करने में । अलं = समर्थ । होइ = होता है ।

भावार्थ-सांसारिक क्षेत्र में अस्त्र-शस्त्रों से सज्जित शूर वीर योद्धा जैसे चतुरंगिणी सेना के बीच में भी स्व पर की रक्षा करने में समर्थ होता है, वैसे ही अध्यात्म के क्षेत्र में साधक तप, संयम और स्वाध्याय रूपी आध्यात्मिक शस्त्रों से युक्त काम-क्रोधादि अंतर के शत्रुओं की सेना से अपनी और दूसरों की रक्षा करने में समर्थ होता है । काम-क्रोधादि रिपुओं पर विजय पाने के लिये तप-संयम तथा स्वाध्याय से अधिक कोई अन्य कारगर साधन नहीं हो सकता । स्वाध्याय को सर्वोत्कृष्ट तप बतलाया गया है । ज्ञानियों ने कहा है कि बाह्य और आभ्यन्तर आदि बारह प्रकार के तपों में स्वाध्याय के बराबर कोई तप नहीं है और नहीं होगा । (देखें कल्प-सूत्र भाष्य गाथा 1169) ।

सज्झाय सज्झाणरयस्स ताइणो, अपावभावस्स तवे-रयस्स ।
विसुज्झइ जं सि मलं पुरेकडं, समीरियं रुप्पमलं व जोइणा ॥63॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

स्वाध्याय ध्यान रत त्रायी का, गत पाप तपस्या रत मुनि का ।
मिट जाता पाप पुराकृत सब, जैसे पावक से चाँदी का ॥

अन्वयार्थ-व = जिस प्रकार । जोइणा = अग्नि से । समीरियं = तपाने पर । रुप्पमलं = चाँदी का मल नष्ट हो जाता है । सज्झाय = वैसे ही स्वाध्याय और । सज्झाणरयस्स = धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान में रमण करने वाले । ताइणो = षट्काय जीव के रक्षक । अपावभावस्स = निर्दोष भाव वाले । तवे रयस्स = शारीरिक, मानसिक, तप में रत । जं सि = मुनि का । पुरेकडं = पूर्वकृत । मलं विसुज्झइ = कर्ममल नष्ट हो जाता है ।

भावार्थ—जिस प्रकार प्राणी अपने ही कर्म द्वारा अपनी आत्मा को स्वयं मलिन करता है, वैसे ही जैन शास्त्रानुसार आत्मा को निर्मल भी साधक स्वयं करता है। उसकी अनुभवपूर्ण युक्ति यह है कि जैसे अग्नि में तपाने पर चाँदी और सोने का मल नष्ट होकर चाँदी-सोने का शुद्ध रूप प्रकट हो जाता है, वैसे ही स्वाध्याय-ध्यान व तप की आग में तप कर विशुद्ध भाव युक्त दयालु साधु के समस्त कर्म नष्ट होकर उसकी आत्मा शुद्ध-निर्मल रूप में प्रकट हो जाती है।

से तारिसे दुक्खसहे जिइंदिए, सुएण जुत्ते अममे अकिंचणे ।

विरायई कम्मघणम्मि अवगए, कसिणब्भपुडावगमे व चंदिमे ॥64॥

॥त्ति बेमि ॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

ऐसा वह दान्त कष्ट भोगी, श्रुतयुत निर्मम सब द्रव्य रहित ।

होने पर क्षीण कर्मघन के, शशि सम शोभित हो मेघरहित ॥

अन्वयार्थ—से = वह । तारिसे = पूर्वोक्त गुणवाला । दुक्खसहे = सुख-दुःख रूप परीषहों को समभाव से सहने वाला । जिइंदिए = जितेन्द्रिय । सुएण जुत्ते = श्रुत ज्ञान से युक्त होकर । अममे = ममता रहित । अकिंचणे = अपरिग्रही साधक । कम्मघणम्मि अवगए = अष्टविध कर्मघन से दूर होने पर वैसे ही । विरायई = शोभित होता है । व कसिणब्भपुडावगमे = जैसे सम्पूर्ण अभ्रपटल के अलग हो जाने पर । चंदिमे = चन्द्र शोभित होता है । त्ति बेमि = ऐसा मैं कहता हूँ ।

भावार्थ—कर्ममुक्त आत्मा की शुद्ध स्थिति कैसी होती है, इसको समझाते हुए शास्त्रकार ने कहा है कि—जिस प्रकार अभ्र पटल के सर्वथा दूर होने पर गगन मण्डल में चन्द्र शोभित होता है, वैसे ही सुख-दुःख में सम रहने वाला जितेन्द्रिय, श्रुतयुक्त, ममता रहित और अपरिग्रही साधक सम्पूर्ण कर्मघन के दूर होने पर स्वस्वरूप में केवल ज्ञान के प्रकाश से शोभित होता है ।

ऐसा मैं कहता हूँ ।

॥ आठवाँ अध्ययन समाप्त ॥



नौवाँ अध्ययन

विणय समाही (विनय समाधि)

उपक्रम

आठवें अध्ययन में आचार-प्रणिधि का कथन किया गया है। आचार की निधि को पाने के लिये विनय-सम्पन्नता आवश्यक है। अतएव नौवें अध्ययन में 'विनयसमाधि' का वर्णन किया जाता है।

धर्म का मूल विनय है और उसका फल मोक्ष है। जैसा कि इसी अध्ययन के दूसरे उद्देशक की दूसरी गाथा में कहा गया है-

‘एवं धम्मस्स विणओ, मूलं परमो से मुक्खो ।’

विनय से तात्पर्य केवल नम्रता से ही नहीं है, अपितु आचार की विविध धाराओं से है। फिर भी विनय की दो धाराएँ अनुशासन और नम्रता अधिक स्फुट हैं, मुखर हैं।

प्रस्तुत अध्ययन में चार उद्देशक हैं। प्रथम उद्देशक में आचार्य के प्रति शिष्य के विनय-गुण का प्रतिपादन करते हुए अनेक उपमाओं द्वारा आचार्य की आशातना करने का दुष्परिणाम बताया गया है। द्वितीय उद्देशक में विनय और अविनय का भेद दिखलाते हुए कहा गया है कि अविनीत को विपदा और विनीत को सम्पदा मिलती है। तीसरे उद्देशक में पूज्य के लक्षणों का निरूपण है और चौथे उद्देशक में विनय, श्रुत, तप और आचार रूप चार समाधियों का वर्णन किया गया है। इस प्रकार इस अध्ययन में विनय की सर्वाङ्गीण व्याख्या की गई है। नौवें पूर्व की तीसरी वस्तु से इस अध्ययन का निर्यूहण (उद्धार) हुआ है।

प्रथम उद्देशक

थंभा व कोहा व मयप्पमाया, गुरुस्सगासे विणयं न सिक्खे ।

सो चेव उ तस्स अभूइभावो, फलं व कीयस्स वहाय होइ ॥१॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

जो गर्व क्रोध माया प्रमाद वश, सीखे न विनय निज गुरुजन से ।

हो उसका नष्ट ज्ञान वैभव, जैसे कीचक फल लगने से ॥

अन्वयार्थ—थंभा व कोहा = अहंभाव तथा क्रोध । **व मयप्पमाया** = अथवा मद और प्रमाद के दुर्गुणों के वश में होने के कारण । **गुरुस्सगासे** = जो शिष्य गुरु के समीप । **विणयं** = कल्याण-मार्ग की, विनय-मार्ग की । **न सिक्खे** = शिक्षा प्राप्त नहीं करता । **सो चेव उ** = ऐसे दुर्गुण । **तस्स** = उस शिष्य के । **अभूइभावो** = ज्ञानादि गुणों के विनाश के कारण वैसे ही हो जाते हैं । **व** = जैसे । **कीयस्स** = बाँस का । **फलं वहाय** = फल उसके विनाश का कारण । **होइ** = हो जाता है ।

भावार्थ—अहंकार, क्रोध, माया-कपट, प्रमाद रूपी दुर्गुणों के कारण शिष्य गुरु से विनय-धर्म अर्थात् कल्याण की शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाता । अहंभाव के कारण गुरु के अनुशासन को अपना अपमान समझ कर वह गुरु से दूर रहना चाहता है । कभी आक्रोश की भाषा में गुरु कुछ हित की बात कहते हैं तो क्रोध करता है । ये दुर्गुण शिष्य के लिये वैसे ही विनाशकारी होते हैं जैसे बाँस के फल बाँस के लिये विनाश के हेतु होते हैं । ऐसा शिष्य गुरु से सद्शिक्षा भी ग्रहण नहीं कर सकता ।

**जे यावि मंदित्ति गुरुं विइत्ता, डहरे इमे अप्पसुएत्ति णच्चा ।
हीलंति मिच्छं पडिवज्जमाणा, करंति आसायण ते गुरूणं ॥२॥**

हिन्दी पद्यानुवाद-

जो निज गुरु को मंद बाल, एवं अल्पश्रुत जान उसे ।
आशातना और अपमान करे, भव हेतु मिले मिथ्यात्व उसे ॥

अन्वयार्थ—जे यावि = जो भी शिष्य । **गुरुं** = गुरु को । **मंदित्ति** = यह मंद बुद्धिवाला है ऐसा । **विइत्ता** = जानकर । **इमे** = ये अभी । **डहरे** = बालक है तथा । **अप्पसुएत्ति** = शास्त्र के अधिक जानकार नहीं हैं (अल्प श्रुत) यह । **णच्चा** = मानकर । **हीलंति ते** = गुरु की हीलना करते हैं, वे । **मिच्छं पडिवज्जमाणा** = मिथ्यादर्शन को प्राप्त करते हैं । **गुरूणं आसायण करंति** = गुरुजनों की आशातना व अविनय करते हैं ।

भावार्थ—शिष्य का कर्तव्य है कि गुरु छोटे हों या बड़े उनकी श्रद्धापूर्वक भक्ति करे । इसके विपरीत जो भी शिष्य गुरु को मन्दबुद्धि वाले जानकर और ये अभी लघुवयस्क हैं, शास्त्र के पूर्ण जानकार नहीं हैं, ऐसा मानकर उनकी हीलना करता है—लघुता करता है, उनकी अविनय आशातना करता है, वह अपने ज्ञानादि भाव की कमी करता हुआ मिथ्यात्व भाव को प्राप्त करता है ।

**पगईए मंदा वि भवंति एगे, डहरा वि य जे सुयबुद्धोववेया ।
आयारमंता गुणसुट्ठिअप्पा, जे हीलिया सिहिरिव भासकुज्जा ॥३॥**

हिन्दी पद्यानुवाद-

होते हैं प्रकृति मंद कोई, श्रुत बुद्ध कई बालक होते ।
आचार निष्ठ गुण-दृढ हीलन, पा अग्नि समान गुण भस्म करते ॥

अन्वयार्थ-एगे = कई एक वयोवृद्ध होकर । **वि** = भी । **पगईए (पगईइ)** = स्वभाव से । **मंदा** = मंदबुद्धि वाले । **भवन्ति** = होते हैं । **डहरा वि य जे** = कुछ लघुवय वाले भी जो । **सुयबुद्धोववेया** = शास्त्रज्ञ और बुद्धि सम्पन्न होते हैं । **आयारमंता** = पर वे आचारवान् । **गुणसुट्टिअप्पा** = संयम गुणों में अच्छी तरह स्थित आत्मा वाले होते हैं, उनका किसी का तिरस्कार नहीं करना चाहिये । **जे हीलिया** = वे गुरु शिष्य के द्वारा तिरस्कृत होने पर । **सिहिरिव** = अग्नि की तरह । **भासकुज्जा** = शिष्य के ज्ञानादि गुणों को भस्म कर देते हैं ।

भावार्थ—सब व्यक्तियों के कर्मों का क्षयोपशम एकसा नहीं होता—कई एक गुरु वयोवृद्ध होकर भी स्वभाव से मंदबुद्धि वाले होते हैं—उनकी बुद्धि का विस्तार नहीं हो पाता, दूसरे अल्प वयस्क होकर भी अच्छे और तेज बुद्धि वाले होते हैं । पर मंदबुद्धि होते हुए भी वे आचारवान् संयमादि गुणों में स्थिर आत्मा वाले होते हैं । उनका किसी का भी अनादर नहीं करना चाहिये । वे गुरु अनादर पाकर अग्नि के समान हीलना करने वाले शिष्य के ज्ञानादि गुणों को भस्म कर देते हैं । गुरु की हीलना करने से शिष्य की श्रद्धा और उसके संयम में कमी आकर अशुभ कर्म के कारण उसके ज्ञान गुण में भी क्षीणता आ जाती है ।

जे यावि नागं डहरं त्ति णच्चा, आसायए से अहियाय होइ ।

एवारियं पि हु हीलयंतो, णियच्छइ जाइपहं खु मंदो ॥४॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

जो जान नाग का शिशु है यह, करता अपमान अहित होता ।

ऐसे गुरु के अपमान किये, नर मन्द विविध दुःख को पाता ॥

अन्वयार्थ-जे यावि = जो भी कोई अज्ञ । **नागं** = विषधर नाग को । **डहरं त्ति** = छोटा है बच्चा है ऐसा । **णच्चा** = जानकर । **आसायए** = कंकर मार कर उसे पीड़ा देता है । **से** = उसके लिये वह छोटा सर्प भी । **अहियाय** = अहित का कारण । **होइ** = होता है । **एवं** = इसी प्रकार । **आयरियं पि हु** = ऐसे आचार्य की भी । **मंदो (मंदे)** = जो मंदमति । **हीलयंतो** = हीलना करता है । **खु** = निश्चय ही वह । **जाइपहं** = एकेन्द्रिय आदि विविध जातियों में । **णियच्छइ** = जन्म-मरण प्राप्त करता है ।

भावार्थ—दृष्टान्त द्वारा विषय को सरल करते हुए शास्त्रकार कहते हैं कि—जो भी अनजान किसी सर्प को छोटा अथवा बच्चा जानकर लकड़ी आदि से सताता है, उसके लिये वह सर्प अहित का कारण होता है । इसी प्रकार कोई मंदमति आचार्य का भी अनादर करता है तो निश्चय ही वह शिष्य विविध योनियों में जन्म-मरण प्राप्त करता है । वह आत्म-हित की प्राप्ति नहीं कर सकता ।

आसीविसो वा वि परं सुरुट्ठो, किं जीवनासाउ परं नु कुज्जा ।

आयरियपाया पुण अप्पसण्णा, अबोहि-आसायण णत्थि मुक्खो ॥५॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

हो परमक्रुद्ध अहि जीवन का, करता विनाश कुछ और नहीं ।
पर रुष्ट गुरु के होने पर, आशातना अबोधि से मोक्ष नहीं ॥

अन्वयार्थ-आसीविसो वा वि = दृष्टि विष सर्प तो । परं = अत्यन्त । सुरुद्धो = कुपित होकर भी । जीवनासाउ = एक जीवन में ही प्राण हानि से । परं = अधिक । किं = और क्या । नु कुज्जा = कर सकता है किन्तु । आयरियपाया = आचार्य गुरुदेव । अप्पसण्णा = अप्रसन्न हुए तो । अबोहि = अबोधि प्राप्त होती है । आसायण = और इस आशातना से उसको । णत्थि मुक्खो = मोक्ष प्राप्त नहीं होता तथा भव-भव में उसको अनेकानेक जन्म-मरण कराती है ।

भावार्थ-सर्प और गुरु की आशातना की तुलना करते हुए शास्त्रकार समझाते हैं कि सर्प का काटा हुआ तो एक बार दुःख पाता है, उग्रविष वाला सर्प भी रुष्ट हुआ तो एक बार प्राण हरण कर सकता है । परन्तु आचार्य अगर अप्रसन्न हुए तो सम्यग् दर्शन आदि आत्म गुणों की प्राप्ति नहीं हो पाती । गुरु की आशातना करने के कारण वह शिष्य भव-भव में कष्ट पाता है और उसकी सहज मुक्ति नहीं होती है ।

जो पावगं जलियमवक्कमिज्जा, आसीविसं वा वि हु कोवइज्जा ।

जो वा विसं खायइ जीवियट्ठी, एसोवमासायणया गुरूणं ॥६॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

जो अग्नि ज्वाल पर पाँव धरे, या नागनाथ को क्रुद्ध करे ।
जो जीने के हित विष खाये, यह उपमा गुरु अपमान धरे ॥

अन्वयार्थ-जो = जो कोई अहंकारी । जलियं = जलती हुई । पावगं = आग को । अवक्कमिज्जा = पैरों से कुचलता है । वा वि हु = अथवा । आसीविसं = दृष्टि विष सर्प को कोई । कोवइज्जा = क्रुद्ध करता है । वा जो = अथवा जो । जीवियट्ठी = जीने की इच्छा से । विसं खायइ = विष का भक्षण करता है । गुरूणं = गुरुजनों की । आसायणया = आशातना के लिये । एसोवमा = यही उपमा समझनी चाहिये ।

भावार्थ-गुरु की आशातना कैसी भयंकर होती है, इसे शास्त्रकार दृष्टान्त से समझाते हैं कि यदि कोई जलती अग्नि को नंगे पैरों से कुचलकर कुशलता से रहना चाहे, दृष्टि विष सर्प को कुपित कर के जीवित रहना चाहे और कालकूट विष का भक्षण कर के जीना चाहे तो जैसे यह सब सम्भव नहीं हो सकता, वैसे ही यही उपमा गुरुओं की आशातना करने वालों के लिये दी जा रही है ।

सिया हु से पावय णो डहिज्जा, आसीविसो वा कुविओ न भक्खे ।

सिया विसं हलाहलं न मारे, न या वि मुक्खो गुरुहीलणाए ॥७॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

चाहे न जलाये पावक भी, या होकर क्रुद्ध न अहि खाए।

अथवा न हलाहल विष मारे, पर मोक्ष न गुरु निन्दक पाए॥

अन्वयार्थ-सिया हु = कदाचित्। से = पैरों से अग्नि कुचलने वाले को। पावय = अग्नि। णो डहिज्जा = नहीं जलावे। वा = अथवा। आसीविसो = दृष्टि विष सर्प। कुविओ न भक्खे = कुपित होकर भी कुपित करने वाले का भक्षण नहीं करे। सिया = कदाचित्। विसं हलाहलं = हलाहल विष भी। न मारे = खाने वाले को नहीं मारे, यह हो सकता है किन्तु। गुरुहीलणाए = गुरु की हीलना करने वाले का। यावि = कभी भी। न मुक्खो = मोक्ष नहीं हो सकता।

भावार्थ-गुरु की आशातना की अग्नि आदि से तुलना की जाती है। हो सकता है कि कभी जड़ी-बूटी एवं मन्त्रादि के प्रयोग से अग्नि किसी को न भी जलावे। मन्त्र-बल से कुपित सर्प भी भक्षण नहीं करे और खाया हुआ हलाहल विष भी नहीं मारे। किन्तु गुरु की हीलना करने वाले को मोक्ष कभी भी प्राप्त नहीं हो सकता। आशातना वह महाविष है जो भव-भव में दुःख देने वाला है।

जो पव्वयं सिरसा भेतुमिच्छे, सुत्तं च सीहं पडिबोहइज्जा।

जो वा दए सत्तिअग्गे पहारं, एसोवमासायणया गुरूणं ॥८॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

जो सिर से गिरि भेदन चाहे, अथवा दे सिंह जगा सोए।

या भाले की अणि चोट करे, यह उपमा गुरु अपमान किए॥

अन्वयार्थ-जो = जो। सिरसा = सिर की टक्कर से। पव्वयं = पर्वत को। भेतुमिच्छे (भित्तुमिच्छे) = तोड़ना चाहे। च = और। सुत्तं सीहं = सोये हुए सिंह को। पडिबोहइज्जा = जगावे। वा = अथवा। जो = जो। सत्ति अग्गे पहारं दए = भाले की तीखी नोंक पर प्रहार करे। गुरूणं = गुरुजनों की। आसायणया = आशातना। एसोवमा = इसके समान कही गई है।

भावार्थ-गुरुजनों की आशातना करना कितना भय जनक है, इसको समझाने के लिये अग्नि-आशीविष और विष की उपमाएँ दी गईं। अब पर्वत भेदन की, सोये सिंह को जगाने की और भाले के अग्रभाग पर प्रहार करने की तीन उपमाएँ फिर बताई गई हैं। जैसे सिर से पर्वत को टक्कर मारना, सोये सिंह को जगाना और भाले के अग्रभाग पर हाथ का प्रहार करना सुखकर नहीं होता, वैसे ही गुरुजनों की आशातना करने से कोई लाभ नहीं होता। बल्कि ज्ञानादि गुणों की निश्चित हानि होती है।

सिया हु सीसेण गिरिं पि भिंदे, सिया हु सीहो कुविओ न भक्खे।

सिया न भिंदिज्ज व सत्तिअग्गं, न या वि मुक्खो गुरुहीलणाए ॥९॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

संभव है सिर से गिरि फूटे, क्रुद्ध सिंह भी ना खाए।
कुंतल नोक नहीं भेदे, पर मोक्ष न गुरु निंदक पाए ॥

अन्वयार्थ-सियाहु = कदाचित् कोई। सीसेण = सिर की टक्कर से। गिरिं पि भिंदे = पर्वत का भी भेदन करदे। सिया हु = कदाचित्। कुविओ सीहो = क्रुद्ध सिंह भी। न भक्खे = भक्षण न करे। व = एवं। सिया = कदाचित्। सत्तिअगं = भाले का अग्रभाग। न भिंदिज्ज = प्रहार से भेदन नहीं करे। यावि = किन्तु। गुरुहीलणाए = गुरु की हीलना करने वाले को तो कभी। न मुक्खो = मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता।

भावार्थ-पर्वत भेदन, सिंह का भक्षण न करना आदि जो दुष्कर कर्म हैं कदाचित् विद्याबल आदि से यह सब सम्भव हो जाये। इनसे होने वाला कष्ट टल जाये। परन्तु गुरुजनों की आशातना से होने वाला भव-भ्रमण का दुःख किसी तरह नहीं टल सकता।

आयरियपाया पुण अप्पसण्णा, अबोहि आसायण णत्थि मुक्खो।

तम्हा अणाबाहसुहाभिकंखी, गुरुप्पसायाभिमुहो रमिज्जा ॥10॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

आचार्य चरण हों अप्रसन्न, अपमान अबोधि वश मोक्ष नहीं।
अतएव मोक्ष सुख अभिलाषी, गुरु कृपा प्राप्त कर रमे सही ॥

अन्वयार्थ-आयरियपाया पुण = आचार्यचरण के। अप्पसण्णा = अप्रसन्न होने से। अबोहि = बोधि-लाभ नहीं होता, क्योंकि। आसायण = गुरु की आशातना से। मुक्खो = मोक्ष। णत्थि = नहीं होता है। तम्हा = इसलिये। अणाबाह = निराबाध। सुहाभिकंखी = सुख की आकांक्षा वाला। गुरुप्पसायाभिमुहो = गुरुदेव की इच्छा के अनुकूल। रमिज्जा = रमण करे-विचरे।

भावार्थ-क्योंकि आचार्य देव की अप्रसन्नता अबोधि जनक होती है, अतः शास्त्र कहता है कि गुरु की आशातना करने वाले को मोक्ष प्राप्त नहीं होता। इसलिये गुरु की आशातना को हानिप्रद जानकर निराबाध सुख की इच्छा वाला मुनि सदा गुरुजनों की इच्छा के अनुरूप विचरण करे अर्थात् सदा उनकी सेवा भक्ति में तल्लीन रहे।

जहाहि अग्गी जलणं नमंसे, नाणाहुइमंतपयाभिसित्तं।

एवायरियं उवचिद्वुइज्जा, अणंतणाणोवगओ वि संतो ॥11॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

मंत्र सुसंस्कृत नानाहुति से, अनल विप्र ज्यों नमन करे ।

शिष्य अनंत ज्ञानयुत् ज्योंही, गुरु सेवा में चित्त धरे ॥

अन्वयार्थ-जहा = जैसे । **आहिअग्नी** = अग्नि पूजक ब्राह्मण । **नाणाहुडमंतपयाभिसित्तं** = नानाविध घृतादि की आहुति और मन्त्रपदों से अभिषिक्त । **जलणं** = अग्निदेव को । **नमंसे** = नमस्कार करता है । **एव** = इसी प्रकार शिष्य । **अणंतणाणोवगओ** = अनन्त ज्ञान युक्त । **वि संतो** = होकर भी । **आयरियं (आयरिअं)** = आचार्य की । **उवचिट्ठइज्जा** = सेवा में उपस्थित होकर विनयपूर्वक उनकी सेवा करे ।

भावार्थ-शिष्य को चाहिए कि वह गुरु को देवतुल्य समझे, जैसे आहिताग्नि देवकपूजक विप्र अनेक प्रकार की घी, मधु आदि की आहुति और वेद मन्त्रों से अभिषिक्त अग्नि को देव भाव से नमस्कार करता है, वैसे ही योग्य शिष्य अनन्तज्ञान से युक्त हो जाने पर भी आचार्य महाराज की सेवा में तत्परता से उपस्थित रहे । विनयपूर्वक गुरु की सेवा करे ।

जस्संतिए धम्मपयाइं सिक्खे, तस्संतिए वेणइयं पउंजे ।

सक्कारए सिरसा पंजलीओ, कायगिरा भो मणसा य णिच्चं ॥12॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

जिसके पास धर्म पद सीखे, उससे सविनय व्यवहार करे ।

तन मन वचनों से वन्दन कर, कर युत सिर से सत्कार करे ॥

अन्वयार्थ-जस्संतिए = जिस गुरु के पास । **धम्मपयाइं** = धर्म पदों को । **सिक्खे तस्संतिए** = सीखे, उसके समीप में । **वेणइयं** = विनय का । **पउंजे** = प्रयोग करे । **सक्कारए** = सत्कार दे । **सिरसा पंजलीओ** = सिर झुकाकर, दोनों हाथ जोड़े-बहुमान दे । **य** = और । **कायगिरा भो मणसा** = काया, वचन, और मन से । **णिच्चं** = सदा गुरु की भक्ति करे ।

भावार्थ-शिष्य का यह परम कर्तव्य है कि जिस मुनि के पास धर्म पदों को सीखे, उनके पास उचित विनय की प्रवृत्ति कर दोनों हाथ जोड़े हुए सिर झुकाकर उन्हें नमन करे और तन, मन एवं वाणी से उनका सदा सत्कार करे, गुरुदेवों का गुण कीर्तन करते हुए उनका बहुमान करे । विनय से गुण दीपते हैं और दर्शकों के मन में गुरु के प्रति भक्ति जागृत होती है एवं धर्म की प्रभावना होती है ।

लज्जा दया संजम बंभचेरं, कल्लाण भागिस्स विसोहिठाणं ।

जे मे गुरु सययमणुसासयंति, तेऽहं गुरु सययं पूययामि ॥13॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

लज्जा दया ब्रह्मव्रत संयम, कल्याण भाग के शुचितम पद ।

सतत सिखायें मुझको जो गुरु, नित्य करूँ पूजन वह पद ॥

अन्वयार्थ-लज्जा = पाप कार्य के प्रति लज्जा व भय रखना । **दया** = जीव दया-अनुकम्पा के भाव । **संयम** = संयम और । **ब्रह्मचर्य** = ब्रह्मचर्य, ये चार गुण । **कल्याण भागिस्स** = कल्याणार्थी साधक के लिये । **विसोहिट्टाणं** = विशुद्धि के स्थान हैं । इसलिये शिष्य को सोचना चाहिये कि । **जे** = जो । **गुरु** = गुरुदेव । **सययं** = निरन्तर । **मे** = मुझे । **अणुसासयंति** = शिक्षा देते हैं । **ते** = उन । **गुरु सययं** = गुरुओं की सदा । **अहं** = मैं । **पूययामि (पूअयामि)** = विनय-भक्ति करूँ ।

भावार्थ-साधक की साधना में चार शुद्धि के स्थान हैं, जैसे-लज्जा-पाप करते समय शरमाना, दया, करुणा-भाव, संयम और ब्रह्मचर्य । उपकारी के प्रति बहुमान की भावना से शिष्य सोचता है कि जो गुरु सदा मुझे हित की शिक्षा देते हैं, उनकी मुझे सतत-सेवा भक्ति करनी चाहिए । क्योंकि संसार में गुरु से बढ़कर कोई भव-भव का उपकारी नहीं होता । नीति शास्त्र में भी कहा है कि एक अक्षर सिखाने वाला भी उपकारी होता है । उसका भी बहुमान करना चाहिये । फिर जो सदा जीवन सुधार की शिक्षा देते हैं उनके उपकार का तो कहना ही क्या ? उनके उपकार की कोई सीमा नहीं है । उनका सदा बहुमान एवं सेवा भक्ति करनी चाहिये ।

जहा णिसंते तवणच्चिमाली, पभासइ केवलं भारहं तु ।

एवायरियो सुयसीलबुद्धिए, विरायइ सुरमज्जेव इंदो ॥14॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

रात्रि गए ज्यों किरण माल रवि, भरत क्षेत्र द्योतित करता ।

त्यों श्रुतशील बुद्धि से गुरु, मुनि मध्य सुरेन्द्र बना रहता ॥

अन्वयार्थ-जहा = जिस प्रकार । **णिसंते** = रात्रि के अवसान में यानी प्रातःकाल होने पर । **तवणच्चिमाली** = तेज से देदीप्यमान सूर्य । **केवलं (केवल)** = पूरे । **भारहं तु** = भारत वर्ष को । **पभासइ** = प्रकाशित करता है । **एवायरियो (एवमायरियो)** = इसी प्रकार आचार्य महाराज । **सुयसीलबुद्धिए** = श्रुत-ज्ञान, चारित्र और बुद्धि से । **सुरमज्जे** = देवों में । **इंदो व** = इन्द्र के समान । **विरायइ** = शोभित होते हैं । वे स्व-पर के हृदयों को ज्ञान व दर्शन के प्रकाश से आलोकित करते हैं ।

भावार्थ-गुरु अज्ञान को मिटाने वाले होते हैं । उनके लिये कहा गया है कि जैसे प्रातःकाल अपनी किरणों से दैदीप्यमान सूर्य सम्पूर्ण पृथ्वी को प्रकाशित करते हुए शोभित होता है, वैसे ही धर्माचार्य अपने श्रुत, निर्मलशील और अपनी विमल बुद्धि द्वारा जन-जन के हृदय को प्रकाशित करते हुए शोभित होते हैं । फिर गुरु के लिए और उपमा देते हुए कहा गया है कि वे शिष्य गण के बीच ऐसे शोभित होते हैं जैसे सुरगणों के बीच इन्द्र शोभित होता है । इसलिये जन श्रुति प्रसिद्ध है कि “गुरु दीपक गुरु चाँदणा, गुरु बिन घोर अंधेर ।”

जहा ससी कोमुड़ जोगजुत्तो, नक्खत्त-तारागण-परिवुडप्पा ।
खे सोहड़ विमले अब्भमुक्के, एवं गणी-सोहड़ भिक्खुमज्जे ॥15॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

जैसे चन्द्र चन्द्रिका संयुत, तारा नक्षत्रों से घिरे हुए ।
अभ्र रहित नभ में शोभित हों, त्यों गणी भिक्षु से घिरे हुए ॥

अन्वयार्थ-जहा = जैसे । कोमुड़जोगजुत्तो = शरत्काल की पूर्णिमा के योग वाला । ससी = चन्द्र । नक्खत्त = ग्रह नक्षत्र एवं । तारागण = तारा समूह से । परिवुडप्पा = घिरा हुआ । अब्भमुक्के = बादलों से रहित । विमले = निर्मल । खे = आकाश में । सोहड़ = शोभा पाता है । एवं = ऐसे ही । भिक्खुमज्जे = भिक्षु मण्डल में । गणी = आचार्य । सोहड़ = शोभित होते हैं ।

भावार्थ-निर्मल और बादलों से मुक्त स्वच्छ गगन में जैसे कार्तिक पूर्णिमा का चन्द्र, ग्रह-नक्षत्रों से घिरा हुआ शोभा पाता है, वैसे ही आचार्य साधु समूह में अपनी ज्ञान ज्योत्स्ना से शोभित होते हैं । दूसरे शब्दों में आचार्य को दीपक के समान स्व-पर को प्रकाशित करने वाला कहा गया है-‘दीवसमा आयरिया, दिप्पंति परं च दीवन्ति ।’ अतः धर्म गुरु ज्योतिर्धर भी है ।

महागरा आयरिया महेसी, समाहिजोगे सुयसीलबुद्धिए ।
संपाविउकामे अणुत्तराइं, आराहए तोसए धम्मकामी ॥16॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

उत्कृष्ट ज्ञान लाभ इच्छुक, धर्मी दे तोष प्रसन्न करे ।
श्रुत शील बुद्धि से ध्यान बीच, मोक्षेच्छुक गुरु का मान करे ॥

अन्वयार्थ-अणुत्तराइं = सर्वश्रेष्ठ गुणों को । संपाविउकामे = प्राप्त करने की इच्छा वाले । धम्मकामी = धर्मकामी को चाहिये कि । समाहिजोगे = समाधि योग और । सुयसीलबुद्धिए = श्रुत, शील एवं बुद्धि के । महागरा = महान् आकर । महेसी = महर्षि । आयरिया = आचार्य महाराज की । आराहए = आराधना करे तथा । तोसए = उन्हें प्रसन्न करे ।

भावार्थ-आचार्य श्रेष्ठ गुण, जैसे-समाधियोग, श्रुतशील और बुद्धि आदि के महान् आकर (भण्डार) हैं । ज्ञान-क्रिया का कोई गुण उनमें अवशिष्ट नहीं रहता । अतः सर्वश्रेष्ठ गुणों को पाने की इच्छा वाला, धर्मकामी मुनि सर्वतोभावेन उनकी आराधना करे । उनके प्रति अपनी प्रगाढ़ विनय भक्ति एवं सेवा से उन्हें प्रसन्न रखे ।

हिन्दी पद्यानुवाद-

मेधावी सुन ये सुघड़ वचन, हो अप्रमत्त गुरु का सेवन ।
करके अनेक गुण आराधन, पा लेता मोक्ष परम पावन ॥

अन्वयार्थ-मेहावि = मेधावी मुनि । सुभासियाइं = पूर्वकथित सुभाषित वचनों को । सुच्चाण (सोच्चाण) = सुनकर । अप्पमत्तो = अप्रमत्त भाव से प्रमाद रहित होकर । आयरिय = आचार्य की । सुस्सूसाए = सेवा करे । से अणेगे = वह गुरु चरणों में ज्ञानादि अनेक । गुणे = गुणों की । आराहइत्ताण = आराधना करके । अणुत्तरं = सर्वश्रेष्ठ । सिद्धिं = सिद्धि पद को । पावई = प्राप्त करता है ।

भावार्थ—गुरु की अविनय आशातना से आत्म-गुणों की हानि और गुरु गुणगान का लाभ बताकर अब उपसंहार करते हुए शास्त्रकार कहते हैं कि बुद्धिमान् साधु उपर्युक्त सुभाषित वचनों को सुनकर आचार्य देव की अप्रमत्त भाव से सेवा करे। गुरु चरणों में बैठकर विविध गुणों की आराधना करने वाला मेधावी मुनि सर्वश्रेष्ठ सिद्धि को प्राप्त कर लेता है। ऐसा मैं कहता हूँ।

॥ नौवाँ अध्ययन-प्रथम उद्देशक समाप्त ॥



द्वितीय उद्देशक

दूसरे उद्देशक में विनय की महिमा बताते हुए शिक्षा देते हैं-

मूलाओ खंधप्पभवो दुमस्स, खंधाओ पच्छा समुविति साहा ।
साहप्पसाहा विरुहंति पत्ता, तओ सि पुप्फं च फलं रसो य ॥१॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

होता स्कन्ध विटप जड़ से, फिर शाखा और प्रशाखा भी ।
पत्र फूल और फल होते, भर जाता है उसमें रस भी ॥

अन्वयार्थ-दुमस्स = वृक्ष के । मूलाओ = मूल से । खंधप्पभवो = स्कन्ध की उत्पत्ति होती है ।
खंधाओ = स्कन्ध के । पच्छा = पश्चात् । समुविति साहा = शाखा प्रकट होती है । साहप्पसाहा =
शाखा से प्रशाखाएँ । पत्ता = प्रशाखा के पत्र । विरुहंति = प्रकट होते हैं । तओ = पत्तों के पश्चात् । सि =
उस वृक्ष के । पुप्फं च फलं = फूल और फल । रसो य = तथा रस उत्पन्न होते हैं ।

भावार्थ-जिस प्रकार वृक्ष के मूल से स्कन्ध (धड़) प्रकट होता है और स्कन्ध (धड़) से शाखाएँ
निकलती हैं, शाखाओं से प्रशाखाएँ फूटती हैं, प्रशाखाओं से पत्ते और फिर उस वृक्ष के फूल, फल और रस
की उत्पत्ति होती है । मूल यदि हरा-भरा रहता है, तो वृक्ष के सभी अंग-स्कन्ध, शाखा-प्रशाखा आदि समृद्ध
रहते हैं ।

एवं धम्मस्स विणओ, मूलं परमो से मुक्खो ।
जेण कित्तिं सुयं सिग्घं, णिस्सेसं चाभिगच्छइ ॥२॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

ऐसे ही विनय धर्म की जड़, उसका उत्कृष्ट मोक्ष है फल ।
जिससे कीर्ति निधि शास्त्रों की, प्राप्ति रूप मिलता है फल ॥

अन्वयार्थ-एवं धम्मस्स = ऐसे ही धर्मवृक्ष का । मूलं = मूल । विणओ = विनय है । से =
उसका । परमो = परम फल । मुक्खो = मोक्ष है । जेण कित्तिं = जिस विनय से साधक कीर्ति । सुयं सिग्घं
च = श्लाघनीय श्रुत और । णिस्सेसं = मोक्ष को । अभिगच्छइ = प्राप्त करता है ।

भावार्थ-वृक्ष की तरह धर्म का मूल विनय है और मोक्ष उस धर्म का उत्कृष्ट फल है । विनय के द्वारा
साधक यश-कीर्ति, श्लाघ्य श्रुत और निःश्रेयस् के फल को प्राप्त करता है । विनय का मूल दृढ़ होने पर
साधक श्रुत-धर्म, चारित्र-धर्म और तप-संयम की विधिवत् आराधना करते हुए अन्त में सुलभता से सिद्धि
प्राप्त कर लेता है ।

जे य चंडे मिए थद्धे, दुव्वाई नियडी सढे ।
वुज्झइ से अविणीअप्पा, कट्ठं सोयगयं जहा ॥३॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

जो क्रोधी अज्ञ दर्पी भीरु, दुर्वादी शठ कपटी होता ।
अविनीत हृदय वह दारु तुल्य, जल धारा में खाता गोता ॥

अन्वयार्थ-जे = जो । य (अ) = और । चंडे = चंड (क्रोधी) । मिए = मृगवत्-अज्ञानी । थद्धे = अहंकारी । दुव्वाई = दुर्वादी-कदाग्रही । नियडी (निअडी) = कपटी । सढे = शठ-संयम से अंग चुराने वाला है । से = वह । अविणीअप्पा = अविनीत आत्मा । सोयगयं (सोअगयं) = समुद्र के प्रवाह में । जहा = जैसे । कट्ठं = काष्ठ । वुज्झइ = गोते खाता रहता है, वैसे वह संसारी रूपी समुद्र के प्रवाह में भटकता रहता है ।

भावार्थ-विनय धर्म से प्रतिकूल चलने का परिणाम बताते हैं-जो क्रोधी, मृगसम अज्ञानी, अहंकारी, अप्रिय भाषी, कपटी और धूर्त है, वह अविनीत आत्मा समुद्र के अथाह जल-प्रवाह में गिरे हुए काष्ठ की तरह चतुर्गतिक संसार में भटकता है, कहीं भी शान्ति से स्थिर नहीं रह सकता ।

विणयम्मि जो उवाएणं, चोइओ कुप्पइ नरो ।
दिव्वं सो सिरिमिज्जंतिं, दंडेण पडिसेहए ॥४॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

सुनकर शिक्षा विनय धर्म की, कुपित हृदय जो हो जाता ।
वह आती हुई दिव्यलक्ष्मी को, डंडा मार भगा देता ॥

अन्वयार्थ-जो = जो । नरो = मनुष्य । विणयम्मि = विनय-धर्म में दीक्षित होने के लिए । उवाएणं = मधुर वचन एवं उपदेश आदि उपायों से । चोइओ = प्रेरित किये जाने को अपना कटु दमन समझ कर । कुप्पइ (कुप्पई) = कुपित होता है । सो = वह । इज्जंतिं = आती हुई । दिव्वं सिरिं = दिव्य लक्ष्मी को । दंडेण = दंड से । पडिसेहए = बाहर निकालता है, अर्थात् आती लक्ष्मी को ठोकर मारता है ।

भावार्थ-जो मंदबुद्धि मनुष्य विनय के सम्बन्ध में उचित शिक्षा प्राप्त करने के लिये प्रेरित किये जाने पर भी क्रोध करता है, तो समझना चाहिये कि वह मूढ़ घर में आती हुई दिव्य लक्ष्मी को डंडे मारकर घर से बाहर कर रहा है । ऐसे मनुष्य को यश, कीर्ति, सम्पदा और सम्मान से सदा वंचित रहना पड़ता है ।

तहेव अविणीअप्पा, उववज्झा हया गया ।
दीसंति दुहमेहंता, आभिओगमुवट्ठिया ॥५॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

अविनीत अश्व गज ज्यों जग में, केवल दुःख भार उठाते हैं।

प्रत्यक्ष बात वैसे ही ये, अविनीत श्रमण दुःख पाते हैं॥

अन्वयार्थ-तहेव = उसी तरह यानी दिव्य लक्ष्मी को घर से बाहिर निकालने के समान। **उववज्झा** = सवारी में काम आने वाले। **अविणीअप्पा** = अविनीत स्वभाव के। **हया गया** = हाथी, घोड़े। **आभिओगं** = भार ढोने में। **उवट्टिया** = लगाये जाने पर। **दुहमेहंता** = दुःख भोगते हुए। **दीसंति** = देखे जाते हैं।

भावार्थ-अविनीत को कैसे दुःख भोगने पड़ते हैं इसको दृष्टान्त के द्वारा बताते हैं-विनय की शिक्षा लेने के लिये कहे जाने पर भी कुपित होने वाले अज्ञ मानव के समान राजाओं की सवारी में काम आने वाले हाथी-घोड़े जो अविनीत स्वभाव के होते हैं, उनको भार ढोने के काम में लगा देते हैं, जहाँ वे दुःख भोगते हुए देखे जाते हैं। उनको बराबर चारा-पानी भी नहीं मिलता। अन्य प्रकार के आराम की तो बात ही कहाँ ?

तहेव सुविणीअप्पा, उववज्झा हया गया।

दीसंति सुहमेहंता, इड्ढिं पत्ता महायसा ॥6॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

जैसे विनम्र हाथी-घोड़े, भोजन भूषण सुख पाते हैं।

वैसे ही वे नम्र शिष्य, यश ऋद्धि और सुख पाते हैं॥

अन्वयार्थ-तहेव = वैसे ही। **उववज्झा** = सवारी में लगे हुए। **हया गया** = जो हाथी-घोड़े। **सुविणीअप्पा** = विनीत-स्वभाव वाले यानी अपने स्वामी के संकेत मात्र पर चलने वाले होते हैं। **इड्ढिं पत्ता** = वे नाना प्रकार के आभूषण आदि की ऋद्धि प्राप्त करते हैं। **महायसा** = महा यशस्वी होते हैं, सबकी प्रशंसा प्राप्त करते हैं। **सुहमेसंता** = सुख भोगते हुए। **दीसंति** = देखे जाते हैं।

भावार्थ-वैसे ही जो हाथी-घोड़े सुविनीत होते हैं, संकेत मात्र से कदम बढ़ाते हैं, वे यशस्वी होते हुए, आभूषण आदि की ऋद्धि प्राप्त कर सुख एवं सम्मान भोगते ही देखे जाते हैं। अच्छे हाथी-घोड़ों की आज भी सेवकों द्वारा मालिश की जाती है और उनको यथेष्ट पौष्टिक भोजन दिया जाता है।

तहेव अविणीअप्पा, लोगंसि नर-नारिओ।

दीसंति दुहमेहंता, छाया ते विगल्लिंदिया ॥7॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

कितने अविनीत पुरुष नारी, क्षत तन या विकलेन्द्रिय बनकर।

दुःख पाते देखे जाते हैं, वैसे अविनीत साधु भूतल पर॥

अन्वयार्थ-तहेव = वैसे ही। लोगंसि = संसार में। अविणीअप्पा = अविनीत स्वभाव के। नर-नारिओ = जो स्त्री-पुरुष होते हैं। ते = वे। छाया = भूखे, कृश तन। विगलिंदिया = और विकल इन्द्रिय बने। दुहमेहंता = दुःख भोगते हुए। दीसंति = देखे जाते हैं।

भावार्थ-संसार में जो स्त्री-पुरुष अविनीत स्वभाव वाले-अहंकारी होते हैं, वे शोभा रहित, भूखे-प्यासे, शरीर से कृश और नाक, कान आदि इन्द्रियों से विकल, शारीरिक एवं मानसिक अनेक प्रकार के दुःख भोगते हुए देखे जाते हैं। अविनयशील स्वभाव के कारण उनके घर और परिवार में प्रसन्नता के स्थान पर प्रायः कलह एवं दुःख का वातावरण रहता है।

दण्ड-सत्थ-परिजुण्णा, असब्भवयणेहि य।

कलुणा विवण्णछंदा, खुप्पिवासाइ परिगया ॥८॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

दण्ड शस्त्र से जर्जर तन, और पीड़ाकारी वचनों से।

आती दया देखकर पीड़ित, भूख प्यास के कष्टों से ॥

अन्वयार्थ-दण्ड-सत्थ = दण्ड और शस्त्र प्रहार से। परिजुण्णा = जर्जरित। य = और। असब्भवयणेहि = असभ्य वचनों से तिरस्कृत। कलुणा = दया पात्र। विवण्णछंदा = पराधीन। खुप्पिवासाइ (खुप्पिवास) = भूख और प्यास से। परिगया = पीड़ित देखे जाते हैं।

भावार्थ-अविनीत की कैसी स्थिति होती है, इसका परिचय देते हुए कहा गया है कि अविनीत दण्ड और शस्त्र प्रहारों से जर्जरित और असभ्य वचनों से तिरस्कृत होते हैं, उनकी दशा करुणाजनक होती है। वे परतन्त्र दशा में भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी से घिरे हुए सदा कष्ट भोगते रहते हैं।

तहेव सुविणीअप्पा, लोगंसि नर-नारिओ।

दीसंति सुहमेहंता, इड्ढिं पत्ता महाजसा ॥९॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

वैसे विनीत नर-नारी भी, जग में वैभव बहु यश पाते।

सुख प्राप्त दिखाई देते हैं, वैसे विनीत जग में छाते ॥

अन्वयार्थ-तहेव = वैसे ही। लोगंसि = संसार में। नर-नारिओ = जो स्त्री-पुरुष। सुविणीअप्पा = विनयशील स्वभाव के हैं; वे। महाजसा = महान् यशस्वी। इड्ढिं पत्ता = लोक-परलोक की ऋद्धि प्राप्त कर। सुहमेहंता = सुख भोगते हुए। दीसंति = देखे जाते हैं।

भावार्थ-अविनीत जैसे नानाविध कष्टों का अनुभव करते हैं, इसके विपरीत संसार में जो विनयशील

स्त्री पुरुष हैं, वे जन-जन के प्रेम-पात्र होते हैं। नम्र स्वभाव से सर्वत्र कीर्ति अर्जित करते हैं। घर-घर में सत्कार पाते हैं और सब प्रकार की ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त कर, सभी प्रकार के सुख भोगते हुए देखे जाते हैं।

**तहेव अविणीअप्पा, देवा जक्खा य गुज्झगा ।
दीसंति दुहमेहंता, आभिओगमुवट्ठिआ ॥१०॥**

हिन्दी पद्यानुवाद-

वैसे अविनीत हृदय वाले, सुर यक्ष और गुह्यक सारे ।
बन दास दूसरे देवों के, देखे जाते दुःख के मारे ॥

अन्वयार्थ-तहेव = जिस प्रकार विनीत-अविनीत, तिर्यच और मनुष्यों के क्रमशः गुण दोष बताया गये हैं, उसी प्रकार अब देवों के विषय में भी बताया जाता है। **अविणीअप्पा** = जो मनुष्य अविनीत स्वभाव वाले होते हैं, जो अहंकार वश मन्त्र-तन्त्रादि का प्रयोग करते हैं एवं अपने धर्माचार्य-उपाध्याय आदि की अविनय-आशातना व निन्दा आदि करते हैं, वे आयुष्य पूर्ण करके, कुछ अच्छी करणी व तप आदि करने से भले ही। **देवा जक्खा य गुज्झगा** = वैमानिक अथवा ज्योतिष देव, यक्षादि व्यंतर देव तथा भवनपति आदि गुह्यक देव रूप में उत्पन्न हो जाते हैं। पर वहाँ भी ऊँची पदवी नहीं पाते। हीन जाति के किल्बिषी देव बनते हैं। **आभिओगमुवट्ठिआ** = बड़े देवों के सेवक बनकर उनकी सेवा करते हुए एवं पराधीन जीवन जीते हुए। **दुहमेहंता दीसंति** = वहाँ भी नाना प्रकार के दुःख भोगते हुए देखे जाते हैं।

भावार्थ-जो जीव अविनीत होते हैं वे अपनी मनुष्य अथवा तिर्यच की आयुष्य पूर्ण करके अपनी कुछ अच्छी करणी से स्वर्ग में वैमानिक, ज्योतिष, यक्ष, व्यंतर, भवनपति या गुह्यक आदि देवजातियों में उत्पन्न होकर भी हीन जाति के देव होते हैं। वहाँ भी वे ऊँची पदवी नहीं पाते हैं। बड़े देवों के सेवक बनते हैं और उनकी सेवा करते हुए पराधीनता वश वहाँ भी नाना प्रकार के दुःख भोगते हुए देखे जाते हैं। कहावत भी है कि 'पराधीन सपनेहु सुख नाहिं।' अविनीत शिष्यों की यही दशा होती है।

**तहेव सुविणीअप्पा, देवा जक्खा य गुज्झगा ।
दीसंति सुहमेहंता, इड्ढिं पत्ता महाजसा ॥११॥**

हिन्दी पद्यानुवाद-

वैसे सुविनीत हृदय वाले, सुर यक्ष तथा गुह्यक सारे ।
ऋद्धिमन्त और महायशी, दिखते हैं हृष्ट पुष्ट सारे ॥

अन्वयार्थ-तहेव = इसी प्रकार। **सुविणीअप्पा** = सुविनीत स्वभाव वाले जीव। **देवा जक्खा** = देव, यक्ष। **य गुज्झगा** = और गुह्यक जाति के देव रूपों में उत्पन्न होकर भी। **महाजसा** = बड़े यशस्वी होते हैं। **इड्ढिं पत्ता** = ऋद्धिवन्त एवं समृद्धिशाली होते हैं और। **सुहमेहंता** = स्वर्ग में अलौकिक सुख भोगते हुए। **दीसंति** = देखे जाते हैं।

भावार्थ—मानव अपने विनयशील स्वभाव से नरलोक को भी स्वर्ग—सा बना लेते हैं। अपने पूर्व जन्म में ऐसी ज्ञान, क्रिया एवं विनयपूर्वक की गई गुरु भक्ति से 33 धर्म बन्धु एक साथ, अपना आयुष्य पूर्ण करके स्वर्ग में बड़ी ऋद्धि के स्वामी त्रायत्रिंशक देव हुए। इन्द्र भी उनको गुरु के स्थानापन्न मानकर उनका आदर करता है। यह ज्ञानादि विनय का ही सुन्दर फल है।

**जे आयरिय उवज्झायाणं, सुस्सूसा वयणंकरा ।
तेसिं सिक्खा पवड्ढंति, जलसित्ता इव पायवा ॥12॥**

हिन्दी पद्यानुवाद—

आचार्य और उपाध्यायों के, सेवक आज्ञा पालक बनते ।
शिक्षा उनकी अतिशय बढ़ती, जैसे जल सिंचित तरु बढ़ते ॥

अन्वयार्थ—जे = जो शिष्य। **आयरिय** = आचार्य। **उवज्झायाणं** = और उपाध्यायों की। **सुस्सूसा** = सेवा सुश्रुषा करने वाले हैं। **वयणं करा** = और उनकी आज्ञा का पालन करने वाले हैं। **तेसिं** = उनकी। **सिक्खा** = शिक्षा। **जलसित्ता** = जल से सींचे गये। **पायवा इव** = वृक्षों के समान। **पवड्ढंति** = बढ़ती रहती है।

भावार्थ—गुरु—सेवा का तात्कालिक फल बतलाते हुए कहते हैं कि जो शिष्य, धर्मगुरु आचार्य और ज्ञान दाता उपाध्यायों की तन—मन से सेवा करते हैं और उनकी आज्ञा का पालन करते हैं, उनकी शिक्षा वैसे ही बढ़ती जाती है जैसे जल से सींचे गये वृक्ष। वे फल—फूल, शाखा—प्रशाखाओं आदि से बढ़ते जाते हैं। ज्ञान वृद्धि में अपना ज्ञानावरणीय का क्षयोपशम एवं लगन से किया गया श्रम ही पर्याप्त नहीं होता, इन सबके साथ गुरुजनों की विनय—भक्ति की भी पूरी आवश्यकता होती है।

**अप्पणट्ठा परट्ठा वा, सिप्पा जेउणियाणि य ।
गिहिणो उवभोगट्ठा, इहलोगस्स कारणा ॥13॥**

हिन्दी पद्यानुवाद—

अपने या परहित कोई जो, व्यवहार शिल्प शिक्षा पाता ।
वह गृहस्थ सुख भोग हेतु, देखो क्या क्या नहीं कर पाता ॥

अन्वयार्थ—**गिहिणो** = गृहस्थ। **इहलोगस्स** = इस लोक के भौतिक सुखों की प्राप्ति के। **कारणा** = लिये। **उवभोगट्ठा** = तथा भोगोपभोग की सामग्री की उपलब्धि के लिये। **अप्पणट्ठा** = अपने लिये। **वा परट्ठा** = अथवा परिजनों के लिये। **सिप्पा** = नाना प्रकार के शिल्प। **जेउणियाणि य** = और व्यवहार में निपुण बनने की शिक्षा ग्रहण करते हैं।

भावार्थ—गृहस्थ लोग लौकिक सुख-सामग्री के उपार्जन हेतु और अपने अथवा परिजनों के लिये भोग-सामग्री उपलब्ध कराने हेतु, अनेक प्रकार के शिल्प, कला, उद्योग, रंगाई, छपाई, सिलाई, लेखन, भाषण आदि में कुशल बनने के लिये शिक्षा ग्रहण करते हैं। शिक्षण-काल में उनको भी अपने शिक्षक आचार्यों का बड़ा आदर रखना और उनके नाना प्रकार के आदेशों का पालन करना पड़ता है।

**जेण बंधं वहं घोरं, परियावं च दारुणं ।
सिक्खमाणा नियच्छंति, जुत्ता ते ललिइंदिया ॥14॥**

हिन्दी पद्यानुवाद-

जिससे कठिन मार और बन्धन, दारुण परिताप प्राप्त होता ।
कला सीखने वाले कोमल, तन को सब सहना होता ॥

अन्वयार्थ—ते = वे । **ललिइंदिया (ललिइंदिया)** = रमणीय इन्द्रियों वाले (सुकोमल शरीर वाले) । **जेण** = जिस शिक्षण के साथ । **जुत्ता** = लगे हुए हैं वहाँ । **सिक्खमाणा** = शिक्षण पाते हुए वे । **वहं** = घोर प्रहार और । **च** = और । **दारुणं** = भयंकर । **परियावं (परिआवं)** = परिताप-पीड़ा । **नियच्छंति (निअच्छंति)** = प्राप्त करते हैं ।

भावार्थ—प्राचीन काल की शिक्षा पद्धति में कलाचार्य द्वारा छात्रों को मारना, पीटना, कभी शृङ्खला आदि से बांध देना, खाने-पीने को नहीं देना आदि दारुण कष्ट भी दिये जाते रहे हैं। राजकुमार हो या श्रेष्ठिपुत्र, ब्रह्मपुत्र हो अथवा शूद्रपुत्र, सबके साथ समान व्यवहार करते हुए उनके योग्य शिक्षण दिया जाता था। कलाचार्य पूर्ण स्वतन्त्र थे। आज के वेतन भोगी शिक्षकों की तरह वे पराधीन नहीं थे। शिक्षणकाल में पूरे समय छात्र, आचार्य के निर्देशन ही में ही सब कुछ करता था, बिना उनकी अनुमति के कोई काम नहीं हो सकता था। राज्य सत्ता का भी उन पर कोई शासन नहीं था। बल्कि राज्य सत्ता उनके सम्मुख नतमस्तक थी।

**तेऽवि तं गुरुं पूयंति, तस्स सिप्पस्स कारणा ।
सक्कारंति नमंसंति, तुट्ठा निद्देसवत्तिणो ॥15॥**

हिन्दी पद्यानुवाद-

वे भी शिल्प सीखने को, उस गुरु की पूजा करते हैं ।
आज्ञा में सन्तुष्ट हृदय, सत्कार वन्दना करते हैं ॥

अन्वयार्थ—तेऽवि = वे राजकुमार भी । **तस्स** = उस । **सिप्पस्स** = शिल्पकारी कुंभकारी, चित्रकारी आदि कारीगरी का ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा के । **कारणा** = कारण । **तं गुरुं** = उस कलाचार्य गुरु की । **पूयंति (पूअंति)** = पूजा करते हैं । **सक्कारंति** = उन्हें सत्कार देते हैं । **नमंसंति** = नमस्कार करते हैं । **तुट्ठा** = सन्तुष्ट होकर । **निद्देसवत्तिणो** = गुरु-आज्ञा का पालन करते हैं ।

भावार्थ—गुरु की मार खाकर एवं पीटे जाकर भी वे राजकुमार, उस शिल्प-कला के ज्ञान की प्राप्ति हेतु उन आचार्य-गुरु की पूजा करते हैं, उनका सत्कार करते हैं, नमस्कार करते हैं और मन से उनकी आज्ञा का पालन करते हुए गुरु को हर प्रकार से सन्तुष्ट व प्रसन्न रखते हैं ।

किं पुण जे सुयग्गाही, अणंतहियकामए ।

आयरिया जं वए भिक्खू, तम्हा तं नाइवत्तए ॥16॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

क्या फिर ? जो हैं श्रुतग्राही, एवं अनन्त हित के कामी ।

गुरु की हित शिक्षा से न कभी, होवें श्रमण बहिर्गामी ॥

अन्वयार्थ—जब संसार की शिक्षा के लिये राजकुमार जैसे भी गुरु का इतना आदर करते हैं तब—**पुण** = फिर । **जे** = जो मुनि । **सुयग्गाही (सुअग्गाही)** = शास्त्र ज्ञान का अभ्यासी । **अणंतहिय (अणंतहिअ)** = तथा मोक्ष रूप अनन्त हित का । **कामए** = कामी है, वह विनय करे तो । **किं** = क्या बड़ी बात है । **तम्हा** **आयरिया (आयरिआ)** = इसलिये आचार्य महाराज । **जं वए** = जो आज्ञा दे । **तं** = उसका । **भिक्खू** **नाइवत्तए** = मुनि अतिक्रमण नहीं करे ।

भावार्थ—जब संसार की कला के लिये राजकुमार आदि भी शिक्षा गुरु का पूर्ण विनय करते हैं, तब कल्याणार्थी साधु जो शास्त्र ज्ञान का अर्थी और अनन्त आत्म-हित की इच्छा वाला है, वह आचार्य का विनय करे तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है ? इसलिये भिक्षु को चाहिए कि धर्माचार्य जो आज्ञा दें, उसका थोड़ा भी अतिक्रमण नहीं करे । गुरु आज्ञा का अच्छी तरह मनोयोग से पालन करे ।

नीयं सिज्जं गइं ठाणं, नीयं च आसणाणि य ।

नीयं च पाए वंदिज्जा, नीयं कुज्जा य अंजलिं ॥17॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

गुरु से हो शय्या नीची, गति स्थान और हो निम्नासन ।

अंजलि को नीची करे तथा, सिर झुका करे पद का वन्दन ॥

अन्वयार्थ—**सिज्जं** = विनीत शिष्य, शय्या । **गइं ठाणं** = गति स्थान । **नीयं (नीअं)** = गुरु से नीचा करे । **आसणाणि य (अ)** = और आसन । **नीयं च** = और नीचा लगावे । **नीयं च** = और नीचे होकर । **पाए** = चरणों में । **वंदिज्जा** = वन्दन करे । **नीयं य** = और नीचे झुककर । **अंजलिं** = अंजलि । **कुज्जा** = करे अर्थात् नमस्कार करे ।

भावार्थ—विनयशील शिष्य गुरु के प्रति श्रद्धाभाव के कारण अपनी शय्या और स्थान गुरु की अपेक्षा

नीचे रखे। चलते समय गुरु से जरा पीछे चले, नीचा होकर गुरु चरणों में वन्दन करे और नीचा झुककर ही करबद्ध प्रणाम करे। शय्या-आसन नीचे होने से दर्शनार्थी को भी यह जानने में कठिनाई नहीं होती कि इनमें गुरु कौन है और शिष्य कौन है।

संघट्टइत्ता काएणं, तहा उवहिणामवि ।

खमेह अवराहं मे, वइज्ज न पुणुत्ति य ॥18॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

गुरु का शरीर और उपधि अगर, भूले भी तन से छू जाये।

अपराध क्षमा हो बोले मुनि, फिर ऐसा कभी न हो पाये ॥

अन्वयार्थ-काएणं = अपने शरीर। तहा = तथा। उवहिणामवि = वस्त्र आदि उपकरणों से भी। संघट्टइत्ता = संघट्ट-स्पर्श भूल से हो जाये तो कहे कि हे भगवन्। मे = मेरा। अवराहं = अपराध। खमेह = क्षमा करें। य = और। न पुणुत्ति (न पुणत्ति) = फिर ऐसा मैं नहीं करूँगा। वइज्ज = ऐसा बोले।

भावार्थ-जिनधर्म विनय प्रधान धर्म है। इसमें गुरु को देवतुल्य मानकर उनका बड़ा आदर किया जाता है। बैठने, उठने में उनके शरीर या आसन आदि को पैर नहीं लगे, इसकी पूरी सतर्कता रखी जाती है। ध्यान रखते हुए भी कभी अपने शरीर या ओघे आदि उपकरणों से आचार्य का संघट्टा हो जाय तो अपने अपराध की क्षमा माँगे और बोले कि हे भगवन् ! फिर से ऐसी गलती नहीं करूँगा।

दुग्गओ वा पओएणं, चोइओ वहइ रहं ।

एवं दुब्बुद्धि किच्चाणं, वुत्तो वुत्तो पकुव्वइ ॥19॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

रथ खींचे जैसे मंद बैल, हो प्रेरित तथा पीटने पर।

वैसे ही अविनीत शिष्य, गुरु कार्य करे बहु कहने पर ॥

अन्वयार्थ-वा = जैसे। दुग्गओ = दुष्ट बैल। पओएणं = लकड़ी आदि से। चोइओ = प्रेरित होकर। रहं वहइ = रथ का वहन करता है। एवं = इसी प्रकार। दुब्बुद्धि = दुर्बुद्धि शिष्य। वुत्तो वुत्तो = आचार्य के बारबार कहने से। किच्चाणं = उनके कार्य को। पकुव्वइ = करता है।

भावार्थ-जातिमान् बैल बिना चाबुक के बराबर चलता है। किन्तु दुष्ट बैल चाबुक की मार खाकर ही रथ का वहन करता है। ऐसा ही दुर्बुद्धि शिष्य का स्वभाव होता है कि वह आचार्य के बारबार कहने पर ही कोई काम करता है। अच्छे शिष्य को संकेत मात्र से ही काम में लग जाना चाहिये, इससे आचार्य और शिष्य दोनों की सन्तुष्टि होती है।

आलवंते लवंते वा, न निसिज्जाए पडिस्सुणे ।
मोत्तूणं आसणं धीरो, सुस्सूसाए पडिस्सुणे ॥20॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

गुरु कहें एक या बार-बार, सुन उसे न बैठे आसन पर ।
अति विनय भाव से सुने उसे, मुनि-धीर शीघ्र आसन तज कर ॥

अन्वयार्थ-आलवंते = गुरुदेव के एक बार बुलाने पर । वा = अथवा । लवंते = बार-बार बुलाने पर । धीरो = धीर शिष्य । निसिज्जाए = निषिद्धा यानी आसन पर बैठे-बैठे । न पडिस्सुणे = उत्तर नहीं दे, किन्तु । आसणं = आसन को । मोत्तूणं = छोड़कर । सुस्सूसाए = विनय पूर्वक सुने और । पडिस्सुणे = फिर उत्तर दे ।

भावार्थ-विनीत शिष्य से काम कराने में आचार्य को कष्टानुभव नहीं करना पड़े, इसलिये शिष्य को ध्यान दिलाया गया है कि वह एक बार या बार-बार बुलाने पर अपने आसन पर बैठे-बैठे ही उत्तर नहीं दे, किन्तु बुद्धिमान् भिक्षु आसन छोड़कर विनय भाव से उत्तर प्रदान करे । यह जिनशासन का आदर्श है, जो बड़े-बड़े पण्डितों को चकित कर देता है । एक घटना इस प्रकार है-

एक समय की बात है कि आचार्य से विनय का उपर्युक्त वर्णन सुनकर एक पण्डित ने कहा-“महाराज इस प्रकार के विनय का पालन करने वाले शिष्य चौथे आरक में मिलते होंगे । आज पंचम काल में तो मिलने दुर्लभ हैं ।” आचार्य ने कहा-“नहीं, ऐसी बात तो नहीं है ।” ऐसा कहकर आचार्य ने अपने शिष्य को पुकारा । आवाज सुनते ही शिष्य उपस्थित हो गया, किन्तु देखा कि गुरु कायोत्सर्ग में हैं, वह लौट गया । क्षण भर के पश्चात् गुरु ने फिर पुकारा । शिष्य अविलम्ब उपस्थित हुआ । परन्तु अब भी देखता है कि गुरु ध्यानस्थ हैं, तो पुनः लौट गया । यों सात बार गुरु ने पुकारा और शिष्य सातों बार बेचूक उपस्थित होता रहा । उसने जरा-सा भी नाक में सल नहीं डाला । यह देखकर पण्डित को यह कहना पड़ा कि गुरुदेव ! मुझे आपने जैसा सुनाया, वैसा विनय इस शिष्य में देख लिया । धन्य हैं आप जैसे गुरु और ये विनयशील शिष्य । संसार में ऐसा अन्य उदाहरण मिलना कठिन है । (नोट-यह गाथा संख्या 20 किसी-किसी प्रति में नहीं भी मिलती ।)

कालं छंदोवयारं च, पडिलेहिताण हेउहिं ।
तेण तेण उवाएण, तं तं संपडिवायए ॥21॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

ऋतु के अनुसार समझ आशय, गुरु हित प्रिय वस्तु माँग लावे ।
कर्तव्य शिष्य का सदा यही, जैसे हो गुरु को हर्षावे ॥

अन्वयार्थ-कालं च = द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से। छंदोवयारं = गुरु का अभिप्राय। हेउहिं (हेऊहिं) = हेतुओं से तर्क पूर्वक। पडिलेहित्ताण = जानकर। तेण तेण (तेहिं तेहिं) = उन उन। उवाएण (उवाएणं/उवाएहिं) = उपायों से। तं तं (तं णं) = उस-उस कार्य को। संपडिवायए = संपादित अर्थात् पूर्ण करे।

भावार्थ-विनीत शिष्य देश कालानुसार कहाँ कौनसा द्रव्य गुरु के अनुकूल होगा, इसको और गुरु के मनोगत भाव को अपनी तर्क बुद्धि से यथोचित समझकर उस-उस उपाय से उनकी आवश्यकता को पूर्ण करे। शीतकाल में उष्ण पदार्थ अनुकूल होते हैं किन्तु आचार्य की रुचि और प्रकृति को वे अधिक लाभकारी नहीं होते हों तो इस बात को तर्क से समझकर उसके अनुकूल आहार आदि की व्यवस्था करे।

विवत्ती अविणीयस्स, संपत्ती विणीयस्स य।
जस्सेयं दुहओ णायं, सिक्खं से अभिगच्छइ ॥22॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

पाता अविनीत सदा विपदा, सम्पदा विनम्र को मिलती है।
जिसने यह सब जान लिया, सत् शिक्षा उसको मिलती है ॥

अन्वयार्थ-अविणीयस्स (अविणिअस्स) = अविनीत व्यक्ति के लिये। विवत्ती = कार्य नाश, गुण हानि। य = और। विणीयस्स (विणिअस्स) = विनीत को। संपत्ती = गुण की प्राप्ति एवं सम्पदा प्राप्त होती है। जस्सेयं (जस्सेअं) = जिसको ये। दुहओ णायं = दोनों बातें ज्ञात होती हैं। से सिक्खं = वह शिक्षा को। अभिगच्छइ = प्राप्त करता है।

भावार्थ-कौनसा कैसा शिष्य शिक्षा पाने के योग्य होता है, इस सम्बन्ध में कहा है कि अविनीत को विपत्ति तथा विनीत को गुण-सम्पत्ति प्राप्त होती है। इन दोनों बातों को जिसने अच्छी तरह से जान लिया है, वही धर्म-शिक्षा को प्राप्त करने का योग्य अधिकारी होता है।

जे यावि चंडे मइ-इड्ढि-गारवे, पिसुणे णरे साहस-हीण-पेसणे।
अदिट्ठधम्मे विणए अकोविए, असंविभागी ण हु तस्स मुक्खो ॥23॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

जो क्रोधी बुद्धि ऋद्धि दर्पी, अविवेकी निन्दक गुरु बाहर।
अनभिज्ञ विनय जिन वचन दूर, ना मोक्ष मिले विनिमय बाहर ॥

अन्वयार्थ-जे यावि णरे = जो भी नर अथवा शिष्य। चंडे = क्रोधी। मइइड्ढिगारवे = बुद्धि ऋद्धि

या जाति का गर्व करने वाला । **पिसुणे** = चुगल खोर । **साहस हीणपेसणे** = बिना सोचे काम करने वाला और यथा समय आज्ञा का पालन नहीं करने वाला । **अदिट्ठधम्मे** = धर्माचरण से हीन । **विणए अकोविए** = विनय में अकुशल । **असंविभागी** = स्वधर्मियों में आहार आदि का संविभाग नहीं करने वाला होता है । **तस्स मुखो** = उसको मोक्ष प्राप्त । **ण हु** = नहीं होता ।

भावार्थ—जो भी शिष्य अथवा नर स्वभाव का क्रोधी, कुल-जाति और ऋद्धि का गर्व करने वाला और चुगलखोर है, जो बिना विचारे काम करने वाला है और गुरुजनों की आज्ञा का पूर्ण पालन नहीं करने वाला है, धर्माचरण से हीन है तथा विनयहीन है, मूर्ख है एवं प्राप्त आहार आदि का धर्म बन्धुओं में संविभाग नहीं करता है, उसको मुक्ति-लाभ नहीं होता है ।

णिद्देसवित्ती पुण जे गुरूणं, सुअत्थधम्मा विणयम्मि कोविया ।

तरित्तु ते ओघमिणं दुरुत्तरं, खवित्तु कम्मं गइमुत्तमं गया ॥२४॥

॥त्ति बेमि ॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

जो हैं गुरु के आज्ञाकारी, गीतार्थ विनय में बने कुशल ।

दुस्तर भवाब्धि तर कर्म काट, उत्तम गति को पाएँ मुनिवर ॥

अन्वयार्थ—जे = जो । **गुरूणं (गुरुणं)** = गुरुजनों के । **णिद्देसवित्ती** = निर्देश का यथावत् पालन करने वाले हैं । **पुण** = और । **सुअत्थधम्मा (सुयत्थधम्मा)** = श्रुत और उसके अर्थ के जानकार हैं । **विणयम्मि** = विनय-धर्म के पालने में । **कोविया** = कुशल हैं । **ते** = वे । **इणं** = इस । **दुरुत्तरं ओघं** = दुःख से तैरने योग्य संसार-प्रवाह को । **तरित्तु** = तिर कर । **कम्मं** = कर्मों का । **खवित्तु** = क्षय करके । **उत्तमं** = उत्तम सिद्ध । **गइं** = गति को । **गया** = प्राप्त करते हैं । **त्ति बेमि** = ऐसा मैं कहता हूँ ।

भावार्थ—अविनय का परित्याग करके जो शिष्य गुरुजनों की आज्ञा का यथावत् पालन करते हैं, श्रुत-अर्थ के जानकार हैं तथा विनय-धर्म के पालन में कुशल हैं, वे शिष्य इस दुस्तर संसार-सागर को तिरकर, सम्पूर्ण कर्मों का क्षय करके उत्तम सिद्ध गति को प्राप्त कर लेते हैं । ऐसा गणधर सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य जम्बू को कहते हैं ।

॥ नौवाँ अध्ययन-द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥



तृतीय उद्देशक

तीसरे उद्देशक में विनयशील पूज्य होता है यह बतलाते हैं-

आयरियमग्निमिवाहिअग्नी, सुस्सूसमाणो पडिजागरिज्जा ।
आलोइयं इंगियमेव णच्चा, जो छंदमाराहयइ स पुज्जो ॥१॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

अनल उपासक सम जो साधक, रहता गुरु सेवा में जागृत ।
गुरु आशय दृष्टि तथा इंगित, जो पाले वह है पूज्य कथित ॥

अन्वयार्थ-अग्निमिवाहिअग्नी = अग्निपूजक ब्राह्मण, जैसे अग्नि की सेवा में सावधान रहता है, वैसे ही । जो = जो शिष्य । आयरियं (आयरिअं) = आचार्य की । सुस्सूसमाणो = सेवा-शुश्रूषा में । पडिजागरिज्जा = जागृत रहता है । आलोइयं (आलोइअं) = गुरु की दृष्टि । इंगियमेव (इंगिअमेव) = इंगिताकार चेष्टा को । णच्चा = जानकर । छंदं = आचार्य की इच्छा का । आराहयइ (आराहयई) = आराधन करता है । स पुज्जो = वह पूज्य होता है ।

भावार्थ-लोक में देखा जाता है कि अग्नि-पूजक ब्राह्मण अग्नि की सेवा में सावधान रहता है, वैसे ही जो विनयशील शिष्य आचार्य देव की सेवा में सतत जागृत रहता है, उनकी दृष्टि और इंगिताकार-चेष्टा को जानकर उनकी इच्छा का पूर्ण आराधन करता है, वह लोक में पूज्य है । आचार्य की सेवा में रहने वाला दोषों से बचा रहता है और श्रुत चारित्र की आराधना में अग्रगामी रहकर संसार में पूजनीय होता है ।

आयारमट्ठा विणयं पउंजे, सुस्सूसमाणो परिगिज्झ वक्कं ।
जहोवइट्ठं अभिकंखमाणो, गुरुं तु नासाययइ स पुज्जो ॥२॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

जो विनय योग आचार हेतु, करते सेवा गुरु मान वचन ।
उपदेशाकांक्षी गुरु निन्दा, जो करे नहीं वह पूज्य श्रमण ॥

अन्वयार्थ-आयारमट्ठा = जो आचार-धर्म के लिये । विणयं = विनय-भक्ति । पउंजे = करता है । सुस्सूसमाणो = सेवा-शुश्रूषा करता हुआ । वक्कं = गुरु के वचनों को । परिगिज्झ = ग्रहण करके । जहोवइट्ठं = उनकी इच्छा के अनुकूल । अभिकंखमाणो = कार्य करने की रुचि रखता है । गुरुं आसाययइ = गुरु की आशातना । न तु = नहीं करता है । स पुज्जो = वह पूज्य है ।

भावार्थ—जो सत्य-शील आदि आचार-धर्म की शुद्ध पालना के लिये गुरु का विनय करता है, गुरुदेव की सेवा में रहता हुआ उन के वचन को अंगीकार करता है, उनके उपदेश के अनुसार काम करने की आकांक्षा रखता है तथा विचार व आचार से गुरु की आशातना नहीं करता, वह संसार में पूज्य होता है।

**रायणिएसु विणयं पउंजे, डहरा वि य जे परियायजिट्ठा ।
नीयत्तणे वट्ठइ सच्चवाई, उवायवं वक्ककरे स पुज्जो ॥३॥**

हिन्दी पद्यानुवाद-

शिशु होकर भी पर्याय ज्येष्ठ, उस रत्नाधिक में विनय करे ।
निम्नासन वाला सत्य व्रती, है पूज्य वन्द्य का वचन करे ॥

अन्वयार्थ—जे = जो । डहरा वि य = अवस्था में बालक होकर भी । परियाय (परिआय) = दीक्षा पर्याय से । जिट्ठा = ज्येष्ठ यानी बड़े हैं, उन । रायणिएसु = रत्नाधिकों की । विणयं पउंजे = विनय करता है । नीयत्तणे वट्ठइ = नम्र भाव से रहता है । सच्चवाई = सत्य बोलने वाला है । उवायवं = गुरु के समीप रहता है । वक्ककरे = उनकी आज्ञा का पालन करता है । स = वह । पुज्जो = लोक में पूज्य है ।

भावार्थ—जिन शासन में कुल, जाति या अवस्था की अपेक्षा व्रताराधन का अधिक महत्त्व है, इसलिये उन साधुओं का, जो वय से छोटे हैं, पर ज्ञानादि रत्नों से जो चिरकाल दीक्षित हैं, विनय करना चाहिये । अवस्था में बालक भी जो व्रत की दीक्षा में ज्येष्ठ है उनके प्रति भी जो नम्र भाव से रहता है, सत्यवादी और गुरुसेवा में रहता है तथा उनकी आज्ञानुसार चलता है, वह लोक में पूज्य होता है ।

**अण्णाय उंछं चरइ विसुद्धं, जवणट्ठया समुयाणं च णिच्चं ।
अलद्धुयं णो परिदेवइज्जा, लद्धुं न विकत्थइ स पुज्जो ॥४॥**

हिन्दी पद्यानुवाद-

अज्ञात कुल से जो स्वल्प विशुद्ध, संयम हित भिक्षा लेता है ।
वह पूज्य ! मिले श्लाघा न करे, ना मिले दुःख सह लेता है ॥

अन्वयार्थ—णिच्चं = जो सदा । जवणट्ठया = संयम-यात्रा के लिये । समुयाणं (समुआणं) च विसुद्धं = सामूहिक और निर्दोष भिक्षा । अण्णायउंछं = अज्ञात कुल से थोड़ी-थोड़ी । चरइ = लेता है । अलद्धुयं णो परिदेवइज्जा = नहीं मिलने पर खेद नहीं करता है । लद्धुं = और पर्याप्त मिलने पर । न विकत्थइ = प्रशंसा नहीं करता है । स = वह । पुज्जो = लोक में पूज्य है ।

भावार्थ—अच्छा साधु आहार का लोलुपी नहीं होता । वह सदा संयम-यात्रा के निर्वाह हेतु सामूहिक अज्ञात कुल से थोड़ा-थोड़ा शुद्ध, निर्दोष भोजन ग्रहण करता है । अगर कभी भिक्षा में आवश्यक आहार की

प्राप्ति नहीं होती तो खेद नहीं करता है और इच्छानुसार आहार मिलने पर प्रशंसा भी नहीं करता। वह यथा लाभ सन्तुष्ट रहता है। ऐसा मुनि लोक पूज्य होता है।

संथार-सिज्जासण-भत्तपाणे, अप्पिच्छया अइलाभेऽवि संते।

जो एवमप्पाणभितोसइज्जा, संतोसपाहण्णरए स पुज्जो ॥5॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

संस्तारक शय्या अशन पान, अतिलाभासन मिलने पर भी।

अल्पेच्छा से सन्तोष करे, सन्तोष-परायण पूज्य वही ॥

अन्वयार्थ-संथार = संस्तारक। सिज्जासण = शय्या, आसन। भत्तपाणे = और भक्त पान के सम्बन्ध में। अइलाभेऽवि संते = अधिक लाभ होते रहने पर भी। अप्पिच्छया = अल्प लेने की इच्छा रखता है, मूर्च्छा नहीं रखता। जो = जो। एवं = इस प्रकार। अप्पाणभितोसइज्जा (अप्पाण-मभितोसइज्जा) = अपनी आत्मा को सन्तुष्ट रखता है। स = वह। संतोसपाहण्णरए = सन्तोष भाव की प्रधानता में रमण करने वाला। पुज्जो = पूज्य होता है।

भावार्थ-भोजन की तरह जो साधु संथारा, शय्या-स्थान और आहार-पानी में अल्प इच्छा वाला होता है, अधिक मिलने की स्थिति में भी थोड़ा लेता है। इस प्रकार जो अपने आप को यथा लाभ सन्तुष्ट रखता है, मानसिक संकल्प विकल्प नहीं करता, वह सन्तोष भाव में रमण करने वाला साधु लोक-पूज्य होता है।

सक्का सहेउं आसाइ कंटया, अओमया उच्छहया नरेणं।

अणासए जोउ सहिज्ज कंटए, वईमए कण्णसरे स पुज्जो ॥6॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

धन की इच्छा आशा से नर, लोहे के काँटे सहन करता।

निस्पृह कानों में वचन बाण, जो सहता पूज्य वही बनता ॥

अन्वयार्थ-उच्छहया = धन आदि की इच्छा वाले। आसाइ (आसाए) = आशा से। नरेणं = मनुष्य। अओमया = लोहे के। कंटया = तीक्ष्ण काँटे। सक्का सहेउं = सहन कर सकते हैं। अणासए = किन्तु बिना आशा के। कण्णसरे = कान में बाण के समान चुभने वाले। जो उ वईमए कंटए सहिज्ज (सहेज्ज) = वचन रूपी काँटों को जो मुनि सहन करता है। स = वह। पुज्जो = लोक में पूज्य होता है।

भावार्थ-मनुष्य सर्दी-गर्मी का दुःख सह लेता है, लोभवश एक सैनिक हँसते-हँसते तीखे बाण सह लेता है, किन्तु बिना किसी स्वार्थ के दुर्वचन के काँटे जो कान में ही नहीं, हृदय में भी सदा शूल की तरह खटकते

रहते हैं, जो समभाव से सह लेता है, वह लोक में पूज्य है। क्योंकि अर्थी लोग लोह के तीखे काँटों पर खेल करते हैं, शस्त्र से अंग-उपांग कटा लेते हैं, तलवार की धार को सह लेते हैं, पर बिना स्वार्थ-दुर्वचन को सहन करना उनके लिये भी कठिन है। सच्चे सन्त दुर्वचन के घाव को भुला देते हैं, इसलिये वे पूज्य होते हैं।

मुहुत्तदुक्खा उ हवन्ति कंटया, अओमया तेऽवि तओ सुउद्धरा ।

वाया दुरुत्ताणि दुरुद्धराणि, वेराणुबंधीणि महब्भयाणि ॥७॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

क्षणभर के दुःखद लोह कंट, जो सहज दूर हो सकते हैं।

दुर्वचन-कंट से मुक्ति कठिन, वैराणुबंध भय करते हैं॥

अन्वयार्थ-अओमया = लोहे के। कंटया = काँटे। मुहुत्तदुक्खाउ = मुहूर्त भर के लिये दुःखदायी। हवन्ति = होते हैं। तेऽवि = और वे। तओ = उस अंग से। सुउद्धरा = सहज निकाले भी जा सकते हैं किन्तु। वाया दुरुत्ताणि = वाणी के कटु वचन। दुरुद्धराणि = निकालने कठिन होते हैं। वेराणुबंधीणि = वे वैराणुबंधी-वैर की परम्परा को बढ़ाने वाले। महब्भयाणि = अत्यन्त भयंकर होते हैं।

भावार्थ-दुर्वचन और लोहे के बाणों की तुलना की जाय, तो प्रतीत होगा कि लोह के तीखे काँटे केवल मुहूर्त भर के लिये दुःखदायी होते हैं, फिर वे शरीर से कुशल चिकित्सक द्वारा निकाले भी जा सकते हैं। किन्तु वचन के कटु शब्द सरलता से निकाले नहीं जा सकते। वे दुर्वचन वैर-विरोध को बढ़ाने वाले और अति भयंकर होते हैं।

समावयन्ता वयणाभिघाया, कण्णं-गया दुम्मणियं जणन्ति ।

धम्मत्ति किच्चा परमग्गसूरे, जिइंदिए जो सहइ स पुज्जो ॥८॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

दुःशब्द-घात कानों में जब, होते मन मलिन बनाते हैं।

शूराग्र दान्त जो धर्म समझ, सहते वे पूज्य कहाते हैं॥

अन्वयार्थ-समावयन्ता = सामने आते हुए। वयणाभिघाया = वचन के प्रहार। कण्णं गया = कर्ण गत होने पर। दुम्मणियं = दौर्मनस्यभाव। जणन्ति = उत्पन्न करते हैं। जो जिइंदिए = पर जो जितेन्द्रिय मुनि है। परमग्गसूरे = वीर शिरोमणि है। धम्मत्ति = कटु वचन सहन करना धर्म है। किच्चा = ऐसा समझ कर। सहइ स = उनको सहन करता है वह। पुज्जो = लोक में पूज्य है।

भावार्थ-संसार में कई प्रकार के शूर होते हैं। शास्त्र में चार प्रकार के शूर कहे गये हैं, युद्ध शूर, दान

शूर, तप शूर और धर्म शूर। जो ज्ञान भाव से नाना विध कष्टों को सहन कर लेते हैं उनको धर्म शूर कहते हैं। परमपद मोक्ष की प्राप्ति के लिए सब कुछ सहन कर लेना सरल नहीं है। चूर्णिकार कहते हैं—युद्ध शूर, तप शूर, दान शूर और धर्म शूर में से धर्म शूर, जो धर्म में श्रद्धा से नाना प्रकार के दुःखों, कष्टों एवं दुर्वचनों के प्रहारों को सहन करता है, वह परमाग्र शूर कहलाता है। सब प्रकार के शूरों में वह सर्वोच्च शूर कहा गया है।

अवण्णवायं च परम्मुहस्स, पच्चक्खओ पडिणीयं च भासं।

ओहारिणीं अप्पियकारिणिं च, भासं न भासिज्ज सया स पुज्जो ॥९॥

हिन्दी पद्यानुवाद—

जो कभी न आगे या पीछे, बोले निन्दा और दुःख वचन।

निश्चय एवं अप्रिय भाषा, न कहे सदा वह पूज्य श्रमण ॥

अन्वयार्थ—परम्मुहस्स = पीठ पीछे। अवण्णवायं = अवगुणवाद। च = और। पच्चक्खओ = सामने। च = और। पडिणीयं (पडिणीअं) = विरोधी। भासं = भाषा। ओहारिणिं = निश्चय कारिणी। च = और। अप्पियकारिणिं = अप्रीति बढ़ाने वाली। भासं = भाषा। सया = सदा। न भासिज्ज (भासेज्ज) = नहीं बोलता। स = वह। पुज्जो = लोक पूज्य होता है।

भावार्थ—धर्म के लिये जैसे दुर्वचनों को सहन करना आवश्यक है, वैसे ही वाणी का संयम भी आवश्यक है। अतः कहा है कि जो मुनिजन पीठ पीछे किसी का अवर्णवाद नहीं करता और प्रत्यक्ष में विरोधी भाषण नहीं करता, ऐसा करूँगा ही, आदि ऐसी निश्चय कारिणी और अप्रीति वर्द्धक भाषा कभी नहीं बोलता एवं सदा वाणी पर संयम रखता है, वह पूज्य होता है। लोक नीति में भी कहा है कि—परापवाद बोलने में मूक बन जाओ और निन्दा को सुना-अनसुना कर जाओ।

अलोलुए अक्कुहए अमाई, अपिसुणे यावि अदीणवित्ती।

णो भावए णो वि य भावियप्पा, अकोउहल्ले य सया स पुज्जो ॥१०॥

हिन्दी पद्यानुवाद—

अकुहक अलोलुप कपट शून्य, पैशुन्य तथा जो दैन्य रहित।

करता न कराता निज श्लाघा, कौतुहल वर्जित पूज्य कथित ॥

अन्वयार्थ—अलोलुए = जो रस का लोलुपी नहीं होता। अक्कुहए = मान्त्रिक-तान्त्रिक प्रयोग आदि कुतूहल के काम नहीं करता। अमाई = जो निष्कपट है। अपिसुणे = चुगली नहीं करता। या वि = तथा। अदीणवित्ती = लाभालाभ में सम रहता है, दीनता प्रकट नहीं करता। णो भावए = दूसरे से अपनी महिमा नहीं कराता। णो वि य भावियप्पा = और जो स्वयं अपनी प्रशंसा नहीं करता। य = और। सया = सदा। अकोउहल्ले = कुतूहल भाव से रहित होता है। स = वह। पुज्जो = लोक में पूज्य होता है।

भावार्थ—संसार में वही साधु पूज्य है जो रसना पर विजय प्राप्त करता है। रस लोलुपी नहीं है। जादूगर की तरह संसार को खेल दिखाकर मान्त्रिक-तान्त्रिक प्रयोगों से प्रभावित नहीं करता। कभी माया और चुगली नहीं करता। दीन भाव से रहित समभाव में रहता है। दूसरों से अपनी महिमा नहीं कराता और वह स्वयं आत्म-श्लाघा करता है। ऐसा खेल-क्रीड़ादि कौतूहल से रहित निरुत्सुक पुरुष ही लोक में पूज्य होता है।

**गुणेहि साहू अगुणेहिऽसाहू, गिणहाहि साहुगुण मुंचऽसाहू ।
वियाणिया अप्पगमप्पण, जो रागदोसेहिं समो स पुज्जो ॥११॥**

हिन्दी पद्यानुवाद-

गुण से साधु अवगुणी असाधु, अवगुण छोड़ो गुण ग्रहण करो ।
जानो अपने को अपने से, सम राग-द्वेष हो पूज्य बनो ॥

अन्वयार्थ—गुणेहि (गुणेहिं) = गुणों से। साहू = साधु होता और। अगुणेहि (अगुणेहिं) = दुर्गुणों से। असाहू = असाधु होता है। साहुगुण = साधु के गुणों को। गिणहाहि = ग्रहण कर। असाहू मुंच = असाधु के दुर्गुणों को छोड़ दे। अप्पणं = अपने से। अप्पगं = अपनी आत्मा को। वियाणिया = जानकर। जो = जो। रागदोसेहिं = राग और द्वेष के प्रसंग में। समो = सम रहता है। स = वह। पुज्जो = पूज्य है।

भावार्थ—केवल वेष से कोई साधु नहीं होता। साधुता का सम्बन्ध साधना के गुणों से है। जो संयम के गुणों का पालन करता है, वह साधु है। अवगुणों से असाधु कहलाता है। इसलिये कल्याणार्थी को कहा गया है कि वह साधु, गुणों को ग्रहण करे और संयम विरोधी दुर्गुणों का परित्याग करे। इस प्रकार जो आत्मा से आत्मा को पहचान कर राग-द्वेष के निमित्तों में समभाव रखता है, वह लोक में पूज्य होता है। वेष तो इस आत्मा ने कई बार धारण किया है पर आवश्यकता है, वेष के अनुरूप करणी की। कहा भी है—“बाना बदले सौ-सौ बार। बान बदले तो खेवो पार।”

**तहेव डहरं व महल्लगं वा, इत्थीं पुमं पव्वइयं गिहिं वा ।
नो हीलए नो विय खिसएज्जा, थंभं च कोहं च चए स पुज्जो ॥१२॥**

हिन्दी पद्यानुवाद-

वैसे जो बाल वृद्ध महिला, नर संयत और असंयत को ।
है पूज्य वही निन्दा खिसा, अभिमान क्रोध को तज देखो ॥

अन्वयार्थ—तहेव = वैसे ही साधु असाधु की तरह जो। डहरं = बालक। व = या। महल्लगं = वृद्ध। वा = अथवा। पव्वइयं = दीक्षित। वा = अथवा। गिहिं इत्थी (इत्थिं/इत्थीं) पुमं = गृहस्थ

स्त्री-पुरुष की। **नो हीलए** = हीलना नहीं करता। **य** = और। **खिसएज्जा (खिसइज्जा)** = बार-बार निन्दा। **नो वि** = नहीं करता तथा। **थंभं च कोहं च** = अहंकार और क्रोध का। **चए** = त्याग करता है। **स** = वह। **पुज्जो** = लोक में पूज्य होता है।

भावार्थ—साधु का प्राणि मात्र से मैत्रीभाव होता है। इस दृष्टि से प्रभु ने कहा है कि जो साधु बालक-वृद्ध, स्त्री-पुरुष, प्रव्रजित-दीक्षित या गृहस्थ में से किसी की भी हीलना नहीं करता, बार-बार निन्दा भी नहीं करता, सबको आत्मवत् समझकर न किसी से अहंकार करता है और न ही किसी पर क्रोध करता है, वही संसार में पूज्य होता है। ऐसे सन्त का किसी से वैर-विरोध नहीं होता और उसका भी कोई वैरी-विरोधी नहीं होता।

जे माणिया सययं माणयंति, जत्तेण कण्णं व निवेसयंति ।

ते माणए माणरिहे तवस्सी, जिइंदिए सच्चरए स पुज्जो ॥13॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

पा मान सतत सम्मान करे, सत्कुल में पुत्रीवत् आगे कर ।

है पूज्य दान्त और सत्यलीन, जो मान्यों का मान करे बढ़कर ॥

अन्वयार्थ—**जे** = जो शिष्य। **माणिया (माणिआ)** = मान्य पुरुषों का। **सययं** = नित्य। **माणयंति** = सम्मान करते हैं अथवा शिष्यों द्वारा मान प्राप्त आचार्य शिष्यों को श्रुत ज्ञान-दान विद्यादान आदि देकर सम्मानित करते हैं। **व** = जैसे। **कण्णं** = योग्य पिता अपनी कन्या को। **निवेसयंति** = योग्य कुलीन पति ढूँढकर उससे विवाह करके उसे उच्च कुल में स्थापित करते हैं, वैसे ही आचार्य। **जत्तेण** = यत्नपूर्वक अपने शिष्यों को साधना में स्थापित करते हैं। **ते माणरिहे** = उन सम्मान योग्य। **जिइंदिए** = जितेन्द्रिय। **तवस्सी** = तपस्वी और। **सच्चरए** = सत्यरत गुरुओं का। **माणए** = सम्मान करता है। **स** = वह मुनि शिष्य। **पुज्जो** = लोक में पूज्य होता है।

भावार्थ—विनय का लाभ समझकर शिष्य गुरुजनों का मान करते हैं और शिष्यों द्वारा सम्मानित गुरु भी उनको शास्त्र ज्ञान विद्यादान आदि देकर योग्य बनाते हैं जैसे कि माता-पिता यत्न पूर्वक अपनी कन्या को योग्य बनाकर योग्य कुलीन पति से विवाह कराकर अच्छे कुल में स्थापित करते हैं। वैसे ही शिक्षा एवं संस्कार से अलंकृत शिष्य को गुरु श्रेष्ठ संयम-मार्ग में स्थापित करते हैं। ऐसे उन माननीय, तपस्वी और जितेन्द्रिय तथा सत्यरत गुरु का जो शिष्य हृदय से सम्मान करता है, वह पूज्य है।

तेसिं गुरूणं गुणसायराणं, सोच्चाण मेहावि सुभासियाइं ।

चरे मुणी पंचरए तिगुत्तो, चउक्कसायावगए स पुज्जो ॥14॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

उन गुण सागर आचार्यों के, मेधावी सुनकर सुघड़ वचन ।
जो पंच महाव्रत रत त्रिगुप्त, क्रोधादि रहित वह पूज्य श्रमण ॥

अन्वयार्थ-मेहावि = जो मेधावी । तेसिं = उन । गुणसागराणं = गुणसागर । गुरूणं = गुरुजनों के । सुभासियाइं = सुभाषित वचनों को । सोच्चाण = सुनकर । चरे = उन पर आचरण करता है । पंचरण = पाँच महाव्रतों में रत रहता है । तिगुत्तो = तीन गुप्तिओं से गुप्त रहता है । चउक्कसायावगए = और क्रोध आदि चार कषायों से दूर रहता है । स = ऐसा वह । मुणी = मुनि । पुज्जो = लोक में पूज्य होता है ।

भावार्थ-प्रगतिशील विनीत शिष्य-गुणसागर गुरुओं के सुभाषित वचनों को सुनकर अनसुना नहीं करता, किन्तु गुरु के उपदेशानुसार उन वचनों पर आचरण करता है, पाँच महाव्रतों में रत रहता है, मन-वचन-काय गुप्ति से गुप्त रहता है और क्रोध आदि चार कषायों को दूर करता है । ऐसा विनीत शिष्य पूज्य होता है ।

गुरुमिह सययं पडियरिय मुणी, जिणमयणिउणे अभिगमकुसले ।
धुणिय रयमलं पुरेकडं, भासुरमउलं गइं गओ ॥15॥
॥त्ति बेमि ॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

कर गुरुपद सेवन सतत साधु, हो जिनमत निपुण अतिथि पूजक ।
कर नष्ट पूर्वकृत रजमल को, हो दिव्य अतुल पद का पालक ॥

अन्वयार्थ-इह = इस लोक में । गुरुं = गुरुदेव की । सययं = निरन्तर । पडियरिय = सेवा करके । जिणमय णिउणे = जिनमत में निपुण और । अभिगमकुसले = विनयाचार में कुशल । मुणी = मुनि । पुरेकडं = पूर्वकृत । रयमलं = कर्म-मल को । धुणिय = क्षय करके । भासुरं = प्रकाशमान । अउलं = अतुल-अनुपम-श्रेष्ठ । गइं = गति को । गओ = प्राप्त करता है । त्ति बेमि = ऐसा मैं कहता हूँ ।

भावार्थ-शास्त्रकार गुरु के उपदेश के अनुसार चलने का लाभ बताते हैं कि इस लोक में गुरुदेव की सतत सेवा करने वाला मुनि जिनमत में निपुण और विनयाचार में कुशल होता है वह पूर्वकृत कर्म-रज को आत्मा से अलग करके प्रकाशमान अतुल-सिद्ध गति को प्राप्त कर लेता है । उसको भवसागर में फिर भटकना नहीं पड़ता ।

ऐसा मैं कहता हूँ ।

॥ नौवाँ अध्ययन-तृतीय उद्देशक समाप्त ॥



चतुर्थ उद्देशक

तीसरे उद्देशक में बतलाया गया है कि विनीत पूज्य होता है। अब इस चतुर्थ उद्देशक में विनय आदि चार समाधि स्थानों का वर्णन करते हैं-

1. सुयं मे आउसं तेणं भगवया एवमक्खायं-इह खलु थेरेहिं भगवंतेहिं चत्तारि विणय-समाहि-ठाणा पण्णत्ता ॥
2. कयरे खलु ते थेरेहिं भगवंतेहिं चत्तारि विणय- समाहिठाणा पण्णत्ता ?
3. इमे खलु ते थेरेहिं भगवंतेहिं चत्तारि विणयसमाहि-ठाणा पण्णत्ता ।
4. तं जहा 1. विणयसमाही, 2. सुयसमाही, 3. तवसमाही, 4. आयारसमाही ।

हिन्दी पद्यानुवाद-

हे शिष्य ! कहा उस प्रभु ने यह, जिसको है मैंने सुना यहाँ ।
 उस स्थविर पूज्य ने निश्चय से, ही विनय समाधि पद चार कहा ॥1॥
 हे भदन्त ! वे कौन चार ? प्रभु ने शुभ स्थान बताये हैं ।
 विनय समाधि संज्ञा नाम से, स्थविरों के द्वारा गाये हैं ॥2॥
 निश्चय विनय समाधि के ये, स्थविरों ने पद बतलाये ।
 सूत्र, विनय, तपरूप और, आचार चतुर्थ कह कर गाये ॥3॥

अन्वयार्थ-1. आउसं = हे आयुष्मन् । मे = मैंने । तेणं = उन । भगवया = भगवान महावीर द्वारा । एवमक्खायं = ऐसा कहा गया । सुयं = सुना है । इह खलु = निश्चय ही इस जिनशासन में । थेरेहिं = स्थविर । भगवंतेहिं = भगवन्तों ने । चत्तारि = चार प्रकार की । विणयसमाहि = विनय समाधि के । ठाणा पण्णत्ता = स्थान कहे हैं ।

2. थेरेहिं भगवंतेहिं = निश्चय ही स्थविर भगवन्तों द्वारा । ते = वे । कयरे खलु = कौन से । चत्तारि = चार प्रकार के । विणयसमाहि-ठाणा = विनय समाधि के स्थान । पण्णत्ता = कहे गये हैं ।

3. इमे खलु ते = वे । थेरेहिं भगवंतेहिं = स्थविर भगवन्तों ने । चत्तारि = चार । समाहिठाणा पण्णत्ता = विनय के समाधि स्थान कहे हैं ।

4. तं जहा = जैसे कि-1. विणयसमाही = विनय-समाधि । 2. सुयसमाही = श्रुत-समाधि । 3. तवसमाही = तप-समाधि और । 4. आयारसमाही = आचार-समाधि ।

भावार्थ—स्थविर भगवन्तों ने चार समाधि स्थान इस तरह बतलाये हैं—यथा—विनय—समाधि, श्रुत—समाधि, तप—समाधि, आचार—समाधि ।

विणए सुए य तवे, आयारे निच्चं पंडिया ।

अभिरामयंति अप्पाणं, जे भवंति जिइंदिया ॥१॥

हिन्दी पद्यानुवाद—

जो नित्य जितेन्द्रिय और प्राज्ञ, श्रुत विनयाचार तथा तप में ।

होते वे करते सुप्रसन्न, अपनी आत्मा को इस जग में ॥

अन्वयार्थ—जे = जो । जिइंदिया = जितेन्द्रिय साधु । विणए = विनय में । सुए = श्रुत में । तवे = तप में । य (अ) आयारे = और आचार में । निच्चं = सदा । अप्पाणं = अपनी आत्मा को । अभिरामयंति = लगाये रखते हैं । पंडिया भवंति = वे पण्डित होते हैं ।

भावार्थ—सिद्धान्त के अनुकूल पण्डित तो वे मुनि हैं, जो जितेन्द्रिय होकर विनय में, श्रुत में, तप में और पंचविध आचार में सदा अपनी आत्मा को रमाये रखते हैं । चतुर्विध समाधि के स्थानों में रमण करने वाले मुनि कभी अशान्ति अनुभव नहीं करते ।

आगे विनय समाधि के भेद और उसका स्वरूप बतलाते हैं—

चउव्विहा खलु विणयसमाही भवइ । तं जहा—1. अणुसासिज्जंतो सुस्सूसइ, 2. सम्मं संपडिवज्जइ, 3. वेयमाराहयइ, 4. न य भवइ अत्तसंपग्गहिए । चउत्थं पयं भवइ । भवइ य इत्थ सिलोगो ।

हिन्दी पद्यानुवाद—

विनय समाधि निश्चय पूर्वक, हैं चार रूप कैसे कहे गए ।

पहला गुरु आदेश श्रवण, सादर वे जैसे बोल गए ॥

प्रमुदित मन गुरु आज्ञा पालन, वैसा ही करता आराधन ।

पा ज्ञान प्रकाश ना गर्व करे, ये विनय समाधि के चार वचन ॥

अन्वयार्थ—विणयसमाही = विनय समाधि । खलु चउव्विहा = निश्चय से चार प्रकार की । भवइ = होती है । तं जहा = जैसे कि । अणुसासिज्जंतो = शिक्षा प्राप्त करते हुए । सुस्सूसइ = गुरुजनों की सेवा करना । सम्मं संपडिवज्जइ = गुरु वचनों को सम्यक् प्रकार से ग्रहण एवं धारण करना । वेयमाराहयइ (वेयमाराहइ) = गुरु आज्ञा का पालन करना और । भवइ अत्तसंपग्गहिए = ज्ञान पाकर गर्व नहीं करना । चउत्थं पयं भवइ = यह अन्तिम चतुर्थ पद है । भवइ य इत्थ सिलोगो = यहाँ एक श्लोक भी है, जो इस प्रकार है—

भावार्थ—इस गाथा के भाव अन्वयार्थ में ही स्पष्ट है।

पेहेइ हियाणुसासणं, सुस्सूसइ तं च पुणो अहिट्टए ।
ण य माणमएण मज्जइ, विणयसमाहि आययट्टिए ॥२॥

हिन्दी पद्यानुवाद—

विनय समाधि में मोक्षार्थी, हित-वचन-श्रवण इच्छा करता ।

शुश्रूषा, आचार शुद्धि, मद-मान मध्य में ना बहता ॥

अन्वयार्थ—आययट्टिए = मोक्षार्थी मुनि । विणयसमाहि = विनय समाधि में । हियाणुसासणं = हितकारी अनुशासन की । पेहेइ = इच्छा करता है । च = और । तं = उसका । सुस्सूसइ = श्रवण करता है । पुणो = फिर । अहिट्टए = आज्ञा पालन करता है । य = और । ण माणमएण मज्जइ = ज्ञान के मद से उन्मत्त नहीं होता है ।

भावार्थ—ज्ञानार्थी के लिए गाथा में चार बातें आवश्यक बताई गई हैं । जैसे—1. गुरुदेव से हित शिक्षा सुनने की इच्छा करना, 2. प्रेम से उसे श्रवण कर ग्रहण करना, 3. फिर उस पर आचरण करना और 4. ज्ञान के मद से उन्मत्त नहीं होना । इन चार कारणों से विनय समाधि को धारण करना होता है । जो इस प्रकार से इसे धारण करता है उसका ज्ञान वर्द्धमान रहता है, वृद्धिगत होता रहता है ।

चउव्विहा खलु सुयसमाही भवइ । तं जहा—

1. सुयं मे भविस्सइत्ति अज्झाइयव्वं भवइ ।
2. एगगचित्तो भविस्सामि त्ति अज्झाइयव्वं भवइ ।
3. अप्पाणं ठावइस्सामि त्ति अज्झाइयव्वं भवइ ।
4. ठिओ परं ठावइस्सामि त्ति अज्झाइयव्वं भवइ ।

चउत्थं पयं भवइ । भवइ य इत्थ सिलोगो ।

हिन्दी पद्यानुवाद—

श्रुत-समाधि के चार भेद, वे इस प्रकार होते जैसे ।

होंगे शास्त्र प्राप्त हमको, इसलिए पाठ्य वे हैं हमसे ॥

पर को भी दृढ़ कर दूँगा, मैं संयम पथ में दृढ़ रहकर ।

अतएव अध्ययन करना है, स्वाध्याय यज्ञ में रत रहकर ॥

अन्वयार्थ—खलु = निश्चयकर । सुयसमाही = श्रुत समाधि । चउव्विहा = चार प्रकार की ।

भवइ = होती है। **तं जहा** = जैसे कि। **मे सुयं भविस्सइ त्ति** = मुझे आचारांग आदि श्रुत का लाभ होगा, इसलिये। **अज्झाइयव्वं भवइ** = अध्ययन करना है। **एगगचित्तो** = मैं एकाग्रचित्त। **भविस्सामि त्ति** = होऊँगा, ऐसा समझकर। **अज्झाइयव्वं भवइ** = अध्ययन करना है। **अप्पाणं** = मुझे। **ठावइस्सामि त्ति** = धर्म में स्थित होने के लिये। **अज्झाइयव्वं भवइ** = अध्ययन करना है। **ठिओ** = यदि मैं अपने धर्म में स्थिर होऊँगा तो। **परं** = दूसरों को भी। **ठावइस्सामि** = स्थिर करूँगा इसलिये। **अज्झाइयव्वं भवइ** = अध्ययन करना है। **चउत्थं पयं भवइ** = यह अन्तिम चतुर्थ पद है। **य** = और। **इत्थ सिलोगो भवइ** = यहाँ श्लोक भी है। वह इस प्रकार है-

भावार्थ-भाव अन्वयार्थ में स्पष्ट है।

नाणमेगगचित्तो य, ठिओ य ठावयई परं ।

सुयाणि य अहिज्जित्ता, रओ सुयसमाहि ॥३॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

स्थिर रह पर को दृढ़ करता, पा ज्ञान बनाकर शान्त हृदय ।

शास्त्रों को पढ़ रत रहता है, श्रुत समाधि में साधु हृदय ॥

अन्वयार्थ-**सुयसमाहि** = श्रुत समाधि में। **रओ** = रमण करने वाला मुनि। **य** = और। **नाणमेगगचित्तो** = प्रथम ज्ञान प्राप्त करता है, फिर एकाग्र चित्त होता है। **ठिओ** = स्वयं ज्ञान-धर्म में स्थिर होता है। **य** = फिर। **परं** = दूसरे को। **ठावयई (ठावई)** = धर्म में स्थिर करता है। **य सुयाणि** = और इस प्रकार शास्त्रों को। **अहिज्जित्ता** = पढ़कर ये चार लाभ प्राप्त करता है।

भावार्थ-लौकिक अध्ययन से क्योंकि साक्षरता, अर्थ-लाभ, स्थान-लाभ, वक्तृत्व-लाभ आदि प्राप्त होते हैं, इसलिए शिक्षार्थी नौकरी या अर्थ-लाभ के लिये पढ़ता है। किन्तु सम्यक् श्रुत के शिक्षण से चार लाभ होते हैं-1. अध्ययन के द्वारा श्रुत ज्ञान प्राप्त होता है। 2. मन की एकाग्रता होती है। 3. धर्म में स्थित होता है। 4. अन्य को धर्म में स्थिर करता है। इस प्रकार श्रुत समाधि में रत रहने वाला इन चार लाभों को प्राप्त करता है।

चउत्विहा खलु तवसमाही भवइ तं जहा-1. नो इह लोगट्टयाए तवमहिट्टिज्जा,
2. नो परलोगट्टयाए तवमहिट्टिज्जा, 3. नो कित्तिवण्ण-सद्द सिलोगट्टयाए तवमहिट्टिज्जा
4. नन्नत्थ निज्जरट्टयाए तवमहिट्टिज्जा । चउत्थं पयं भवइ । भवइ य इत्थ सिलोगो-
हिन्दी पद्यानुवाद-

तप-समाधि के चार भेद, वे इस प्रकार होते जैसे ।

लोक-लब्धि लाभेच्छा वाला, तप नहीं करे कोई वैसे ॥

सुरपुर भोग वासना वश भी, मुनि जन तप को नाही करे ।

या करे न तप सुयश हेतु, पर कर्म निर्जरा हेतु करे ॥

अन्वयार्थ—तवसमाही = तप समाधि । खलु = निश्चय ही । चउव्विहा = चार प्रकार की । भवइ = होती है । तं जहा = जैसे । इहलोगट्टयाए = इस लोक के सुख के लिये । तवं नो = तप नहीं । अहिट्टिज्जा = करें । परलोगट्टयाए = परलोक में दिव्य सुख के लिये । तवं नो = तप नहीं । अहिट्टिज्जा = करे । कित्ति = सर्वलोक में गुण-कीर्तन हो, इस इच्छा से । वण्ण = एक दिशा व्यापी यश मिले इस हेतु । सह = अर्द्ध दिशा व्यापी यश मिले, इस आकांक्षा से । सिलोगट्टयाए = ग्राम-नगर में प्रशंसा हो इसके लिये । तवं नो अहिट्टिज्जा = तप नहीं करे । अन्नत्थ निज्जरट्टयाए = निर्जरा के अतिरिक्त अन्य किसी प्रयोजन से । तवं न अहिट्टिज्जा = तप को नहीं करे । चउत्थं पयं भवइ = यह अन्तिम चौथा पद है । य इत्थ सिलोगो भवइ = और यहाँ श्लोक भी है ।

विविहगुणतवोरए य णिच्चं, भवइ निरासए णिज्जरट्टिए ।

तवसा धुणइ पुराणपावगं, जुत्तो सया तवसमाहिए ॥४॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

तज आशा निर्जरा हेतु, जो नित्य विविध गुण तप में रत ।

संचित पाप तम नष्ट करे, उसका जो तप में सदा निरत ॥

अन्वयार्थ—विविहगुण = विविध गुण वाला । तवोरए = तप में रत रहने वाला । य निरासए = और पौद्गलिक फल की इच्छा नहीं रखने वाला । निज्जरट्टिए = निर्जरा का अर्थी । भवइ = रहने वाला । णिच्चं = निरन्तर । तवसमाहिए सया जुत्तो = सदा तप समाधि में लगा रहने वाला । तवसा पुराणपावगं = तपस्या से संचित पाप-कर्मों को । धुणइ = आत्मा से अलग कर लेता है ।

भावार्थ—लोग पुत्र-लाभ, भोग-लाभ, राज्य-लाभ आदि के लिए तप करते हैं, किन्तु शास्त्रकार ने इस प्रकार किये जाने वाले तप को समाधि का कारण नहीं माना, क्योंकि वहाँ संकल्प-विकल्प बना रहता है । यह धर्म-तप इन सब आकांक्षाओं से परे होता है । अतः यह समाधि स्थान है । जो फल की प्राप्ति की कामना के बिना तप करता है, उसके इहलोक और परलोक दोनों पवित्र होते हैं । सूत्र के भाव को एक श्लोक के द्वारा इस प्रकार कहा गया है ।

सर्वदा विविध गुण वाले तप में रत रहने वाला जो साधक पौद्गलिक प्रतिफल की इच्छा से रहित होकर केवल निर्जरा का अर्थी होता है, वह तप समाधि में लीन रहते हुए अपने पुराने संचित कर्मों का नाश कर देता है ।

चउव्विहा खलु आयारसमाही भवइ । तं जहा- 1. नो इहलोगट्टयाए आयार-महिट्टिज्जा, 2. नो परलोगट्टयाए आयारमहिट्टिज्जा, 3. नो कित्तिवण्णसद्दसिलोगट्टयाए आयारमहिट्टिज्जा, 4. नण्णत्थ आरहंतेहिं हेऊहिं आयारमहिट्टिज्जा । चउत्थं पयं भवइ । भवइ य इत्थ सिलोगो-

हिन्दी पद्यानुवाद-

आचार समाधि के चार भेद, निश्चय होते हैं इस जग में ।
इस लोक लाभ के हेतु नहीं, आचार शान्ति देता जग में ॥
परलोक हेतु भी ना पाले, ना कीर्ति आदि के हित पालें ।
जिन कथित हेतु से बाह्य कहीं, आचार समाधि नहीं पालें ॥

अन्वयार्थ-आयारसमाही = आचार-समाधि । खलु = निश्चय । चउव्विहा = चार प्रकार की । भवइ तं जहा = होती है जैसे कि । इहलोगट्टयाए = इस लोक के सुख हेतु । नो आयारमहिट्टिज्जा = आचार पालन नहीं करे । परलोगट्टयाए = परलोक की दिव्य सम्पदा के लिये भी । नो आयारमहिट्टिज्जा = आचार पालन नहीं करे । कित्तिवण्ण सद्दसिलोगट्टयाए = कीर्ति, वर्ण, शब्द और श्लोक हेतु भी । नो आयारमहिट्टिज्जा = आचार-पालन नहीं करे । अण्णत्थ आरहंतेहिं हेऊहिं = जिनदेव कथित हेतुओं के अतिरिक्त । न आयारमहिट्टिज्जा = अन्य किसी हेतु के लिये आचार का पालन नहीं करे । चउत्थं पयं भवइ = यह अन्तिम चौथा पद है । इत्थ सिलोगो य भवइ = इस प्रसंग का भाव एक श्लोक से इस प्रकार कहते हैं ।

भावार्थ-मुमुक्षु साधक के व्रत-नियमादि आचरण लौकिक सुख या यश कीर्ति की कामना से नहीं होते । इन्द्रिय-सुख और भोग के मनहर साधनों को तो वह नश्वर-क्षणस्थायी मानकर पहले से ही त्याग चुका है, इसलिये उसके आचरण शास्त्रानुमोदित संवर-निर्जरा द्वारा आत्म शुद्धि के लिये ही होते हैं । उसका लक्ष्य होता है कि-1. इस लोक के निमित्त आचार का पालन नहीं करना चाहिये । 2. परलोक के निमित्त आचार का पालन नहीं करना चाहिये । 3. कीर्ति, वर्ण, शब्द और श्लाघा के निमित्त आचार का पालन नहीं करना चाहिये । जिनेन्द्र कथित हेतु के अतिरिक्त अन्य किसी भी उद्देश्य से आचार का पालन नहीं करना चाहिये । यह चतुर्थ पद है । यहाँ पर एक श्लोक भी है-

जिणवयणरए अतिंतिणे, पडिपुण्णाययमाययट्टिए ।

आयारसमाहि-संवुडे, भवइ य दंते भावसंधए ॥5॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

जिनवाणी रत ना तिंतिन भाषी, अत्यन्त मोक्ष का अभिलाषी ।
आचार समाधि से संवृत्त जो, होता है दान्त विनय-भाषी ॥

अन्वयार्थ-जिणवयणरए = जिन वचनों में रत । **अतिंतिणे** = अप्रलापी यानी कठोर वचन नहीं बोलने वाला अथवा व्यर्थ प्रलाप नहीं करने वाला । **आययट्टिए** = वह मोक्षार्थी । **दंते** = जितेन्द्रिय । **पडिपुण्णाययं** = शास्त्रीय तत्त्वों को भलीभाँति जानकर । **आयार समाहि** = आचार समाधि द्वारा । **संवुडे** = इन्द्रिय और मन का संवरण करने वाला । **य** = और । **भावसंधए भवइ** = आत्मा को शुद्ध भाव से जोड़ने वाला होता है यानी शीघ्र ही मोक्ष को प्राप्त कर लेने वाला होता है ।

भावार्थ—आत्म-कल्याण की प्रबल इच्छा वाला साधक जिन वचनों में लीन और अप्रिय-कटु शब्दों का परित्याग करने वाला आचार-समाधि से इन्द्रिय एवं मन का संयम कर लेता है । वह जितेन्द्रिय मोक्ष-मार्ग को निकट करता है । टूटती हुई भावनाओं को जोड़कर उदय भाव से क्षायिक भाव की ओर बढ़ने में गतिशील रहता है । आचार-पालन में इस लोक व परलोक के पौद्गलिक सुख की प्राप्ति का लक्ष्य नहीं होने से साधक संकल्प-विकल्प के चक्कर से मुक्त रहकर भव-मार्ग से हटकर शिव-मार्ग की ओर बढ़ जाता है ।

अभिगम चउरो समाहिओ, सुविसुद्धो सुसमाहिअप्पओ ।

विउलहिअं सुहावहं पुणो, कुव्वइ से पयखेममप्पणो ॥६॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

कर ज्ञान समाधि स्थानों का, निर्मल विशुद्ध आत्मावाला ।

सुखदायी विपुल लाभ करके, फिर होता आत्म-क्षेम वाला ॥

अन्वयार्थ-चउरो = चारों प्रकार की इन । **समाहिओ** = समाधियों के स्वरूप को । **अभिगम** = जानकर । **सुविसुद्धो** = विशुद्ध चित्त वाला । **य** = और । **सो** = वह मुनि । **सुसमाहिअप्पओ** = संयम में अपनी आत्मा को सुस्थिर करने वाला । **विउलहिअं (विउलहियं)** = पूर्ण हितकारी । **सुहावहं** = सुखदायी । **पुणो** = एवं । **खेमं पयं** = कल्याणकारी निर्वाण पद को । **कुव्वइ** = प्राप्त कर लेता है ।

भावार्थ—उपर्युक्त चारों समाधियों को जानकर शुद्ध भाव वाले, साधकों का मात्र एक ही लक्ष्य होता है कि जितना हो सके, इस अनित्य शरीर से अविनाशी सदा सुखदायी शिवपद की साधना कर ली जाय । यही चरम और परम इष्ट तत्त्व है ।

जाइमरणाओ मुच्चइ, इत्थंतथं च चयइ सव्वसो ।

सिद्धे वा भवइ सासए, देवे वा अप्परए महिट्टिए ॥७॥

॥त्ति बेमि ॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

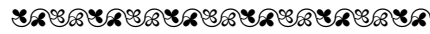
जन्म मरण से मुक्त और, पर्याय सकल तजकर मुनिजन ।

होता है शाश्वत सिद्ध देव, या अल्परजी वैमानिक बन ॥

अन्वयार्थ-इत्थंत्थं (इत्थंत्थं) = यहाँ की नर-नारकादि पर्यायों को । **सर्व्वसो =** सर्वथा । **चयइ (चयइ) =** त्याग करके । **च =** और । **जाइ मरणाओ =** जन्म-मरण से । **मुच्चइ (मुच्चई) =** मुक्त हो जाता है । **वा =** अथवा । **सासए =** शाश्वत (काल-स्थायी) । **सिद्धे भवई (हवइ) =** सिद्ध होता है । **वा =** अथवा । **अप्परए =** अल्प कर्म रज वाला । **महिट्टिए =** महर्द्धिक । **देवे =** देव होता है । **त्ति बेमि =** ऐसा मैं कहता हूँ । **त्ति बेमि =** (इति ब्रवीमि) ऐसा मैं कहता हूँ ।

भावार्थ-वह नारकादि पर्यायों का सर्वथा त्याग करके जन्म-मरण के चक्कर से मुक्त हो जाता है । कामना नहीं होने से उसको भवभ्रमण नहीं करना पड़ता । वह शाश्वत सिद्ध पद का अधिकारी बन जाता है अथवा अल्प कर्म वाला महर्द्धिक देव होता है । पौद्गलिक इच्छा, जो भव-भ्रमण का कारण है, नहीं रहने से उसके लिये साधना में सिद्धि प्राप्त करना सरल होता है ।

॥ नौवाँ अध्ययन-चतुर्थ उद्देशक समाप्त ॥



दसवीं अध्ययन

स भिक्खू (भिक्षुक)

उपक्रम

इस दसवें अध्ययन में 'स भिक्खू' शीर्षक से भिक्षुक का विशद वर्णन किया गया है कि वास्तव में भिक्षु किसे कहा जाय, उसके क्या-क्या लक्षण होने चाहिये एवं उसमें कौन-कौन से गुण होने चाहिये, जिनके सद्भाव से वह लोकपूज्य बन सकता है और मुक्ति का सहज ही अधिकारी हो सकता है, जिनके अभाव में वह केवल भेषधारी भिखारी मात्र बनकर रह जाता है। भिक्षु वेष से नहीं गुणों से पूजनीय बनता है। इस तरह लिंग-भििक्षु और भाव-भििक्षु का भी यहाँ अन्तर दर्शाया गया है।

जैन दर्शन की दृष्टि से इस अध्ययन में भिक्षु का बड़ा विशद, रोचक, हृदय आह्लादकारी एवं अन्तरतम को छूने वाला विस्तृत वर्णन मिलता है, जो अन्यत्र, अन्य दर्शनों में मिलना दुर्लभ है।

इस अध्ययन में यह स्पष्ट किया गया है कि आदर्श भिक्षु के श्रेष्ठ एवं उदात्त गुणों के अभाव में गृहस्थ के घर से केवल मात्र भिक्षा माँगकर अपनी उदरपूर्ति करने वाला मात्र वेषधारी है। वास्तव में वह भिक्षु कहलाने योग्य नहीं है, अपितु उसे तो मात्र भिखारी कहा जाना अधिक उपयुक्त है। वास्तविक भिक्षु तो वह है जो इस आगम-ग्रन्थ के पिछले नौ अध्ययनों में तथा इस अध्ययन में भी वर्णित सर्वोत्कृष्ट आचार-विचार का पूर्णतया निष्ठापूर्वक पालन करता है। मात्र भेषधारी भिखारी एवं वास्तविक सच्चे भाव-भििक्षु की यह भेद रेखा जानने योग्य, अत्यन्त मननीय एवं आचरणीय है।

उत्तराध्ययन-सूत्र के पन्द्रहवें अध्ययन में भी ऐसा ही वर्णन मिलता है, उस अध्ययन का शीर्षक भी 'स भिक्खू' ही है।

यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि इस समस्त दशवैकालिक सूत्र का सार इस अध्ययन में समाविष्ट कर दिया गया है। इस दृष्टि से यह अध्ययन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसमें भिक्षु के गुणों का, उसके लक्षणों का एवं उसके सम्पूर्ण आचार-विचार का एक ही स्थान पर बड़े विस्तार से एवं अति स्पष्ट रूप से विशद वर्णन किया गया है।

निक्खम्ममाणाइ य बुद्धवयणे, निच्चं चित्तसमाहिओ हविज्जा ।

इत्थीण वसं ण यावि गच्छे, वंतं णो पडिआयइ जे स भिक्खू ॥1॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

गणधर की आज्ञा से मुनि बन, जिनवाणी में मुदित सदा ।

नारी के वश न चले साधक, सेवे न वान्त वह भिक्षु कहा ॥

अन्वयार्थ-आणाइ = तीर्थङ्कर की आज्ञा से । निक्खम्मं = प्रव्रज्या ग्रहण करके । य = जो । बुद्धवयणे = भगवद् वचनों में । निच्चं = सदा । चित्तसमाहिओ = स्वस्थ शान्त स्थिर मन । हविज्जा = होता है । यावि जे = और भी जो । इत्थीण = स्त्रियों के । वसं = अधीन । ण गच्छे = नहीं होता । वंतं = त्यागे हुए भोगों को । णो पडिआयइ = फिर सेवन नहीं करता । स = वह । भिक्खू = सच्चा भिक्षु है ।

भावार्थ-भिक्षा से जीवन चलाने वाला कोई भी भिक्षु कहलाता है । किन्तु सच्चा भिक्षु वेश से नहीं, गुणों से पहचाना जाता है । इसके लिये शास्त्रकार कहते हैं कि जो वीतराग प्रभु की आज्ञा से दीक्षा ग्रहण करके जिन वचनों में सदा समाधियुक्त-स्वस्थ चित्त रहता है, जो स्त्रियों के मोहाधीन नहीं होता और त्यागे हुए धन, धान्य एवं भोगों को फिर ग्रहण करना नहीं चाहता, वह भाव भिक्षु है । सूत्रकृतांग सूत्र के सोलहवें अध्ययन के अनुसार-जो अहंकार रहित, अदीन, शामक और दान्त होता है, व्युत्सृष्टकाय, स्थितात्मा, उपस्थित, परदत्तभोजी, अध्यात्म योग से संयम को शुद्ध रखने वाला होता है, वह भिक्षु है ।

पुढविं न खणे न खणावए, सीओदगं न पीए न पिआवए ।

अगणिसत्थं जहा सुणिसियं, तं न जले न जलावए जे स भिक्खू ॥2॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

खोदे न भूमि ना खुदवाए, शीतल जल पिए न पिलवाए ।

ना तीक्ष्ण शस्त्र-पावक जारे, न जलवाए भिक्षु कहा जाए ॥

अन्वयार्थ-जे = जो । पुढविं = सचित्त पृथ्वी को । न खणे = खोदता नहीं । न खणावए = खुदवाता नहीं । सीओदगं = ठण्डा जल । न पीए (पिए) न पिआवए (पियावए) = पीता नहीं, पिलाता नहीं । सत्थं जहा सुणिसियं = अत्यन्त तीक्ष्ण शस्त्र की तरह । तं अगणि = अग्नि है उसको । न जले = जलाता नहीं । न जलावए = जलवाता नहीं । स = वह । भिक्खू = भिक्षु है ।

भावार्थ-जो पृथ्वी-भूमि को स्वयं खोदे नहीं, खुदवाये नहीं; कूप, तालाब, नदी और नल आदि से सचित्त पानी को पीता नहीं, पिलाता नहीं; सुतीक्ष्ण शस्त्र के समान कोयला, बिजली एवं गैस आदि की अग्नि को जो जलावे नहीं और जलवाता नहीं, वह भिक्षु है । करने, करवाने की तरह पृथ्वी आदि के आरम्भ का

अनुमोदन नहीं करने का आशय भी इसके अन्तर्गत समझ लेना चाहिये। क्योंकि साधु त्रिकरण-त्रियोग से त्यागी होता है।

**अनिलेण न वीए न वीयावए, हरियाणि न छिंदे न छिंदावए।
बीयाणि सया विवज्जयंतो, सच्चित्तं नाहारए जे स भिक्खू ॥३॥**

हिन्दी पद्यानुवाद-

ना हवा करे ना करवाए, काटे न हरित ना कटवाए।
बीजों का त्यागी सतत भिक्षु, जो कभी सचित्त नहीं खाए॥

अन्वयार्थ-अनिलेण = वायु से शरीर आदि का। न वीए = विजन (हवा) करता नहीं। न वीयावए (विआवए) = हवा कराता नहीं। हरियाणि (हरिआणि) = हरित वनस्पति का। न छिंदे = छेदन करता नहीं। न छिंदावए = दूसरों से छेदन करवाता नहीं। सया = सदा। बीयाणि = बीजों के स्पर्श का। विवज्जयंतो = वर्जन करता है। सच्चित्तं = सचित्त फलादि का। जे = जो। न आहारए = आहार नहीं करता। स = वह। भिक्खू = भिक्षु है।

भावार्थ-जैन-दर्शन वनस्पतिकाय को भी सजीव मानता है। इसलिये जैन साधु अत्यन्त भूख लगने पर भी फल-फूल-कंद-मूल आदि किसी भी प्रकार की वनस्पति का भक्षण नहीं करता। सूत्रकृतांग सूत्र के सप्तम अध्याय में कहा गया है-“हरित वनस्पति सजीव है। मूल, स्कन्ध, शाखा, पत्र, फल, फूल आदि में पृथक्-पृथक् जीव रहते हैं। जो व्यक्ति अपने सुख के हेतु, अपने आहार अथवा शरीर-पोषण के हेतु इनका छेदन करता है, वह धृष्ट पुरुष बहुत से प्राणियों का विनाश करता है। जो असंयमी अपने सुख के लिये बीजादि का नाश करता है, वह अंकुर की उत्पत्ति और बीज के नाश से फल-वृद्धि का विनाश करता है। अतः वह व्यक्ति अपनी आत्मा को दण्डित करता है। प्रत्यक्षदर्शी तीर्थंकरों ने उसे अनार्य धर्मी कहा है।”¹

जो साधु पंखे आदि से स्वयं हवा नहीं करता, दूसरों से करवाता नहीं। हरित-फल-फूल, पत्ता, शाखा आदि का छेदन करता नहीं, करवाता नहीं और सदा बीजों के स्पर्श का वर्जन करता तथा सचित्त-सजीव पदार्थ का आहार नहीं करता, वही भिक्षु है। साधु के 22 परीषहों में कहा गया है-साधु काक की जंघावत् कृष-काय होकर भिक्षा में आहार की मात्रा का ध्यान रखकर अदीन भाव से चले।

**वहणं तसथावराण होइ, पुढवी तणकट्टुनिस्सियाणं।
तम्हा उद्देसियं न भुंजे, णो वि पए न पयावए जे स भिक्खू ॥४॥**

1. हरिताणि भूताणि विलंबगाणि, आहार देहाइं पुढो सिताइं।
जे छिंदतो आतसुहं पडुच्चा पागब्भि, पाणे बहुणं तिवाती ॥४॥
जातिं च बुद्धिं च विणासयंते, बीयादि असंजय आयदंडे।
अहाहु से लोए अणज्ज धम्मे, बीयादि जे हिंसति आयसाते ॥४॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

त्रस स्थावर का वध होता है, पृथ्वी तरु-तृण अवलम्ब जिन्हें ।
न स्वयं पकाते पकवाते, औद्देशिक त्यागी को भिक्षु कहें ॥

अन्वयार्थ-पुढवी = पृथ्वी । तणकट्ट निस्सियाणं (निस्सियाणं) = तृण, और काष्ठ में रहने वाले । तसथावराण (तसथावराणं) = त्रस और स्थावर जीवों का । वहणं = वध । होइ = होता है । तम्हा = इसलिए । जे = जो । उद्देशियं (उद्देशिअं) = साधक के लिये बनाये गये आहार को । न भुंजे = नहीं खाता । णो वि पए = स्वयं भी न पकाता । न पयावए = नहीं पकवाता । स = वह । भिक्खू = भिक्षु है ।

भावार्थ-अन्य सम्प्रदायों की तरह जैन साधु स्व-पाकी नहीं होता और न अपने लिये बनाये गये आहार का ही सेवन करता है, क्योंकि भोजन पकाने में पृथ्वी, तृण-जल, कोयले और काष्ठ में रहने वाले अनेक स्थावर जीवों का प्रत्यक्ष वध होता है, इसलिये साधु भोजन पकाता नहीं और पकवाता भी नहीं । साधु के लिये बनाया गया औद्देशिक भोजन का सेवन-भक्षण भी नहीं करता, वही सच्चा भिक्षु है । औद्देशिक की तरह जैन मुनि आधा कर्मी आहार का भी सेवन नहीं करता, यह जैन भिक्षु का आचार है ।

रोइअ णायपुत्तवयणे, अत्तसमे मण्णिज्ज छप्पिकाए ।

पंच य फासे महव्वयाइं, पंचासवसंवरे जे स भिक्खू ॥5॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

जो वीर वचन में श्रद्धा कर, षट्काय जीव निज सम जाने ।
है पंच महाव्रत के सेवी, और दान्त भिक्षु उनको माने ॥

अन्वयार्थ-जे = जो । णायपुत्तवयणे = ज्ञात पुत्र महावीर के वचनों में । रोइअ = रुचि यानी प्रीतिकर के । छप्पिकाए = छहों काय के जीवों को । अत्तसमे = अपने समान । मण्णिज्ज = मानता है । पंच महव्वयाइं = पाँच महाव्रतों का । फासे = सम्यक् रूप से पालन करता है । य = और । पंचासव = पाँच आस्रवों का । संवरे = निरोध करता है । स = वह । भिक्खू = भिक्षु है ।

भावार्थ-जो वर्तमान धर्म-शासन के अधिपति भगवान महावीर के वचनों में रुचि तथा श्रद्धा रखता है और छहों-पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रस काय के जीवों को आत्मवत् समझता है । पाँच महाव्रत-अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का पालन करता है । शब्द रूपादि पाँचों इन्द्रियों के विषयों का तथा मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और अशुभ योग रूप आश्रवों का निरोध करता है, वही भिक्षु है ।

चत्तारि वमे सया कसाए, धुवजोगी य¹ हविज्ज बुद्धवयणे ।

अहणे निज्जायरूवरयए, गिहि जोगं परिवज्जए जे स भिक्खू ॥6॥

1. कई प्रतियों में 'य' नहीं है ।

हिन्दी पद्यानुवाद-

जो चार कषाय सतत छोड़ें, जिनवाणी में हो निश्चल मन ।
क्रय-विक्रय कर्म छोड़े भिक्षु, जो रजत स्वर्ण से रहित अधन ॥

अन्वयार्थ-चत्तारि = जो चार । कसाए = कषायों का । सया = सदा । वमे = परित्याग करता है । य बुद्धवयणे = और जिनराज के वचनों में । धुवयोगी = अटल श्रद्धा रखने वाला । हविज्ज (हवेज्ज) = है । अहणे = अधन-बिना धन के । निज्जायरूवरयए = सोना-चाँदी रहित है । गिहिजोगं = क्रय-विक्रय आदि गृहस्थ के कार्यों को । परिवज्जए = छोड़ चुका है । स भिक्खू = वह भिक्षु है ।

भावार्थ-जैन साधु आरम्भ-परिग्रह का सम्पूर्ण त्यागी और वीतराग भाव का उपासक होता है । उसके तन-मन और वाणी के व्यवहार सदा संयम-भाव में प्रमाद रहित होते हैं । स्वाध्याय, ध्यान, कायोत्सर्ग, प्रतिलेखन, प्रमार्जन, आदि निरवद्य कार्यों में जो स्थिर हो जाता है, वह योगी कहलाता है । इसीलिये कहा है कि जो क्रोध, मान, माया एवं लोभ का परित्याग करता है और क्रय-विक्रय आदि गृहस्थ के कार्यों का सदा वर्जन करता है, वही भिक्षु है ।

सम्मदिट्ठी सया अमूढे, अत्थि हु नाणे तवे संजमे य ।
तवसा धुणइ पुराणपावगं, मणवयकायसुसंवुडे जे स भिक्खू ॥७॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

नित्य अमूढ सम्यग् दृष्टि, जो रहे ज्ञान तप संयम में ।
तप द्वारा पूर्व पाप क्षयकर, संवृत-त्रियोग भिक्षु जग में ॥

अन्वयार्थ-जे सम्मदिट्ठी (सम्मदिट्ठी) = जो सम्यग् दृष्टि । सया हु = सदा ही । नाणे = ज्ञान-वाचना आदि । तवे संजमे य = तप और संयम में । अमूढे अत्थि = अमूढ है, अर्थात् जागृत है । तवसा = तपस्या से । पुराणपावगं = प्राचीन संचित पाप कर्मों को । धुणइ = धुनकर अलग कर देता है । मणवयकाय = मन, वचन और काया से । सुसंवुडे = गुप्त है । स = वह । भिक्खू = भिक्षु है ।

भावार्थ-साधु की दिनचर्या का वर्णन करते हुए शास्त्रकारों ने कहा है कि-सम्यग् दृष्टि साधक सदा ज्ञान, तप और संयम के सम्बन्ध में विवेक से चलता है । मन, वाणी और काय-योग की चंचलता कर्म ग्रहण में प्रमुख कारण है, इसी से शुभाशुभ कर्म आते हैं, अतः मुमुक्षु मन, वाणी और काया के अशुभ योगों को रोककर शुभ योग में और शुभ योग से शुद्ध, शुद्धतर एवं शुद्धतम योग की ओर बढ़ता है और निर्दोष तप द्वारा पूर्व संचित कर्मों का क्षय करता है, वह सच्चा भिक्षु है ।

तहेव असणं पाणगं वा, विविहं खाइमं साइमं लभित्ता ।
होही अट्ठो सुए परे वा, तं न निहे न निहावए जे स भिक्खू ॥८॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

वैसे ही अशन पान अथवा, जो विविध स्वाद्य खादिम पाए।

आयेंगे काम कल या परसों, भिक्षु न रखे न रखवाए॥

अन्वयार्थ-तहेव = वैसे ही। **असणं पाणगं** = अन्न आदि, पेय पदार्थ जलादि। **विविहं** = अनेक प्रकार के। **खाइमं** = खाद्य-मिष्टान्न आदि। **वा साइमं** = अथवा स्वाद्य, चूर्ण, लवंग, सुपारी आदि को। **लभित्ता** = प्राप्त करके। **सुए वा** = कल या। **परे** = परम दिन (परसों) यह। **अट्टो होही** = काम आवेगा, ऐसा सोचकर। **तं जे** = उसको, जो। **न निहे** = न स्वयं रखता है और। **न निहावए** = न औरों से रखवाता है। **स भिक्खू** = वह भिक्षु है।

भावार्थ-जैन साधु परदत्तभोजी होता है। विहार-चर्या में भिक्षा प्राप्त नहीं होने पर उसे भूखा रहना पड़ता है। ऐसी स्थिति में अशन-पान, मेवा-मिष्टान्न और स्वाद्य पदार्थों को इच्छानुसार प्राप्त करके भविष्य में कल या परसों यह काम आवेगा, इस विचार से उस अशन-पानादि को जो न अपने पास संग्रह करके रखता है और न दूसरों से कहकर उनके पास रखवाता है, वही सच्चा भिक्षु है।

तहेव असणं पाणगं वा, विविहं खाइमं साइमं लभित्ता।

छंदिय साहम्मियाण भुंजे, भुच्चा सज्झायरए जे स भिक्खू॥१॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

वैसे ही अशन पान अथवा, जो विविध स्वाद्य खादिम पाये।

खाये साधर्मिक संग बांट, खा पड़े भिक्षु वह कहलाये॥

अन्वयार्थ-तहेव = वैसे ही। **असणं पाणगं** = अशन व पेयादि पदार्थ। **वा** = अथवा। **विविहं** = अनेक प्रकार के। **खाइमं साइमं** = खाद्य-स्वाद्य-सुपारी-चूर्ण आदि को। **लभित्ता** = प्राप्त करके। **जे साहम्मियाण (साहम्मिआण)** = जो स्वधर्मियों को। **छंदिय (छंदिअ)** = निमन्त्रित करके। **भुंजे** = खाता है। **भुच्चा** = और खाकर। **सज्झायरए** = स्वाध्याय में रमण करता है। **स** = वह। **भिक्खू** = भिक्षु है।

भावार्थ-साधु साधनाशील होता है। वह स्वाद्य (स्वाद) प्रिय नहीं होता। भिक्षा में इच्छानुकूल अशन-पान-स्वादिष्टमेवा-मिष्टान्न, और मुख-शुद्धि के पदार्थ पाकर भी स्वधर्मी साधु मण्डल को प्रथम निमन्त्रित करता है, फिर उनको देकर स्वयं खाता है। फिर खा-पीकर-स्वाध्याय, ध्यान में लीन हो जाता है। वही सही अर्थों में भिक्षु है। आत्मार्षी साधु-स्वस्थ दशा में खा पीकर सुखपूर्वक नींद नहीं निकालता। क्योंकि इससे प्रमाद बढ़ता है और इस प्रकार प्रमाद बढ़ाने वाले को शास्त्र की भाषा में पाप श्रमण कहा गया है। (देखिए उत्तराध्ययन सूत्र का 17वाँ अध्ययन)।

न य वुग्गहियं कंहं कहिज्जा, न य कुप्पे निहुइंदिए पसंते ।

संजम-धुव जोग जुत्ते, उवसंते अविहेडए जे स भिक्खू ॥10॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

न कलहकारिणी कथा कहे, ना शान्त दान्त मुनि क्रोध करे ।

संयम में ध्रुव-योग युक्त, उपशान्त, नम्रपद भिक्षु धरे ॥

अन्वयार्थ-य जे = और जो । वुग्गहियं = विग्रहकारी । कंहं = कथा । न कहिज्जा (कहेज्जा) = नहीं कहता है । न य कुप्पे = और क्रोध नहीं करता है । निहुइंदिए = इन्द्रियों को वश में रखकर । पसंते = प्रशान्त रहता है । संजम ध्रुव जोग (संजमे ध्रुवं जोगेण) = संयम में मन-वचन-काय की । जुत्ते = स्थिरता वाला । उवसंते = उपशान्त । अविहेडए = किसी अन्य का तिरस्कार नहीं करता है । स = वह । भिक्खू = भिक्षु है ।

भावार्थ-जैन-साधु गुरु के पास व्रत-ग्रहण करके ही सन्तुष्ट नहीं होता । वह अपनी दैनिकचर्या को बाहर और भीतर साधना के रंग में रंगने में सतत प्रयत्नशील रहता है । उसकी यह विशेषता है कि वह वाणी द्वारा कलहकारी कथा नहीं कहता और न स्वयं अप्रिय सुनकर कुपित ही होता है । प्रशान्त एवं सदा प्रसन्नचित्त रहता है । निराकुल-भाव में रहते हुए और किसी का तिरस्कार नहीं करते हुए जिसके मन-वाणी एवं काया संयम में अचल एवं अडिग रहते हैं, वही भिक्षु है ।

जो सहइ उ गामकंटए, अक्कोस-पहार-तज्जणाओ य ।

भयभेरवसदसप्पहासे, समसुहदुक्खसहे य जे स भिक्खू ॥11॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

जो सहता ग्राम कंटकों को, आक्रोश-प्रहार जन-तर्जन को ।

भय भैरव ध्वनि और अट्टहास, सुख-दुःख में सम भिक्षु कहो उसको ॥

अन्वयार्थ- जो = जो साधु । अक्कोस-पहार-तज्जणाओ य = आक्रोश, प्रहार और तर्जना रूप । गाम कंटए = इन्द्रियों के लिये काँटों की तरह चुभने वाले स्पर्शों को । सहइउ (हु) = सहन करता है । य = और । भय-भेरव-सद = अत्यन्त भयानक शब्द और । सप्पहासे = अट्टहास वाले स्थान में । समसुहदुक्ख = सुख-दुःख को समभाव से । जे सहे = जो सहन करता है । स भिक्खू = वह भिक्षु है ।

भावार्थ-जो साधु इन्द्रियों को काँटों की तरह चुभने वाले आक्रोश भरे कर्कश वचन आदि के प्रहार और ताड़ना, तर्जनादि को शान्त मन से सहन कर लेता है तथा जहाँ बेताल आदि के अत्यन्त भयोत्पादक शब्द एवं डरावने अट्टहास आदि होते हैं, उन स्थानों में आकुल-व्याकुल न होकर जो सुख-दुःख को समान

भाव से यह समझ कर सह लेता है कि मेरे किये कर्म मुझे ही भोगने पड़ेंगे, जब खुशी से मैंने वे सब कर्म किये हैं, तब उनका फल भोगते समय खेद क्यों, कायरता क्यों ? वही साधु है।

पडिमं पडिवज्जिया मसाणे, णो भीयए भय-भेरवाइं दिस्स ।

विविह गुण तवोरए य निच्चं, न सरीरं चाभिकंखए जे स भिक्खू ॥12॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

अभिग्रह धर पर श्मशान वास, भैरव-भय देख नहीं डरता ।

हो नित्य विविध गुण तपोनिष्ठ, देह ममता त्याग भिक्षु बनता ॥

अन्वयार्थ-जे = जो । मसाणे = श्मशान भूमि में । पडिमं = अभिग्रह । पडिवज्जिया (पडिवज्जिआ) = ग्रहण करके । भय-भेरवाइं = भैरव के अत्यन्त भयानक दृश्यों को । दिस्स = देखकर भी । णो भीयए = नहीं डरता । निच्चं = सदा । विविह गुण = विविध गुण । य तवोरए = और तपस्या में रत रहकर । च = और । सरीरं = शरीर की भी । न अभिकंखए (न अभिकंखइ) = आकांक्षा नहीं करता । स = वह । भिक्खू = भिक्षु है ।

भावार्थ-भय पर विजय प्राप्त करने के लिये साधु जंगल और श्मशान में भी कायोत्सर्ग-प्रतिमा का अभ्यास करता है । वहाँ पर भयानक बेताल आदि के दृश्य देखकर साधु भयभीत नहीं होता । मशानी बाबा की तरह केवल निर्भय ही नहीं रहता, अपितु धीरता, वीरता, सहिष्णुता आदि गुणों और तपस्या में रत रहकर जो शरीर की भी ममता नहीं करता, उपसर्गों से बचने की भावना नहीं रखता, बल्कि उनको शान्तभाव से सहन करता है, वही भिक्षु है ।

असइं वोसट्टचत्तदेहे, अक्कुट्टे व हए लूसिए वा ।

पुढविसमे मुणी हविज्जा, अनियाणे अकोउहल्ले जे स भिक्खू ॥13॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

बहुराग-द्वेष-मंडन गत-तन, सह गाली मार नख का भेदन ।

पृथ्वी सम जो है निर्निदान, कौतुक-वर्जित को भिक्षु कथन ॥

अन्वयार्थ-जे = जो साधु । असइं = बार-बार । वोसट्टचत्तदेहे = शरीर की विभूषा सार-संभाल छोड़ता, ममता नहीं करता है । व = और । अक्कुट्टे = गाली देने । व = अथवा । हए = मारने-पीटने । वा लूसिए = अथवा शस्त्र से छेदन-भेदन करने पर । मुणी = मुनि । पुढविसमे = पृथ्वी के समान सहिष्णु । हविज्जा (हवेज्जा) = होता है । अनियाणे (अनिआणे) = निदान नहीं करता है । अकोउहल्ले = कौतुहल रहित होता है । स = वह । भिक्खू = भिक्षु है ।

भावार्थ—जो समय-समय पर शरीर विभूषा आदि का त्याग करता है और स्नान-मर्दन, विलेपन नहीं करता। कोई गाली दे, लकड़ी आदि से पीटे या शस्त्र से अंगादि का छेदन करे, तब भी मुनि पृथ्वी के समान सहिष्णु होते हैं। छेदन, भेदन, या पूजन में राग-द्वेष नहीं करते, तप का निदान नहीं करते और फल की आकांक्षा से रहित होते हैं, वे भिक्षु कहलाते हैं।

अभिभूअ काएण परीसहाइं, समुद्धरे जाइपहाओ अप्पयं ।

विइत्तु जाई मरणं महब्भयं, तवे रए सामणिए जे स भिक्खू ॥14॥

हिन्दी पद्यानुवाद—

जिन तन से परीषह को जयकर, भव से अपना उद्धार करे।

जान महाभय जन्म मरण, मुनिता तप में रत भिक्षु धरे ॥

अन्वयार्थ—जे = जो। काएण = काया से। परीसहाइं = परीषहों को। अभिभूअ (अभिभूय) = पराजित करके। जाईमरणं (जाइमरणं) = जन्म-जरा-मरण को। महब्भयं = भयंकर। विइत्तु = जानकर। अप्पयं = अपनी आत्मा का। जाइपहाओ (जाइपहाउ) = संसार समुद्र से। समुद्धरे = उद्धार करता है। सामणिए = श्रमण-धर्म के। तवे रए = तप में रत रहता है। स भिक्खू = वह भिक्षु है।

भावार्थ—जो शरीर से भूख-प्यास आदि परीषहों को पराजित करता है और जन्म-जरा-मरण को भयंकर जानकर जो अपनी आत्मा का भवसागर से उद्धार कर लेता है तथा श्रमण-धर्म के विशुद्ध तप में रत रहता है, वही भिक्षु है।

हत्थसंजए पायसंजए, वायसंजए संजइंदिए ।

अज्झप्परए सुसमाहियप्पा, सुत्तत्थं च वियाणई जे स भिक्खू ॥15॥

हिन्दी पद्यानुवाद—

कर एवं चरणों का संयत, वाणी संयत और इन्द्रिय जित।

सुसमाधिवन्त अध्यात्म लीन, सूत्रार्थ ज्ञात वह भिक्षु कथित ॥

अन्वयार्थ—जे = जो साधु। हत्थसंजए = हाथ से संयत। पायसंजए = पाँव को संयम में रखने वाला। वायसंजए = वाणी से संयत। संजइंदिए = इन्द्रियों के संयम वाला। अज्झप्परए = अध्यात्म-शुभ ध्यान में रत। सुसमाहियप्पा = समाधियुक्त आत्मा वाला। च = और। सुत्तत्थं = सूत्र-अर्थ का। वियाणई = सम्यक् ज्ञाता है। स भिक्खू = वह भिक्षु है।

भावार्थ—साधु पूर्ण संयमी होता है। वह हाथ, पैर, वाणी व इन्द्रियों से संयत होता है, कच्छप के

समान अपने अंगोपांग को गुप्त रखता है। मनोगुप्ति के लिये शरीर और इन्द्रियों का गोपन आवश्यक है। जब तक इन्द्रियों की चंचलता दूर नहीं की जायेगी, मन की स्थिरता सम्भव नहीं होती। अतः यहाँ तन के संयम को प्राथमिकता दी गई है, क्योंकि इन्द्रिय विजय से मनोविजय अतिसरल हो जाता है। संयतेन्द्रिय अध्यात्म-भाव में रत और समाधि युक्त आत्मा वाला सूत्रार्थ को जो सम्यक् जान लेता है, वही भिक्षु है।

उवहिम्मि अमुच्छिं अगिद्धे, अण्णाय उंछं पुलनिप्पुलाए ।

कयविक्रय सन्निहिओ विरए, सव्वसंगावगए विरए जे स भिक्खू ॥16॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

उपधि अमूर्च्छित अशन निस्पृहि, संयम दूषक दोष रहित ।

क्रय विक्रय सन्निधि का त्यागी, सब संग रहित वह भिक्षु कथित ॥

अन्वयार्थ-जे = जो। उवहिम्मि = उपकरणों में। अमुच्छिं = मूर्च्छित नहीं होता। अगिद्धे = गृद्धिपन (प्रतिबन्ध) नहीं रखता। अण्णाय उंछं = शरीर-यात्रा को चलाने के लिये अज्ञात कुल से थोड़ा-थोड़ा उपकरण व आहार लेता है। पुलनिप्पुलाए = संयम को निस्सार नहीं करने वाला। कयविक्रय = क्रय-विक्रय (खरीद-बिक्री) से दूर। सन्निहिओ = घृत आदि को रात में नहीं रखने वाला। विरए = विरत। य = और। सव्वसंगावगए = सब प्रकार के संग से दूर रहता है। स = वह। भिक्खू = भिक्षु है।

भावार्थ-मुनि संयम-साधना के लिये स्वीकृत उपकरणों से भी मोह नहीं करता, मन से बन्धन रहित होता है। भोजन भी अज्ञात कुल से, बिना उन्हें खबर दिये थोड़ा-थोड़ा लेता है, संयम मूल गुणादि को निस्सार नहीं करता, वस्त्र-पात्र-शास्त्र आदि की खरीद-बिक्री से दूर, अशनादि का रात में संचय नहीं करने वाला, हिंसादि पापों से विरत और धन-धान्य आदि सम्पूर्ण संग से दूर होता है, वही भिक्षु होता है।

अलोलभिक्खू न रसेसु गिद्धे, उंछं चरे जीविए नाभिकंखे ।

इड्ढिं च सक्कारण पूअणं च, चएइ ढ्ढिअप्पा अणिहे जे स भिक्खू ॥17॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

अचपल रसों में लुब्ध नहीं, लघु भिक्षाचर जीवन त्यागी ।

आत्म स्थित निस्पृह भिक्षु वह, जो ऋद्धि, मान पूजा त्यागी ॥

अन्वयार्थ-जे = जो। भिक्खू = भिक्षु। अलोल = अप्राप्त रस की अभिलाषा रहित। न रसेसु गिद्धे (गिज्जे) = अगृद्ध, प्राप्त रसों में आसक्त नहीं। उंछं = थोड़ा-थोड़ा। चरे = लेने वाला। जीविए (जीविय) = असंयम जीवन की। नाभिकंखे = इच्छा नहीं करता। इड्ढिं = ऋद्धि। सक्कारण =

सत्कार । च = और । पूअणं (पूयणं) = पूजा की इच्छा को । चण्ड = त्यागता है । च = और । ट्ठिअप्पा (ठिअप्पा) (ट्टियप्पा) = स्थिर आत्मा । अणिहे = तथा स्पृहा रहित है । स = वह । भिक्खू = भिक्षु है ।

भावार्थ—आत्मार्थी साधक खाने के लिये नहीं जीता, वह शरीर-टिकाने और संयम-यात्रा चलाने के लिये आहार करता है । इसलिये अप्राप्त रस में लोलुपी और प्राप्त में गृद्ध नहीं होता । अज्ञात रूप से अनेक घरों से थोड़ा-थोड़ा ग्रहण करता और भोग जीवन की आकांक्षा रहित होता है । ऋद्धि, सत्कार, पूजा का परित्याग करता वह स्थित आत्मा निस्पृही संत भिक्षु कहलाता है । सच्चा सन्त, महिमा-पूजा को विष तुल्य समझकर उसका परित्याग करता है ।

न परं वड्ज्जासि अयं कुसीले, जेणं च कुप्पिज्ज न तं वड्ज्जा ।

जाणिअ पत्तेअं पुण्ण पावं, अत्ताणं न समुक्कसे जे स भिक्खू ॥१८॥

हिन्दी पद्यानुवाद—

ना कहे अन्य को यह कुशील, जिससे हो क्रुद्ध न बात करे ।

समझ सभी का पुण्य पाप, निज श्लाघा भिक्षु न चित्त धरे ॥

अन्वयार्थ—जे = जो । परं = दूसरे को । अयं = यह । कुसीले = कुशील है ऐसा । न वड्ज्जासि = नहीं बोले । च = और । जेणं = जिस वचन से । कुप्पिज्ज = अन्य कुपित हो । तं = वैसा वचन । न वड्ज्जा = नहीं बोले । पत्तेअं (पत्तेयं) = प्रत्येक के । पुण्ण पावं = पुण्य पाप पृथक्-पृथक् हैं । जाणिअ (जाणिय) = यह जानकर । अत्ताणं = अपनी । न समुक्कसे = प्रशंसा नहीं करता । स = वही । भिक्खू = भिक्षु है ।

भावार्थ—दूसरे का दुर्गुण-प्रकाशन मन को कलुषित करता है, इसलिये शास्त्रकार कहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति के पुण्य-पाप स्वतन्त्र हैं । जिस तरह जल में हाथ रखने वाले को शीतलता और अग्नि में हाथ डालने वाले को दहन-जलन प्राप्त होती है । उसके किसी साथी को नहीं । इसी तरह शुभाशुभ कर्मों का फल कर्ता को ही भोगना पड़ता है । उसके किसी साथी-संगी को नहीं । यह जानकर मुनि दूसरे को कुशील आदि अपशब्द नहीं बोले । परापवाद कषाय वृद्धि का कारण है । अतः पर-निन्दा और आत्म-प्रशंसा नहीं करता, वही भिक्षु है ।

ण जाइमत्ते ण य रूवमत्ते, न लाभमत्ते न सुएण मत्ते ।

मयाणि सव्वाणि विवज्जइत्ता, धम्मज्झाणरए जे स भिक्खू ॥१९॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

ना जाति गर्व ना रूप गर्व, ना लाभ तथा श्रुत गर्व करे ।

जो धर्म ध्यान रत तज सब मद, जग में उसको ही भिक्षु कहे ॥

अन्वयार्थ-जे = जो । जाइमत्ते = जाति का मद । ण = नहीं करे । य = और । रूवमत्ते = रूप मद । ण = नहीं करे । न लाभमत्ते = लाभ का मद नहीं करे । न सुएण मत्ते = श्रुत का मद भी नहीं करे । सव्वाणि = सब । मयाणि = मदों को । विवज्जइत्ता = छोड़कर । धम्मज्झाणरए = धर्म ध्यान में रत रहता है । स = वह । भिक्खू = भिक्षु है ।

भावार्थ-जैन धर्म की यह शिक्षा है कि जीवन को परिवर्तनशील समझ कर कल्याणार्थी साधु कुल, जाति, बल, रूप, लाभ, तप, श्रुत और ऐश्वर्य का कभी मद नहीं करे । क्योंकि ऐसा कोई स्थान या कुल नहीं है, जहाँ इस जीव ने स्वयं ने जन्म-मरण नहीं किया हो । “असइं उच्चागोए, असइं नीयागोए” इस जीव ने अनेक बार उच्च और नीच-गोत्र में भ्रमण कर लिया है, फिर किस बात का गर्व करे । इस जिन-वचन को ध्यान में रखकर जो सभी मदों का परित्याग करके धर्म-ध्यान में रत रहता है, वही भिक्षु है ।

पवेयए अज्जपयं महामुणी, धम्मे ठिओ ठावयई परं पि ।

निक्खम्म वज्जेज्ज कुसीललिंगं, न यावि हासं कुहए जे स भिक्खू ॥20॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

दे बोध आर्य पद का सुसाधु, धर्म स्थित पर को करे अटल ।

दीक्षित हो तज दे गृही लिंग, है भिक्षु हास्य गत कौतुहल ॥

अन्वयार्थ-जे = जो । महामुणी = महामुनि । अज्जपयं = पापरहित आर्य पद का । पवेयए = उपदेश करता है । धम्मे ठिओ = धर्म में स्थित होकर । परंपि ठावयई = दूसरों को भी स्थिर करता है । निक्खम्म = दीक्षा ग्रहण करके । कुसीललिंगं = क्रिया रहित वेषधारी के लिंग का । वज्जेज्ज (वज्जिज्ज) = वर्जन करता । यावि हासं कुहए = और हँसी-मजाक, कुचेष्टा । न = नहीं करता । स भिक्खू = वह भिक्षु है ।

भावार्थ-घर से मुनिव्रत की आराधना के लिये निकलकर जो महामुनि जन-समाज में पाप रहित आर्य पद अर्थात् सच्चे शुद्ध धर्म का उपदेश करता है, स्वयं धर्म में स्थित होकर दूसरे को भी धर्म-मार्ग में स्थिर करता है, साधु का वेष धारण कर गृहस्थ जैसे आचरण करने वाले वेष का परिवर्जन कर हास्य और कुचेष्टाओं से जो मोह भाव को उत्तेजित नहीं करता, वही भिक्षु है ।

तं देहवासं असुइं असासयं, सया चए निच्च हिअट्टिअप्पा ।
 छिंदित्तु जाई मरणस्स बंधणं, उवेइ भिक्खू अपुणागमं गइं ॥21॥
 ॥त्ति बेमि ॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

मोक्षार्थी आत्मा त्याग करे, क्षणभंगुर अशुचिवास तन को ।
 छेदन कर जाति मरण बन्धन, पाता है भिक्षु मोक्ष पद को ॥

अन्वयार्थ-निच्च हिअट्टिअप्पा = जो सदा मोक्ष रूप कल्याण-मार्ग में स्थित आत्मा वाला है, वह । तं = उस । असुइं = अशुचि । असासयं = अशाश्वत नाशवान । देहवासं = देहवास-शरीरवास का । सया = सदा । चए = त्याग करे । जाईमरणस्स = जन्म-मरण के । बंधणं = बन्धन को । छिंदित्तु = काटकर । भिक्खू = भिक्षु । अपुणागमं = पुनरागमन रहित । गइं = गति को । उवेइ = प्राप्त करता है ।

भावार्थ-कल्याण-मार्ग में जिसकी आत्मा सदा स्थित है, ऐसा भिक्षु मल-मूत्रादि भरे अस्थायी शरीर-पिण्ड का परित्याग करता, ममता का वर्जन करता, जन्म-मरण के बन्धनों को काटकर जहाँ से फिर लौटकर नहीं आते, उस अपुनर्गति वाले स्थान को प्राप्त करता है । ऐसा मुनि सदाकाल के लिये आवागमन के चक्कर से मुक्त हो जाता है । इसी को गीताकार ने कहा है कि “यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद्धामं परमं मम ।”

ऐसा मैं कहता हूँ ।

॥ दसवाँ अध्ययन समाप्त ॥



प्रथम चूलिका

रइवक्का (रतिवाक्या)

उपक्रम

जिस प्रकार पर्वत के अग्रभाग को चूला (शिखर) कहा जाता है, उसी प्रकार प्रस्तुत दशवैकालिक सूत्र की समाप्ति पर उसके शिखर के रूप में दो चूलिकाएँ कही गई हैं। प्रथम चूलिका का नाम 'रइवक्का' (रतिवाक्या) और द्वितीय चूलिका का नाम 'विवित्त चरिया' (विविक्त चर्या) है।

‘संयमे रतिकर्तृणि वाक्यानि यस्यां सा रतिवाक्या’ संयम में रति उत्पन्न करने वाले वचन जिसमें हो, वह ‘रतिवाक्या’ चूलिका है। संयम ग्रहण करने के पश्चात् किन्हीं भी अनुकूल-प्रतिकूल प्रसंगों के कारण संयम में यदि अरति (अरुचि) उत्पन्न हो जाय और साधक का चित्त संयम को छोड़कर गृहवास में जाने का हो जाय तो वैसी स्थिति में संयम छोड़ने से पूर्व इस चूलिका में बताये गये अठारह स्थानों पर उसे गम्भीरता पूर्वक विचार करना चाहिए। इसमें वर्णित ये अठारह स्थान इतने वैराग्य गर्भित एवं प्रभावोत्पादक हैं कि संयम में अस्थिर बने हुए साधक का मन संयम में पुनः उसी तरह स्थिर हो जाता है जैसे अंकुश से हाथी, लगाम से घोड़ा और पताका से पोत स्थिर हो जाते हैं।

प्रस्तुत चूलिका में वर्णित अठारह स्थानों में मुख्यतया गृहस्थाश्रम की अनुपादेयता और संयम की उपादेयता का सचोट वर्णन है। गृहस्थाश्रम को घोर क्लेशमय, बन्धनकारक और सावद्य बताया गया है, जबकि संयम को सुखमय, क्लेश रहित, स्वतन्त्र (मोक्षरूप) और निरवद्य बताया गया है। मानवीय कामभोगों को क्षणिक, तुच्छ और असार बताया गया है।

साधक संयम से ऊबकर गृहस्थाश्रम में जाना चाहता है, परन्तु उसे सावधान करते हुए कहा गया है कि भोगों से तृप्ति की आशा मत करो। उनसे तृप्ति की आशा करना दुराशामात्र है। अतः आकांक्षा रहित होकर संयम का पालन किया जाय तो वह स्वर्ग के समान सुखदायी है और यदि आकांक्षा है तो संयम दुःख रूप है। इस प्रकार संयम की उभयरूपता बताकर संयम में रमण करने का उपदेश, इस चूलिका में दिया गया है।

इह खलु भो ! पव्वइएणं उप्पण्णदुक्खेणं संयमे अरइसमावण्णचित्तेणं,
ओहाणुप्पेहिणा अणोहाइएणं चेव हयरस्सि-गयंकुसं-पोयपडागाभूयाइं इमाइं
अट्टारसठाणाइं सम्मं संपडिलेहियव्वाइं भवन्ति । तं जहा-

हिन्दी पद्यानुवाद-

जिस दीक्षित मुनि के मोहजन्य-दुःख मानस में हो भर आया ।
 संयम में उसके अरति खिन्न, मन ने अतिशय ही दुःख पाया ॥
 संयम छोड़ गृहस्थाश्रम, जाने का जिसको मन भाया ।
 तज-संयम-वैराग्य राग पर, मन जिसका हो ललचाया ॥
 संयम तजने के पहले ही, इस पर देना है ध्यान उसे ।
 इन अट्टारह पद का सम्यक्, आलोचन कर्तव्य जिसे ॥
 जो है अस्थित आत्मा वाले, वे दे मन से सम्मान इसे ।
 निश्चय आत्मा सुस्थिर होगी, जो सदा रखेगा याद इसे ॥
 इन अट्टारह का उनके हित में, स्थान वही है इस जग में ।
 जैसे लगाम का अश्व हेतु, होता महत्त्व यात्रा पथ में ॥
 ज्यों अंकुश का उपयोग सदा, होता गज के अनुशासन में ।
 पोतों हेतु उपयोगी ज्यों, होता है ध्वज भवसागर में ॥

अन्वयार्थ-भो = हे शिष्यों । **पव्वइएणं** = दीक्षा लेने के पश्चात् । **उप्पण्ण (उप्पन्न) दुक्खेणं** = किसी समय शारीरिक अथवा मानसिक दुःख/कष्ट अथवा व्याधि के उत्पन्न होने से यदि कदाचित् । **संयमे** = संयम-पालन में संयम-मार्ग से । **अरइ समावण्ण चित्तेणं** = चित्त (मन) उचट जाय, संयम-पालन के प्रति अरति उत्पन्न हो जाय अथवा संयम-मार्ग में चित्त न लगे, संयम के प्रति चित्त में प्रेम न रहे और । **ओहाणुप्पेहिणा** = संयम यानी साधुपना छोड़कर पुनः गृहस्थाश्रम में जाने की इच्छा हो जाय, तो । **अणोहाइएणं चेव** = संयम छोड़ने से पूर्व साधु को । **इह खलु इमाइं** = निश्चय ही इन । **अट्टारस ठाणाइं** = अठारह स्थानों को । **सम्मं** = सम्यक् प्रकार से (खूब अच्छी तरह से) विचार करना चाहिये क्योंकि । **हयरस्सि गयंकुसं पोय पडागा भूयाइं** = जिस प्रकार लगाम लगाने से चंचल घोड़ा वश में आ जाता है, अंकुश लगाने से मदोन्मत्त हाथी रास्ते पर आ जाता है, मार्ग भूलकर समुद्र में भटकती हुई व इधर-उधर गोते खाती हुई नाव पतवार द्वारा ठीक मार्ग पर आ जाती है, उसी प्रकार । **संपडिलेहिय-व्वाइं भवंति** = आगे कहे जाने वाले अठारह स्थानों पर विचार करने से मुनि का चंचल एवं डांवाडोल बना हुआ चित्त भी पुनः संयम-मार्ग में स्थिर हो जाता है । **तं जहा** = वे अठारह स्थान इस प्रकार हैं-

भावार्थ-निर्ग्रन्थ-प्रवचन में प्रव्रजित साधु को कभी मोहजन्य दुःख उत्पन्न हो जाय, संयम में चित्त अतियुक्त एवं चंचल हो जाय, वह संयम को छोड़कर गृहस्थाश्रम में चला जाना चाहता हो तो उस समय संयम छोड़ने से पूर्व उसको इन अठारह स्थानों की भली-भाँति आलोचना करनी चाहिये । इनका ध्यान पूर्वक पारायण करना चाहिये । अस्थिर आत्मा के लिये इन स्थानों का वही महत्त्व है जो अश्व के लिये लगाम का, हाथी के लिये अंकुश का और पोत के लिये पताका का है । वे अठारह स्थान इस प्रकार हैं-

1. हं भो ! दुस्समाए दुप्पजीवी ।

हिन्दी पद्यानुवाद-

दुःख बहुल पंचम आरे में, जन क्षण-क्षण दुःख पाते हैं ।
सुख के लिये घोर श्रम कर, जी भर दुःख पा पछताते हैं ॥
ये लोग बड़ी कठिनाई से, दुःख से निर्वाह चलाते हैं ।
रोते हैं नित्य वे, कभी नहीं, हँसने का अवसर पाते हैं ॥

अन्वयार्थ-हं भो ! = (अपनी आत्मा को सम्बोधित करते हुए इस प्रकार विचार करना चाहिये कि) हे आत्मन् ! दुस्समाए = इस दुष्मकाल का जीवन ही । दुप्पजीवी = दुःखमय है ।

भावार्थ-1. ओह ! इस दुःषम काल के दुःखबहुल आरे में लोग बड़ी कठिनाई से जीविका चलाते हैं । संसार रोग, शोक, दुःख और क्लेश से भरा पड़ा है ।

2. लहुस्सगा इत्तरिया गिहीणं कामभोगा ।

3. भुज्जो य साइबहुला (असाइ बहुला) मणुस्सा ।

4. इमे य मे दुक्खे न चिरकालोवट्ठाइ भविस्सइ ।

हिन्दी पद्यानुवाद-

हैं तुच्छ गृहस्थ के काम भोग, दिखता कुछ भी सार नहीं,
स्वल्प सार क्षण भर का सुख, चिरकाल का है निस्तार नहीं ।
हैं मनुज जगत के बड़े कुटिल, जिनके अच्छे व्यवहार नहीं,
आगे न बढ़ेंगे दुःख मेरे, हैं उनका चिर आधार नहीं ॥

अन्वयार्थ-गिहीणं = इस दुष्म काल के अन्दर गृहस्थ लोगों के । काम भोगा = काम भोग । लहुस्सगा = लघु अर्थात् तुच्छ हैं और । इत्तरिया = अल्पकालीन हैं । य = और । भुज्जो मणुस्सा = इस दुष्म काल के बहुत से मनुष्य । साइबहुला = बड़े कपटी व मायावी होते हैं ।

इमे य दुक्खे = और वह दुःख । मे = जो मेरे मन में उत्पन्न हुआ है । न चिरकालो वट्ठाइ भविस्सइ = बहुत काल तक नहीं रहेगा ।

भावार्थ-2. गृहस्थों के कामभोग स्वल्प सार वाले, तुच्छ, अल्पकालिक और क्षण भंगुर हैं ।

3. इस काल के मनुष्य प्रायः मायाबहुल-कुटिल होते हैं ।

4. यह मेरा परीषह-जनित दुःख चिरकाल तक रहने वाला नहीं होगा ।

5. ओमजणपुरक्कारे ।

6. वंतस्स य पडियाइयणं ।¹

1. पडिआयणं पाठान्तर ।

हिन्दी पद्यानुवाद-

नीच जनों का पुरस्कार, गृह के वासी जन करते हैं,
सत्कार असंयम वालों का, करना कर्तव्य समझते हैं।
अब तक पाले संयम से, यदि ये मेरे पाँव फिसलते हैं,
तो अर्थ साफ है वान्त का, हम पान स्वयं ही करते हैं॥

अन्वयार्थ-ओमजणपुरक्कारे = दुष्टजनों की गरज एवं सेवा-सत्कार करनी पड़ती है। **य** = और। **वंतस्स** = जिन पदार्थों का एक बार वमन यानी त्याग कर दिया था। **पडियाइयणं** = उन्हीं छोड़े गये पदार्थों का फिर सेवन करना पड़ेगा।

भावार्थ-5. गृहवासी को दुष्ट जनों का भी सत्कार करना होता है, कामी, भोगी, दुःराचारी, व्यसनियों का सत्कार करना पड़ता है।

6. संयम को छोड़कर घर में जाने का अर्थ है-वमन किये हुए को वापस पीना।

7. अहरगइवासोवसंपया।

8. दुल्लहे खलु भो ! गिहीणं धम्मे, गिहिवासमज्झे वसंताणं।

हिन्दी पद्यानुवाद-

जाना गृहस्थ के आश्रम में, मेरे हित में संयम तजकर,
है दुःखदायी अपमान युक्त, नारक जीवन से भी बढ़कर।
हाँ ! रहते हुए गृहस्थी में, उन गृहस्थ जन के हित में,
निश्चय दुर्लभ है धर्म स्पर्श, सब कुछ दुर्लभ उसके हित में॥

अन्वयार्थ-अहरगइवासोवसंपया = संयम छोड़कर गृहस्थाश्रम में जाना मानो साक्षात् नरक गति में जाने की तैयारी करना है। **भो !** = हे आत्मन्! **गिहिवासमज्झे** = गृहस्थ जीवन में (पुनः जाना)। **वसंताणं** = गृहवास रूपी पाश में बन्धे हुए (बसे हुए)। **गिहीणं** = गृहस्थों के लिये। **धम्मे** = धर्म ध्यान में रमण करना धर्म का यथावत् पालन करना। **खलु दुल्लहे (दुल्लभे)** = निश्चय ही दुर्लभ है, कठिन है।

भावार्थ-7. संयम छोड़कर गृहवास में जाने का अर्थ है-नारकीय जीवन को अंगीकार करना।

8. ओह ! गृहवास में रहते हुए गृहस्थों के लिए धर्म का पूर्ण स्पर्श निश्चय ही दुर्लभ है।

9. आयंके से वहाय होइ।

10. संकप्पे से वहाय होइ।

11. सोवक्केसे गिहिवासे, णिरुवक्केसे परियाए।

12. बंधे गिहिवासे, मुक्खे परियाए।

हिन्दी पद्यानुवाद-

होता है भयंकर रोग महा, वध हेतु गृहस्थों के घर में।
होते हैं अनेक संकल्प वहाँ, वध हेतु सदा उनके मन में॥

गृहवास सदा है क्लेश सहित, और मुनि जीवन है क्लेश रहित ।

बन्धन है गृहवास तथा, मुनि का जीवन है मोक्ष सहित ॥

अन्वयार्थ-आयंके = यह शरीर रोगों का घर है, इसमें अचानक रोगों का आतंक, रोगों की उत्पत्ति हो जाती है। **से** = वे रोग। **वहाय होइ** = मृत्यु के मुख तक पहुँचा देते हैं। ऐसे समय में धर्म ही जीव का एक मात्र सहायक होता है। और कोई नहीं। **संकल्पे** = इष्ट वियोग और अनिष्ट संयोग से जीव के मन में सदा ही संकल्प-विकल्प उत्पन्न होते रहते हैं। **से** = वे संकल्प-विकल्प प्राणी मात्र के लिये। **वहाय होइ** = अहितकारी होते हैं। इनसे जीव में आर्तध्यान और रौद्रध्यान बना रहता है। **गिहिवासे** = गृहस्थाश्रम। **सोवक्के से** = क्लेशयुक्त है और। **परियाए** = संयमी जीवन, साधु जीवन। **णिरुवक्के से** = क्लेश रहित है, क्योंकि सच्ची शान्ति त्यागमय जीवन में ही है। **गिहिवासे** = गृहस्थ-जीवन। **बंधे** = बन्धन रूप है, कर्मों के बन्धन का स्थान है और। **परियाए** = संयमी-साधु जीवन। **मुक्खे** = मोक्ष में ले जाने वाला है, मोक्ष रूप है अर्थात् कर्मों के बन्धन से छुड़ाने वाला है, क्योंकि त्याग में ही सच्ची मुक्ति है।

भावार्थ-9. वहाँ गृहवास में आतंक वध के लिये होता है।

10. वहाँ संकल्प वध के लिये होता है।

11. गृहवास क्लेश सहित है और मुनि-पर्याय क्लेश रहित है।

12. गृहवास बन्धन है और मुनि-पर्याय मुक्ति का साधन है।

13. सावज्जे गिहिवासे, अणवज्जे परियाए ।

हिन्दी पद्यानुवाद-

घर में होते हैं पाप कर्म, बहुमलिन कर्म करने पड़ते।

बाधा पर बाधा आती है, जिससे न धर्म बढ़ने पाते ॥

अनवद्य साधुता है जग में, उत्कृष्ट कर्म इसके होते।

समता सब जीवों में होती, कोई न पराये हैं होते ॥

अन्वयार्थ-गिहिवासे = गृहवास। **सावज्जे** = सावद्य यानी पाप का स्थान है और। **परियाए** = मुनि पर्याय-संयमी जीवन। **अणवज्जे** = निरवद्य है, निर्दोष, निष्पाप एवं पवित्र है।

भावार्थ-13. गृहवास सावद्य है और मुनि पर्याय अनवद्य-निर्दोष है।

14. बहुसाहारणा गिहिणं काम-भोगा ।

हिन्दी पद्यानुवाद-

काम भोग इस जगत में, सर्वोत्तम सुख कहलाते हैं।

किन्तु नहीं इनका फल अच्छा, सब शास्त्र यही बतलाते हैं ॥

यद्यपि गृही घर में ये सुख, सर्वथा सुलभ हो जाते हैं।
जिससे इस सुख का महत्त्व, दुःख के कारण बन जाते हैं॥

अन्वयार्थ-गिहिणं = गृहस्थों के। काम भोगा = काम भोग। बहुसाहारणा = तुच्छ एवं साधारण हैं।

भावार्थ-14. गृहस्थों के कामभोग बहुजन सामान्य हैं, अर्थात् सर्व साधारण के लिये भी सर्वथा सुलभ हैं। उसमें परिवार के सब सदस्य भागीदार हैं।

15. पत्तेयं पुण्ण-पावं ।

16. अणिच्चे खलु भो ! मणुयाण जीविए कुसग्गजलबिंदु चंचले ।

हिन्दी पद्यानुवाद-

होते हैं हर प्राणी के ये, पुण्य-पाप अपने सारे।
कोई न किसी का बाँट सके, ना भोग कर्म जाते टारे॥
है मानव का जीवन अनित्य, कुश-अग्र बिन्दु चंचल जैसे।
हाँ ! हो जाय इसका विनाश, कब और कहाँ किसका कैसे॥

अन्वयार्थ-पत्तेयं = प्रत्येक प्राणी के। पुण्ण-पावं = पुण्य और पाप अलग-अलग हैं अर्थात् प्राणी अपने-अपने कर्मों के अनुसार सुख-दुःख भोगते हैं। भो ! = हे आत्मन् ! मणुयाण = मनुष्यों का। जीविए = जीवन। कुसग्ग-जल-बिंदु-चंचले = कुश के अग्र भाग पर रही हुई जल बिन्दु के समान अति चंचल है, क्षण भंगुर है और। अणिच्चे खलु = निश्चय ही अनित्य है, क्षणिक है।

भावार्थ-15. प्रत्येक प्राणी का पुण्य और पाप अपना-अपना स्वतन्त्र होता है।

16. ओह ! मनुष्य का जीवन अनित्य है, कुश के अग्रभाग की नोक पर स्थित जल बिन्दु के समान चंचल है।

17. बहं च खलु भो ! पावं कम्मं पगडं ।

हिन्दी पद्यानुवाद-

सोचे, इसके पहले हमने, बहु-पाप किये इस जीवन में।
जानूँ ना उद्धार मेरा, होगा कैसे अब इस तन में॥
जो जैसा करता है जग में, वह वैसा ही फल पाता है।
अच्छे को अच्छा तथा बुरे को, बुरा भोग मिल जाता है॥

अन्वयार्थ-च = और। भो ! = हे आत्मन् ! खलु = निश्चय ही मैंने। बहं = बहुत। पावं कम्मं = पाप कर्म। पगडं = किये हैं।

भावार्थ—17. ओह ! मैंने इससे पूर्व बहुत ही पाप कर्म किये हैं । अर्थात् मेरे बहुत ही प्रबल पापकर्मों का उदय है । इसीलिये संयमी जीवन छोड़ देने के निन्दनीय विचार मेरे हृदय में उत्पन्न हो रहे हैं ।

18. पावाणं च खलु भो ! कडाणं कम्माणं पुव्विं दुच्चिण्णाणं दुप्पडिक्कंताणं वेइत्ता¹ मोक्खो, नत्थि अवेयइत्ता, तवसा वा झोसइत्ता । अट्टारसमं पयं भवइ ।

हिन्दी पद्यानुवाद—

दुश्चरित्र और दुष्ट पराक्रम, के द्वारा जो पाप किये ।
जब तक उन अर्जित पापों का, ना कोई फल भोग लिये ॥
अथवा तप के द्वारा जब, वे कर्म क्षीण हो जाते हैं ।
निश्चय तभी किसी प्राणी को, मोक्ष धाम मिल पाते हैं ॥
संयम से मन जब हो चंचल, तो इन बातों पर ध्यान धरे ।
इन कथित अठारह स्थानों से, मन श्रद्धा एवं सद्ज्ञान करे ॥
सोचे दुर्लभ नर जीवन को, है व्यर्थ गँवाना ठीक नहीं ।
कर्मों को भोगे बिन भला, क्या मिल पाता है मोक्ष कहीं ॥

अन्वयार्थ—च = और । **खलु भो !** = निश्चय ही हे आत्मन् ! **दुच्चिण्णाणं** = दुष्ट भावों से दुष्ट विचारों से तथा । **दुप्पडिक्कंताणं** = मिथ्यात्व आदि दुष्कृत्यों से । **कडाणं** = उपार्जित किये हुए । **पुव्विं पावाणं कम्माणं** = पहले के पाप कर्मों के फल को । **वेइत्ता (वेयइत्ता)** = भोगने के बाद ही मोक्ष की प्राप्ति होती है, किन्तु । **अवेयइत्ता (अवेइत्ता)** = कर्मों का फल भोगे बिना । **नत्थि** = मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती । **वा** = अथवा । **तवसा** = तप त्याग द्वारा । **झोसइत्ता मोक्खो** = उन कर्मों को क्षय कर देने पर ही मोक्ष मिलता है । **अट्टारसमं** = यह अठारहवाँ । **पयं** = पद । **भवइ** = है ।

भावार्थ—18. ओह ! दुश्चरित्र और दुष्ट पराक्रम के द्वारा पूर्वकाल में अर्जित किए हुए पाप कर्मों को भोग लेने पर अथवा तप के द्वारा उनका क्षय कर देने पर ही मोक्ष होता है, यानी उनसे छुटकारा मिलता है । उन्हें भोगे बिना अथवा तप के द्वारा उनका क्षय किये बिना मोक्ष नहीं होता, उनसे छुटकारा नहीं होता । यह अठारहवाँ पद है ।

भवइ य इत्थ सिलोगो ।

अन्वयार्थ—य = और । **इत्थ** = इन अठारह विषयों पर । **सिलोगो** = श्लोक भी । **भवइ** = हैं, जो इस प्रकार हैं ।

भावार्थ—और इन अठारह विषयों पर श्लोक भी हैं, जो इस प्रकार हैं—

**जया य चयइ धम्मं, अणज्जो भोगकारणा ।
से तत्त मुच्छिए बाले, आयइं नावबुज्झइ ॥1॥**

1. वेयइत्ता - पाठान्तर ।

हिन्दी पद्यानुवाद-

कोई अनार्य जब भोग हेतु से, धर्म भाव तज देता है ।
 वह मूर्ख भोग में मूर्च्छित हो, आगे की सुध खो देता है ॥
 वह भूल बैठता भोगी बन, अपने कर्तव्य कर्म सारे ।
 लगने लगते हैं भोग उसे, मीठे-मीठे प्यारे-प्यारे ॥

अन्वयार्थ-य = और । **जया** = जब । **अणज्जो** = कोई अनार्य पुरुष । **भोगकारणा** = कामभोगों की इच्छा से । **धम्मं** = धर्म को, धर्म-मार्ग को, संयम को, साधु जीवन को । **चयइ** = छोड़ता है तब । **तत्थ** = उन काम-भोगों में । **मुच्छिए** = मूर्च्छित यानी आसक्त बना हुआ । **से** = वह । **बाले** = बाल-अज्ञानी । **आयइं** = आगत यानी भविष्य काल के लिये । **नाव बुज्झइ** = जरा-सा किंचित् मात्र भी विचार नहीं करता ।

भावार्थ-अनार्य जब भोग के लिये धर्म को छोड़ता है, तब वह भोग में मूर्च्छित अज्ञानी अपने भविष्य को नहीं समझता ।

**जया ओहाविओ होइ, इंदो वा पडिओ छमं ।
 सव्वधम्मपरिब्भट्ठो, स पच्छा परितप्पइ ॥२॥**

हिन्दी पद्यानुवाद-

जब त्याग साधुता मुनि कोई, वापिस घर में आ जाता है ।
 तब सब धर्मों से गिरकर के, पथ भ्रष्ट यहाँ हो जाता है ॥
 हो देव लोक वैभव से च्युत, जैसे परिताप इन्द्र करता ।
 उससे भी बढ़ परिताप यहाँ, वह गृहवासी मुनि है करता ॥

अन्वयार्थ-वा = जिस प्रकार स्वर्गलोक से च्यवकर-च्युत होकर । **छमं** = पृथ्वी पर, मृत्युलोक में । **पडिओ** = उत्पन्न होने वाला । **इंदो** = इन्द्र जिस प्रकार अपनी पूर्व ऋद्धि को याद करके पश्चात्ताप करता है, उसी प्रकार । **जया** = जब कोई साधु संयमी । **ओहाविओ (ओहावियो)** = संयम से-साधु जीवन से भ्रष्ट होकर, च्युत होकर । **सव्वधम्म परिब्भट्ठो** = सब धर्मों से भ्रष्ट । **होइ** = हो जाता है तब । **स** = वह । **पच्छा** = पीछे-बाद में । **परितप्पइ** = पश्चात्ताप करता है ।

भावार्थ-जब कोई साधु उत्प्रव्रजित होता है यानी गृहवास में प्रवेश करता है, तब वह सब धर्मों से भ्रष्ट होकर वैसे ही परिताप करता है, जैसे देवलोक के इन्द्रासन एवं वैभव से च्युत होकर भूमितल पर गिरा हुआ इन्द्र करता है ।

**जया य वंदिओ^१ होइ, पच्छा होइ अवंदिओ^२ ।
 देवया व चुया ठाणा, स पच्छा परितप्पइ ॥३॥**

1-2. वंदिमो अवंदिमो - पाठान्तर ।

हिन्दी पद्यानुवाद-

मुनि जीवन में वन्दनीय, वह जन जन का बन जाता है।
लेकिन गृहस्थ बन वही व्यक्ति, सब का अवन्द्य बन जाता है॥
जब आ जाती वैसी स्थिति, तो वह वैसा ही दुःख पाता है।
जैसे कोई स्थान भ्रष्ट, सुर पृथ्वी पर पछताता है॥

अन्वयार्थ-जया = जब साधु संयम में रहता है तब तो। **वंदिओ (वंदिमो)** = वह सब लोगों का वन्दनीय। **होड़** = होता है। **य** = परन्तु। **पच्छा** = संयम छोड़ देने के बाद वही साधु। **अवंदिओ (अवंदिमो)** = अवन्दनीय। **होड़** = हो जाता है। **ठाणाचुयादेवया व** = जिस प्रकार इन्द्र द्वारा परित्यक्ता देवी पश्चात्ताप करती है उसी प्रकार। **स** = वह संयम से भ्रष्ट साधु। **पच्छा** = पीछे-बाद में। **परितप्पड़** = पश्चात्ताप करता है।

भावार्थ-प्रव्रजित काल में साधु जन-जन का वन्दनीय होता है, पर वही जब उत्प्रव्रजित होकर गृहस्थी बनता है तब अवन्दनीय हो जाता है। तब वह वैसा ही परिताप करता है, जैसे इन्द्र द्वारा परित्यक्ता देवी पश्चात्ताप करती है।

जया य पूड़ओ¹ होड़, पच्छा होड़ अपूड़ओ²।
राया य रज्ज पब्भट्ठो, स पच्छा परितप्पड़॥४॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

प्रव्रजित दशा में साधु पूज्य, सब जन का रहता है जग में।
बनकर गृहस्थ नर-नारी, ना वैसा पूज्य रहे सब में॥
यह सोच-सोच परिताप बहुत, होने लगता उसके मन में।
ज्यों राज्य भ्रष्ट राजा चिन्तित, रहता है अपने जीवन में॥

अन्वयार्थ-जया = जब साधु संयम में रहता है तब तो। **पूड़ओ (पूड़मो)** = सब लोगों द्वारा पूजनीय। **होड़** = होता है। **य** = किन्तु। **पच्छा** = संयम से भ्रष्ट हो जाने के बाद। **अपूड़ओ (अपूड़मो)** = अपूजनीय। **होड़** = हो जाता है। **रज्जपब्भट्ठो राया य** = जिस प्रकार राज्य-भ्रष्ट राजा पश्चात्ताप करता है, उसी प्रकार उस राज्यभ्रष्ट राजा की तरह। **स** = वह साधु। **पच्छा** = संयम से भ्रष्ट हो जाने के बाद। **परितप्पड़** = पश्चात्ताप करता है।

भावार्थ-प्रव्रजित काल में साधु पूज्य होता है पर वही जब उत्प्रव्रजित होकर घर-गृहस्थी वाला बन जाता है, तो अपूज्य हो जाता है। तब वह वैसा ही परिताप करता है, जैसे राज्य से भ्रष्ट राजा करता है।

जया य माणिमो होड़, पच्छा होड़ अमाणिमो।
सेट्ठिव्व कब्बडे छूढो, स पच्छा परितप्पड़॥५॥

1-2. पूड़मो अपूड़मो - पाठान्तर।

हिन्दी पद्यानुवाद-

प्रव्रजित काल में साधु मान्य, बन जाता है जग के जन में।
 हो गृहस्थ बनता अमान्य, जिससे दुःख पाता है मन में॥
 वह करता परिताप बहुत, निज पूर्व दशा का चिन्तन कर।
 जैसे छोटे गाँव बीच, दुःख पाता सेठ बन्ध पाकर॥

अन्वयार्थ-जया = जिस समय साधु संयमी जीवन में रहता है उस समय तो। **माणिमो (माणिओ)** = सब लोगों के लिये माननीय। **होड़** = होता है। **य** = किन्तु। **पच्छा** = संयम से भ्रष्ट हो जाने के बाद। **अमाणिमो (अमाणिओ)** = अमाननीय। **होड़** = हो जाता है। **कब्बडे (कव्वडे)** = जिस प्रकार किसी छोटे से गाँव में। **छूढो** = अनिच्छापूर्वक रखा हुआ। **सेट्टिव्व (सिट्टिव्व)** = सेठ पश्चात्ताप करता है, उसी प्रकार। **स** = वह संयम भ्रष्ट साधु भी। **पच्छा** = गृहवास में आने के बाद। **परितप्पड़** = परिताप करता है, पश्चात्ताप करता है।

भावार्थ-प्रव्रजित काल में साधु सब के लिये आदरणीय एवं मान्य होता है पर वही जब उत्प्रव्रजित होकर गृहस्थ दशा में चला जाता है तो अनादरणीय एवं अमान्य बन जाता है, तब वह वैसे ही परिताप करता है जैसे किसी छोटे से गाँव में बिठा दिया गया बड़े शहर का सेठ परिताप करता है।

जया य थेरओ होड़, समइक्कंत जोव्वणो¹।
मच्छोव्व² गलं गिलित्ता, स पच्छा परितप्पड़॥6॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

जाती है बीत जवानी जब, वह पतित साधु बूढ़ा होता।
 सेवा सम्मान नहीं मिलता, कर मल मल वह पछताता॥
 ज्यों कंट निगलकर मत्स्य कभी, पीड़ा से पीड़ित है होता।
 वैसे ही वह निज करनी पर, हो दुःखी हृदय से है रोता॥

अन्वयार्थ-मच्छोव्व (मच्छुव्व) = जिस प्रकार लोहे के काँटे पर लगे हुए माँस अथवा आटे को खाने के लिये मछली उस काँटे पर झपटती है, किन्तु। **गलं गिलित्ता** = गले में वह काँटा फँस जाने के कारण पश्चात्ताप करती हुई मृत्यु को प्राप्त होती है, उसी प्रकार। **पच्छा** = संयम से भ्रष्ट होने के बाद वह संयम भ्रष्ट साधु। **समइक्कंत जोव्वणो (समइक्कंत जुव्वणो)** = यौवन अवस्था के बीत जाने पर। **जया य** = जब। **थेरओ होड़** = वृद्धावस्था को प्राप्त होता है तब। **स** = वह संयम भ्रष्ट साधु। **परितप्पड़** = परिताप करता है, पश्चात्ताप करता है।

भावार्थ-यौवन के बीत जाने पर जब वह उत्प्रव्रजित साधु वृद्धावस्था में पहुँचता है, तब वह वैसे ही परिताप करता है जैसे काँटे को निगलने वाला मत्स्य।

1. जुव्वणो - पाठान्तर।

2. मच्छुव्व - पाठान्तर।

जया य कुकुडुंबस्स, कुतत्तीहिं विहम्मइ ।
हत्थी व बंधणे बद्धो, स पच्छा परितप्पइ ॥७॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

मुनिता तजकर जब साधु यहाँ, करता कुटुम्ब जन का चिन्तन।
उसकी दुश्चिन्ता से आहत, हो दुःख पाता है वह उस क्षण ॥
इससे परिताप उसे होता, वह मन ही मन करता क्रन्दन।
जैसे बन्धन में बंधे हुए, गज का भारी पड़ता जीवन ॥

अन्वयार्थ—काम-भोगों के झूठे लालच में फँसकर संयम से पतित होने वाले साधु को—**जया य** = जब । **कुकुडुंबस्स** = प्रतिकूल स्वभाव वाला कुटुम्ब मिलता है यानी अनुकूल परिवार एवं इष्ट संयोगों की प्राप्ति नहीं होती तब । **कुतत्तीहिं** = वह आर्त और रौद्रध्यान करता हुआ अनेक प्रकार की चिन्ताओं से । **विहम्मइ** = चिन्तित रहता है और । **बंधणे** = बन्धन में । **बद्धो** = बंधे हुए । **हत्थी व** = हाथी के समान । **स** = वह । **पच्छा** = पीछे बार-बार । **परितप्पइ** = परिताप यानी पश्चात्ताप करता है ।

भावार्थ—वह उत्प्रव्रजित साधु जब गृहस्थी में कुटुम्ब की दुश्चिन्ताओं से प्रतिहत होता है तब वह वैसे ही परिताप करता है, जैसे जंगल में स्वतन्त्र विचरण करने वाला हाथी पकड़ा जाकर बन्धन में डाल दिये जाने पर परिताप करता है ।

पुत्तदारपरिकिण्णो, मोह संताणसंतओ ।
पंको सण्णो जहा नागो, स पच्छा परितप्पइ ॥८॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

संसार बीच में आकर वह, प्रिय प्रिया पुत्र सबसे घिरकर ।
फँस जाता है मोह जाल में, ज्यों मक्खी जाले में पड़कर ॥
वह करता है परिताप बहुत, पछताता है कर मल मल कर ।
आकुल व्याकुल हो जाता है, जैसे गज कीचड़ में फँसकर ॥

अन्वयार्थ—**पुत्तदार परिकिण्णो** = पुत्र, स्त्री आदि से घिरा हुआ और । **मोहसंताण संतओ** = उनके मोहपाश में फँसा हुआ । **स** = वह संयम भ्रष्ट साधु । **पंकोसण्णो** = कीचड़ में फँसे हुए । **जहानागो** = हाथी के समान । **पच्छा** = पीछे बार-बार । **परितप्पइ** = पश्चात्ताप करता है ।

भावार्थ—पुत्र और स्त्री से घिरा हुआ एवं मोह की परम्परा से आबद्ध वह वैसे ही परिताप करता है जैसे पंक में फँसा हुआ हाथी ।

अज्ज अहं गणी हुंतो, भावियप्पा बहुस्सुओ ।
जइऽहं रमंतो परियाए, सामण्णे जिणदेसिए ॥९॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

रहता श्रमण आदि अब तक तो, गणी वा बहुश्रुत मुनि होता ।
जिनवर उपदिष्ट श्रमण पथ में, कर रमण आत्मज्ञानी होता ॥
ऐसे दिन नहीं मुझे देखने को, फिर मिले इस जग में ।
निश्चय न कभी वापिस मुझको, चक्कर खाना पड़ता भव में ॥

अन्वयार्थ—संयम-भ्रष्ट साधु इस प्रकार विचार करता है कि :-जइऽहं = यदि मैं साधुपना नहीं छोड़ता और । **भावियप्पा (भाविअप्पा)** = भावितात्मा होकर । **जिणदेसिए** = जिनेश्वर देवों द्वारा उपदिष्ट । **सामण्णे परियाए** = श्रमण पर्याय में । **रमंतो** = रमण करता हुआ यानी श्रामण्य का पालन करता हुआ । **बहुस्सुओ** = बहुश्रुत होता अर्थात् शास्त्रों का अभ्यास करता रहता तो । **अज्ज** = आज । **अहं** = मैं । **गणी** = गणि पद पर, आचार्य पद पर । **हुंतो** = सुशोभित होता ।

भावार्थ—आज मैं भावितात्मा और बहुश्रुत गणी हो जाता, यदि जिनोपदिष्ट श्रमण पर्याय (चारित्र) में अब तक रमण करते रहता ।

देवलोगसमाणो य, परियाओ महेसिणं ।

रयाणं अरयाणं च, महाणरयसारिसो ॥10॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

संयम में रत ऋषि मुनियों का, जीवन अनुपम सुन्दर होता ।
देवलोक सदृश निश्चित, सुखदायक वह जीवन होता ॥
किन्तु न तो संयम रत हैं, उनके जीवन का क्या कहना ।
महानरक के तुल्य दुःखद, जीवन में घुट घुट कर मरना ॥

अन्वयार्थ—**महेसिणं** = जो महर्षि । **रयाणं** = संयम में रत रहते हैं उनके लिए । **परियाओ** = संयम पर्याय । **देवलोग समाणो य** = देवलोक के सुखों के समान आनन्ददायक है । **च** = पर । **अरयाणं** = संयम में अरतों को यानी संयम में रुचि नहीं रखने वालों को । **महाणरय सारिसो** = वह संयम महानरक के सरीखा दुःखदायी प्रतीत होता है ।

भावार्थ—संयम में रत महर्षियों के लिये मुनि पर्याय देवलोक के समान सुखद होता है पर जो संयम में रत नहीं रहते उनके लिये वही मुनि पर्याय महानरक के समान दुःखदायी होता है ।

अमरोवमं जाणिय सुक्खमुत्तमं, रयाण परियाइ तहाऽरयाणं ।

नरओवमं जाणिय दुक्खमुत्तमं, रमिज्ज तम्हा परियाइ पंडिए ॥11॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

संयमरत सुखद मुनि जीवन, देवोपम उत्तम समझ सतत ।
है नरक समान दुःखद जीवन, जो संयम से रहे विरत ॥

अतएव सुखार्थी जो जन हैं, वे इस पर नित्य विचार करें।

जग जान अनित्य तथा भंगुर, संयम सुख में ही रमण करें॥

अन्वयार्थ-परियाइ = संयम पर्याय में। **रयाण** = रत रहने वाले महापुरुषों के लिये वह संयम। **अमरोवमं** = देवलोक तुल्य। **उत्तमं** = उत्तम। **सुखं** = सुखों के समान आनन्ददायक होता है। **जाणिय** = ऐसा जानकर। **तहा** = तथा। **अरयाणं** = संयम में अरतों को यानी संयम में रुचि नहीं रखने वालों को वही संयम। **नरओवमं** = नरक के समान। **उत्तमं** = घोर। **दुखं** = दुःखदायी प्रतीत होता है। **तम्हा** = ऐसा। **जाणिय** = जानकर। **पंडिए** = बुद्धिमान् पण्डित साधु को। **परियाइ** = संयम-मार्ग में ही। **रमिज्ज** = रमण करना चाहिये।

भावार्थ-संयम में रत मुनियों का सुख देवों के समान उत्तम होता है और संयम से अरति रखने वाले मुनियों का दुःख नरक के समान बड़ा भयंकर होता है। यह जानकर बुद्धिमान् मुनि अरति भाव को हटाकर सदा संयम में रत रहता है।

धम्माओ भट्टं सिरिओ ववेयं, जण्णगिविज्झायमिवऽप्पतेयं।

हीलंति णं दुव्विहियं कुसीला, दादुद्धियं घोरविसं व नागं ॥12॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

विषदन्त विहीन घोर विषधर, को अपमानित सभी करें।

पत्थर फेंकें ढेला मारें, मन चाहे जैसा तंग करें।

वैसे ही धर्म चारित्र रूप, श्री से जो रहित यहाँ होता।

निस्तेज शान्त यज्ञाग्नि तुल्य, निन्दित सबसे निन्दा पाता ॥

अन्वयार्थ-जण्णगि = यज्ञ की अग्नि जब तक जलती रहती है तब तक उसे पवित्र समझकर अग्निहोत्री ब्राह्मण उसमें घृतादि डालते हैं और उसे प्रणाम करते हैं किन्तु। **विज्झायं (विज्झाअं)** = जब वह बुझकर। **अप्पतेयं** = तेज रहित हो जाती है तब उसकी राख को बाहर फेंक देते हैं, तथा। **घोर विसं व** = घोर विषमय दाढ़ें जब तक सर्प के मुँह में रहती हैं तब तक सब लोग उस सर्प से डरते हैं, पर। **दादुद्धियं (दादुद्धियं)** = जब उसकी वे विषभरी दाढ़ें मदारी अथवा गारुडि द्वारा निकाल दी जाती हैं, तब उस सर्प से कोई नहीं डरता। बल्कि छोटे बच्चे तक। **नागं** = उस नाग को छेड़ते हैं और अनेक प्रकार का कष्ट पहुँचाते हैं। **इव** = इसी प्रकार जब तक साधु संयम का यथावत् पालन करता हुआ संयम के तेज से तेजोमय रहता है, तब तक सब लोग उसकी विनय-भक्ति एवं वन्दन-नमस्कार, स्वागत-सत्कार आदि करते हैं, किन्तु जब वही साधु। **धम्माओ (धम्माउ)** = उस संयम धर्म से। **भट्टं** = भ्रष्ट हो जाता है और। **सिरिओ** = संयम-तप रूपी श्री से, तेज से, लक्ष्मी से या कान्ति से। **ववेयं (अवेयं)** = रहित होकर। **दुव्विहियं** = दुराचरण-अयोग्य आचरण करने लग जाता है तब। **कुसीला** = आचार हीन सामान्य जन भी। **णं** = उसकी। **हीलंति** = हीलना, अवहेलना एवं तिरस्कार करने लग जाते हैं।

भावार्थ—जिसकी दाढ़ें उखाड़ ली गई हों, उस घोर विषधर सर्प की साधारण लोग भी अवहेलना करते हैं, वैसे ही धर्म-भ्रष्ट एवं चारित्र रूपी श्री से रहित, बुझी हुई यज्ञाग्नि की भाँति निस्तेज और दुर्विहित साधु की कुशील व्यक्ति भी निन्दा करते हैं। वह कहीं भी आदर नहीं पाता।

इहेव ऽधम्मो अयसो अकित्ती, दुन्नामधिज्जं च पिहुज्जणम्मि।

चुयस्स धम्माउ अहम्मसेविणो, संभिण्ण वित्तस्स य हेट्ठओ गई ॥13॥

हिन्दी पद्यानुवाद—

जो धर्म पतित अधर्म सेवी, चारित्र विघातक है मुनिजन।
अपने मनुष्य जीवन में वह, करता अधर्ममय दुराचरण॥
इससे होता है अयश उसे, अपकीर्ति फैलती है जग में।
सब तरह अधोगति होती है, बनता दुर्नाम सकल जग में॥

अन्वयार्थ—धम्माउ = संयम-धर्म से। चुयस्स = च्युत-पतित। अहम्मसेविणो = अधर्म का सेवन करने वाला। संभिण्ण वित्तस्स = ग्रहण किये हुए व्रतों को खण्डित करने वाला साधु। इहेव = इस लोक में। अधम्मो = अधर्म। अयसो = अपयश। य = और। अकित्ती = अपकीर्ति को प्राप्त होता है। च = और। पिहुज्जणम्मि = साधारण लोगों में भी। दुन्नामधिज्जं (दुन्नामधेज्जं) = बदनाम एवं तिरस्कृत होता है तथा। हेट्ठओ (हिट्ठओ) गई = परलोक में नरकादि नीच गतियों में उत्पन्न होकर असह्य दुःख भोगता है।

भावार्थ—धर्म से च्युत होकर जो अधर्मसेवी संयम और चारित्र का खण्डन करता है, उसकी अपकीर्ति होती है। साधारण लोगों में भी उसका दुर्नाम होता है। मर कर वह अधोगति में जाता है। अपनी जन्म-मरण की शृंखला को बढ़ा लेता है।

भुंजित्तु भोगाइं पसज्झ चेयसा, तहाविहं कट्टु असंजमं बहुं।

गइं च गच्छे अणभिज्झियं दुहं, बोही य से नो सुलभा पुणो पुणो ॥14॥

हिन्दी पद्यानुवाद—

वह संयम से भ्रष्ट साधु, आवेश पूर्ण मानसवाला।
भोगों का प्रचुर भोग करके, संयम विहीन चलने वाला॥
अपने ही कर्मों से अनिष्ट, दुःख पूर्ण योनि में जाता है।
ना सुलभ बोधि उसको होती, बहु जन्म-मरण वह पाता है॥

अन्वयार्थ—पसज्झचेयसा = तीव्र लालसा एवं गृद्धिभाव पूर्वक। भोगाइं = भोगों को। भुंजित्तु = भोगकर। च = और। बहुं = बहुत से। तहाविहं असंजमं = असंयमपूर्ण निन्दनीय कार्यों का। कट्टु =

आचरण करके जब वह संयम भ्रष्ट साधु काल-धर्म को प्राप्त होता है तब । **अणभिज्जियं (अणहिज्जियं)** = अनिष्ट । **गइं** = नरकादि गतियों में । **गच्छे** = जाकर । **दुहं** = अनेक प्रकार के दुःख भोगता है । **य** = और । **से** = उसे । **पुणो पुणो** = अनेक भवों में भी । **बोही** = बोधि बीज समकित एवं जिनधर्म की प्राप्ति होना । **नो सुलभा (नो सुलहा)** = सुलभ नहीं है ।

भावार्थ—जो संयम में भ्रष्ट साधु आवेग पूर्ण चित्त से भोगों को भोगता है, वह तथाविध प्रचुर असंयम का आसेवन कर अनिष्ट एवं दुःखपूर्ण गति में जाता है और बार-बार जन्म-मरण करने पर भी उसे बोधि-धर्म की प्राप्ति सुलभ नहीं होती ।

इमस्स ता नेरइयस्स जंतुणो, दुहोवणीयस्स किलेसवत्तिणो ।

पलिओवमं झिज्झइ सागरोवमं, किमंग पुण मज्झ इमं मणोदुहं ॥15॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

दुःख युक्त क्लेशमय जीवन को, जीने वाले इन नारक की ।
पल्योपम या सागर सम, दीर्घायु अन्त होती जन की ॥
फिर मेरा मनोदुःख कब तक, इस तन में रहने वाला है ।
होता है जिसका उदय, अस्त भी उसका होने वाला है ॥

अन्वयार्थ—संयम में आने वाले आकस्मिक कष्टों से घबराकर संयम छोड़ने की इच्छा करने वाले साधु को इस प्रकार विचार करना चाहिये कि—**नेरइयस्स** = नरकों में अनेक बार उत्पन्न होकर । **इमस्स जंतुणो** = मेरे इस जीव ने । **किलेसवत्तिणो** = अनेक क्लेश एवं । **दुहोवणीयस्स (दुहोवणियस्स)** = असह्य दुःख सहन किये हैं और । **पलिओवमं** = वहाँ की पल्योपम और । **सागरोवमं** = सागरोपम जैसी दुःखपूर्ण लम्बी आयु को भी । **झिज्झइ (झिज्जइ)** = समाप्त कर वहाँ से निकल आया है । **ता पुण** = तो फिर । **मज्झ** = मेरा । **इमं** = यह । **मणोदुहं** = चारित्र विषयक मानसिक दुःख तो इसके सामने । **किमंग** = है ही क्या चीज ?

भावार्थ—दुःख से युक्त और क्लेशमय जीवन बिताने वाले इन नारकीय जीवों की पल्योपम और सागरोपम आयु भी समाप्त हो जाती है । तो फिर मेरा यह मनोदुःख कितने काल तक रहने वाला है ।

न मे चिरं दुक्खमिणं भविस्सई, असासया भोगपिवासजंतुणो ।

न चे सरीरेण इमेणऽविस्सई, अविस्सई जीवियपज्जवेण मे ॥16॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

निश्चय मेरे ये मनोदुःख, चिरकाल न रहने पाएँगे ।
जीवों की भोग पिपासा का, भी अन्त हन्त ! हो जाएँगे ॥

यदि इस शरीर के होते भी, ना भोग भाव मन मिट पाये ।

मिट जायेगी तब निश्चय, जब मृत्यु निकट आ जाये ॥

अन्वयार्थ—दुःख से घबराकर संयम छोड़ने वाले साधु को ऐसा विचार करना चाहिये कि—मे = मेरा । इणं = यह । दुक्खं = दुःख । चिरं = बहुत काल तक । न भविस्सई = नहीं रहेगा । जंतुणो = जीव की । भोग पिवास = भोग-लिप्सा विषय-वासना । असासया = अशाश्वत यानी क्षणिक है, अल्प कालिक है । चे = यदि यह भोगलिप्सा । इमेण = इस । सरीरेण = शरीर में शक्ति रहते । न अविस्सई = नष्ट न होगी तो । मे = मेरी वृद्धावस्था आने पर अथवा । जीवियपज्जवेण = मृत्यु आने पर तो । अविस्सई = अवश्य नष्ट हो ही जायगी । जब यह शरीर ही अनित्य है तो भोग-लिप्सा विषया-वासना नित्य कैसे हो सकती है ?

भावार्थ—यह मेरा संयम का दुःख चिरकाल तक नहीं रहेगा । जीवों की भोग-पिपासा अशाश्वत है । यदि वह इस शरीर के होते हुए नहीं मिटी तो मेरे जीवन की समाप्ति के समय तो वह अवश्य ही मिट जावेगी ।

जस्सेवमप्पा उ हवेज्ज निच्छिओ, चएज्ज देहं न हु धम्मसासणं ।

तं तारिसं नो पइलंति' इंदिया, उवित्वाया व सुदंसणं गिरिं ॥१७॥

हिन्दी पद्यानुवाद—

यह देह भले ही जाये पर, ना धर्म कभी जाने पाये ।

जिसके मानस में सुदृढ तथा, अविचल निश्चल निश्चय यह हो जाये ॥

इन्द्रियाँ कभी भी क्या इससे, मुनि को विचलित है कर सकती ।

अचल सुदर्शन गिरि को ज्यों, ना हवा प्रकम्पित कर सकती ॥

अन्वयार्थ—एवं = इस प्रकार उपर्युक्त कथनानुसार विचार करने से । जस्स = जिसकी । अप्पा = आत्मा (धर्म पर) । उ = इतनी । निच्छिओ = दृढ़ । हवेज्ज (हविज्ज) = हो जाती है कि अवसर आने पर वह धर्म पर । देहं = अपने शरीर को । चएज्ज (चइज्ज) = प्रसन्नतापूर्वक त्याग देता है । न्यौछावर कर देता है । उ (हु) = किन्तु । न धम्मसासणं = धर्म का त्याग नहीं करता । व = जिस प्रकार । उवित्वाया (उवेंतवाया, उवित्तिवाया) = प्रलयकाल की प्रचण्ड वायु भी । सुदंसणं गिरिं = सुमेरु पर्वत को चलायमान नहीं कर सकती । उसी प्रकार । इंदिया = चंचल इन्द्रियाँ भी । तारिसं = सुमेरु पर्वत के समान दृढ़ । तं = उस पूर्वोक्त मुनि को । नो पइलंति (नो पयलेंति, नो पइलंति) = संयम पथ से नहीं डिगा सकती ।

॥ति बेमि ॥

द्वितीय चूलिका

चरिया (विविक्तचर्या)

उपक्रम

इस चूलिका में साधु की चर्या, गुण और नियमों का उल्लेख किया गया है। 'चरिया गुणा य नियमा, य होंति साहूण दट्टव्वा'। नियत वास न करना, सामूहिक भिक्षा करना, एकान्तवास करना, यह चर्या है। मूल और उत्तर गुणों के रूप में क्रमशः पंच महाव्रत और पौरुषी आदि प्रत्याख्यान बताये गये हैं। स्वाध्याय, कायोत्सर्ग आदि नियम हैं।

यह 'विविक्त चरिया' (विविक्त चर्या) नामक चूलिका टीकाकार श्री हरिभद्रसूरि के मतानुसार केवलीश्री सीमंधर स्वामी से प्राप्त हुई कही जाती है। इसे एक साध्वीजी ने सुना। इसलिये 'सुयं केवलिभासियं' ऐसा इस चूलिका के प्रारम्भ में कहा गया है। चूर्णियों के अनुसार शास्त्र के प्रति श्रद्धा एवं गौरव-बोध पैदा करने के लिये इसे केवलिभाषित कहा गया है। पर कालक्रम की दृष्टि से इसे श्रुतकेवलिभाषित मानने के प्रबल आधार हैं।

इस चूलिका के प्रारम्भ में यह प्रतिपादित किया गया है कि सामान्य लोक संसार-प्रवाह में अनुस्रोतगामी हुआ करते हैं अर्थात् वे दुनियादारी के बहाव में बहते रहते हैं। इन्द्रियों के विषयों में एवं भोगविलासों में प्रवृत्ति करते रहते हैं। साधु को ऐसा अनुस्रोतगामी नहीं होना चाहिए। अपितु संसार-प्रवाह के विरुद्ध प्रतिस्रोतगामी होना चाहिए। उसकी प्रवृत्ति संसार मार्ग से विपरीत और मोक्षमार्ग के अनुकूल होनी चाहिए। साधु की समस्त प्रवृत्तियाँ आत्माभिमुखी होनी चाहिए, संसाराभिमुखी नहीं, यह इसका प्रतिपाद्य विषय है।

चूलियं तु पवक्खामि, सुयं केवलिभासियं ।
जं सुणित्तु सपुण्णाणं, धम्मे उप्पज्जए मई ॥१॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

स्थविरो से है सुनी हुई, और नित्य केवली से भाषित ।
वह विविक्त चर्या बोलूँगा, जो जिनवर से है अनुशासित ॥
जिसको सुनकर पुण्यवान्, धर्म में बुद्धि लगाते हैं ।
तज जन्म-मरण के दृढ बन्धन, शाश्वत पद में मिल जाते हैं ॥

अन्वयार्थ-केवलिभासियं = सर्वज्ञों द्वारा कही हुई। **सुयं चूलियं तु** = श्रुतज्ञान रूपी विविक्तचर्या चूलिका का। **पवक्खामि** = (मैं) वर्णन/कथन करता हूँ। **जं** = जिसे। **सुणित्तु** = सुनकर। **सुपुण्णाणं (सुपुत्ताणं)** = पुण्यशाली जीवों की। **धम्मे** = धर्म में। **मई** = मति/श्रद्धा। **उप्पज्जए** = उत्पन्न हो जाए।

भावार्थ-शास्त्रकार कहते हैं-“मैं उस चूलिका को कहूँगा जो मैंने सुनी है, और जो केवली भाषित है, जिसे सुनकर भाग्यशाली जीवों की धर्म में मति उत्पन्न होती है।”

**अणुसोय-पट्टिए बहुजणम्मि, पडिसोय-लद्ध-लक्खेणं ।
पडिसोयमेव अप्पा, दायव्वो होउकामेणं ॥२॥**

हिन्दी पद्यानुवाद-

है बहुजन यहाँ स्रोतगामी, सब भोग मार्ग पर जाते हैं।
प्रतिस्रोत गमन का लक्ष्य उन्हें, जो मुक्तिभाव अपनाते हैं॥
जो विषय-भोग से हो विरक्त, और चाह रहा संयम-सेवन।
वैसे जन अपनी आत्मा का, प्रतिस्रोत भाव में करे रमन॥

अन्वयार्थ-जिस प्रकार नदी में गिरा हुआ काष्ठ नदी-प्रवाह के वेग से समुद्र की ओर ही बहता जाता है उसी प्रकार-**बहुजणम्मि** = बहुत से मनुष्य। **अणुसोय पट्टिए** = काम-भोग, रूपी विषयों के प्रवाह के वेग से संसार रूपी समुद्र की ओर बहते हैं, किन्तु। **पडिसोयलद्धलक्खेणं** = उस विषय-भोगों के प्रवाह से छूटकर। **होउकामेणं** = मुक्ति पाने की इच्छा रखने वाले पुरुषों को चाहिये कि वे। **अप्पा** = अपनी आत्मा को। **पडिसोयमेव** = सदा विषय-काम-भोगों के उस प्रवाह से। **दायव्वो** = दूर रखें।

भावार्थ-अधिकांश सांसारिक लोग अनुस्रोत में यानी संसार प्रवाह में बह रहे हैं-भोगमार्ग की ओर जा रहे हैं। किन्तु जो मुक्त होना चाहता है वह प्रतिस्रोत में गति करने का लक्ष्य प्राप्त करना चाहता है। जो विषय-भोगों से विरक्त होकर संयम की आराधना करना चाहता है, उसे अपनी आत्मा को इस स्रोत के प्रतिकूल ले जाना चाहिये। अर्थात् विषयानुरक्ति से अपनी आत्मा को मोड़कर भोगमार्ग के प्रतिकूल त्वरित गति से चल देना चाहिये।

**अणुसोयसुहो लोओ, पडिसोओ आसवो सुविहियाणं ।
अणुसोओ संसारो, पडिसोओ तस्स उत्तारो ॥३॥**

हिन्दी पद्यानुवाद-

साधारण जन अनुस्रोत गमन, करने में अतिशय सुख पाता।
पर जो सुविहित है साधु यहाँ, प्रतिस्रोत गमन उसको भाता॥

अनुस्रोत कहाता विषयभाव, होता जिसमें बहु जन्म-मरण ।
प्रतिस्रोत उत्तार जगत का है, कट जाता जिसमें भव बन्धन ॥

अन्वयार्थ-संसारो = संसार । **अणुस्रोओ** = अनुस्रोतगामी अर्थात् उल्टी दिशा में-विषय-भोगों की ओर ले जाने वाला है । **तस्स** = उस संसार से । **उत्तारो** = पार होना । **पडिस्रोओ** = प्रतिस्रोत यानी सही दिशा में आत्मा के निज स्वरूप की दिशा में चलना कहलाता है । **सुविहियाणं (सुविहिआणं)** = साधु पुरुषों का । **आसवो** = संयम । **पडिस्रोओ** = प्रतिस्रोतगामी है अर्थात् सांसारिक विषय-भोगों, काम-वासनाओं से निवृत्ति रूप है । इसकी तरफ प्रवृत्ति करना संसारी जीवों के लिये कठिन है, क्योंकि । **लोओ** = संसारी जीव तो । **अणुसोयसुहो** = अनुस्रोत में ही चलना सुखदायी मानते हैं ।

भावार्थ-जन-साधारण को अनुस्रोत के अनुकूल चलने में सुख की अनुभूति होती है, किन्तु जो सुविहित साधु है, उसका संयम (इन्द्रिय-विजय) प्रतिस्रोत गामी होता है । अनुस्रोत संसार है, जन्म-मरण की परम्परा है । प्रतिस्रोत उसका उत्तार है, जन्म-मरण का पार पाना है ।

तम्हा आचारपरक्कमेणं, संवर-समाहि-बहुलेणं ।
चरिया गुणा य णियमा य, हुंति साहूण दट्ठ्वा ॥४॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

इसलिये यहाँ पर हैं जितने, आचार पराक्रम वाले तन ।
संवर में बहुल-समाधि युक्त, धार्मिक रुचि श्रद्धावाले जन ॥
मुनि के गुण एवं चर्या पर, देना है उन्हें ध्यान जग में ।
मुनि नियमों का पालन करते, वे बड़े साधु-जीवन मग में ॥

अन्वयार्थ-तम्हा = इसलिये । **आचार-परक्कमेणं** = साधु को ज्ञानादि आचारों का पालन करने में प्रयत्न करना चाहिये और उसके द्वारा । **संवरसमाहिबहुलेणं** = संवर और समाधि की आराधना करनी चाहिये । **य** = और । **साहूण** = साधुओं की । **चरिया** = जो चर्या । **गुणा** = गुण । **य** = और । **णियमा** = नियम है उनका । **दट्ठ्वा हुंति** = यथा समय पूर्ण रूप से पालन करना चाहिये ।

भावार्थ-इसलिए आचार में पराक्रम करने वाले और संवर में प्रभूत समाधि रखने वाले साधुओं को विशुद्ध चर्या, गुणों तथा नियमों की ओर दृष्टिपात करना चाहिये ।

अणिएयवासो समुयाण चरिया, अण्णायउंछं पड़रिक्कया य ।
अप्पोवही कलहविवज्जणा य, विहारचरिया इसिणं पसत्था ॥५॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

गृहवास त्याग के ले भिक्षा, नाना अज्ञात कुल में जाकर ।
एकान्तवास में मुदित रहे, उपकरण अल्प की इच्छा धर ॥

ना कलह किसी से करे कभी, चाहे जैसा अवसर आये ।
ऋषियों के लिये प्रशस्त यही, जीवन चर्या है बतलाये ॥

अन्वयार्थ-अणिण्यवासो (अनिण्यवासो) = अनियत वास यानी किसी विशेष कारण के बिना एक ही स्थान पर अधिक न ठहरना । **समुयाणचरिया =** समुदान चर्या अर्थात् गरीब और अमीर सभी के घरों से सामुदानिकी भिक्षा ग्रहण करना एवं अनेक घरों से थोड़ा-थोड़ा आहार लेना । **अण्णाय उच्छं (अन्नाय उच्छं) =** अज्ञात घरों से भिक्षा ग्रहण करना । **पइरिक्कया =** पशु, स्त्री, पंडग (नपुंसक) आदि से रहित एकान्त स्थान में रहना । **य =** और । **अप्पोवही =** उपधि अर्थात् भण्डोपकरण आदि थोड़े रखना । **य =** और । **कलहविवज्जणा =** किसी के साथ कलह न करना । **विहारचरिया =** यह विहार चर्या भगवन्तों ने । **इसिणं =** मुनियों के लिये । **पसत्था =** प्रशस्त यानी कल्याणकारी बतलाई है ।

भावार्थ-अनिकेतवास (अनियतवास)-जैन श्रमण किसी एक स्थान में नियतवास नहीं करते । उनकी भिक्षा भी सामूहिक होती है । किसी एक घर में या निमन्त्रित गृहस्थ के यहाँ से भोजन नहीं लेते । अज्ञात कुलों से भी विधिपूर्वक भिक्षा लेना, एकान्तवास तथा उपकरणों की अल्पता और कलह का वर्जन यह विहार-चर्या (जीवन-चर्या) ऋषियों के लिये प्रशस्त कही गई है ।

आइण्ण-ओमाण-विवज्जणा य, ओसण्ण-दिट्ठाहड-भत्तपाणे ।
संसट्ठकप्पेण चरिज्ज भिक्खू, तज्जायसंसट्ठ जई जइज्जा ॥६॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

अवमान और आकीर्ण नाम के, करे भोज का मुनि वर्जन ।
है ऋषि जन के हित में प्रशस्त, देखे-सदनों का अशन ग्रहण ॥
संसृष्ट हाथ या पात्रों से, जो भिक्षा मुनि को दाता दे ।
देखे न सरस या अरस वस्तु, वह कल्प मान मन हर्षित ले ॥

अन्वयार्थ-भिक्खू = भिक्षार्थ (गोचरी) जाने वाले । **जई =** यति यानी साधु को चाहिये कि । **आइण्ण (आइन्न) ओमाण विवज्जणा =** जहाँ जीमनवार (सामूहिक भोजन) हो रहा हो और आने-जाने का मार्ग लोगों से खचाखच भरा हो ऐसे भीड़-भाड़ वाले स्थान में अथवा जहाँ स्वपक्ष और पर-पक्ष की ओर से अपमान होता हो, ऐसे स्थान में गोचरी के लिये न जाए । **ओसण्ण (ओसन्न) दिट्ठा हडभत्तपाणे =** साधु को उपयोगपूर्वक शुद्ध भिक्षा ग्रहण करनी चाहिये । **य =** और । **तज्जाय संसट्ठ =** दाता जो आहारादि भिक्षा में दे रहा हो उसी से दाता के हाथ तथा चमचा आदि संसृष्ट (खरडे हुए/ भरे हुए) हों तो । **संसट्ठकप्पेण =** उन्हीं खरडे हुए/भरे हुए हाथ अथवा चमचा आदि से आहार ग्रहण कर । **चरिज्ज =** संयम यात्रा का निर्वाह करते हुए विचरना चाहिये । **जइज्जा =** उपर्युक्त कल्याणकारी विहार चर्या भगवन्तों ने फरमाई है, इसलिये इसके पालन करने में मुनियों को पूर्ण यत्न करना चाहिये ।

भावार्थ—आकीर्ण अर्थात् जन-संकुल, भीड़-भाड़ वाले स्थान और अवमान यानी खाने वाले अधिक हों और खाद्य-सामग्री कम हो, ऐसी भोजन सामग्री में से भिक्षा लेने का वर्जन करना एवं गृहस्थ के दृष्ट स्थान से लाये हुए भक्त पान का ही सेवन करना ऋषियों के लिये प्रशस्त कहा है। भिक्षु आहार आदि से संस्पृष्ट हाथ और पात्र से भिक्षा ले। दाता जो वस्तु दे रहा है उसी के द्वारा संस्पृष्ट हाथ और पात्र से भिक्षा लेने का यत्न करे, ताकि पूर्व कर्म और पश्चात् कर्म की सम्भावना नहीं रहे।

अमज्जमंसासि अमच्छरीया, अभिक्खणं निव्विगइं गओ य।

अभिक्खणं काउस्सगकारी, सज्झायजोगे पयओ हविज्जा ॥७॥

हिन्दी पद्यानुवाद—

ना मद्य माँस का अशन करे, और मत्सरता नहीं चित्त धरे।
ना बार-बार विकृति खाये, और बहुधा कायोत्सर्ग करे॥
स्वाध्याय हेतु जो तप सुविहित, मुनि उसके लिये प्रयत्न करे।
निज आत्मा के कल्याण हेतु, शास्त्रों का चिन्तन मनन करे॥

अन्वयार्थ—अमज्जमंसासि = साधु को मद्य-माँसादि अभक्ष्य पदार्थों का कदापि सेवन नहीं करना चाहिये। अमच्छरीया = किसी से ईर्ष्या नहीं करनी चाहिये। अभिक्खणं = सदा/प्रतिक्षण। निव्विगइं गओ (निव्विगइं गया) = विषयों का त्याग करना चाहिये। अभिक्खणं = पुनः पुनः। काउस्सगकारी = कायोत्सर्ग करना चाहिये। य = और। सज्झायजोगे = वाचना, पृच्छनादि स्वाध्याय में। पयओ हविज्जा = सदा लगे रहना चाहिये।

भावार्थ—साधु मद्य और मांस का उपभोग नहीं करता। इनको महारम्भी, अभक्ष्य और तमोगुणी समझकर साधु ग्रहण नहीं करता। वह किसी से मत्सर भाव नहीं रखता। बार-बार विकृतियों का सेवन नहीं करता। बार-बार कायोत्सर्ग करने वाला और स्वाध्याय के लिये विहित तपस्या में प्रयत्नशील रहता है।

ण पडिण्णविज्जा सयणासणाइं, सिज्जं णिसिज्जं तह भत्तपाणं।

गामे कुले वा णगरे व देसे, ममत्तभावं ण कहिं पि कुज्जा ॥८॥

हिन्दी पद्यानुवाद—

ना विहार के समय साधु, यह नियम गृही से करवाये।
शयनासन मेरे आने पर, निश्चय मुझको ही लौटाये॥
ऐसे भक्तपान आदिक, मेरे ही आने पर लाये।
कुल नगर गाँव या देश कहीं, ना मोह भाव को फैलाये॥

अन्वयार्थ—मासकल्प एवं चातुर्मासावासादि की समाप्ति पर जब साधु विहार करने लगे तब—
सयणासणाङ्गं = शयन आसन । **सिज्जं** = शय्या । **णिसिज्जं** = निषद्या । **तह** = तथा । **भत्तपाणं** =
 आहार-पानी आदि किसी भी वस्तु के लिये श्रावकों से/गृहस्थों से । **ण पडिण्णविज्जा (न पडिन्नविज्जा)**
 = ऐसी प्रतिज्ञा न कराए कि जब मैं वापिस लौटकर यहाँ आऊँ तब ये पदार्थ मुझे ही देना और किसी को मत
 देना । **गामे** = गाँव में । **वा** = अथवा । **कुले** = कुल में । **णगरे (नगरे)** = नगर में । **व** = अथवा । **देसे** =
 देश में । **कहिं पि** = कहीं पर भी साधु को । **ममत्त भावं** = ममत्व भाव । **ण कुज्जा (न कुज्जा)** = नहीं
 रखना चाहिये । यहाँ तक कि वस्त्र-पात्रादि धर्मोपकरणों पर एवं अपने शरीर पर भी ममत्व भाव नहीं रखना
 चाहिये ।

भावार्थ—साधु विहार करते समय गृहस्थ को ऐसी प्रतिज्ञा नहीं दिलाए कि यह शयन, आसन,
 उपाश्रय और स्वाध्याय भूमि जब मैं लौटकर आऊँ तब मुझे ही देना । इसी प्रकार भक्त-पान मुझे ही देना ऐसी
 प्रतिज्ञा भी न करावे । साधु गाँव कुल नगर या देश में किसी भी पदार्थ पर ममत्व भाव नहीं रखे ।

गिहिणो वेयावडियं ण कुज्जा, अभिवायणं वंदण-पूयणं वा ।

असंकिलिट्ठेहिं समं वसिज्जा, मुणी चरित्तस्स जओ ण हाणी ॥९॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

वैयावृत्य गृहस्थों का, भूले भी करते नहीं मुनिजन ।
 ऐसे ही करें न अभिवादन, एवं उनका वन्दन पूजन ॥
 संक्लेश रहित जो साधु वृन्द, मुनि उन सबके ही साथ रहे ।
 जिससे चरित्र की हानि न हो, सिर आये लाखों दुःख सहे ॥

अन्वयार्थ—**मुणी** = मुनि/साधु । **गिहिणो** = गृहस्थ की । **वेयावडियं** = वैयावृत्य/सेवा-सुश्रुषा ।
वा = अथवा । **अभिवायणं वंदण-पूयणं ण कुज्जा** = अभिवादन/स्तुति/वन्दन/प्रणाम और पूजन
 वस्त्रादि द्वारा सत्कार आदि कार्य न करे तथा । **असंकिलिट्ठेहिं** = संक्लेश रहित उत्कृष्ट चारित्र का पालन
 करने वाले साधुओं के । **समं** = साथ । **वसिज्जा** = रहे । **जओ** = जिनके साथ रहने से । **चरित्तस्स** =
 संयम/चारित्र की । **ण हाणी (न हाणी)** = विराधना न हो ।

भावार्थ—साधु गृहस्थ की वैयावृत्य-सेवा नहीं करे । उसका अभिवादन, वन्दन और पूजन भी
 नहीं करे । मुनिजन संक्लेश-रहित साधुओं के साथ रहे, जिससे कि उनके चारित्र की कोई विराधना अथवा
 हानि न हो ।

न वा लभेज्जा णिउणं सहायं, गुणाहियं वा गुणओ समं वा ।

इक्को वि पावाइं विवज्जयंतो, विहरेज्ज कामेसु असज्जमाणो ॥१०॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

यदि अपने से अधिक गुणी, कोई न कदाचित् मिल पाये ।
 अथवा गुण वाला अपने सम, ना निपुण साथ कोई आये ॥
 तो पाप कर्म का कर वर्जन, वह काम भोग से दूर रहे ।
 एकाकी भी निर्मल मन से, विधि पूर्वक साधु विहार करे ॥

अन्वयार्थ-वा (या) = यदि कदाचित् कालदोष से । **णिउणं (निउणं) =** संयम पालन करने में निपुण । **गुणाहियं =** अपने से अधिक गुणवान् । **वा =** अथवा । **गुणओ समं वा =** अपने समान गुणों वाला । **सहायं =** कोई साथी साधु । **न लभेज्जा =** न मिले तो । **पावाइं =** पाप कार्यों को । **विवज्जयंतो =** वर्जता/छोड़ता हुआ । **कामेसु =** काम भोगों में । **असज्जमाणो =** आसक्त न होता हुआ पूर्ण सावधानी के साथ । **इक्को वि =** अकेला भी । **विहरेज्ज =** विचरण करे, किन्तु शिथिलाचारी एवं पासत्थों के साथ न विचरे ।

भावार्थ-यदि कदाचित् अपने से अधिक गुणी अथवा अपने समान गुण वाला निपुण साथी नहीं मिले तो पाप कर्मों का वर्जन करता हुआ काम भोगों में अनासक्त भाव से अकेला ही (संघ-स्थित) विहार करे । किन्तु दुर्गुणियों के सहवास में नहीं रहे ।

संवच्छरं वा वि परं पमाणं, बीयं च वासं न तहिं वसेज्जा ।

सुत्तस्स मग्गेण चरेज्ज भिक्खू, सुत्तस्स अत्थो जह आणवेइ ॥११॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

मुनि वर्षा ऋतु में चार मास, और शेष काल में मास रहे ।
 दो अधिक मास दो वर्ष बिना, अन्तर के ना फिर वहाँ रहे ॥
 है भिक्षु जनों के लिये उचित, सूत्रोक्त मार्ग से सदा चले ।
 सूत्रार्थ करे आज्ञा जैसी, वैसे पथ पर ही ध्यान धरे ॥

अन्वयार्थ-संवच्छरं = वर्षा काल के चार मास । **च =** और । **वा वि =** बाकी समय में एक मास रहने का । **परं =** उत्कृष्ट । **पमाणं =** परिमाण है । इसलिये जहाँ पर चातुर्मास किया हो अथवा मासकल्प किया हो । **तहिं =** वहाँ पर । **बीयं (बीअं) =** दूसरा । **वासं =** चातुर्मास अथवा मासकल्प । **न वसेज्जा (न वसिज्जा) =** नहीं करना चाहिये क्योंकि । **सुत्तस्स अत्थो =** सूत्र एवं उसका अर्थ । **जह =** जिस प्रकार । **आणवेइ =** आज्ञा दे उसी प्रकार । **सुत्तस्स =** सूत्रोक्त । **मग्गेण =** मार्ग से । **भिक्खू =** मुनि को । **चरेज्ज (चरिज्ज) =** प्रवृत्ति करनी चाहिये ।

भावार्थ-जिस गाँव में मुनि, साधु मर्यादानुसार उत्कृष्ट प्रमाण तक रह चुका हो, अर्थात् वर्षाकाल में

चातुर्मास और शेष काल में एक मास रह चुका हो, वहाँ दोगुणा काल, (दो चातुर्मास और दो मास) का अन्तर किये बिना नहीं रहे। भिक्षु सूत्रोक्त मार्ग से चले। सूत्र का अर्थ जिस प्रकार आज्ञा दे उसके अनुसार चले।

जो पुव्वरत्तावरत्तकाले, संपेहए अप्पगमप्पएणं।

किं मे कडं किं च मे किच्चसेसं, किं सक्कणिज्जं ण समायरामि ॥12॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

जो साधु रात्रि के प्रथम और, अन्तिम प्रहर काल भीतर।
करता है अपना आलोचन, स्वयमेव चित्त को निर्मल कर॥
क्या किया अभी तक है मैंने, करना मुझको क्या शेष जिसे।
वह कौन कार्य जो कर सकता, आलस के वश ना किया उसे॥

अन्वयार्थ-जो = साधु को। **पुव्वरत्तावरत्तकाले** = रात्रि के प्रथम प्रहर और पिछले प्रहर में। **अप्पगं** = अपनी आत्मा को। **अप्पएणं (अप्पगेणं)** = अपनी आत्मा द्वारा। **संपेहए (संपिक्खए)** = सम्यक् प्रकार से देखना चाहिये अर्थात् आत्म-चिन्तन करते हुए इस प्रकार विचार करना चाहिये कि। **मे** = मैंने। **किं** = क्या-क्या। **किच्च** = करने योग्य कार्य। **कडं** = किये हैं। **च** = और। **किं** = कौन-कौन से तपश्चरणादि कार्य करना। **मे** = मेरे लिये। **सेसं** = अभी शेष हैं और। **किं** = वे कौन-कौन से कार्य हैं। **सक्कणिज्जं** = जिनको करने की मेरे में शक्ति तो है किन्तु। **ण समायरामि** = प्रमाद आदि के कारण मैं उनका आचरण नहीं कर रहा हूँ।

भावार्थ-साधु रात्रि के पहले और पिछले प्रहर में अपना आत्मालोचन करते हुए सम्यक् प्रकार से देखे, सोचे कि मैंने क्या किया है, मेरे लिए क्या कार्य करना शेष है, वह कौन सा कार्य है जिसे मैं कर सकता हूँ। पर प्रमादवश नहीं कर पाता हूँ।

किं मे परो पासइ किं च अप्पा, किंवाऽहं खलियं ण विवज्जयामि।

इच्चेव सम्मं अणुपासमाणो, अणागयं णो पडिबन्ध कुज्जा ॥13॥

हिन्दी पद्यानुवाद-

अन्य देखे क्या भूल मेरी, या स्वयं उसे मैं देख रहा।
स्खलना ऐसी कौन जिसे, मैं देख-देख ना छोड़ रहा॥
कर आत्म-निरीक्षण यह सम्यक्, प्रतिबन्ध अनागत का न करे।
बन्धे असंयम में न श्रमण, ना भूले कभी निदान धरे॥

अन्वयार्थ-साधु को इस प्रकार विचार करना चाहिये कि-**मे** = जब मैं संयम सम्बन्धी भूल कर बैठता हूँ तो। **परो** = दूसरे लोग-स्वपक्ष तथा पर पक्ष वाले सभी मुझे। **किं** = किस घृणा की दृष्टि से। **पासइ** = देखते हैं। **च** = और। **अप्पा** = मेरी स्वयं की आत्मा। **किं** = क्या कहती है। **वा** = और। **अहं**

= मैं । किं = अपनी किन-किन । खलियं = स्खलनाओं/भूलों को । ण (न) विवज्जयामि = अभी तक नहीं छोड़ सका हूँ और क्यों नहीं छोड़ सका हूँ ? अब मुझे इन सब भूलों को छोड़कर संयम-पालन में सावधान रहना चाहिये । इच्चेव = जो साधु इस प्रकार । सम्मं = सम्यक्/अच्छी प्रकार से/तरह से । अणुपासमाणो = विचार एवं चिन्तन करता है वह । अणागयं = भविष्य में । णो (नो) पडिबन्ध कुज्जा = वह फिर किसी प्रकार का दोष नहीं लगा सकता, यानी दोषों से छुटकारा पा जाता है ।

भावार्थ—क्या मेरे प्रमाद को कोई दूसरा देखता है अथवा अपनी भूल को मैं स्वयं देख लेता हूँ । वह कौन सी स्खलना है जिसे मैं नहीं छोड़ रहा हूँ । इस प्रकार सम्यक् प्रकार से आत्म-निरीक्षण करता हुआ मुनि भविष्य में दोषों से छूट जाता है असंयम में नहीं बंधता व निदान नहीं करता है ।

जत्थेव पासे कइ दुप्पउत्तं, काएण वाया अदु माणसेणं ।
तत्थेव धीरो पडिसाहरिज्जा, आइण्णओ खिप्पमिवक्खलीणं ॥14॥

हिन्दी पद्यानुवाद—

हो जहाँ कहीं भी दुष्प्रवृत्त, यह तन मन अपना और वचन ।
जाने तो वहीं संभल जाये, आगे न बढ़ाये धीर चरण ॥
ज्यों जातिमन्त हो अश्व कोई, वल्गा खींचे रुक जाता है ।
चंचल मन वैसे होते ही, मुनि का मानस झुक जाता है ॥

अन्वयार्थ—इव = जिस प्रकार । आइण्णओ (आइन्नओ) = जातिवान् घोड़ा । वक्खलीणं = लगाम का संकेत पाते ही विपरीत मार्ग को छोड़कर सन्मार्ग पर चलने लग जाता है उसी प्रकार । धीरो = बुद्धिमान् साधु को चाहिये कि । जत्थेव = जब कभी । कइ = किसी भी स्थान पर । माणसेणं वाया अदु काएण = अपने मन, वचन और काया को । दुप्पउत्तं = पाप कार्य की ओर दुष्प्रवृत्त होते हुए । पासे = देखे तो । खिप्पं = क्षिप्र, तत्काल । तत्थेव = उसी समय । पडिसाहरिज्जा = उनको उस पाप कार्य से खींचकर सन्मार्ग में लगा दे ।

भावार्थ—जहाँ कहीं भी मन, वचन और काया को दुष्प्रवृत्त होता हुआ देखे, तो धीर साधु वहीं सम्भल जाए । जैसे जातिमान् अश्व लगाम को खींचते ही सम्भल जाता है ।

जस्सेरिसा जोग जिइंदियस्स, धिईमओ सप्पुरिसस्स णिच्चं ।
तमाहु लोए पडिबुद्धजीवी, सो जीवई संजमजीविएणं ॥15॥

हिन्दी पद्यानुवाद—

जिस धैर्यशील इन्द्रियजित के, शुचियोग सदा ऐसे होते ।
प्रतिबुद्ध जीवन वाले वे, निश्चय जग में ऐसे होते ॥
जिसका जीवन हो उस प्रकार, वह तपी संयमी कहलाता ।
संयममय-जीवन वह जीता, और मुक्ति पास में ले आता ॥

भावार्थ—जिस जितेन्द्रिय और धृतिमान सत्पुरुष के योग सदा इस प्रकार के होते हैं, उसे लोक में प्रतिबद्धजीवी कहा जाता है। जो ऐसा होता है, वह संयमी जीवन जीता है।

अरक्खिओ जाइपहं उवेइ, सुरक्खिओ सव्वदुहाण मुच्चइ ॥१६॥

॥ति बेमि॥

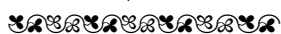
सुसमाहित कर सब इन्द्रिय को, आत्मा की रक्षा सतत करे ।
कारण असुरक्षित आत्मा ही, जग जन्म-मरण का वरण करे ॥
कर जाती पर सुरक्षित यह, दुष्कर्म जन्म दुःख पीड़ा को ।
तब पूर्ण मुक्त बन जाती है, पाकर निजगुण की संपद को ॥

अन्वयार्थ-सर्व्विदिहं = सब इन्द्रियों को वश में रखने वाले । सुसमाहिहं = सुसमाधिबन्त मुनियों को । सययं = सतत/सदा । अप्पा = अपनी आत्मा की । खलु = सब प्रकार से । रक्खियव्वो = रक्षा करनी चाहिये-अर्थात् उसे तप-संयम में लगाकर पाप कार्यों से बचाना चाहिये, क्योंकि । अरक्खिओ (अरक्खियो) = जो आत्मा असुरक्षित है वह, जाइपहं = जाति पथ को । उवेइ = प्राप्त होती है अर्थात् जन्म-मरण के चक्र में फँसकर संसार में परिभ्रमण करती रहती है और । सुरक्खिओ = जो सुरक्षित है अर्थात् पाप कार्यों से निवृत्त है वह आत्मा । सव्व दुहाण = सब दुःखों से । मुच्चइ = मुक्त हो जाती है अर्थात् मोक्ष को प्राप्त कर लेती है । त्ति बेमि = ऐसा मैं कहता हूँ ।

भावार्थ—सब इन्द्रियों को सुसमाहित कर आत्मा की सतत रक्षा करनी चाहिये। अरक्षित आत्मा जाति-पथ (जन्म-मरण) के मार्ग को प्राप्त होता है और पाप से सुरक्षित आत्मा सब दुःखों से मुक्त हो जाती है।

ऐसा मैं कहता हूँ।

॥ द्वितीय चूलिका समाप्त ॥



सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल के विविध सेवा सोपान

जिनवाणी हिन्दी मासिक पत्रिका का प्रकाशन

जैन इतिहास, आगम एवं अन्य सत्साहित्य का प्रकाशन

आचार्य हस्ती अध्यात्मिक शिक्षण संस्थान

अखिल भारतीय श्री जैन विद्वत् परिषद् का संचालन

वीतराग ध्यान साधना केन्द्र का संचालन

उक्त प्रवृत्तियों में दानी एवं प्रबुद्ध चिन्तकों के
रचनात्मक सक्रिय सहयोग की अपेक्षा है।

सम्पर्क सूत्र
मंत्री

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल

दुकान नं. 182-183, के ऊपर, बापू बाजार

जयपुर-302003 (राजस्थान)

दूरभाष : 0141-2575997, 2571163

फैक्स : 0141-2570753 ई-मेल : sgpmandal@yahoo.in